संयम स्वर्ण महोत्सव (२०१७-१८) की विनम्र प्रस्तुति क्र० ४४

आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज द्वारा प्रदत्त प्रवचन का संग्रह

विद्या वाणी

(भाग-३)

प्रकाशक

जैन विद्यापीठ

सागर (म० प्र०)

विद्या वाणी भाग-३

(आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज द्वारा प्रदत्त प्रवचन का संग्रह)

संस्करण : २८ जून, २०१७ (आषाढ़ सुदी पंचमी, वीर निर्वाण संवत् २५४३)

आवृत्ति : ११००

वेबसाइट : www.vidyasagar.guru

प्रकाशक एवं प्राप्तिस्थान

जैन विद्यापीठ

भाग्योदय तीर्थ, सागर (म० प्र०) चलित दूरभाष ७५८२-९८६-२२२

ईमेल : jainvidyapeeth@gmail.com

मुद्रक

विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिसर्स

प्लाट नं. ४५, सेक्टर एफ, इंडस्ट्रियल एरिया गोविन्दपुरा, भोपाल (म० प्र०) ९४२५००५६२४

आद्य वक्तव्य

युग बीतते हैं, सृष्टियाँ बदलती हैं, दृष्टियों में भी परिवर्तन आता है। कई युगदृष्टा जन्म लेते हैं। अनेकों की सिर्फ स्मृतियाँ शेष रहती हैं, लेकिन कुछ व्यक्तित्व अपनी अमर गाथाओं को चिरस्थाई बना देते हैं। उन्हीं महापुरुषों का जीवन स्वर्णिम अक्षरों में लिखा जाता है, जो असंख्य जनमानस के जीवन को घने तिमिर से निकालकर उज्ज्वल प्रकाश से प्रकाशित कर देते हैं। ऐसे ही निरीह, निर्लिप्त, निरपेक्ष, अनियत विहारी एवं स्वावलम्बी जीवन जीने वाले युगपुरुषों की सर्वोच्च श्रेणी में नाम आता है दिगम्बर जैनाचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज का, जिन्होंने स्वेच्छा से अपने जीवन को पूर्ण वीतरागमय बनाया। त्याग और तपस्या से स्वयं को शृंगारित किया। स्वयं के रूप को संयम के ढाँचे में ढाला। अनुशासन को अपनी ढाल बनाया और तैयार कर दी हजारों संयमी युवाओं की सुगठित धर्मसेना। सैकड़ों मुनिराज, आर्यिकाएँ, ब्रह्मचारी भाई-बहिनें। जो उनकी छवि मात्र को निहार-निहार कर चल पड़े घर-द्वार छोड़ उनके जैसा बनने के लिए। स्वयं चिद्रूप, चिन्मय स्वरूप बने और अनेक चैतन्य कृतियों का सृजन करते चले गए जो आज भी अनवरत जारी है। इतना ही नहीं अनेक भव्य श्रावकों की सल्लेखना कराकर हमेशा-हमेशा के लिए भव-भ्रमण से मुक्ति का सोपान भी प्रदान किया है।

महामनीषी, प्रज्ञासम्पन्न गुरुवर की कलम से मूकमाटी जैसे क्रान्तिकारी-आध्यात्मिक-महाकाव्य का सृजन हुआ। जो अनेक भाषाओं में अनुदित हुआ साथ ही अनेक साहित्यकारों ने अपनी कलम चलायी परिणामतः मूकमाटी मीमांसा के तीन खण्ड प्रकाशित हुए। आपके व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर लगभग ५० शोधार्थियों ने डी० लिट्०, पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की।

अनेक भाषाओं के ज्ञाता आचार्य भगवन् की कलम से जहाँ अनेक ग्रन्थों के पद्यानुवाद किए गए तो वहीं नवीन संस्कृत और हिन्दी भाषा में छन्दोबद्ध रचनायें भी सृजित की गई। सम्पूर्ण विद्वत्जगत् आपके साहित्य का वाचन कर अचंभित हो जाता है। एक ओर अत्यन्त निस्पृही, वीतरागी छवि तो दूसरी ओर मुख से निर्झरित होती अमृतध्वनि को शब्दों की बजाय हृदय से ही समझना श्रेयस्कर होता है।

प्राचीन जीर्ण-शीर्ण पड़े उपेक्षित तीर्थक्षेत्रों पर वर्षायोग, शीतकाल एवं ग्रीष्मकाल में प्रवास करने से समस्त तीर्थक्षेत्र पुनर्जागृत हो गए। श्रावकवृन्द अब आये दिन तीर्थों की वंदनार्थ घरों से निकलने लगे और प्रारम्भ हो गई जीर्णोद्धार की महती परम्परा। प्रतिभास्थलियों जैसे शैक्षणिक संस्थान, भाग्योदय तीर्थ जैसा चिकित्सा सेवा संस्थान, मूकप्राणियों के संरक्षणार्थ सैकड़ों गौशालाएँ, भारत को इण्डिया नहीं 'भारत' ही कहो का नारा, स्वरोजगार के तहत 'पूरी मैत्री' और 'हथकरघा' जैसे वस्त्रोद्योग की प्रेरणा देने वाले सम्पूर्ण जगत् के आप इकलौते और अलबेले संत हैं।

कितना लिखा जाये आपके बारे में शब्द बौने और कलम पंगु हो जाती है, लेकिन भाव

विश्राम लेने का नाम ही नहीं लेते। यह वर्ष आपका मुनि दीक्षा का स्वर्णिम पचासवाँ वर्ष है। भारतीय समुदाय का स्वर्णिम काल है यह। आपके स्वर्णिम आभामण्डल तले यह वसुधा भी स्वयं को स्वर्णमयी बना लेना चाहती है। आपकी एक-एक पदचाप उसे धन्य कर रही है। आपका एक-एक शब्द कृतकृत्य कर रहा है। एक नई रोशनी और ऊर्जा से भर गया है हर वह व्यक्ति जिसने क्षणभर को भी आपकी पावन निश्रा में श्वांसें ली हैं।

आपकी प्रज्ञा से प्रस्फुटित साहित्य आचार्य परम्परा की महान् धरोहर है। आचार्य धरसेनस्वामी, आचार्य समन्तभद्र स्वामी, आचार्य अकलंकदेव, आचार्य विद्यानंदि स्वामी, आचार्य पूज्यपाद स्वामी जैसे श्रुतपारगी मुनियों की श्रृंखला को ही गुरुनाम गुरु आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज, तदुपरांत आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज ने यथावत् प्रतिपादित करते हुए श्रमण संस्कृति की इस पावन धरोहर को चिरस्थायी बना दिया है।

यही कारण है कि आज भारतवर्षीय विद्वत्वर्ग, श्रेष्ठीवर्ग एवं श्रावकसमूह आचार्यप्रवर की साहित्यिक कृतियों को प्रकाशित कर श्रावकों के हाथों में पहुँचाने का संकल्प ले चुका है। केवल आचार्य भगवन् द्वारा सृजित कृतियाँ ही नहीं बल्कि संयम स्वर्ण महोत्सव २०१७-१८ के इस पावन निमित्त को पाकर प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रणीत अनेक ग्रन्थों का भी प्रकाशन जैन विद्यापीठ द्वारा किया जा रहा है।

आचार्य गुरुदेव की तपःसाधना के साथ जिनवाणी के चिंतन-मनन से प्रस्फुटित हुई शब्द-संयोजना जब उनके मृदु अधरों से निःसृत होती है तो प्रत्येक भव्य जीव का हृदय कमल एक अद्‌भुत ज्ञान प्रकाश से भरकर प्रफुल्लित होता है। उन्हीं दिव्य वचनों का संचयन जिन सुधी श्रोताओं में पूर्व में एक अनुपम निधि के रूप में संग्रहीत कर रखा था और अपने नगर में आचार्य गुरुदेव के प्रवास की मधुर स्मृति के रूप में अपने पास समेट रखा था, उन सब दिव्य प्रवचन आपूरित वचनामृतों को एक साथ संयोजित करके इस विद्या-वाणी कृति में निबद्ध करने का जटिल किन्तु भक्तिपूरित प्रयास किया गया है। एतदर्थ इस परिश्रम के महान् कार्य में जिन साधकों ने सहयोग किया हम उनके हृदय से आभारी हैं।

समस्त ग्रन्थों का शुद्ध रीति से प्रकाशन अत्यन्त दुरूह कार्य है। इस संशोधन आदि के कार्य को पूर्ण करने में संघस्थ मुनिराज, आर्यिका माताजी, ब्रह्मचारी भाई-बहिनों ने अपना अमूल्य सहयोग दिया। उन्हें जिनवाणी माँ की सेवा का अपूर्व अवसर मिला, जो सातिशय पुण्यार्जन तथा कर्मनिर्जरा का साधन बना।

जैन विद्यापीठ आप सभी के प्रति कृतज्ञता से ओतप्रोत है और आभार व्यक्त करने के लिए उपयुक्त शब्द खोजने में असमर्थ है।

गुरुचरणचंचरीक

अनुक्रमणिका

समागम

आदर्शों के आदर्श

सर्वोदयसार

कुण्डलपुर देशना

तपोवन देशना

सिद्धोदयसार

नियोग

भगवान् कुन्दकुन्द ने इस पंचमकाल में सुख के इच्छुक प्राणियों के लिए संक्षेप में सुख, शान्ति का रास्ता प्रशस्त किया है क्योंकि जहाँ तक हमें जाना है, वहाँ का रास्ता बहुत लम्बा है और शक्ति भी हमारी सीमित है तथा काल बहुत ही छोटा है। अनुभव की बात जो कही जाती है वह बात छोटी हो करके भी चोटी तक ले जाने वाली होती है। मंजिल तक पहुँचने के लिए अनुभव की बड़ी आवश्यकता होती है। किताबों के मर्म को समझने के लिए शब्द ज्ञान की आवश्यकता होती है। अनुभव की कोई आवश्यकता नहीं होती। अध्यात्म ग्रन्थों में कुन्दकुन्द भगवान् ने लौकिक उदाहरणों के माध्यम से उसे समझाने का प्रयास किया है। जैसे दलदल है और उसमें एक स्वर्ण का टुकड़ा और उसी दल-दल में एक लोहे का टुकड़ा गिर गया। कुछ काल व्यतीत होने पर उन टुकड़ों को निकाला गया। लोहे का टुकड़ा पहले हाथ लगता है जो जंग खा गया है और सोने का टुकड़ा जो पूर्व में था उसी प्रकार प्राप्त हो जाता है। जिसकी ये दोनों वस्तुएँ गिरी थीं वह सोचता है कि स्वर्ण ने अपने स्वरूप को नहीं छोड़ा और लोहे के उस टुकड़े ने कुछ समय के उपरान्त ही दलदल के सहयोग से अपने स्वरूप को छोड़ दिया और वह इतना खतरनाक बन गया कि अगर कोई भी उसके ऊपर पैर रख दे तो टिटनेश हो जाता है। जिसको कहीं यह लग जाये और खून आ जाये तो फिर हजारों रुपए खर्च करने को वह मजबूर हो जाता है, नहीं तो उसमें भयानक स्थिति आ सकती है। यह समयसार का सार है किन्तु इस उदाहरण को देते हुए किन जीवों के लिए उन्होंने सम्बोधित किया है, यह विचारणीय है। अर्थात् ज्ञानी वह होता है जो सोने की मिट्टी के समान रह जाता है और अज्ञानी वह होता है जो लोहे की टुकड़ी के समान रह जाता है। संसारी प्राणी के पास ज्ञान भी है तो अज्ञान रूप परिणमन करने की क्षमता भी है।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने समयसार के निर्जरा अधिकार में कहा भी है-

णाणी रागप्पजहो सव्व दव्वेसु कम्ममज्झगदो।
णो लिप्पदि कम्मरएण दु कद्दममज्झे जहा कणयं॥
अण्णाणी पुण रत्तो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो।
लिप्पदि कम्मरएण दु कद्दममज्झे जहा लोहं॥

(समयसार-२२९/२३० युग्मं)

ज्ञानी जानता है, देखता है, किन्तु रागद्वेष नहीं करता है। जानना-देखना आत्मा का स्वभाव है, वह स्वभाव कभी मिटता नहीं लेकिन स्वभाव का कभी अभाव नहीं होता। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह विभाव भी नहीं होता है। किसी भी पदार्थ का अभाव नहीं होता फिर भी सत् का अभाव असत् का प्रादुर्भाव नहीं होते हुए भी कुछ तीसरी वस्तु आती है जिसका नाम विकार है। जैसा संयोग

मिल जाता है उसके अनुसार पदार्थ भी अपना परिणमन कर जाता है। ज्ञानी के लिए भी दलदल का और अज्ञानी के लिए भी दलदल का संयोग मिला लेकिन यह ध्यान रखना कि ज्ञानी दलदल में फँसता नहीं और वह कभी दलदल में रह भी जाता है तो भी वह अनेक दल वाला नहीं होता हमेशा निर्दलीय रहता है। निर्दलीय का मतलब कोई राजनीति नहीं चल रही है फिर भी अर्थ यह हुआ वह किसी के साथ सम्बन्ध रखते हुए भी उसका नहीं होता और किसी का नहीं होना, अपना ही रहना, यह एक वस्तुतः साधना की बात है। संयोग तो मिलेंगे, वियोग भी मिलेंगे, रात आई है, दिन आयेगा, प्रभात आयेगा। दिन और रात का जोड़ा है। यह संकल्प-विकल्प जिस प्रकार होते रहते हैं संसारी प्राणी के लिए उसी प्रकार यह रात-दिन की कल्पना; संयोग-वियोग की कल्पना यह वस्तुतः है लेकिन हमारी परीक्षा तो तभी है जब इन संयोग और वियोग में भी उस सोने के समान स्वतंत्र बने रहें। हम बनते नहीं बनने की इच्छा रखते हैं। इच्छा होना भी बहुत ही शुभ लक्षण है। यदि आपकी इच्छा है और वह भीतर से है तो नियम से एक दिन वह इच्छा पूर्ण हो सकती है। यदि भावना है तो नियम से उसमें ढल सकते हैं लेकिन वह भावना सही होनी चाहिए। जैसा भाव होगा वैसा ही हमें फल मिलेगा इसलिए भाव-विभाव के रूप में ना रहें। भाव केवल भाव के रूप में रहें। उसके पीछे किसी योग-संयोग की बात न हो तो उन्होंने बहुत अच्छी बात कही कि ज्ञानी वह जो अपने ऊपर विश्वास रखने वाला हो। राग-द्वेष करना मेरा स्वभाव नहीं है, इस प्रकार जानने/देखने वाला हो, जो कभी राग-द्वेष नहीं करता वही ज्ञानी है। और जो राग-द्वेष मेरा स्वभाव नहीं है इस प्रकार जानकर भी करता है वह कथञ्चित ज्ञानी इसलिए है कि वह राग-द्वेष छोड़ने के लिए तत्पर तो है फिर भी राग-द्वेष हठात् हो रहे हैं। कुछ हठात् भी हुआ करते हैं, कुछ बलात् भी हुआ करते हैं, कुछ रुचिपूर्वक भी हुआ करते हैं। अब रुचि की बात आ गई तो इसी से मैं कहना प्रारंभ कर देता हूँ। प्रकृति और पुरुष के खेल का नाम ही संसार है यह कहना मति-मन्दता ही है क्योंकि खेल खेलने वाला पुरुष होता है और प्रकृति केवल उसका खिलौना है। पुरुष और प्रकृति के विषय को मैं थोड़ा सा खोलना चाहूँगा। पुरुष का अर्थ आत्मा है और प्रकृति का अर्थ भोग्य पदार्थ हैं। प्रायः लोगों के यह कहने में आ जाता है कि हम क्या करें इतना सारा आकर्षण है और हम आकर्षित नहीं हों तो और कौन होगा? बात तो बिल्कुल ठीक है कि ये सारी-सारी भोग्य सम्पदा तीन लोक में भरी हुई है, भोक्ता पुरुष इसके बीच में चला जाये और भोग के भाव जागृत न हों यह कैसे सम्भव है? लेकिन यह ध्यान रखना कि प्रकृति कभी भी हठात् आप को बुलाती नहीं। कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा है-

असुहो सुहो य गंधो ण तं भणदि जिग्घ मंति सो चेव।
ण य एइ विणिग्गहिदूं धाण विसयमागदं तु गंधं॥

इसी प्रकार पाँचों इन्द्रियों के विषय में कहा है। कितनी अच्छी इन्होंने व्याख्या की। पाँच

इन्द्रियों के विषयों से यह लोक भरा हुआ है, ज्ञानी उसके बीच में है और अज्ञानी भी उसी के बीच में है। दोनों बीच में हो करके भी बहुत अन्तर रखते हैं। एक कहता है कि प्रकृति मुझे बुला रही है, मुझसे खेलो ऐसा कह रही है, सूँघ लो, सूँघ लो कह रही है। देख लो मैं कितने रूप वाली हूँ इस प्रकार कह रही है इसलिए तो हमें रूप को देखने का आकर्षण बढ़ जाता है, सूँघने की भावना भी जागृत हो जाती है आदि-आदि जो विकल्प उत्पन्न होते हैं यह हमारी ही देन नहीं है किन्तु प्रकृति के बलात् ये कार्य हो रहा है। इस प्रकार कह कर प्राणी उस दलदल में और फँसता चला जा रहा है। जिसके पास ज्ञान है वही तो खेल खेलेगा और जिसके पास ज्ञान नहीं वह क्या खेलेगा? तो प्रकृति के पास यह ज्ञान नहीं है, वह शुभ-अशुभ के रूप में विद्यमान जरूर है लेकिन यह नहीं कहती है कि हमें खा लो, पी लो, सूँघ लो, चख लो आदि-आदि। कितनी बड़ी बात कह दी। हम स्वतंत्र हैं। हमारी आत्मा स्वतंत्र है। फिर भी हमें ऐसा बोध हो जाता है कि सामने वाला हमारा कोई स्वागत कर रहा हो, बुला रहा हो, प्रतीक्षा कर रहा हो।

कभी यह नहीं सोचना कि प्रकृति के द्वारा यह सारा हमारा खेल चल रहा है। खेल नहीं चल रहा। खेल खेलते समय अज्ञानी के लिए कुछ खिलौने भी आवश्यक हो जाते हैं। अज्ञानी खेलता है और ज्ञानी भी खेलता है। ज्ञानी खिलौनों के बिना खेलता है और अज्ञानी खिलौना टूटने से रोता है। अज्ञानी का खिलौना जब टूट जाता है तो वह रोता है कि मैं ही मिटता चला जा रहा हूँ। वस्तुतः खेल खेलने वाला भीतर भी खेल सकता है और ऐसा खेल सकता है कि उसके लिए हमारे पास शब्द नहीं हैं कि कितने आनन्द का अनुभव वह कर सकता है। अकेला जो खेलता है, दो के बीच में भी खेल होते हैं और बहुतों के बीच में भी खेल होते हैं लेकिन यह ध्यान रखना कि दो के बीच में जो खेल होते हैं वे अत्यधिक कमजोर होते हैं। एक बिगड़ जाय तो खेल समाप्त हो जाता है। दो में खेल का आनन्द पराधीन होता है लेकिन एक के बीच में जब खेल होता है तो उसमें कभी द्वन्द्व नहीं होता। अपने आप में ही लीन हो जाता है, अनुभव में यह बात आती चली जाती है कि पर वस्तु मेरे लिए खतरनाक है और इस बात को जब पहचान लेता है तो वह दूसरे के साथ संयोग और वियोग को कोई खेल नहीं समझता। वह केवल एकमात्र देखने में आता है। इसी बात को समझाने के लिए अनेक दर्शनकार और भी हुए हैं। यह सब माया है और यह सब संस्कार हैं और एक मात्र यह कहने में आता है और यह एकमात्र देखने में आता है लेकिन वस्तुतः यह बात नहीं है और यह बात कथञ्चित कहें तो बहुत अच्छी बात है। यह बिल्कुल ठीक है कि जब तक हम संयोग की ओर देखते जाते हैं तब तक हमारा जो मालिक बैठा हुआ है आत्मतत्त्व उसको हम गौण कर जाते हैं क्योंकि आनन्द लेने वाला खिलाड़ी आत्मा है, वह कभी भी ले सकता है, कैसे भी ले सकता है, पर जब वह सही वस्तुस्थिति पर आ जाता है तो उसको मात्र देखने और जानने में ही बहुत आनन्द का अनुभव हो जाता है।

प्रभावित होना और प्रभावित करना ये दो बातें हैं। प्रभावित करने का मतलब क्या है? दूसरे को जो अन्य दिशाओं में प्रभावित हो रहा है, उसको इस ओर आकर्षित करना, यह भी एक प्रभावित करना ही है। लेकिन प्रभावित होना जो है वह बहुत ही समझदारी के साथ होना चाहिए। किस वस्तु से हम प्रभावित हो रहे हैं देख लीजिए। आप किस प्रकार से प्रभावित होते हैं। कोई हजारपति हो सकता है, कोई लखपति हो सकता है, कोई करोड़पति हो सकता है। तीनों व्यक्ति मिल करके जा रहे हैं घूमने के लिए और उनके सामने एक चमकीली वस्तु दिखने में आ रही है। तीनों की आँखों में वह चमकीली वस्तु आ रही है, वस्तु आँख में आ गई। क्या वस्तु वस्तु में है, यह पहले ध्यान रखें। हाँ, आँख ने उस वस्तु को देख लिया। देख लिया तो ध्यान रखना आँख उस ओर गई है, वस्तु इस ओर नहीं आई है। अब जाने के बाद भी जानना- देखना, यह सब आत्मा का स्वभाव है इसलिए हम इसको मंजूर कर लेते हैं। ठीक है, जानने-देखने के लिए तो आँख है, जानो लेकिन तीनों के मुख में पानी छूट गया। पानी छूटना क्या आत्मा का स्वभाव है? यदि है तो सिद्धालय में भी पानी झरना चाहिए। वहाँ पर भी पानी छूटना चाहिए। जिस-जिस व्यक्ति ने उस वस्तु को देख लिया, उस-उस व्यक्ति के मुँह में पानी आना चाहिए। लेकिन पानी सबके भीतर नहीं आता, कुछ ही व्यक्ति ऐसे होते हैं जो वस्तुओं से पानी-पानी हो जाते हैं। अपने आप को प्रभावित कर देते हैं। तो वह तीनों व्यक्ति प्रभावित हो गए। ''यह क्या चीज है, देखो'', हजारपति व्यक्ति कह देता है तो कथञ्चित ठीक है। लखपति भी कह रहा है तो फिर भी ठीक है लेकिन करोड़पति भी कह रहा है। अब देख लीजिए चार कदम आगे बढ़ना है। हजारपति पहुँच गया, मुझे पहले देखने दो। नहीं-नहीं, लखपति कहता है, मुझे भी दिखी है। करोड़पति कहता है, तुम दो ही नहीं, मालिक हम भी हैं। तीनों झुकने के लिए प्रयास करते हैं। करोड़पति की कमर झुक नहीं पाती, लखपति वाला झुक तो लेता है लेकिन वह घुटने तक ही झुक पाता है और हजारपति वाला? वह बैठ करके ले लेता है। जिसने लिया उसी की है, अब देखो, लखपति के मन में भी बात रह गई और करोड़पति के मन में भी बात रह गई। यदि हमारी कमर ठीक होती तो तुम्हारे से पहले हम उठा लेते। ये विकल्प क्यों उत्पन्न हो गए? एक सिक्के से भी सबके मुँह में पानी आ गया। करोड़पति भी प्रभावित हो गया। हाँ, इसी प्रकार पंचेन्द्रिय के विषयों से संसारी प्राणी प्रभावित होता आया है और उसके लिए समझाया जा रहा है कि अब ज्ञानी बन चुका है, अब मुख में पानी नहीं आना चाहिए, पानी नहीं होना है। तुझे ऐसा रहना है कि जिससे विषय तुझे प्रभावित न करें।

एक उदाहरण आपको देता हूँ इस सम्बन्ध में। दो व्यक्ति, एक लड़का और एक लड़की। लड़के को मिला है एक गुरु का/संत का समागम, लड़की को मिला है एक आर्यिका का समागम। दोनों का विद्याध्ययन हो जाता है। जीवन क्या है? यह समझ में आ जाता है। क्या पाना है? क्या पाना

चाहिए? ये सब समझ में आ जाता है। जिस समय उस लड़के का विद्याध्ययन पूर्ण हो गया, महाराज के चरणों में आ करके वह कहता है– महाराज जी! अब आगे क्या करना है? तो महाराज जी ने कहा कि देखो बेटा! तेरा शिक्षण तो समाप्त हो गया, अब तुझे जो चाहिए वह कर ले। यहाँ पर रहना चाहता है तो रह जा और घर जाना चाहता है तो ठीक है तो लड़के ने कहा कि कुछ दिन के लिए घर जाना चाहता हूँ। कोई बात नहीं, जाना चाहता है तो जा। जाते समय गुरु ने कहा कि कुछ दक्षिणा तो देकर जाओ यह सुनते ही आप क्या करेंगे? आप तो जेब में हाथ डाल लेंगे। कोई नोट का बण्डल चाहिए होगा? नहीं, मैं यह इसलिए कह रहा हूँ कि अगला जो रविवार आने वाला है वह दीपावली का है। चातुर्मास पूर्ण हो जायेगा। इसलिए उस रविवार को कुछ गुरु दक्षिणा आप भी दे दें तो अच्छा है। लेकिन आप ध्यान रखना, जो त्यागी होता है वह दक्षिणा त्याग की ही माँगता है। जो रागी होता है वह राग की दक्षिणा माँगता है, अतः उन महाराज जी ने उस बच्चे से कहा सही दक्षिणा देओ। बच्चे ने कहा ठीक है महाराज जी दे दूँगा। यदि विवाह कर गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करूँगा तो शुक्ल पक्ष में मैं ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करूँगा। शाबास! बेटा शाबास! कह दिया ठीक है आधा जीवन त्याग का, आधा जीवन राग का। अब किसकी कीमत सबसे ज्यादा होती है, देख लीजिए। इसी प्रकार इसी दिन उस आर्यिका के पास रहने वाली लड़की का भी विद्याध्ययन पूर्ण हुआ। आर्यिका ने पूछा कि जाना चाह रही हो क्या? उत्तर मिला हाँ। आर्यिका नहीं बनना चाहती। लड़की बोली कि थोड़ा घर जाकर फिर बाद में। ठीक है, कोई बात नहीं। फिर वह जाने के लिए तैयार होती है। आर्यिका कहती है कि दक्षिणा देकर के जाना बेटी। वह कहती है कि कृष्ण पक्ष में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करूँगी। इसे कहते हैं सच्चा ज्ञानी, सम्यग्दृष्टि। अर्थ की उन्नति ही मात्र सुपुत्र का लक्षण नहीं है, परमार्थ की ओर भी उसके कदम बढ़ने चाहिए। वीतरागता की उपासना उसके जीवन में आ जानी चाहिए। यही एकमात्र शिक्षण का परिणाम होता है। विद्याध्ययन अर्थ के लिए नहीं होता। विद्या वैभव का अधिकारी कौन? समंतभद्र स्वामी कहते हैं– 'दर्शनपूतः' सम्यग्दृष्टि का वर्णन करते हुए समन्तभद्र महाराज थकते नहीं, उनकी यह विशेषता है। वह सम्यग्दृष्टि कैसा होता है? संसार शरीर भोगों से उदासीन होता है, वह 'पूत' माना जाता है। 'दर्शनपूतः'। पूत का अर्थ पवित्र भी होता है और पूत का अर्थ पुत्र भी होता है। जो पवित्र होगा उसी का नाम यहाँ पर पूत है। दोनों के माता- पिता सोचते हैं अपने सम्बन्धियों से कहते हैं कि इनकी अब शादी/विवाह करना आवश्यक है। योग्य कन्या का चुनाव करना है। ऐसा नहीं कि जिसने दहेज ज्यादा दे दिया उसको बेच दिया, ऐसा नहीं। हमारे बेटे को बेचना नहीं, समझे। आप लोग अपने-अपने बेटों को बेचते हैं दहेज लेकर।

प्रसंग आया है इसलिए कह रहा हूँ आप लोग क्या करते हैं? जैसे कोई लड़की वाला आया। वह कहे कि आपके लड़के के साथ लड़की का संबंध करना चाहते हैं। ठीक है, लेकिन अभी तो

लड़का पढ़ रहा है। नहीं समझे, अभी तो लड़का पढ़ रहा है, आप कहते हैं कि जब तक पोस्ट ग्रेजुएट नहीं होता तब तक तो वह बात नहीं करता है और बीच-बीच में सम्बन्ध बहुत आ रहे हैं। अभी एक सज्जन आये थे उन्होंने पाँच लाख देने को कहा था, लेकिन हमने कहा कि नहीं यह हमारा लड़का है यह पसन्द नहीं करेगा, दस लाख आ जायें तो हम सोचेंगे। तो इस प्रकार उसका मूल्य बढ़ता जा रहा है। जिस प्रकार यहाँ पर पन्ना की खानों में हीरा निकलता है तो यह आज ५००० में बिकता है तो दूसरे के हाथ में १०००० का बिक जाता है तो तीसरे के हाथ में ५०००० का चला जाता है और जयपुर के जौहरी बाजार में जाकर उसकी कीमत लाखों हो जाती। उसी प्रकार जैसे-जैसे आप लोग प्रचार-प्रसार करते चले जाते हैं वैसे-वैसे हीरे की तरह आपके लड़के की कीमत बढ़ती जाती है। वाह! भैया वाह! यह बेचना नहीं तो और क्या है? यह खरीदना नहीं तो और क्या है? वे आप लोगों जैसे नहीं थे, वे माता-पिता ज्ञानी थे। उन्होंने दहेज की ओर नहीं देखा, संस्कारित लड़की को ढूँढ़ना है, ढूँढ़ना-ढूँढ़ते, विचार करते-करते, चर्चा करते-करते वही लड़की जो आर्यिका के पास पढ़ी थी, संस्कारित थी, उसके पास पहुँचे। उधर लड़की के पिता भी सोच रहे थे कि लड़की तो बड़ी हो गई अब इसके लिए योग्य वर कहाँ मिलेगा। यह संयोग की बात है। जैसी भावना होती है उसी प्रकार काम भी हो जाता है। दोनों का मेल हो जाता है। माता-पिता को भी खुशी होती है। दोनों के माता-पिता को जोड़ा देखकर खुशी होती है। लड़के को देखकर लड़की के माता-पिता खुश हैं व लड़की को देखकर लड़के के माता-पिता खुश हैं। दोनों का सम्बन्ध हो गया। फिर क्या कहना? मिलते हैं जाकर रात्रि में तो लड़की कहती है- अभी नहीं, मेरा कृष्ण पक्ष का नियम है। लड़का कहता है मेरा भी शुक्ल पक्ष का नियम है। दो-तीन साल निकल गए, इसके उपरान्त भी कोई सन्तान नहीं। तो इसके उपरान्त पूछा गया तो वह शर्माते हुए, डरते हुए बोले, अब कैसे कहें? बहुत कठिनाई हो गई। फिर भी किसी प्रकार से उनको पूछा गया। दोनों माता-पिता को मालूम पड़ जाता है कि इन दोनों का इस प्रकार का नियम है कि शुक्ल पक्ष में इस लड़के का नियम है और कृष्ण पक्ष में इस लड़की का, और संयोग की बात है कि इन दोनों का विवाह हो गया और ये दोनों परीक्षा में खरे उतरे। एक बात और मैं कहना चाहता हूँ कि एक दिन पति से पत्नी ने कहा कि आप दूसरा विवाह कर लें तो अच्छा है, कुल परम्परा चल जायेगी। आप पुरुष हैं दूसरा विवाह कर सकते हैं। किसी लड़की के साथ विवाह हो जाये तो कम से कम आपके माता-पिता की वंश परम्परा चल जायेगी। पति कहता है कि असम्भव, ऐसा पवित्र नियोग किसे मिलता है? हमें संसार की परम्परा नहीं बढ़ानी। हम तो जन्म-मरण से छुटकारा पाना चाहते हैं। हमारी भावना है कि जन्म-मरण की यह परम्परा टूट जाए।

शिव-मजर - मरुज-मक्षय - मव्याबाधं विशोकभयशङ्कम्।
काष्ठागतसुखविद्या-विभवं विमलं भजन्ति दर्शनशरणाः ॥

(रत्नकरण्डक श्रावकाचार-४०)

अर्थात् अब तो उस शिव पद का भजन करना है जो अजर, अमर, अविनाशी है। अव्यावाध, शोक, भय, शंका से रहित अचल सुख देने वाला है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र एक ऐसी लक्ष्मी है जिसके द्वारा अनंत सुख की उपलब्धि हो सकती है।

वह लड़का कहता है नहीं, नहीं, मैं अब किसी के साथ सम्बन्ध नहीं रखूँगा। क्या पता हमारे भावों में इस प्रकार की उज्ज्वलता रहे या नहीं। माता-पिता की आँखों में दुख के आँसू नहीं किन्तु सुख का पानी आ जाता है क्योंकि हमारे घर में उत्पन्न हुई यह सन्तान और इसके मन में भरी जवानी में यह वैराग्य! जहाँ पर जवानी अँगड़ाई ले रही हो ऐसी स्थिति में विषयों से अपने आपको मोड़ ले और मोड़े क्या उसी के बीच में रहे और सौ टंच सोना सिद्ध हो जाए। ज्ञानी विषयों के बीच में रहता है फिर भी वह अपने ज्ञानपने को नहीं छोड़ता है क्योंकि कनक कभी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ सकता। अज्ञानी विषयों के बीच में रहता है लेकिन वह लोहे के समान जंग खा जाता है। यह जंग खाने वाले लोहे के टुकड़े नहीं थे, किन्तु सौ टंच स्वर्ण थे क्योंकि ये वहाँ से तप करके आए थे जहाँ पर वीतरागियों ने इन्हें शिक्षण दिया था। इनके सिर पर ऐसे हाथ थे जिन हाथों में हमेशा राग नहीं वीतरागता रहती थी। वीतरागी का संस्कार मिले तो राग वीतरागता में बदलेगा नियम से। देखो, यही तो समागम की बात है। उस वीतरागता का ऐसा प्रभाव था। दस-दस, बारह-बारह साल तक ऐसे संस्कार मिले थे तभी दोनों ऐसे कनक के समान निकले। दोनों के माता-पिता की आँखों में आँसू आ गए और कह दिया कि बेटा! बेटी! तुम बहुत ही अच्छे विचार के हो, हम तुम्हारे जीवन से खुश हैं। हमें अब वंश परम्परा की कोई आवश्यकता नहीं। ऐसी सन्तान हुई, हमारा जन्म भी सफल हो गया। अब देख लीजिए कि यदि शरीर, भोग सामग्री ही आत्मा को हठात् भोग के लिए आकर्षित करती और बाध्य करती तो उन्हें भी बाध्य करना आवश्यक था। यही आचार्यों का कहना है कि जिस प्रकार प्रकृति तटस्थ स्वरूप निष्ठ रहती है उसी प्रकार आत्मा को भी स्वरूप निष्ठ रहना आवश्यक है। इसी का नाम स्वास्थ्य है।

स्वास्थ्यं यदात्यन्तिकमेषपुंसां।
स्वार्थो न भोगः परिभङ्गुरात्मा॥
(स्वयंभू स्तोत्र-७/१)

भगवान् सुपार्श्वनाथ की स्तुति करते हुए यह समन्तभद्र महाराज ने कहा कि हे भगवान्! आपने कहा, स्वास्थ्य किसको बोलते हैं? भोग स्वास्थ्य नहीं है, सुख यदि है तो स्वास्थ्य में है लेकिन भोग में सुख नहीं है इसलिए भोग स्वास्थ्य नहीं है, वह दुख का मूल है, वह तृष्णा के लिए एक कारण है इसलिए भोग सामग्री हममें कभी भी हठात् राग-द्वेष पैदा नहीं करती। यदि हम अपने स्वभाव को पहचानते हों तो। चार पंक्तियाँ देकर मैं उपसंहार कर रहा हूँ। **प्रकृति के अनुरूप यदि**

हम पुरुष होकर रह जाते तो हम जड़ता वाद में फँस जाते। इमली का सेवन तो दूर रहा, इमली का नाम स्मरण भी मुँह में पानी लाता है। लेकिन स्वस्थ को नहीं, प्यास पीड़ित मनुष्य को। यह तो सहज बात है किन्तु विस्मय की बात तो यह है कि भोक्ता के मुख में जाकर भी इमली के मुख में पानी नहीं आता। किसके मुख में पानी आ सकता है, जो प्यासा हो, पानी चाहता हो, उसके मुख में आ सकता है लेकिन जो स्वस्थ है उसके मुख में नहीं आ सकता। यह तो सहज बात है, विस्मय की बात तो यह है कि भोक्ता के मुख में जाकर के भी इमली के मुख में पानी नहीं आ रहा है। पानी तो आपके मुख में आता है। इसी प्रकार ज्ञानी के पास सारी की सारी भोग सामग्री लाकर के रख भी दी जायें तो भी जिस प्रकार सामग्री उठ करके नहीं जाती उसी प्रकार ज्ञानी भी उन सामग्रियों को देखेगा/जानेगा भले ही लेकिन उनके पास नहीं जायेगा अर्थात् वह उन्हें अपनी भोग्य सामग्री नहीं बनाएगा। धन्य हैं, आज भी इस प्रकार का शिक्षण पा करके जो विषयों से, कषायों से ऊपर उठने के लिए प्रयास करते रहते हैं, हमेशा ऐसी सन्तान एवं ऐसी संतान के जो माता-पिता हैं वह धन्यवाद के पात्र हैं क्योंकि इस प्रकार चारों ओर चकाचौंध विषयों की है फिर भी वे उन विषयों से प्रभावित न हो करके वे कुछ अलग ही वस्तु से प्रभावित हो रहे हैं। दुनियाँ जिस ओर देखना तक नहीं चाहती उस ओर उन लोगों की दृष्टि जा रही है। दिव्य दृष्टि वाले ही इस प्रकार के व्रतों को/संयमों को अंगीकार करने की भावना करते हैं।

आप लगातार यहाँ पर पाँच-छह महीने से भिन्न-भिन्न प्रवचन, भिन्न-भिन्न प्रकार की योजनाएँ सुनते आ रहे हैं, देखते आ रहे हैं, करते आ रहे हैं। कई लोग गौरव के साथ कहते हैं हमने तो संघ को निकट से देखा है, ऐसा कहते हैं ना, लेकिन निकट से देखते हुए भी अभी कह नहीं पा रहा हूँ कि कौन-कौन निकट आ रहा है। अब ये कहेंगे कि महाराज हम निकट तो आ रहे हैं लेकिन आपके निकट आना बहुत विकट सा लग रहा है। यह विकट सा नहीं है, थोड़ा-सा आप प्रयास कर लीजिए यहाँ आ गए हैं तो? अब कोई विशेष बात नहीं है, अब कुछ भी नहीं करना है बस केवल हाथ उठाना है और हम हाथ पकड़ कर यूँ ले लेंगे। यह भी एक भावना है तो कोई बात नहीं है, भावना तो इसी प्रकार जागती है। किसी व्यक्ति को आत्मा के बारे में लगातार पाँच-छह महीने तक चर्चा सुनने के लिए मिल जाये और फिर भी यह भावना न हो, हम तो इसको मंजूर नहीं करते।

कई प्रकार के पाषाण होते हैं। जिस पाषाण में स्वर्ण निकलता है वह आँख वाला पाषाण माना जाता है और जिसमें से स्वर्ण नहीं निकलता उसको अंध पाषाण कहते हैं। वर्षा तो होती है। सावन में होती है, भादों में होती है, पाषाण के ऊपर भी होती है और मिट्टी के ऊपर भी होती है। मिट्टी तो बह जाती है, फूल जाती है, उसमें बीज डालेंगे तो वह अंकुरित भी हो जाती है, लेकिन पाषाण ऊपर-ऊपर से भीग जाता है। हम तो यही समझेंगे कि यदि छह महीने के उपरान्त भी कोई त्याग की

बात नहीं करता तो वह भीग तो गया लेकिन पाषाण के समान भीगा है। मिट्टी के समान भीगना चाहिए भैया, ताकि हम कुछ अंकुरित कर सकें, कुछ धान पैदा कर सकें और जिस प्रकार आप लोग बोलियाँ बढ़ाते चले जाते हैं उसी प्रकार हम भी तो यही चाहेंगे कि बढ़ती चली जाये संख्या। वीतरागता का प्रभाव ज्यादा होगा, संख्या ज्यादा होगी उतना ही रागियों के उद्धार का रास्ता प्रशस्त होगा।

कुन्दकुन्द जैसे महान् अनुभव की लेखनी से लिखे हुए हजारों वर्ष प्राचीन ग्रन्थ मिलते हैं। एक-एक गाथा हम अपने सामने रख लेते हैं तो ऐसा लगता है कि एक-एक अक्षर, एक-एक पंक्ति, एक-एक पद वहाँ पर अनुभूति के द्वारा लिखे हुए हमें नजर आ जाते हैं। आत्मा का अनुभव वहाँ पर एक-एक अक्षर में प्रकट हो रहा है। धन्य हैं वे कि अपना कल्याण करते चले गए लेकिन साथ-साथ जो कोई भी उनके निकट आया उसके लिए भी ऐसा रास्ता बना दिया और जो आगे आने वाले हैं उनके लिए भी एक ऐसा साहित्य दे दिया जिसके द्वारा हम जैसे भी वीतरागता की बात कर पा रहे हैं। वीतरागता की पहचान कर रहे हैं और बढ़ने का पूरा-पूरा प्रयास किया जा रहा है, यह केवल एकमात्र संयोग की बात है।

आप लोगों को भी संयोग मिला है और संयोग एक प्रकार से वियोग के लिए भी कारण होता है। अब होने जा रहा है, एक रविवार रह गया। वह रविवार भी बीच में नहीं आने वाला है। रविवार को प्रातः निर्वाण महावीर को होगा, मुक्ति होगी। उसी प्रकार हमारे चातुर्मास का भी निष्ठापन होगा। एक तो प्रतिष्ठापन की बात थी, अब निष्ठापन की बात हो रही है। लेकिन निष्ठा के साथ कहता हूँ कि आप लोग तन-मन-धन और जो कुछ भी है उसके साथ धर्म प्रभावना में लगे रहें और भावना यही करता हूँ भगवान् से कि आप लोगों की यह भावना प्रभावना में लगी रहे, लेकिन केवल ऊपर-ऊपर भीग कर के नहीं, किन्तु भीतर भी कुछ भीगना आवश्यक है ताकि वह रत्नत्रय का अंकुर ऊपर आ सके और उस अंकुर आने के उपरान्त ही सौभाग्य खड़ा होगा। फिर उसी में फूल-फल-पत्ते आदि हरे-भरे लगेंगे, सुगन्ध फैलेगी। पंचमकाल के अन्त तक जाना है, अभी तो बहुत शेष रहा है समय। अभी उतने काल तक इस वृक्ष को या उस परम्परा को ले जा रहे हैं। संसार की परम्परा की बात अब गौण कर दीजिये। अब तो श्रमण संस्कृति को हम जीवित रखना चाहते हैं, श्रमण बनकर के ही हम जीवित रख सकते हैं और श्रमण संस्कृति की सुरक्षा हेतु साहित्य का जो प्रकाशन करा रहे हैं वे भी श्रमण संस्कृति की कड़ी को आगे बढ़ा रहे हैं। साहित्य का प्रकाशन होकर सुरक्षित होना बहुत बड़ा कार्य है। आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज ने बहुत साहित्य लिखा लेकिन विधिवत् प्रकाशित होकर साहित्य जगत् के प्रकाश में नहीं आया। अब विधिवत् प्रकाशित होकर आया है। अब लोग उसका महत्त्व समझ रहे हैं। ज्ञानसागर वस्तुतः ज्ञान के सागर थे, लोगों को अब समझ में आ रहा है।

इसके पूर्व भी अनेक-अनेक आचार्य हुए उनके साहित्य के माध्यम से ही हमें इस पथ का पाथेय मिला है। धन्य हैं वे आत्मायें। वे जय-जयकार के, धन्यवाद के पात्र हैं।

महावीर भगवान् की जय

❑ ❑ ❑

रागी का वैराग्य

खून नहीं है जिसमें उसको नाखून कहते हैं लेकिन खून की पहचान नाखून से होती है। इसका रहस्य युगों-युगों से चला आ रहा है और जिसे यह रहस्य खुल कर सामने आ गया उसकी बात मैं आपके सामने कह रहा हूँ। दुनियाँ इस रहस्य से वंचित है, दुनियाँ इस भेद-विज्ञान से दूर है, दुनियाँ इस तात्पर्य से दूर है इसलिए यह गाफिल है और वह अपनी रक्षा, अपनी शान्ति के लिये दुनियाँ को खोज रही है। रात-दिन एक कर रही है। रहस्य जब तक ज्ञात नहीं होता तब तक संसारी जीव का दुख कोई भी कम नहीं कर सकता, दूर करने का उपाय जब तक प्राप्त नहीं होता तब तक वह उपायों से घिरा हुआ रहेगा और उसके लिए कोई भी उपाय काम नहीं आयेगा। चिन्तातुर प्राणी दर-दर भटक रहा है, वह बहुत कुछ सोच रहा है। किन्तु बीच-बीच में यह भी लहर आ रही है इस प्राणी को, देखो! मेरा अज्ञान और मेरा ही किया हुआ कर्म मेरे लिए पथ-प्रशस्त न करते हुए अंधकार फैला रहा है। मेरी शान्ति को उसने छीनने का प्रयास किया और मैं शान्ति से रहित होकर दुख का अनुभव करता आया। वैद्य लोग, डॉक्टर लोग किसी की चिकित्सा से पूर्व सर्वप्रथम उसके हाथ को अपने हाथ में लेते हैं और अँगुलियों के जो नाखून हैं, उन नाखूनों को देखते हैं। देखने के उपरांत ज्ञात होता है तो ठीक है और यदि नहीं होता है तो नाखूनों को एक किनारे पर थोड़ा सा दबा देते हैं उसमें से कुछ झलकता सा उन्हें लग जाता है तो ज्ञात कर लिया जाता है खून है कि नहीं। ध्यान रखें नाखून में कभी खून नहीं हुआ करता। लेकिन खून की पहचान बिना नाखून के भी नहीं हो पाती। आप थोड़ा सा दबाकर देख लीजिये कि तल के भीतर से वह चेतना बाहर की ओर झलक जाती है। थोड़ा सा दबा दो, कितना खून है आपको नाखून के बल पर ज्ञात हो गया, किन्तु नेलकटर आपके जेब में ही रहता है हमेशा। नाखून को हमेशा काटकर फेंकते रहते हैं। इसका नाम पुनर्भू है, बार-बार वह नाखून आ जाता है लेकिन जब तक खून रहता है तब तक नाखून आता रहता है। यह खून की पहचान है। जिस प्रकार नाखून खून की पहचान है, चिकित्सा के लिए रास्ता खोल देता है, उसी प्रकार संसार अवस्था में तन से चेतन की पहचान की जाती है। लेकिन तन ने आज तक चेतन का आविष्कार नहीं किया, जो जड़ होता है वह कभी भी आविष्कार नहीं करता है किन्तु जो चेतन होता है वह जड़ के आविष्कार को करता आया है। लेकिन अपने आप का आविष्कार, अपने आप की पहचान, अपने

आप का ज्ञान उसे प्राप्त नहीं हुआ। आज तक इस रहस्य से दूर रहा। मैं भी ऐसा एक व्यक्ति था सोच रहा था, उस रहस्य को बार-बार खोल करके देख रहा था, अब समझ में आ गया।

जब कोई गणित में चूक हो जाती है तो आप लोग रात को बारह बजे भी उठकर बैठ जाते हैं। आज व्यापार तो बहुत हो गया लेकिन यह कुछ समझ में नहीं आया कि आय कितनी, व्यय कितना? इसलिए माथे को खुरचते हुए सोचते रहते हैं और जब गणित फिट बैठ जाती है, आँकड़ा ठीक आ जाता है, मालूम हो जाता है कि क्या भूल थी हमारी तो अकेले में ही हंसने लग जाते हैं। विचलित हो जाते हैं, अकेले क्या-क्या सोचने लग जाते हैं। युगों-युगों से कहाँ पर भूल थी इस गणित की, यह पता नहीं था और यह ज्ञात होने के उपरान्त भीतर ही भीतर अकेला-अकेला बैठा मुस्कान ले रहा है। कोई लोग सोच रहे हैं कि यह पागल हो गया है, कोई लोग सोच रहे हैं कि इसे कुछ मिल गया होगा। इसी प्रकार ज्ञानी जीव की जब उलझन सुलझ जाती है तब वह अकेले में बैठे-बैठे आनंदित होने लग जाता है। जो आनन्द की प्राप्ति होती है वह "**भूतो न भविष्यति**" वाली बात है और वह अनन्त? अखण्ड सुख का स्रोत है। तन था उसके पास, वैभव था उसके पास, परिवार था उसके पास, हुकूमत थी उसके पास, क्या नहीं था उसके पास दुनियाँ में। ए-वन चीजें सारी-सारी प्राप्त थीं। लेकिन ज्ञानी सोचता है यह भी एक भूल थी, उस प्राप्ति को देखकर वह फूला नहीं समाता था किन्तु आज उस भूल के ऊपर वह सोच रहा है कि किस जड़ की माया में किस जड़ की छाया में अपने आप को खुश करने का, अपने आप को सुख सम्पन्न करने का प्रयास करता रहा।

ओ हो! अज्ञान अंधकार में जीवन जीता रहा अनन्तकाल तक, लेकिन आज यह रहस्य खुल गया। जहाँ वह रहस्य खुल जाता है वही उसके लिए क्षेत्र बन जाता है और वही उसके लिए तिथि बन जाती है और अतिथि की बात मैं आपके सामने कह रहा हूँ-जिसे तिथि भी मिल गई फिर भी वह अतिथि है, जिसे क्षेत्र मिल गया फिर भी सोचता है हमें इससे कोई मतलब नहीं क्योंकि यह सारी की सारी बाहरी चीजें हैं मुझे जो प्राप्त हो गया है, मुझे जो ज्ञात हो गया है वह अभूतपूर्व है, पूर्व में ऐसा कभी प्राप्त नहीं हुआ, अब आगे पुनः प्राप्त करने की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि वह अविनश्वर पथ पर है। नश्वर जीवन स्वार्थी जीवन माना जाता है चेतना हमेशा-हमेशा अविनश्वर है, उसका कभी नाश नहीं। मैं नित्य हूँ, शाश्वत हूँ, सत्य हूँ, अजर, अमर, अविनाशी हूँ। यह एक प्रकार की बात उसके सामने आ जाती है। अभी तक भय होता था शरीर टूट न जाये, कहीं फूट न जाये, शरीर छूट न जाये। अनेक प्रकार की वेदनाएँ होती थी; कहीं यह गल न जाये, कहीं यह सड़ न जाये, कहीं यह दुबला-पतला न हो जाये आदि-आदि। इस शरीर के माध्यम से वह आपा खोकर चलता था किन्तु आज यह भेद विज्ञान मिल चुका है, जिस प्रकार कि दूध में जल मिला हुआ रहता है किन्तु जल को अलग करने के उपरान्त दूध का सही रूप सामने आ जाता है उसी प्रकार इस तन के माध्यम

से आत्मा भीतर है यह ज्ञात हो जाता है। **''देह मध्ये यथा शिव''**। इस आत्मा का परमात्मा के रूप में जिसे बोध हो जाता है कि आत्मा देहातीत है किन्तु देह में अनन्त काल से रहता आ रहा है वह यह रहस्य खुलते ही आनन्दविभोर हो जाता है।

एक साधु एक शिला पर बैठे थे। वहीं से दो-तीन व्यक्ति गुजर रहे थे, दो दोस्तों में से एक दोस्त की अभी शादी हुई थी। ये तीनों वहाँ से गुजर रहे थे। जिसकी शादी हुई उसकी बात मैं आपके सामने कह रहा हूँ। वह मित्र, उसके साथ पत्नी। तीन दिन ससुराल में वह पत्नी रही। अब वह माँ के घर जा रही है किन्तु ध्यान रहे, पति भी कहता है यह ससुराल में आई थी, मैं भी तो ससुराल जाऊँ। सोचिए, आप विचार करिये। शादी होने के उपरान्त तीसरे दिन पत्नी ससुराल से जाती है। पति छोड़ने के लिए तैयार नहीं। पत्नी के साथ चल देता है। साथ में मित्र भी है और उसकी दृष्टि साधु के ऊपर पड़ जाती है, देखता रह जाता है। क्या शरीर है? क्या तेज है? क्या ओज है? क्या सुडौलता है? क्या मुस्कान है? यह जंगल है, शिला पर बैठा है, प्रकृति चारों ओर से घेरे हुए है, पास कुछ नहीं है, लेकिन पास में क्या-क्या है पता नहीं लग रहा है, आखिर थोड़े से नजदीक होकर के देख लें तो उसके पास क्या है यह ज्ञात हो जाये। कुछ समझ में आया तो ठीक, नहीं तो बाइपास से चले जायेंगे। थोड़ा सा वह आगे कदम बढ़ाता है, मित्र इशारा करता है, क्यों क्या बात हो गई? जल्दी थी उधर क्यों खिसक रहे हो। वह कहता है- अरे जाना तो है लेकिन एक झलक इधर भी तो देख लें। आ, तू भी देख ले भइया। वह नजदीक गया। पास में देखता रहा, प्रेरित हुआ, मंत्र-मुग्ध हुआ सा वह देखता रह गया और बात दोस्त के मुँह से निकल जाती है कि तुम यदि रुक जाते हो तो मैं भी अवश्य रुक जाऊँगा तुम्हारे साथ। लेकिन तुम्हारा रुकना तो ऐसा ही है-''न भूतो न भविष्यति''। उसने उत्तर नहीं दिया और उत्तर न देना ही प्रश्न का सही उत्तर माना जाता है कभी-कभी। जवाब ही जवाब नहीं लाजवाब भी हुआ करता है, नहीं बोलना भी अपने आप में उत्तर हुआ करता है और वह मुँह से भले ही न बोले लेकिन भीतर का भाव जब हम व्यक्त करते हैं तो बोलियाँ छोटी पड़ जाती हैं। जैनधर्म वस्तुतः प्राणी मात्र का है लेकिन आज जैनधर्म बनियों का है यह और किसी का नहीं। वैष्णव धर्म ब्राह्मणों का है आदि-आदि। ये नाम को, शब्द को लेकर जो आज वर्तमान में चल रहे हैं, यह भी एक रहस्य है इसको खोलना अनिवार्य है। जैनधर्म क्या धर्म है, किसके माध्यम से चला है यह ध्यान रखना चाहिए। यहाँ पर जितने भी बनिये हैं उनका यह धर्म है ही नहीं। केवल क्षत्रियों का धर्म है। वेदी में यदि भगवान् नहीं हैं तो राजस्थान में बोला जाता है कि ठाकुर जी नहीं। वहाँ तो भगवान् को ठाकुर कहते हैं। आप लोग तो वैश्यवृत्ति करने वाले हैं अतः धर्म को भी तोलने लगे हैं। जिधर ज्यादा है उधर खिसक गये ऐसा नहीं होता। क्षत्रियता के माध्यम से ही जैनधर्म की प्रभावना हुई है और आगे ऐसे ही क्षत्रिय लोग रहेंगे तो उनके माध्यम से वह जीवित रहने वाला है। अतः प्राणिमात्र को जो

जीवन प्रदान करता है, रक्षा करने का बीड़ा उठा लेता है, प्राणिमात्र की रक्षा के लिए जो अपना जीवन सर्वस्व न्यौछावर कर देता है वही व्यक्ति जैन धर्म के रहस्य को समझ सकता है।

मित्र की बात सुनकर उसने उत्तर दिया और जाकर साधु के सामने विराजमान होकर वह कहता है कि आखिर एक-आध मंत्र इधर भी तो सरका दो। मैं आपका अनुचर तो बन सकूँ। पीछे-पीछे मैं और आगे-आगे आप और वह वहीं पर रुक गया। दोस्त सोचता है कि क्या बात हो गई? कहीं इस प्रकृति में सम्मोहन शक्ति तो नहीं है। कहीं यहाँ पर भूत तो नहीं लगा। कहीं बाहरी बाधा, कहीं भीतरी बाधा, कहीं नीचे की बाधा, कहीं ऊपरी बाधा तो नहीं है। बाधाएँ अनेक प्रकार की हुआ करती हैं। जो व्यक्ति शादी के बाद तीसरे दिन पत्नी जा रही है तो साथ में ससुराल चलने वाला हो और वह व्यक्ति यहाँ बीच में रुक गया और ऐसे साधु का सामना, ऐसी वीतरागता का दर्शन कि सारा प्रदर्शन समाप्त हो गया। पत्नी देखती रह गई, मित्र पीड़ित हो गया और वह था कि टस से मस नहीं हो रहा। वहीं पर बैठ जाता है और प्रार्थना करता है, विनती करता है कि मुझे स्वीकार कर लीजिये भगवन् और इसके अलावा कुछ नहीं चाहिए। खून का ज्ञान नाखून से हो गया। धर्म की पहचान वीतरागता के माध्यम से हुआ करती है। धर्म की पहचान किसी स्थान से नहीं हुआ करती है, किसी काल से नहीं हुआ करती अपितु जिस काल में जिस स्थान में वीतरागता रह जाती है वह क्षेत्र बन जाता है, वह तिथि बन जाती है, दोनों की स्मृति रखकर संसारी प्राणी उसकी आराधना करना प्रारंभ कर देते हैं। जहाँ पर ऐसी पवित्र आत्माएँ गुजरती चली गयीं वहीं प्रकृति की गोद में ऐसे क्षेत्र बनते चले गये। और वे वर्तमान में अनन्त सुख, अनन्त ज्ञान के भण्डार बने हुए हैं। अपने आत्मसात् हो चुके हैं। जिनकी बीमारी समाप्त हो चुकी है जो रोगातीत हो गये हैं वे विश्व के लिए आज आदर्श हैं। उन्होंने ऐसा पथ-प्रदर्शन कर दिया कि अनन्त काल के उपरान्त भी आप उसको सोचेंगे, देखेंगे, पूछेंगे तो वीतरागता ही एकमात्र धर्म प्रतीत होगा। कहाँ शादी? कहाँ नवोढ़ा पत्नी? कहाँ ये बातें राग की? मित्र और पत्नी सोचते हैं कि ये वीतरागता की बात कहाँ आ गई? क्यों आ गई? भावों में परिवर्तन द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव की अपेक्षा से हुआ करते हैं। लेकिन उस राग का अन्त भी आ जाता है जब जिसके नेत्र खुलने लग जाते हैं तो रहस्य का उद्घाटन हो जाता है फिर वहाँ पर अंधकार के लिए अवकाश ही नहीं रहता। जितनी गति से प्रकाश आता है उतनी ही गति से अंधकार भी कहाँ चला जाता है, पता नहीं लगता। यह वैज्ञानिक सत्य उस प्रकाश के बारे में तो आप बार-बार सोचते हैं लेकिन अंधकार का मिटना भी अपने आप में बहुत बड़ी घटना है। जो बैठे हैं साधु उन्होंने तो उसका अनुभव किया ही है लेकिन उनके दर्शन मात्र से, एक झलक मात्र से राग जो बिल्कुल आग के समान सताने वाला था, जलाने वाला था वह नौ-दो-ग्यारह हो गया। नौ-दो-ग्यारह ये गणित नहीं है। नौ-दो-ग्यारह का अर्थ यह है-कहाँ पर राग गया पता नहीं। यह वीतरागतारूपी प्रकाश का

प्रभाव है जो रागरूपी अंधकार पलायन हो गया। यह रहस्य समझ में आना चाहिए।

यह पाँच तत्त्व का पिंजड़ा है, यह तोते के लिए पिंजड़ा है, यह तोते के लिए बन्धन है, यह तोते के लिए जेल है, यह तोते के लिये बाधक है। भले ही वह पिंजड़ा सोने का बना लो तो भी पिंजड़ा पिंजड़ा ही है। वह तोता उसमें बैठे-बैठे अखरोट, बादाम, काजू, किशमिश खाता रहता है और दूध का कटोरा भी वहाँ पर रखा रहता है लेकिन फिर भी वह बाहर झाँकता रहता है, दरवाजा कब खुले और कब मैं अपने दोनों पंखों का प्रयोग करूँ और आप लोग कबूतर के टाइप के हैं। कबूतर क्या होता है? वह क्या करता है? कबूतर तो वह होता है जो खुला रहता है। उसके लिए पिंजड़े की जरूरत नहीं। उसको उड़ा भी दो तो भी वह उड़ता-उड़ता चला जाता है और फिर आकर आपके कंधों पर बैठ जाता है लेकिन तोते को आप देख लो, एक बार उड़ेगा तो फिर बाद में बाय-बाय और धन्यवाद आपके लिये, आपने हमारे ऊपर बहुत उपकार किये और तुम देखते रहो और वह उड़ता ही उड़ता आसमान में स्वतन्त्र विचरण करने लग जाता है। उसको कोई पकड़ने वाला नहीं होता। एक बार भूल के कारण वह पकड़ में आया है, पिंजड़े में है लेकिन वह रात-दिन यही मन्त्र दुहराता रहता है।

जो अभी नवविवाहित था, अभी-अभी शादी हुई थी, उसके मन में इस प्रकार का भाव जागृत हुआ। तीर्थंकरों के वंश में ऐसे ही हुआ करते हैं। क्षत्रियों का कार्य भी हमेशा ऐसा ही रहा करता है। बहुत राज्य कर लिया, छीना-झपटी हो गई, अपने हक को जमाने के लिए बहुत प्रयास कर लिया, लेकिन जब रहस्य समझ में आ जाता है तो वहीं का वहीं छोड़कर उसकी ओर पीठ दिखाते चले जाते हैं और ऐसे ही जंगलों में आकर वह अपने आप को मुक्त कर लेते हैं। उन्हीं में से यह भी एक स्थान है। नर्मदा का यहाँ पर समागम मिला है और यहाँ पर चारों ओर पहाड़ घिरा हुआ है। इस सुरम्य स्थान के इतिहास के पन्नों से यह ज्ञात होता है कि यहाँ पर अनेक ने सिद्धत्व को प्राप्त किया है। यह सिद्धवरकूट विख्यात है, प्रसिद्धि पाई है। यहाँ पर सन्त और आप जैसे भव्य जीव हमेशा आया करते थे। पहले सुना था, पढ़ा था, बार-बार लोगों से प्रशंसा सुनी थी और आज तीन दिन से हम यहाँ पर देख रहे हैं। वस्तुतः सिद्धवरकूट अच्छा है लेकिन कई लोग कहते हैं महाराज यहाँ पर कोई प्रबन्ध है ही नहीं। बन्ध को काटना चाहते हो तो प्रबन्ध को पहले गौण करो। जब बन्ध को काटने की बात यहाँ पर होती है, मुक्ति की बात होती है, परतन्त्रता को छोड़कर स्वतन्त्रता की बात होती है। आप लोग कहते हैं यहाँ पर टैन्ट लगा नहीं। भइया देखो छत्र तने हुए हैं वृक्ष लगे हुए हैं और यहाँ पर जो हजारों की जनता है उसके लिए छाया है। देखो, किसी को धूप नहीं लग रही और यदि लग भी रही है तो सुहा रही है उनको। कोई भी व्यक्ति परेशानी का अनुभव नहीं कर रहा। प्रत्येक व्यक्ति का मुँह ऐसे खिला हुआ है वैसे जैसे सरोवर में कमल खिलता है! क्या है? आनन्द की अनुभूति तो है। यहाँ बहुत कुछ हमने पाया, बहुत कुछ हमने देखा, यहाँ पर कोई सार है तो एकमात्र

वही आत्म तत्त्व सार है जो जाननहारा है, जो देखने वाला है। रहस्य जानने में और देखने में आ जाता है तो यहाँ पर दुख का कोई नाम ही नहीं। यह दुख व सुख मात्र अज्ञान की उपज है। मोह माया के कारण ही हम मान लेते हैं, स्वीकार कर लेते हैं, वस्तुतः देखा जाये यह कुछ है नहीं। दुनियाँ की बातों में कोई रस नहीं आना चाहिए, एकमात्र तत्त्व का रहस्योद्घाटन होना चाहिए। ग्रन्थों में, वेदों में, उपनिषदों में, सूत्रों में, ऋचाओं में एक ही मात्र कहा है–आत्मा को जानो। किसी ने सम्यग्ज्ञान कहा, किसी ने भेद-विज्ञान कहा, किसी ने स्थित-प्रज्ञ कहा, किसी ने सम्यग्दृष्टि कहा, किसी ने वीतरागता कहा। इस प्रकार अनेक प्रकार के नामों से घोषित यह आत्म-तत्त्व वस्तुतः स्व और पर के लिए कल्याणकारी है। सन्तों ने इन सबको छोड़-छाड़ कर एकमात्र उसी भेद-विज्ञान के उद्घाटन के लिए अपनी प्रज्ञा को स्थिर करने के लिए प्रयास किया। उस प्रयास के लिए क्या-क्या छोड़ना पड़ता है। यदि उसको प्राप्त करना चाहते हो तो स्व और पर को जानने की आवश्यकता है, जो पराया है उसको बाँधने की क्या आवश्यकता है? और जो स्व है उसको प्राप्त करने की भी क्या आवश्यकता है? जो है उसको जानने का प्रयास करो। नदी तटों में रह करके, पहाड़ों के ऊपर रहकर के उन्होंने अपने निजी ज्ञान के माध्यम से यह रहस्य जाना। धन्य हैं ऐसे साधु-सन्त जो हमारे लिए ऐसे मार्ग प्रशस्त करके गये हैं। इनकी पवित्रता हमेशा बनाये रखें। यहाँ पर आ करके तप किया। तप करने का अर्थ यही है कि जिनसे कोई आनन्द प्राप्त होने वाला नहीं है उन वस्तुओं को अपने आप छोड़ते चले जाते हैं, यही वस्तुतः तप है। यदि मान लीजिए आपके हाथ में दूध है वह बहुत गर्म है, विशेष गर्म है तो कहने की कोई आवश्यकता नहीं, मुहूर्त देखने की कोई आवश्यकता नहीं कि मैं इसको छोड़ दूँ। अपने आप ही अँगुली दूर हो जाती है, हाथ का प्याला दूर हो जाता है क्योंकि आप जानते हैं कि वह दोबारा भी मिल सकता है लेकिन हाथ चला जायेगा तो बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। इसी प्रकार जिन-जिन पदार्थों से कठिनाई का अनुभव होता है, आनन्द का मार्ग रुक जाता है, भेद-विज्ञान के लिए कठिनाई हो जाती है, उन सबसे वह पीठ फेरते हुए चले गये और वह क्षत्रियता के नाते ही इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण कार्य कर गये। एक युग में जैन धर्म के चौबीस तीर्थंकर होते हैं, वे चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय ही होते हैं। उनमें से एक भी वैश्यवृत्ति वाला नहीं होता है। और जितने चक्रवर्ती भी हुए हैं सारे के सारे क्षत्रिय ही हुए हैं; उन्हीं का यह काम है, वह ही प्राणिमात्र की रक्षा कर सकते हैं, स्वयं सुरक्षित रह सकते हैं और अन्त में अपने आपको सिद्धत्व का रूप दे सकते हैं। ऐसे आदिनाथ से लेकर महावीर भगवान् और उनके बीच में जो कोई भी हुए हैं उन सब के लिए मेरा बारम्बार नमस्कार है। उनकी जीवन-गाथा पढ़ने का प्रयास करें उनको समझने का हम प्रयास करें क्योंकि उनकी जीवन-गाथा ही हमारे लिए प्रशस्त रास्ता बनाती चली जाती है और कोई पढ़ने की आवश्यकता नहीं। किस ओर उनके कदम उठे, किस साहस के साथ वे बढ़ते चले गये, उनके साथ

और कितने व्यक्ति मुक्त हो गये हैं। उनकी जीवन गाथा पढ़ने से हमें साहस आ जाता है। रास्ता पता चल जाता है। सम्पत्ति बिछी हुई है, उसको देखने की आवश्यकता है। ऐसा जैन धर्म जिन धर्म माना जाता है। यह जाति परक नहीं माना जाता है। जो अपनी कषायों को, जो अपनी इन्द्रियों को, अपनी आत्मा को वशीभूत करते हैं, शासन की बात नहीं करते हैं, आत्मानुशासन की बात करते हैं वे ही जिन हैं। जब आत्मा संयत होगी तो निश्चत रूप से दुख नहीं होगा और उसके लिए प्रबन्ध की कोई आवश्यकता नहीं। ऐसे आत्मानुशासित होते हुए ये तीर्थंकर आगे बढ़ते गये। कषायों को आप समाप्त करिए, इन्द्रियों को अपने काबू में रखिये, अपनी आत्मा की चंचलता को मिटाने का प्रयास करिए। निश्चित रूप से हम भी महावीर भगवान् के समान, आदिनाथ के समान बन सकते हैं, बनने की क्षमता हमारे पास विद्यमान है। प्रत्येक जीव के पास परमात्मा बनने की क्षमता है। यह मन्त्र घोष, जयघोष महावीर का/आदिनाथ भगवान् का है। जैन धर्म की विशेषता है कि यह धर्म परटीक्यूलर एक व्यक्ति का नहीं है। यह असाधारण भाव प्रधान धर्म, वीतराग धर्म जो कि इस गुणवत्ता के साथ ही आगे बढ़ता है। समय आपका हो गया है, अब सावधान होइये, वह बीच में जो आया है वह साधु हो जाता है और उसका मित्र भी साधु हो जाता है। वह नवविवाहिता है वह भी अब कहाँ जाये? वह भी साध्वी हो जाती है। अब आपकी स्थिति क्या है? आप यह देख लीजिए। आप कथा सुन रहे हैं सुन ली है, पढ़ी होगी, अब इसको याद करने का प्रयास करिये। क्या होता है? कैसा होता है? जीवन में किस प्रकार परिवर्तन होता है? इसका एकमात्र उन्हीं बिन्दुओं के माध्यम से, गाथाओं के माध्यम से हम अपने आप को परिवर्तित करने का प्रयास कर सकते हैं और कोई रास्ता नहीं है। कोई ऐसे मुहूर्त नहीं आने वाले हैं जो हमें ब्रह्मा बना दें, किन्तु आदिब्रह्मा आदिनाथ भगवान् को देखकर हम अपने आप को शुद्ध कर लें जैसे दर्पण में देखकर अपने मुख को साफ किया जा सकता है। उसी भाँति हमें अपने जीवन की कमियों को निकाल करके अपने आप के स्वरूप को व्यक्त करने का प्रयास करना है, चाहे आज करो, चाहे कल करो, कभी भी करो करना आपको है। जब कभी भी दर्पण मिलेगा तो यही एकमात्र आदर्श मिलेगा। इन्हीं के लक्षण से, इन्हीं के दर्शन से और इन्हीं के कहे हुए के अनुसार आचरण करने से वह बुद्धत्व, सिद्धत्व प्राप्त हो जाता है।

॥ अहिंसामय धर्म की जय॥

❑ ❑ ❑

ऋषभनाथ चिह्न : गोपाल की गैय्या

युग के आदि में भोगभूमि का अवसान हो गया। अवसान का अर्थ है, जीवन चलाने के लिये जो सामग्री आवश्यक होती है, उसका लाभ कल्पवृक्षों से हुआ करता था और क्रमशः उन कल्पवृक्षों

की हानि होती चली गई। एक दिन वह आया कि जीवन उपयोगी सामग्री के लिये युगीन जनता को कर्म करने की आवश्यकता हो गई लेकिन कर्म करना कोई जानते नहीं थे। युग के आदि में ऋषभनाथ हुए हैं जिन्होंने भोगभूमि के अभाव में कर्मभूमि की व्यवस्था के लिये एक ऐसी दिव्य देशना दी जो आज तक चल रही है। वह जीवन उपयोगी जो देशना थी उसी के माध्यम से यह युग आज तक चला आया है। कोई भी प्रासाद खड़ा होता है तो उसके लिये सर्वप्रथम भूमि का फाउण्डेशन अनिवार्य होता है। वह कभी देखने में नहीं आता लेकिन जो महाप्रासाद दिखता है वह उसी की पीठ पर ही दिखता है, यदि वह खिसक जाये तो वह ऊपर से जो प्रासाद है धराशायी हो जाता है, वह देखने को नहीं मिलता, मिट्टी में मिल जाता है। तो युग की आदि में ऋषभनाथ ने यह भूमिका, यह फाउण्डेशन, यह नींव डाली थी और वह कर्मभूमि की व्यवस्था उन्होंने की थी। असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प और विद्या छह कर्मों की व्यवस्था उन्होंने यथावत आप लोगों को दी थी। जो ''कम्मे सूरा सो धम्मे सूरा'' वाली युक्ति भी तभी आती है। जो कर्म करने में शूर होता है, जो सुव्यवस्थित कर्म करता है निश्चत रूप से धर्म का अधिकारी हो जाता है। कर्म का अर्थ यहाँ पर आप आठ कर्मों से न लेकर कर्त्तव्य ले लें। ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों से यहाँ पर कर्म मतलब नहीं किन्तु कर्म का अर्थ जीवनोपयोगी एक साधन है।

आज का युग कर्म युग है। भोगभूमि नहीं किन्तु कर्मभूमि है। जिस भूमि पर आप बैठे हैं यहाँ पर कर्म करने के लिए बैठे हैं। आराम के लिये नहीं, भोगों के लिये नहीं। योगी बनने के पूर्व में जो कर्म करने में निष्णात अथवा होशियार होता है वह निश्चत रूप से उपयोगों को सँभाल लेता है, मुक्त हो जाता है। छह कर्म की व्यवस्था उन्होंने पात्रता के अनुसार दी थी। वो व्यक्ति महान् पुण्यशाली होता है उसी को कर्मभूमि में जन्म प्राप्त होता है। भोगभूमि में जो उत्पन्न होता है वह एक प्रकार से भोगने के लिए ही पैदा होता है कर्म काटने के लिये नहीं। वहाँ कर्म कट नहीं सकते, वहाँ तो वह केवल दिन काट सकते हैं, कर्म नहीं। दिन काटने का अर्थ यह है कि समय वहाँ पर कट जायेगा लेकिन कर्म नहीं कट सकते। जहाँ पर कर्म कटते हैं उस धरती को हमें बहुत-बहुत पुण्पशालिनी मानना चाहिए। जिस भूमि पर हम बैठकर के अपने अतीत कालीन कर्मों को काट सकते हैं। भोगभूमि से आज तक किसी को मुक्ति नहीं मिली, और स्वर्ग जो १६ हैं उनसे भी नहीं और ऊपर के विमानों से भी मुक्ति नहीं। नीचे की नरक भूमि से तो कभी मुक्ति मिलती ही नहीं, मुक्ति केवल कर्मभूमि से ही मिलती है अतः कर्मभूमि का लाभ लेते हुए विशेष रूप से आप लोगों को ध्यान रखना चाहिए। कर्मभूमि में भी आर्यखण्ड व म्लेच्छखण्ड ये दो भेद हैं। लेकिन म्लेच्छखण्ड से मुक्ति नहीं है अर्थात् कर्मभूमि में भी आर्यखण्ड से ही मुक्ति मिलती है। आप लोग बहुत सौभाग्यशाली हैं, पुण्यशाली हैं, महान् तप का प्रतिफल है जो आप कर्म काटने में क्षेत्र रूप से निमित्त बनने वाली भूमि

पर बैठे हैं। मुक्ति को प्राप्त कराने की क्षमता इस भूमि में है जहाँ का महत्त्व आप लोगों को अभी ज्ञात नहीं होगा। सही-सही कर्म बाँधना प्रारम्भ कर दो तो कर्म कट सकते हैं उसके बिना नहीं। बैठने के लिये भूमि चाहिए लेकिन समतल हो तो अच्छा बैठा जा सकता है।

एक बार फोटो दिखाया था महाराज जी यहाँ पर हम कुछ बनाने जा रहे हैं लेकिन जब ऊबड़-खाबड़ देखा तो यहाँ पर क्या बनेगा? यहाँ तो खड़े होकर कायोत्सर्ग तो कर सकते हैं लेकिन यहाँ पर बैठने की व्यवस्था तो है ही नहीं, महाराज कम से कम आप आशीर्वाद दे दो सब कुछ हो जायेगा। इसी प्रकार अच्छी कर्म व्यवस्था करने से कर्म काटने के लिये भी उत्साह जागृत हो जाता है। हजारों व्यक्ति यहाँ पर बैठकर श्रवण कर रहे हैं, धर्म लाभ उठा रहे हैं। यह भी एक सुकर्म व्यवस्था का ही प्रतिफल है। अब अल्प समय में ही मुझे कहना है क्योंकि आप लोगों की बोलियाँ तो बहुत देर तक चल गई हैं। इसलिए आप लोगों को आगे जाना है और मुझे भी अपना कार्य करना है, सामने घड़ी रखी हुई है। मैं यह कह रहा हूँ कि असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प, विद्या का उन्होंने एक मनु के नाते उपदेश दिया था। धर्म के नाते नहीं, तीर्थंकर के नाते नहीं और जब ऋषभनाथ ने संन्यास धारण कर लिया, एक हजार वर्ष की कठोर तपस्या के बाद केवलज्ञान की उपलब्धि हो गई तब दिव्य देशना के माध्यम से कर्म को काटने की विधि उन्होंने बताई। उपदेश मुख्य रूप से मनुष्यों को दिया जाता है और भी अनेक देव थे उनके समवसरण में वो उपदेश के पात्र नहीं। उपदेश सुन सकते हैं, सुनते हैं लेकिन देवों को मुख्य करके नहीं दिया जाता। उपदेश के पात्र की बात मैं कह रहा हूँ आपके सामने। नारकी, देव ये उपदेश के पात्र नहीं। क्या उपदेश नहीं दें इनको? दे सकते हैं, लेकिन उसे उपदेश मुख्यता से दिया जाता है जो उस उपदेश के माध्यम से अपना कार्य सिद्ध कर सके। मनुष्य के पास ही क्षमता है, पूर्ण उपदेश को अपने जीवन में उतारने की। देवों को भगवान् की वाणी काम नहीं आती। इसलिए देवों के लिये उपदेश नहीं दिया। ऋषभनाथ भगवान् के उपरान्त चौबीसवें तीर्थंकर महावीर भगवान् हुए हैं, उनके समवसरण में ६६ दिन तक दिव्य देशना नहीं हुई थी। जब तक शिष्य नहीं बने तब तक महावीर भगवान् की दिव्य देशना नहीं हुई। ऋषभनाथ भगवान् ने सर्वप्रथम दो प्रकार के पात्रों को उपदेश दिया, एक श्रमणों को, दूसरे नम्बर पर श्रावकों को। श्रावक की बात मैं कहना चाहता हूँ श्रावक के भी व्रत होते हैं। व्रत किसे कहते हैं।

पाप-मरातिर्धर्मो बन्धुर्जीवस्य चेति निश्चिन्वन्।
समयं यदि जानीते श्रेयोज्ञाता ध्रुवं भवति॥१४८॥

(रत्नकरण्डक श्रावकाचार-१४८)

यह रत्नकरण्डक श्रावकाचार जो कि लगभग १५० श्लोक प्रमाण है तीन अध्यायों में विभाजित है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। आचार्य ज्ञानसागर गुरु महाराज ने इसे रत्नत्रय

की स्तुति की संज्ञा दी थी। चूँकि प्रथम अध्याय में समन्तभद्र महाराज जी ने सम्यग्दर्शन का वर्णन किया, यह सम्यग्दर्शन की स्तुति हो गई। दूसरे अध्याय में उन्होंने लगभग ६-७ कारिकाओं के माध्यम से सम्यग्ज्ञान का वर्णन किया, यह सम्यग्ज्ञान की स्तुति हो गई और शेष कारिकाओं में सम्यक्चारित्र का वर्णन मिलता है। यह रत्नत्रय की स्तुति है और इसके अंतिम अध्याय में स्वामी समन्तभद्र ने यह कारिका रखी है। आप मित्रों की ओर चले जाते हैं, दोस्तों की ओर चले जाते हैं ताकि मेरी रक्षा हो और हमेशा-हमेशा शत्रु से बचे रहें। मित्र होगा तो शत्रुओं से हम अपने आप ही बचे रहेंगे। तो अपने जीवन में मित्र कौन? शत्रु कौन? बन्धु कौन? यह संक्षेप में रत्नकरण्डक श्रावकाचार में उन्होंने कहा है। **पापं अरातिः**-पाप शत्रु है, पापी नहीं। पापी हमारा मित्र हो सकता है। अब हम पाप की क्या पहचान करें? हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील एवं परिग्रह ये पाँच पाप हैं। आचार्य ने यह बताया कि ऐसा जो हिंसा से बचता है, झूठ से बचता है, चोरी से बचता है, कुशील से और परिग्रह से बचता है इन पाँचों का निन्दापूर्वक त्याग करता है। यही लोग बन्धु हैं। मैं सत्य बोलता हूँ यह कहना बहुत अच्छा है लेकिन मैं आधा सत्य बोलता हूँ यह कड़वा लगता है। लगता है ना? आदमी सत्य बोले तो बहुत अच्छा लेकिन आचार्य कहते हैं आधा सत्य तो कम से कम बोलना ही चाहिए अर्थात् आधा पाप तो छोड़, आधी हिंसा तो छोड़, आधी हिंसा छोड़ते-छोड़ते पूर्ण हिंसा से भी निवृत्ति हो सकती है।

समवसरण में कई श्रमण तो बन ही गये लेकिन कई श्रावक भी बने। श्रावक बनकर उन्होंने अपने आपको कृत-कृत्य माना। उन श्रावकों ने युग के आदि में प्रभु के चरणों में महान् विराट समवसरण में संकल्प लिये। जीवनपर्यन्त यह व्रत हमारा अखण्ड निर्दोष पले, इस भावना के साथ सब वहाँ से विदा हो जाते हैं।

इसके उपरान्त जब वहाँ वार्ता सुनने में आई चक्रवर्ती को तो चक्री ने उन्हें निमंत्रण दिया। यह बहुत अच्छा है, ऐसी व्यवस्था यदि हमारे राज्य में हो गई और ऋषभनाथ भगवान् के माध्यम से दिव्यदेशना के पात्र बनकर इतने-इतने व्यक्ति श्रावक बने हैं तो उनका स्वागत, उनका अभिनन्दन और उनको एक प्रकार से उच्च स्थान देना हमारा कर्त्तव्य होता है। लेकिन इन्होंने जो व्रत लिए वह सच्चे हैं या ऊपर से लिए हैं अतः उन्होंने उनको बुलाया। जितने भी व्रती बने थे, उनको निमंत्रण दिया। राजदरबार में जाना है और वहाँ पर आज सब एकत्रित होने जा रहे हैं। लोगों ने देखा कि राजदरबार का जो रास्ता था उस रास्ते को छोड़कर के वे व्रती दूसरे रास्ते से जा रहे हैं। कइयों ने कहा इधर से चलो। व्रती बोले यह रास्ता हम लोगों के चलने योग्य नहीं है। सामान्य जनता उसको नहीं जान पा रही थी और सामान्य जनता समझती थी, यह इन्हीं के लिये सब कुछ हो रहा है। समय पर पहुँचना था उसमें व्रतियों को देर हो गई। चक्रवर्ती ने कहा- क्या व्यवस्था कर रखी है तुम लोगों ने?

हमने वो रास्ता बना रखा था उस ओर से क्यों नहीं आये? आप लोग इस ओर से आये, कोई बात नहीं आप लोगों की व्यवस्था ठीक नहीं है। पूछा, आप लोगों को तकलीफ तो नहीं? नहीं, कुछ तकलीफ नहीं थी, तो इधर दूर के रास्ते से क्यों आये? इधर से आ जाते सीधा-सीधा रास्ता था भवन का। नहीं, इधर नहीं आ सकते हम। क्यों नहीं आये? क्या काँटे बिछे थे? काँटे तो नहीं थे। फिर क्या थे? फूल की पंखुड़ियाँ बिछी हुई थीं। यह तो अच्छा ही था, कहा भी जाता है, ''**यदि फूल बिछा न सको तो काँटे तो मत बिछाओ**'' ऐसी नीति हैं। हमने काँटे तो नहीं बिछाये थे, फूल बिछाये थे फिर तो आपको आ जाना चाहिए था। फूल बिछाने का अर्थ फूल बिछाना नहीं राजन् हम दूसरे के लिये कष्टप्रद वस्तु रास्ते में नहीं रखें। उनके जीवन के लिये हमारे योगों से कोई बाधा नहीं पहुँचे, यह अर्थ है इस सूक्ति का। मेरी समझ से उस नीति में सचित्त फूल बिछाने की बात नहीं कही गई है। वहाँ पर फूल का मतलब मृदु होना है। हमारी काया, वाणी और मानसिकता के माध्यम से दूसरे को यदि ठेस पहुँचती है, बाधा पहुँचती है, दुख होता है तो इस प्रकार की किया को हमने छोड़ दिया है मन से, वचन से, काय से। हमने कल ऋषभदेव के समवसरण में प्रभु की साक्षी पूर्वक ऐसे संकल्प लिये हैं। तो क्या था वहाँ पर? पंखुड़ियाँ बिखरी हुई थीं, हरी बिछी हुई थी इसलिए हरी के ऊपर हम पैर नहीं रख सकते। सुनते हैं आज हरी के ऊपर चलने से कई लोगों को अच्छा लगता है। स्पर्शन इंद्रिय के वशीभूत होने से ऐसा होता है। हरी सचित्त मानी जाती है, व्रती तो हरी पर नहीं चल सकता। यह मैं कहाँ से कह रहा हूँ, आदिपुराण में इसका ऐसा चित्रण किया गया है और जब यह सुना चक्रवर्ती ने तो सोचने लगा, अहो हम अव्रती; व्रत के बिना जीने वाले, इनको हम जीव ही नहीं मानते और प्रभु ने सम्बोधन दिया कि ये जीव हैं इनको भी बचाना। इनके ऊपर पैर नहीं रखना, इनको काटना, पीटना नहीं, आदि-आदि उपदेश को उन्होंने ग्रहण किया है। ऋषभनाथ ने युग के आदि में इसके पोषण, इसके सम्वर्धन के लिये उपदेश दिया। उपदेशों में कहा कि यह ध्यान रखो, जीवों की उत्पत्ति नहीं कर सकते तो हम मारें क्यों? आप अपना जीवन उपयोगी बना सकते हैं लेकिन उनका भी जीवन बरकरार बना रहे, इसका भी ध्यान रखना चाहिए। उसमें किसी प्रकार की बाधा नहीं हो, ऐसी वृत्ति होना चाहिए। ऐसी प्रवृत्ति की परीक्षा के लिये ही चक्रवर्ती ने यह आयोजन किया था। कहाँ तक पालन हो रहा है? जब परीक्षा में व्रती श्रावक पास हो गये। चक्री ने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा कि धन्य है मेरा राज्य, मैं भी धन्य हूँ। दिव्यदेशना का श्रवण करके इन लोगों ने जो व्रत को दृढ़तापूर्वक पालन किया है। हमारे राज्य में ऐसे व्रती होने चाहिए। बाकी सामान्य जनता को कहा- इन्हें पुरस्कृत करो, इनको सहयोग दो और इनके लिये मान्यता दो और इनकी एक प्रकार से यथायोग्य सेवा करो। ताकि व्रती बनने का सौभाग्य तुम्हारे जीवन में भी आ जाये क्योंकि श्रावकों को भी मध्यम पात्र के रूप में माना जाता है, उनकी सेवा करोगे तुम्हारे पाप कम हो जायेंगे। ऐसी पूरी जनता

के लिए उस चक्रवर्ती ने एक प्रकार से नियम जैसा दिला दिया। यह महापुराण का प्रकरण आज भी हमारे सामने आ जाता है। वृक्षों को काटिये नहीं, यदि काटते तो उस व्यक्ति को दण्ड दिया जाता था। यह पर्यावरण की सुरक्षा युग के आदि में ऋषभनाथ भगवान् ने दी थी। जीवत्त्व की पहचान दया धर्म की ओर बढ़ाने के लिए सोपान का काम कर जाती है, यदि हमें पहचान नहीं होगी तो हम रक्षा कैसे कर सकते हैं?

जब नोट के बण्डल आ जाते हैं तो सामने वाला व्यक्ति नहीं दिखता केवल बण्डल के हरे-हरे नोट दिखते हैं व्यक्ति बस यही कोशिश करता है कि किसी भी प्रकार से ये बण्डल इधर आ जायें। कैसे आ सकते हैं? किसी भी प्रकार से आ जायें कुछ दे दिलाकर के आ जायें लेकिन आ जायें। अर्थ का लोभी व्यक्ति कुछ नहीं देखता। मित्र भी शत्रु हो जाता है। बन्धु भी, परिवार का व्यक्ति भी बहुत दूर का लगने, लगता है। उसके साथ अलगाव अपने आप ही बढ़ने लग जाता है क्योंकि अर्थ की ओर जब हमारी दृष्टि चली जाती है, जीव की पहचान समाप्त हो जाती है। अर्थ जीवन में मनुष्य के लिये बहुत खतरनाक बना हुआ है।

स्वर्ग के सम्बन्ध में एक प्रसंग आता है। इन्द्र के वैभव को देखकर के मिथ्यादृष्टि देव जलने लग जाता है, सोचता है इसके पास वैभव क्यों? किसने दिया इनको? हम भी उनसे माँग लें। वैभव माँगने से नहीं मिलता, किन्तु वैभव का द्वार क्या है यह देखना चाहिए। वहाँ स्वर्ग में इसी वजह से सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का उन्होंने साधन बताया देवऋद्धि दर्शन। देवों की ऋद्धियों को देखकर सोचते हैं मेरे पास भी हों। उनके पास जो हैं वह बहुत बढ़िया हैं और मेरे लिये तो सेकेण्ड हैण्ड है। ऐसा क्यों है? तो इसका स्रोत उसे ज्ञात हो जाता है कि मैंने धर्म तो किया था लेकिन बहुत घटिया किया था। इस वजह से घटिया माल मिल गया है। धर्म घटिया नहीं था, धर्म तो बहुत बढ़िया था, भाव बहुत घटिया था। त्याग, तपस्या को जीवन उपयोगी साधन मान कर के जो अंगीकार करता है उसे वहाँ पर उत्कर्षता प्राप्त होती है। उस उत्कर्षता को देखकर अन्य जितने भी जीव हैं उनके लिये सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है। वैभव को देखने से भी सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है और वैभव को देखने से मान भी प्राप्त हो जाता है। वैभव को देखकर ईर्ष्या भी होती है। थोड़े से हम ठण्डे दिमाग से सोच लें तो वह सम्यग्दर्शन का कारण बन सकता है और नहीं देखें तो अभिमान बढ़ता चला जाता है।

इस दयामय धर्म का अनुकरण किये बिना आज तक किसी का निस्तार नहीं हुआ। धर्म और कोई वस्तु नहीं है केवल दयामय धर्म ही प्रथम है। इस दयामय धर्म के विस्तार के लिये या इसकी उन्नति के लिये, इसकी रक्षा के लिये ही सत्य धर्म है, अचौर्य धर्म है, अपरिग्रह धर्म है। सारे के सारे इसी की रक्षा के लिये हैं। उपास्य देवता अहिंसा है।

अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमं,
न सा तत्रारम्भोऽस्त्यणुरपि च यत्राश्रमविधौ।
ततस्तत्सिद्ध्यर्थं परमकरुणो ग्रन्थमुभयं,
भवानेवात्याक्षीन्न च विकृतवेषोपधिरतः॥४॥

(स्वयंभू स्तोत्र - २२/४)

समन्तभद्र महाराज नमिनाथ भगवान् की स्तुति में कहते हैं कि हे भगवान् इस संसार में दया को ही आपने मुख्य धर्म माना और उस दयामय धर्म को प्राप्त करने के लिए ही परिग्रह छोड़ा है। केवल दयामय धर्म के कारण ही आप परम कारुणिक कहलाये।

जैसे ऋषभनाथ भगवान् के काल में व्रती बने थे उसी प्रकार आज भी बनना चाहिए। जीव विज्ञान की पहचान हम लोगों को होनी चाहिए। वह दया के माध्यम से ही हुआ करती है। बाढ़ की उपमा दी गई सत्य धर्म को, अचौर्य धर्म को, ब्रह्मचर्य धर्म को और अपरिग्रह रूप धर्म को, यह खेत नहीं, यह खेती नहीं। खेती यदि है, फसल यदि है तो वह अहिंसा धर्म है। ''**अहिंसा परमोधर्मः**'' अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा की विजय हो, अहिंसा ही परमब्रह्म है। अहिंसा को परमब्रह्म के रूप में स्वीकार किया स्वामी समन्तभद्र ने। ब्रह्मा यदि बनता है तो अहिंसा के माध्यम से बनता है। हिंसक कभी भी ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त नहीं कर सकता, वह भ्रम में पड़ सकता है। आज संसार पूरा का पूरा भ्रम में है, वह ब्रह्मा नहीं बन सका। क्यों नहीं बन सका? क्योंकि उसके पास दया का अभाव है। दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग दया की सिद्धि के लिए है। उपास्य देवता अहिंसा है। इस अहिंसा की रक्षा के लिये ये शेष चार व्रत माने गये हैं जैसे खेती के लिए बाढ़ की आवश्यकता होती है। इन व्रतों के बिना अहिंसारूपी खेत उजड़ जायेगा, खेत समाप्त हो जायेगा। खेत की फसल कट गई फिर बाढ़ का कोई प्रयोजन नहीं। अर्थात् अहिंसा व्रत के बिना शेष चार व्रत कोई मतलब के नहीं। जब तक बीज बोया नहीं जाता तब तक बाढ़ नहीं लगाई जाती। बो लेते हैं और जब वहाँ पौधे उग जाते हैं तो बाढ़ लगाई जाती है क्योंकि गाय, भैंस आकर के उन पौधों को खा सकती हैं इसलिए। वह फसल ज्यों की त्यों बनी रहे इसलिए उसकी सुरक्षा के लिए, पालन के लिए बाढ़ लगाई जाती है। उसी प्रकार आप लोग सबसे पहले अहिंसा धर्म को अंगीकार करो फिर उसके लिए झूठ नहीं बोलना, चोरी नहीं करना और शेष जो पाप हैं वो भी नहीं करना। पाप शत्रु है, शत्रु से आप डरते हैं लेकिन पाप रूपी शत्रु से नहीं बचते, क्या करें?

पाप और पुण्य के बीच एक बार एक संवाद हुआ था। पाप ने प्रारम्भ कर दिया कहना–पुण्य आपका नाम तो दुनियाँ में है, सब लोग आपको चाहते हैं, ए टू जेड सब पुण्य चाहते हैं। आपका बहुत बड़ा सौभाग्य। मुझे कोई भी नहीं चाहता। फिर पुण्य का जब नम्बर आया तो पुण्य ने कहा बात

तो बिल्कुल ठीक कर रहे हो, चाहते तो मुझे हैं लेकिन साथ तो तुम्हारा ही देते हैं सब लोग। ए टू जेड तुम्हारा साथ देते हैं चाहते तो हमें हैं। इस प्रकार चाहने से क्या मतलब होगा, मतलब पाप करने में तो सभी लोग लगे हैं। पुण्यात्मा बनो! ऐसा ऊपर से तो कहते हैं लेकिन हमारे पास कोई आता ही नहीं हैं। पुण्य कहता है कि भैय्या मुझे लोग चाहते हैं मात्र,लेकिन तुझे तो हमेशा गले लगाये रहते हैं।

स्वामी समन्तभद्र महाराज ने कहा कि संसारी प्राणी के लिए कोई शत्रु है तो वह केवल पाप है और संसारी प्राणी के लिए कोई बंधु है तो वह धर्म है, वह व्रत है, वह दयामय धर्म है। यही सर्वस्व है। दयामय धर्म की आप जय-जयकार करते हैं। दया जब तक इस पृथ्वीतल पर रहेगी तब तक आप लोग यह असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प, विद्या आदि करेंगे और जिस दिन यह दयामय धर्म पूर्णतः समाप्त हो जायेगा वहाँ पर प्रलय अपने आप ही आ जायेगा। पुण्य को, धर्म को मिटाने के लिए जो आता है उसका नाम प्रलय है। जो अच्छाइयों को समाप्त करता है उसका नाम प्रलय है।

वनस्पति पर पैर रखना भी युग के आदि में अधर्म के रूप में माना जाता था और आज का ताण्डव नृत्य देख लें तो क्या हो रहा है, आश्चर्य होता है। धीरे-धीरे मैं उस युग से इस युग तक आना चाहता हूँ। वनस्पति की बात तो छोड़ ही दो भइया। क्या-क्या हो रहा है कहते ही बहुत दुख जैसा लगता है कि आज इस भारत में तीन करोड़ बीस लाख पशुओं का यान्त्रिक कत्लखानों के माध्यम से प्रतिवर्ष नाश हो रहा है। ऐसा क्यों हो रहा है समझ में नहीं आता। कई लोग कहते हैं निरुपयोगी पशुओं को ही हम कत्लखाने ले जाते हैं लेकिन अभी-अभी हमने सुना था कि जहाँ पर गौशाला है वहाँ पर कुछ गाय और भैंस, जिनको पकड़ लिया गया पुलिस के माध्यम से और ट्रकों से उनको उतार लिया गया। एक-दो दिन में ही उनमें से २० गायों ने तो बछड़े दिये और १०-१५ भैंसों ने भी पड़े दिये, ये सब कत्लखाने जा रहे थे। उन बछड़ों को पेट से निकालकर उनकी चमड़ी निकाली जाती। गर्भधारण करने की क्षमता जिन पशुओं में हो वे निरुपयोगी कहाँ? जबकि निरुपयोगी ही वहाँ पर जाते हैं, ऐसा कहा जाता है, तो यह अंधकार कैसा है? और आपके ही ट्रकों में जा रहे थे और आपके ही आँगन से गुजर रहे थे। जहाँ पर बैठकर आप राम का नाम लेते हैं, यह काम भी वहीं से हो रहा है। कितना उपयोगी धन भी समाप्त हो रहा है। निरुपयोगी तो कोई है ही नहीं। जो बैल खेत में काम करने में आ गये वे भी सब कट रहे हैं और इधर आप पर्यावरण की बात कर रहे हैं। वृक्षारोपण करो, ये उगाओ, वो उगाओ। जो अपने आप ही पर्यावरण के प्रतीक हैं। संज्ञी पचेन्द्रिय पशु, जो ऋषभनाथ भगवान् का चिह्न माना जाता है और गोपाल की गैय्या मानी जाती है, भइया थोड़ा सोच तो लो क्या कर रहे हो? कोई दोलन नहीं इसके बारे में। यहाँ सड़क चाहिए, आन्दोलन करिए मिल जायेगी सड़क। थोड़ी सी आवाज और कर लो तो लाइट की व्यवस्था हो जायेगी। थोड़ी सी और आवाज कर दो तो पानी का पंप आ ही जायेगा। लेकिन पशुओं की रक्षा के बारे में किसी ने

आन्दोलन का प्रयास नहीं किया? और इसे कौन करेगा? क्या भगवान् ऋषभनाथ अवतरित होकर करेंगे? आप लोगों को कहा गया कि धर्म जीवित रहेगा तो आप लोगों के माध्यम से। **''न धर्मो धार्मिकैः बिना''** धर्म को जीवित रखना चाहते हो तो केवल दयामय धर्म को जीवित रखो। बाकी आप नहीं रखते तो कोई बात नहीं।

भारत के द्वारा इस प्रकार पाप किया जाये और विदेश के लिए यहाँ से मांस निर्यात हो, यह आप लोग प्रतिदिन सुन रहे हैं, देख रहे हैं। अभी सुनने में आया था कि प्रतिदिन ३०० ट्रक मांस निर्यात होता है। वह कहाँ से आया? वह कोई पेड़-पौधों पर उगा था क्या? कोई खेती-बाड़ी हो रही है क्या, कैसे आया? सम्यग्दर्शन की बात करते हो सम्यग्ज्ञान की बात करते हो सम्यक्चारित्र की, आत्मानुभूति की बात करते हो। समझ में नहीं आता जिस व्यक्ति के पास अनुकम्पा/भावना नहीं है उसके सम्यग्दर्शन ही नहीं बन सकता। थोड़े से जीव को धक्का लग जाये और वह यदि दुखी हो जाये तो हृदय काँप जाना चाहिए लेकिन यहाँ संज्ञी पंचेन्द्रिय जा रहे हैं, ट्रकों में लदे-लदे जा रहे हैं, ट्रेनों में जा रहे हैं, कहीं से, कैसे-कैसे ले जा रहे हैं और कत्लखाने में जा रहे हैं। उनकी पीड़ा कोई सुन नहीं सकता और लिख नहीं सकता। देख लें तो सम्यग्दृष्टि को चक्कर आए बिना रह नहीं सकता। यदि नहीं आये तो सम्यग्दर्शन गायब। इतनी पीड़ा होती है वहाँ पर, कोई भी नहीं सुनता। आज सरकार के द्वारा इस प्रकार किया जा रहा है। सरकार और कोई वस्तु नहीं है। ध्यान रखो, आप लोगों के द्वारा नियुक्त किया गया एक व्यक्ति होता है। आप लोगों को सोचना चाहिए, जहाँ-जहाँ से आप लोग आए हो वहाँ सर्वप्रथम वनस्पति की भी रक्षा करो ही, पर्यावरण की आवश्यकता है निश्चत बात है लेकिन जो जहाँ से जिस किसी भी प्रांत से आये हैं तो उनके लिए भी हमारा कहना है, देहली वाले आये हैं राजधानी से आये हैं तो उनके लिए विशेष रूप से मेरा कहना है। वह राजधानी में रहते हैं इसलिए विशेष पहुँच उनके पास हो सकती है और उनको कह देना चाहिए कि ये पशु वध रुकना चाहिए विदेश जो मांस निर्यात होता है वह रुकना चाहिए। सर्वप्रथम मांस निर्यात नहीं होना चाहिए। भारत में जानवर कटे और विदेशी लोगों को भोजन पूर्ति हो। भोजन की पूर्ति के लिए मांस आप भेज दो तो पूरी की पूरी पाप की गठरी आपके सर के ऊपर बंधेगी। इसके बारे में आप लोग संकल्प लें। कुछ जो राजनेता हैं उनके सामने यह माँग रखना है और अवश्य इसमें यश आपको मिल सकता है। यह परिश्रम किये बिना नहीं हो सकता। दिल से आप परिश्रम करिए, संकल्प लीजिए।

सबसे ज्यादा मांस निर्यात गुजरात से होता है। वहाँ पर मांस निर्यात बंद का काम अनिवार्य रूप से बंद होना चाहिए। कल आये थे कुछ मिनिस्टर लोग, वह कह रहे थे कि कत्लखाने बंद करने से अर्थ की बहुत हानि हो जायेगी तो उस हानि को आप पूर्ति कर सकते हैं, नहीं कर सकते क्या?

सबसे ज्यादा धनाढ्य प्रान्त माना जाता है गुजरात। जब मैं पढ़ता था उस समय की बात है। अब तक और धनाढ्य हो गया होगा ही तो वह स्वयं अपने आप ही कर सकता है अन्य व्यापारों के माध्यम से और उत्तरप्रदेश कम नहीं है, राजस्थान कम नहीं है, महाराष्ट्र कम नहीं है, बहुत बड़े-बड़े राष्ट्र हैं। महाराष्ट्र महान् राष्ट्र माना जाता है और गुजरात का दूसरा नाम सौराष्ट्र है। आगे चुनाव का समय आ रहा बताते हैं, उनके सामने यह रखा जाये कि जो विदेश जाते हुए मांस को हमेशा रोकेगा, जाने नहीं देगा उसे ही हम वोट देंगे तो अपने आप यहाँ के कत्लखाने समाप्त हो जायेंगे। यहाँ की मांस पूर्ति के लिए यह कत्लखाने नहीं लगाये गये हैं अरब कन्ट्री की पूर्ति के लिए लगाये गये हैं। गलत को गलत के रूप में स्वीकार करके त्याग कर देना यही एकमात्र धर्म है। केवल सुनकर और इस कान से सुनकर उस कान से निकालना सक्रिय धर्म नहीं माना जाता। पोथी का धर्म हो सकता है। जिस प्रकार कागज की नाव से नदी पार नहीं की जा सकती है उसी प्रकार इन पोथियों के माध्यम से हम धर्म करना चाहेंगे इससे कभी भी निस्तार नहीं होने वाला। सक्रिय धर्म को ही धर्म मानो। दयामय धर्म ही एकमात्र धर्म है, भारत का प्रत्येक वासी इस दयामय धर्म से परिचित है, सुनते हैं और अब उसे गुनना भी चाहिए ताकि विश्व में शांति हो सके। हिंसा के तूफान के सामने अहिंसा के दीपक का टिकना मुश्किल है। घर की देहरी के ऊपर ही यह दीपक नहीं टिक पा रहा है तो आप विश्व में कैसे फैलाओगे? और यदि आप नहीं फैलाओगे तो फैलाने के लिए दूसरा कोई नहीं आने वाला। ऋषभनाथ भगवान् की परम्परा में हो आप लोग अतः आपका यह प्रथम परम कर्त्तव्य होता है। दयामय धर्म युग के आदि में चलता था, ऋषभनाथ भगवान् ने इसको उपदिष्ट किया है। उस समय संकल्पित हुए थे श्रावक। इस समय में भी इसकी बड़ी आवश्यकता है। जितने व्यक्ति इस प्रकार के व्रती तैयार होंगे, उतना ही यहाँ पर सुख का विस्तार होगा। दयामय धर्म के पालन करने के लिए ऐसे संकल्प लिए जाते हैं तो त्रस जीवों की हिंसा से दूर होकर स्थूल झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह के त्याग रूप व्रत श्रावक को जीवन में अवश्य पालना चाहिए, इसी में स्व-पर का कल्याण निहित है। ऐसे व्यक्तियों की संख्या यहाँ पर बढ़नी चाहिए। बुन्देलखण्ड की बात अलग है। वहाँ व्रतियों की संख्या अधिक है, लोगों में सदाचार है अतः वहाँ सबसे कम बूचड़खाने हैं। बहुत कम मांसाहारी हैं, अहिंसा धर्म में आस्था है। बुन्देलखण्ड जैसा बन जाता है यदि सारा भारत तो फिर कहना ही क्या? इसी भावना के साथ।

।।महावीर भगवान् की जय।।

❑ ❑ ❑

पाप शत्रु : धर्म बन्धु

पाप को शत्रु के रूप में तथा धर्म को बन्धु के रूप में स्वीकार करना ही शास्त्र को जानने की सार्थकता है और वही व्यक्ति निश्चत रूप से अक्षय सुख को प्राप्त कर सकता है अन्यथा जो कुछ भी ज्ञान है वह सांसारिक सम्पदाओं के लिए कारण तो हो सकता है लेकिन आत्मिक वैभव को प्राप्त करने में उसका सहयोग नहीं मिल पायेगा।

सम्यग्दर्शन के आठ अंगों में एक अन्तिम प्रभावना अंग है। इस अंग के सम्बन्ध में रत्नकरण्डक श्रावकाचार में बहुत मार्मिक बात कही है। किसको प्रभावना का साधन मान लिया जाये? कौन सा वह भाव है? कौन सा वह द्रव्य है? जो जिनेन्द्र भगवान् के शासन में प्रभावना का कारण होता है।

अज्ञानतिमिरव्याप्तिमपाकृत्य यथायथम्।
जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशः स्यात्प्रभावना ॥१८॥

अज्ञानरूपी अंधकार दूर करने के लिए दूसरे प्रकाश की कोई आवश्यकता नहीं होती किन्तु उस प्रकाश की आवश्यकता है जिसके माध्यम से हमारे परिणाम निर्मल हो जाते हैं। हमें हेय और उपादेय का विवेक जागृत हो जाता है। हित और अहित के बारे में हमें पर्याप्त बोध प्राप्त हो जाता है, उस प्रकार का कार्य करना चाहिए। 'यथायथम्' यह शब्द अपने आपमें बहुत महत्त्वपूर्ण है। जैसे हम उत्साह के साथ सांसारिक कार्य करते हैं और अपनी शक्ति को पूरी तौर पर लगाते हैं उसी प्रकार धार्मिक कार्य में तन भी लगाओ, मन भी लगाओ, वचन भी लगाओ और गृहस्थ आश्रम में हैं तो धन भी लगाओ। धन मुख्य नहीं है किन्तु उसके माध्यम से जो धर्म होगा वह मुख्य है। कई लोगों की यह धारण बनती चली जाती है कि धनवान ही धर्म का अर्जन कर सकता है क्योंकि जमाना ही ऐसा है। लेकिन ऐसा नहीं है, चूँकि अनेक प्रकार के आरम्भ करने से जो धन का अर्जन होता है उसको हम पुण्य के रूप में परिवर्तन करना चाहते हैं तो धन का भी त्याग करना आवश्यक होता है। जिसने अनेक प्रकार के आरम्भ और परिग्रह आदि किये नहीं और उसके पास यदि धन नहीं भी है तो धन के त्याग के बिना भी वह परिणाम उज्ज्वल कर सकता है। तन के माध्यम से सेवा करके भी वह आगे धार्मिक क्षेत्र में बढ़ सकता है। वचनों के माध्यम से भी दूसरे को अभयदान देकर सम्बोधित कर दे तो भी उसका विकास अवश्य हो सकता है। और इन दोनों का यदि साधन उसके पास नहीं है तो मन के माध्यम से भी वह विश्व के कोने-कोने में प्राणी मात्र के प्रति सद्भावना कर सकता है।

सुखी रहें सब जीव जगत के कोई कभी न घबरावे।
वैर पाप अभिमान छोड़ जग नित्य नये मंगल गावे॥

(मेरी भावना)

इस प्रकार की भावना भाकर हर व्यक्ति धर्म कर सकता है, इसके लिए धन की कोई आवश्यकता नहीं है।

जिसके माध्यम से अज्ञानरूपी अंधकार दूर हो जाये वह सब कुछ धर्म के अन्तर्गत आ जाता है। जिसके माध्यम से शासन की प्रभावना हो जाती है, शासन उसी का नाम है। जिसके माध्यम से हमें इस प्रकार का प्रकाश मिले, वही धार्मिक भाव माना जाता है। शासन से सम्बन्ध हमारा तब तक बना रहता है जब तक हमारे पास इस प्रकार के उज्ज्वल भाव विद्यमान रहते हैं। स्व और पर इन दोनों के अंधकार को दूर करने में यथायथम् जब जैसी आवश्यकता होती है तब उस प्रकार का कार्य करना ही यथायथम् का अर्थ माना गया है। केवल हम आहारदान के माध्यम से ही काम चलाएँ ऐसा नहीं होगा। केवल हम ज्ञानदान के द्वारा ही काम चलाएँ ऐसा नहीं होगा। एक मन्दिर में हम बैठते हैं भाव अलग होते हैं। एक बगीचे में जाकर बैठ जाते हैं तो भाव अलग हो जाते हैं और एक औषधालय में जायें और वहाँ पर बहुत सारे जीव, बहुत सारे साथी/भाई लेटे हुए हैं, जिनके मुँह से ऐसी दयनीय आवाजें निकल रही हैं कि जिसको सुनकर अलग ही भाव पैदा हो जाते हैं। जो हमेशा बगीचे में गलीचे पर बैठता है उनको कभी-कभी थोड़ी सी हवा खाने के लिए औषधालय लेकर आना चाहिए। तब उन्हें यह ज्ञात होगा कि आरोग्य कितनी महत्त्वपूर्ण होती है और उन्हें यह भी ज्ञात होगा कि पैसा ज्यादा महत्त्वपूर्ण है या इन लोगों के दुख-दर्द को दूर करना महत्त्वपूर्ण है। कृपण से कृपण व्यक्ति भी हो और उसका पाषाण हृदय भी यदि हो, दूसरे के दुख को देखने का यदि वह प्रयास कर ले तो निश्चत रूप से उसका दिल पिघल जायेगा। वह पत्थर का या लोहे का नहीं होता वह भी आखिर भारतीय संस्कृति में ही पला हुआ है। कष्ट से जब गुजरते नहीं हम या जो कष्ट से गुजर रहे हैं उनको देखते नहीं तब तक जीवन का रहस्य समझ में नहीं आता। अज्ञान के अंधकार को दूर करने के लिए चाहे तो मंच बनाकर, माइक लगाकर बैठ जाओ और कहो कि इधर आ जाओ हम बता देते हैं धर्म को तुम्हारा अंधकार दूर हो जायेगा, केवलज्ञान की ज्योति जल जायेगी। ऐसे ज्योति नहीं जलने वाली क्योंकि जिसमें ज्योति जलने वाली है। उसको भी कुछ देखना चाहिए। किसमें जलने वाली है? आप में जलती है तो दूसरे में भी जल सकती है। दीपक है फिर भी ज्योति नहीं जल रही तो उसमें कोई न कोई बाधक कारण जरूर होगा या तो बाती का अभाव हो सकता है या तेल का अभाव हो सकता है या तेल, बाती दोनों होने के उपरान्त भी यदि नहीं जल रही है तो बाती के ऊपर किट्ट कालिमा जमी हुई है अथवा वहाँ शुद्ध ऑक्सीजन नहीं है, प्राणवायु जिसको बोलते हैं वह यदि नहीं मिले तो भी नहीं जलेगी ज्योति। ऑक्सीजन जहाँ नहीं है वहाँ पर आप दीपक जला दो तो भी वह बुझ जायेगा। वातावरण को तैयार करना होता है इसलिए यथायथम् यह शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण है। किस क्षेत्र में अपने धन का प्रयोग करना, किस क्षेत्र में अपने तन का और मन का और वचन का

प्रयोग करना, यह भी विवेक होना चाहिए हम लोगों को। कितने समय तक करना है, यह भी हमें ज्ञान होना चाहिए। इस दिशा में हम लोग कुछ भी विवेक नहीं करते, कुछ भी नहीं जानते, कुछ भी नहीं सोचते। कुछ दान दातार जो हैं दान देते चले जाते हैं, क्या हो रहा है, क्या नहीं हो रहा है कुछ मतलब नहीं। हमारे लिए तो पुण्य मिल ही जायेगा, ऐसा नहीं मानना चाहिए "**विधि द्रव्य दातृपात्र विशेषात्तद्विशेष:**" दान, दाता एवं पात्र की मुख्यता को लेकर फलता है। अत: पात्र को दान देना ही फलदायी है। विवेक उस दाता के पास होना चाहिए, हमने तन लगाया, मन लगाया, धन लगाया, वचन लगाया और सहयोग दिया वह कार्य उपयुक्त है या नहीं यह भी देखना चाहिए। अपना लड़का है बहुत आग्रह कर रहा है, हठ कर रहा है, दे दो उसको सौ का नोट। कभी-कभी पिताजी विवेक नहीं रखते लेकिन माँ जानती है कि वह क्या खायेगा, क्या खरीदेगा और बीमार पड़ जायेगा तो उसको अस्पताल भेजना पड़ेगा। घर का खाना वह बच्चा छोड़ देता है। जिस बच्चे की जेब हमेशा गर्म रहती है वह पैसा लेकर के बाजार में जायेगा। क्या खाता है पिता को मालूम ही नहीं है, घर में माँ एक सेर घी लाकर चाट-पकौड़ी करके दे दे तो वह अच्छी नहीं लगती और वहाँ पर जाकर चाट-पकौड़ी खाकर आ जाता है। कब का बना है? क्या है? यह पता नहीं लेकिन वह खाकर आ जाता है। और एक बार इस प्रकार की आदत उसकी बन जायेगी, फिर माँ के द्वारा लाड़-प्यार से कुछ भी खिलाओ उसको अच्छा नहीं लगेगा। देखिये पैसा गया, संस्कार गये और बच्चा गया। अब आकर के महाराज जी के पास कहते हैं। हम लोगों के पास ऐसी शिकायतें आतीं हैं। महाराज, आप इसको ऐसा आशीर्वाद दे दो ताकि यह मेरा कहना मान ले। यदि आप मेरी बात मानते तो अपने आप ठीक हो जाता। आपने तो मानी ही नहीं इसलिए लड़का बिगड़ गया, जिन्दगी बर्बाद हो गई। इसलिए यथायथम् का अर्थ बहुत महत्त्वपूर्ण है। हमें अपने परिवार को ही नहीं देखना है, अपने अड़ोस-पड़ोस को भी देखना है इसलिए ये आप लोगों की कुशलता मानी जायेगी, दूरदर्शिता मानी जायेगी कि आप दूसरे के दुख-दर्द के बारे में सोचो। आप लोग इसलिए पता लेते हैं दूसरों का, कि यह हमारे काम में आयेगा। लेकिन अब, अब ऐसे एड्रेस लेना भी प्रारम्भ कर दो कि इसके लिए मैं कब काम आऊँगा। वहीं से धर्म प्रारम्भ हो जाता है। यह हमारे काम का है, अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए एड्रेस लेते हैं कई लोग। यह स्वार्थ धर्म नहीं। उनके काम के लिए उनका एड्रेस लो। अपने परिवार की चिन्ता करते हो लेकिन यह स्वार्थ की बात हो गई। दूसरे के परिवार की भी चिन्ता करो। कूप का उदाहरण हमेशा याद रखने योग्य है, ताजा-ताजा पानी मिलता है और वितरण करते-करते आप चले जायें। नीचे का स्रोत अपने आप ही बलवान हो जाता है और उसमें से पानी आ जाता है। आप निकालते जायें। नहीं निकाला तो ऊपर के पानी का भार ज्यादा बढ़ जाता है तो पानी की आवक रुक जाती है। आप लोग यदि ऐसा विचारें कि प्रतिदिन पानी न निकालकर एक साथ सात दिन में निकाल

लें तो एक दिन में इतना पानी निकलता है तो दो दिन में कितना पानी निकलेगा और चार दिन न निकाल करके हम पूरा एकत्रित कर लेंगे, लेकिन ऐसा नहीं होगा। पानी उस अनुपात से नहीं बढ़ेगा। इसी प्रकार हम पूरे के पूरे जीवन पर्यन्त अच्छे ढंग से कमा लें। ऐसा नहीं कि जीवन के अन्त में कोई चेरिटेबल ट्रस्ट बना करके चले जायें तो वो भी ठीक नहीं रहता क्योंकि उसकी भावना यद्यपि अच्छी है लेकिन यह गणित ठीक नहीं बैठता। प्रतिदिन जो होता है उसके माध्यम से उसका ताजा हिसाब-किताब होता चला जाता है। उससे उसको ज्यादा चिन्ता भी नहीं होती। सबसे ज्यादा संकल्प-विकल्प होते रहते हैं, संग्रहीत की रक्षा के। हमेशा-हमेशा चिन्ता संग्रह करने की ही होती है, ऐसा नहीं है; संग्रहीत की रक्षा का भी बहुत बड़ा विकल्प होता है। कैसे विकल्प होता है? आप अपनी-अपनी चाबी को सम्भाले रहो। इतनी भीड़ है कि क्या पता इस भीड़ में ऐसे भी व्यक्ति हो सकते हैं कि आप मनोयोग के साथ सुनने लग जायें और अड़ोस-पड़ोस में बैठा व्यक्ति चाबी पार कर दे तो? इसलिए वहाँ चिन्ता है। संग्रहीत की रक्षा की चिन्ता तब तक नहीं छूटेगी जब तक आप लोग महाव्रत अंगीकार नहीं करेंगे, इसलिए महाव्रतियों की संख्या कम है, घर-बार छोड़ने वालों की संख्या कम है और घर-बार वालों की संख्या सबसे ज्यादा है। आप लोग यहाँ तो घर छोड़कर के आये हैं लेकिन बार-बार जेब को देख रहे हैं कि चाबी है कि नहीं, चाबी गुम हो गई तो क्या करेंगे? इसके लिए आचार्यों ने कहा कि संग्रह करते ही क्यों हो? अपने ही द्वारा अपने लिए ही बन्ध की व्यवस्था हम करते आए हैं। यथायथम् का अर्थ हमें यह सोचना चाहिए। बच्चा यदि भूख के कारण तड़प रहा है तो उसके लिए प्रबन्ध कर लेते हैं और यदि अधिक खाने से पेट के दर्द से तड़प रहा है तो अब आहार की कोई आवश्यकता नहीं, अब औषध की आवश्यकता है, यह आप जानते हैं। इन दोनों के बाद भी यदि कोई आवश्यकता है तो उसका भी प्रबन्ध किया जाता है।

एक धर्मात्मा जो धर्म से विमुख हो रहा है जिन समस्याओं के कारण, उनकी पूर्ति करके उसको धर्म की ओर ला सकते हैं। यह सबसे बड़ा कार्य है और सबसे ज्यादा कर्म निर्जरा इसी में होती है। एक व्यक्ति जो धर्मात्मा था लेकिन स्खलित हो रहा है उसको पुनः उस स्थान पर स्थापित कर देना और यदि स्थापित है तो उसके जीवन में, धार्मिक क्षेत्र में प्रगति कर देना यह सबसे महत्त्वपूर्ण माना जाता है। स्वयं चलते हुए दूसरे को चलाना, निःस्वार्थ भाव से, यह महान् कार्य है। इसलिए अज्ञानरूपी अंधकार जो फैला है उसको दूर करते हुए अपनी शक्ति के अनुसार/अनुरूप मार्ग का प्रकाशन यानि शासन की प्रभावना हमें करनी चाहिए। स्वामी समन्तभद्र ने यह लिखा तथा तत्त्वार्थसूत्र की टीका में पूज्यपाद स्वामी ने भी लिखा है कि ज्ञान, तप, पूजा, विधान आदि से भी शासन की प्रभावना कर सकता है, बड़े-बड़े विधानों से भी प्रभावना होती है। जैसे यहाँ पर विधान किया सोलह दिन का। पहले सुनते हैं इन्द्रध्वज विधान हो गया। इस प्रकार से स्थान-स्थान पर

विधान करने चाहिए। बड़े- बड़े पंचकल्याणक गजरथ महोत्सव होते हैं, बहुत बड़ी प्रभावना होती है। विधान नैमित्तिक होते हैं, पूजन हमेशा-हमेशा के लिए होती है। पूजन मुख्यतः स्वयं के द्वारा होती है, विधान में अपने साथ अन्यों को भी रखा जाता है। पूजन एवं विधान में कैसा अन्तर है, एक उदाहरण से समझाते हैं।

एक हफ्ते में सात दिन होते हैं और किसी भी गाँव में, कस्बे में, नगर में जहाँ कहीं भी बाजार का दिन होता है। होता है न, होता है यह निश्चत बात है। किन्तु सात दिन तो बाजार में जो आप लोगों की दुकान रहती उसमें जो माल रहता है, वह भीतर ही भीतर रहता है और ग्राहक कोई आ जाता है तो दुकान पर ही आकर ले जाता है यह प्रतिदिन चलता रहता है सामान्य रूप से। लेकिन जब बाजार का दिन आ जाता है तो माल आप सारा का सारा बाहर निकाल कर रख देते हैं क्योंकि उस दिन भीड़ बहुत रहती है। दुकान में बहुत कम स्थान होने के कारण सब बाहर रख देते हैं ताकि जो ग्रामीण जनता आती है गाँव-गाँव से, वह उस माल को देख लेगी। वह सुनती नहीं देख करके ही खरीदती है। यह विधान एक प्रकार से बाजार के दिन होता है। तो सब लोग देखकर के एकत्रित हो जाते हैं। पूजन तो प्रतिदिन करते ही थे उसमें कोई भी आकर के पूछताछ नहीं करता था, सब परिचित व्यक्ति ही आते रहते हैं। पूजन में भावना की मुख्यता रहती है प्रभावना की नहीं। जिस प्रकार प्रतिदिन की अपेक्षा बाजार के दिन लाभ अधिक होता है उसी प्रकार प्रतिदिन की अपेक्षा बड़े-बड़े विधानों में भी लाभ अधिक होता है। बहुत प्रकार की वैरायटी जो है उस समय खोल के रख देते हैं और श्रद्धा भी बढ़ जाती है उसमें। सब लोग दुकान के बाहर आ जाते हैं। उसी प्रकार विधान में आप सामूहिक रूप में कार्य करेंगे। आठ दिन, दस दिन, बारह दिन, ऐसे ही विधान का समय होता है, उससे बहुतों को लाभ मिलता है। रथ उत्सव आदि निकालते हैं और उसके साथ-साथ जो जनता जुड़ती है उसको धार्मिक मार्ग पर लाने के लिए यह साधन हो जाता है। सबसे महत्त्वपूर्ण तो यह है कि इसमें वात्सल्य अंग पनप जाता है और दोनों के माध्यम से साधक के तप की वृद्धि होती है, मार्ग का विकास हो जाता है तथा बड़े-बड़े विधानों के माध्यम से जो मार्ग से अज्ञात रहते हैं वे भी जुड़ जाते हैं। जिसकी क्षमता नहीं भी हो तो भी सामूहिक पूजन आदि देखकर सामर्थ्य आ जाती है। एकाध बार में सभी का भाव नहीं आ सकता। बार-बार करेंगे तो कभी किसी का तो, कभी किसी का भाव आ जाता है। एक साथ सभी का उद्धार नहीं होता प्रायः बहुत कम संख्या मिलती है जीवों की पुराण ग्रन्थों में जिनका बहुत जल्दी कल्याण हो गया हो। बड़े-बड़े महापुरुषों के कल्याण भी जो हुए हैं, बरसों ही नहीं, भव-भव में हुए हैं।

आप पुराण ग्रन्थ पढ़ियेगा, सब कुछ करते हुए तीर्थंकर अपने जीवन काल को किस ढंग से व्यतीत करके गए हैं। इसका अवलोकन भी आप लोगों को करना चाहिए। जैसे आप लोग अपने

हिसाब-किताब के ज्ञान को अच्छा रखते हैं और उसके लिए अखबार-पत्रिका वगैरह पढ़ते हैं। उसी प्रकार जो बड़े-बड़े बाजार होते हैं विश्व में जहाँ-कहीं भी, उन बाजारों से सम्बन्ध फोन इत्यादि के माध्यम से रखते हैं। उसी प्रकार यदि आप धर्म करना चाहते हैं तो अपने भावों को सुदृढ़ बनाने के लिए ये ग्रन्थ हैं जिनका स्वाध्याय करना चाहिए और स्वाध्याय की रुचि बढ़ाने के लिए सर्वप्रथम, हमारे विचार से जो पुराण ग्रन्थ हैं उनको पढ़ लेना चाहिए। उनमें उन पुराण-पुरुषों की पूरी-पूरी हिस्ट्री लिखी हुई है। उसको सुनने से, देखने-पढ़ने से अपने भीतर मोक्षमार्ग के प्रति जिज्ञासा बहुत जल्दी पैदा हो जाती है तथा आदिनाथ भगवान् का जीवन कैसा बना? महावीर भगवान् का जीवन कैसा बना? इन लोगों ने किस ढंग से दीक्षा ली? कौन-कौन साथ हुए? यह सब सुनने से अपने आप ही धर्म भावना जागृत हो जाती है। संस्कार तो प्रत्येक व्यक्ति के पास रहते ही हैं लेकिन थोड़े बहुत उनको जागृत करने की आवश्यकता रहती है। राख में छुपी हुई अग्नि की भाँति हम लोगों की स्थिति है, थोड़े बहुत उपदेश सुन लेते हैं तो अपने आप ही भीतर हलचल होने लग जाती है। थोड़ा-सा फूँक लो, राख उड़ जायेगी और वहाँ अग्नि प्रज्ज्वलित हो जायेगी। थोड़ी-सी माँजने की आवश्यकता है। दूसरे की चीज हमें काम में नहीं आने वाली किन्तु दूसरा किस ढंग से कार्य करता है उसे देखकर हम अपने आप कार्य करना सीख सकते हैं।

एक दुकानदार दूसरे दुकानदार के लिए कोई विशेष मदद नहीं देता है। लेकिन फिर भी वह मदद परोक्ष देता रहता है। उसकी दुकान एवं दुकानदारी को देखकर नया दुकानदार अपनी दुकानदारी करना सीख जाता है। इसी प्रकार धार्मिक कार्य भी आप लोग करेंगे तो अपना जो धार्मिक भाव है वह उन्नत होगा, समृद्ध होगा, प्रौढ़ होगा। जितनी प्रौढ़ता उसमें आयेगी उतनी ही आप लोगों को आगे जाने में सुविधा मिलेगी। दुविधा को छोड़कर सुविधा में आना चाहते हैं तो हमेशा-हमेशा ऐसे भाव करते चले जायें। स्वामी समन्तभद्राचार्य जैसे महान् आचार्यों ने आप लोगों की जागृति के लिए, उन्नति के लिए कुछ बातें लिखी हैं। रत्नकरण्डकश्रावकाचार पढ़ो तो कर्मों की निर्जरा करने में सुविधा मिलेगी, भावना जागृत होगी और संकल्प शक्ति भी आप लोगों की बढ़ेगी। संकल्प शक्ति यदि बढ़ाना चाहते हो तो स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए। देवदर्शन करना, अभिषेक करना, पूजन करना और इसके साथ-साथ स्वाध्याय भी कर लेना चाहिए। हालाँकि इन पूजन में भी एक प्रकार से स्वाध्याय की बात आ जाती है।

सिद्धचक्र मण्डल विधान जो आप लोगों ने आठ दिन अष्टाह्निका में किये होंगे, उसमें देख लो सिद्ध किस ढंग से बनते हैं?, सिद्ध का क्या स्वरूप होता है? इसको देखेंगे, समझेंगे तो समयसार में और उसमें कोई अन्तर नहीं पाया जाता। शुद्ध आत्मतत्त्व का वर्णन ही तो समयसार में है। उसी प्रकार सिद्धचक्र मण्डल विधान को गदगद भाव से करेंगे/सुनेंगे तो समझ में आ जायेगा कि सिद्धों

का क्या स्वरूप है? मेरा भी स्वरूप सिद्ध स्वरूप के समान है, लेकिन हमने भुलाया हुआ है, इसलिए याद नहीं आ रहा है। उसको याद करके अपनी वर्तमान स्थिति की तुलना करने से क्या कमियाँ हैं यह ज्ञात हो जाती हैं। जिसको स्वाध्याय वगैरह करने की क्षमता नहीं है तो उसे उत्साह के साथ जाप करना चाहिए। णमोकार मंत्र का जाप करना भी आचार्यों ने कहा। यह भी एक परम स्वाध्याय है, यह भी ध्यान रहना चाहिए। लोगों की यह धारणा होती है कि केवल शास्त्र पढ़ने से ही कर्मों की निर्जरा होती है और उसी से सब कुछ होता है। उन लोगों की ऐसी एकाकी धारणा है तो उनके लिए हम बना चाहते हैं कि बहुत बड़ी कृपा होगी यदि वे अपनी इस धारणा को छोड़ दें और णमोकार मंत्र पढ़कर जो अपने कर्म काटना चाहते हैं उनको भी स्वाध्याय शील ही समझें क्योंकि पंच परमेष्ठी जो हैं एक प्रकार से उनमें सब तत्त्व पाये जाते हैं। पंच परमेष्ठी के त्रिकालिक स्वरूप का चिन्तन करने से, उनके स्मरण से समस्त तत्त्वों का चिन्तन हो जाता है। बड़े-बड़े जो साधक होते हैं, सन्त-साधु वे अन्य और कुछ कार्य नहीं करते हैं उनका केवल पंच परमेष्ठी का जाप चलता रहता है। वह कुछ करते नहीं ऐसा लगता है लेकिन ऐसा नहीं है, जो मेधावी छात्र होते हैं वे बहुत कम पढ़ते हैं पॉइन्ट्स बहुत लेते हैं और हमेशा चिन्तन में ही रहते हैं। उसी प्रकार जो शास्त्र स्वाध्याय नहीं कर रहे हैं उनकी कर्म की निर्जरा नहीं हो रही ऐसा नहीं है। कर्म निर्जरा जो होती है वह भावों के ऊपर आधारित है। सात्विक भाव, विकल्प रहित भाव जो होते हैं वह सबसे ज्यादा कर्म निर्जरा के लिए कारण होते हैं। उत्कृष्ट आचरण पालकर फल को पा चुके हैं, उनको स्मरण करना भी केवलज्ञान के लिए कारण है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि पढ़ना-लिखना बन्द कर दें। जिनको पढ़ना नहीं आता उनको जाप का साधन बता रहा हूँ। जाप यदि निर्विकल्प होकर करेंगे तो निर्जरा होगी। माला फेरते समय भी विकल्प है। जो नारद के समान पैशून्यपने से भरा है, जैसे नारद साधु भेष में थे लेकिन चुगलखोरी, ईर्ष्याभाव, एक दूसरे को भिड़ाना, अपमानित करना आदि करते थे। ऐसा अज्ञानी करोड़ों जाप कर ले तो भी कर्म की निर्जरा नहीं कर सकता। ऐसे अज्ञानी के जप की बात मैं नहीं कह रहा हूँ। मैं तो यह कह रहा हूँ कि शब्द ज्ञान के बिना शिवभूति जैसे महान् साधक अपना कल्याण करके सिद्ध बन गये। यह उदाहरण बहुत ही प्रेरणास्पद है। ऐसे पूजन, जाप विधानों आदि के माध्यम से आप लोग अपना आर्त-रौद्र-ध्यानमय जो जीवन है, उसको दूर करके कुछ समय के लिए नैमित्तिक पूजन/विधान आदि कर लें और परमार्थ की प्रभावना के साथ-साथ अपनी भावना बनाये रखें।

॥ अहिंसा परमोधर्म की जय॥

❑ ❑ ❑

काया-कल्प

सुना या पढ़ा था और देखने की भावना थी और आज सुनी हुई, पढ़ी हुई बात देखने में आ गयी। हम सारे असिद्ध हैं, किसी काम के नहीं। हाँ, यदि जो सिद्ध हो गये उनकी खोज, उनकी गवेषणा करना चाहते हैं तो हमारा जीवन भी सार्थक हो सकता है, हमारा जीवन भी धन्य हो सकता है। पहले का समय था कोई तीर्थ वन्दना के लिए निकलता था। परिवार को बता कर चला जाता कि हमारी कोई चिन्ता नहीं करना। वर्षों लगते थे सम्मेदशिखर जी आदि तीर्थों की वन्दना करने के लिए और यदि कोई वन्दना करके सकुशल आ जाता था तो वहाँ की जनता उसके चरणों को धोकर चरणामृत के रूप में अपने सिर पर लेकर उनकी आरती उतारती थी और खुशी मनाती थी क्योंकि वहीं पर अपने जीवन की साधना पूरी करके जिन आत्माओं ने सिद्धत्व प्राप्त कर लिया उस स्थान को भी छूना एक प्रकार से अपनी आत्मा को शुद्ध बनाने की भावना व्यक्त करना है। यह नर्मदा सार्थक नाम वाली है। नरम का अर्थ संस्कृत में होता है सुख-शांति, ''नरमं सुखं''।

ध्यान के बड़े-बड़े ग्रन्थों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि जो व्यक्ति ध्यान करना चाहता है उसमें अपनी आस्था, रुचि, तत्त्व के प्रति श्रद्धा आदि-आदि तो होना ही चाहिए तथा उसके साथ-साथ यह भी कहा जाता है कि जहाँ पर सिद्धपद को प्राप्त कर लिया वह स्थान अपने आप में निर्विकल्प योग साधना के लिए साधकतम् माना जाता है। इस नदी का उद्‍गम स्थान अमरकंटक माना जाता है। दो वर्ष पूर्व मैं वहाँ पर भी गया था। कुछ ही कोसों के उपरान्त उसकी विराटता यहाँ पर ज्ञात हो जाती है। शास्त्र भरे हुए हैं रेवातट पर सिद्धि प्राप्त करने वालों से। जिनकी योग साधना पढ़कर ज्ञात हो जाता है कि साधना कैसे की जाती है। बताते नहीं, करके दिखा देते थे। नदी का प्रवाह हमेशा-हमेशा आगे की ओर बढ़ता चला जाता है। इस तट के ऊपर बैठ कर जो व्यक्ति योग साधना करना चाहता है उसका मन अपने आप ही देखते-देखते स्थिर हो जाता है। ध्यान करने वाला भी मन है और ध्यान में विघ्न डालने वाला भी मन है। ध्यान द्वारा संसार का भी संपादन होता है तो ध्यान द्वारा मुक्ति का भी संपादन होता है। एक ध्यान सोपान का कार्य कर जाता है तो एक ध्यान मदिरापान का। एक ध्यान के माध्यम से हम गिर जाते हैं, एक ध्यान के माध्यम से हम उन्नत हो जाते है, आगे बढ़ जाते हैं। तटों के ऊपर यदि चिन्तन करें तो चिन्ता अपने आप ही भंग हो जाती है और उस चिन्तन में चेतना लीन होती चली जाती है। हम इधर-उधर देखते हैं तो हमारी शक्ति का व्यय हो जाता है और हम उस तट की ओर बैठ करके नदी के प्रवाह को देखते हैं तो ऊर्जा अपने आप ही प्रारम्भ हो जाती है, गति बढ़ती चली जाती है, प्रगति हो जाती है और उन्नति हो जाती है। आप लोगों ने देखा होगा कभी नदी भटकी हुई सी लगती है, कभी नदी कुण्ड का रूप धारण कर लेती है, कभी पत्थरों से टकराती है, कभी निर्जर के रूप में पहाड़ों से बहती है। कभी मैदानों में कभी गाँव-नगरों

के किनारे से बहकर संदेश देती रहती है। लेकिन कभी नदी को डर के मारे लौट कर वापस जाते हुए देखा आपने?

मानव को थोड़ी सी कठिनाई का अनुभव हो जाता है तो वह अपना रास्ता बदलने लग जाता है। यह निश्चत है कि पाँच पापों के कीचड़ में सांसारिक प्राणी अटक जाता है। भटक जाता है। दलदल में फँस जाता है। विशालकाय हाथी महान् शक्ति सम्पन्न होता है किन्तु एक बार दलदल में फँस जाये तो उसे निकालने के लिए दो हाथी भी आ जायें तो वे भी फँस जाते हैं। वह दलदल उन्हें पाताल की ओर लेता चला जाता है। पाप भी एक महान् दलदल माना जाता है। उस पाप के दलदल के कारण संसारी प्राणी अपने आपको आज तक ऊपर नहीं उठा पाया है। एक पैर उठाया तो, दूसरा पैर पाताल की ओर चला जाता है, उस पैर को उठा नहीं सकता क्योंकि एक पैर जमाना अनिवार्य होता है फिर बाद में एक पैर उठ सकता है। दोनों पैरों तले कीचड़ रहेगा तो हम उठ नहीं सकते और यदि कोई उठाने आ जाये तो वह भी उसमें फँसता चला जायेगा। मक्खी जैसे कफ में अटक जाती है तो वहीं की वहीं छटपटाती हुई मर जाती है। क्षणिक सुख के लिए संसारी प्राणी अनन्त बार शरीर को धारण करता हुआ मरण को प्राप्त कर चुका है। पवित्र पावन नर्मदा के तट पर भी आकर सिद्धों की आराधना करना भूल गया। बहुत दूर-दूर से साधक लोग आते हैं और उन तटों पर बैठ के सिद्धों की आराधना करना प्रारम्भ कर देते हैं। वह सौभागय आज तक अतीत काल में हम लोगों को प्राप्त नहीं हुआ, नहीं तो हम सिद्ध बन जाते। हम मंजिल को प्राप्त कर लेते। तब हम लौट कर नहीं आते लेकिन लौटना इसलिए कर चुके क्योंकि हमने उस साधना को नहीं अपनाया। करोड़ों-करोड़ों यहाँ पर सिद्धत्व को प्राप्त हो रहे हैं तो हमारे लिए यह स्थान वरदान सिद्ध क्यों नहीं हो रहा? भावना भवनाशिनी मानी जाती है। यदि हम पवित्र भावों के साथ आ जाते हैं तो तीर्थ का महत्त्व समझ में आ सकता है, यदि लौकिक ही भाव लेकर आते-जाते हैं तो वह तीर्थ प्रत्येक को तट नहीं दिखा सकता। मंजिल सभी को नहीं दिखा सकता किन्तु उसी को दिखा सकता है जिसके भाव उस मंजिल को पाने के होते हैं।

सोना, पाषाण में रहते हुए भी उस पाषाण से पृथक अपने आप में होता है। दूध में घृत होते हुए भी अपने आप अलग नहीं हो सकता। तिल में तेल होते हुए भी अपने आप बाहर नहीं आ सकता। इन तीनों को संघर्ष की आवश्यकता होती है। शरीर में आत्मा है अपने आप ही परमात्मा नहीं बन सकता। परमात्मा बनने की एक विधि होती है, एक पद्धति होती है। उस पद्धति से वह परमात्मा बन सकता है लेकिन तब जब वह, जहाँ-जहाँ पर विदेह बन चुके हैं, सिद्ध बन चुके हैं परमात्मा पद को प्राप्त कर चुके हैं उस क्षेत्र पर जाकर थोड़ी देर बैठ करके चिंतन करता है, तब अवश्य ही वह भाव उसमें उभर कर आ जाता है।

यह भी हमारे लिए आय का एक स्रोत बन गया। आत्मोन्नति के लिए साधन बन गया। सिद्धत्व की प्राप्ति के लिए सोपान का काम कर जाता है। तीर्थ क्षेत्र जहाँ आप बैठे हैं उसका महत्त्व आज ज्ञात नहीं होगा, मैं बताना चाहूँ तो बता नहीं सकूँगा, आप सुनना भी चाहें तो भी बताया नहीं जा सकेगा। एकमात्र जानने की बात है, समझने की बात है बल्कि यूँ कहना चाहिए एकमात्र विश्वास की बात है। विश्वास का कोई मूल्य नहीं हुआ करता।

यहाँ पर साढ़े पाँच करोड़ मुनिराज सिद्धत्व को प्राप्त हो चुके हैं। हम लोग भी धन्य हैं। कम से कम इस स्थान पर आकर, उस विराटता का दर्शन करके मन में भाव तो कर रहे हैं कि हमारे लिए भी यह वरदान सिद्ध हो। हमारे कर्म और नोकर्म अनन्तकाल के लिए कपूर की भाँति उड़ जायें। अनन्तकाल के लिए घृत की भाँति लोक के ऊपर बैठ जायें। अनन्तकाल के लिए हम पाषाण को छोड़ कर काँचन का रूप धारण कर लें। देहातीत अवस्था का अनुभव हम कब करेंगे इसके लिए भी भावना भाने के लिये ऐसे पावन तीर्थ क्षेत्रों की शरण में जाने के लिए बार-बार हमारा मन करना चाहिए। यहाँ पर खातेगाँव भी है, उन लोगों ने सोच रखा है कि यह तट मिल गया हमें तो अब पार हो ही जायेंगे। खाने वालों को और पीने वालों को सिद्ध साधना नहीं होती ध्यान रखना। खाते गाँव को और पीते गाँव को छोड़ कर जब आओगे और उसका मोह छोड़ोगे तब ही कहीं काम बनेगा अन्यथा नहीं बन सकता। बहुत अच्छा सुन्दर वातावरण है यहाँ पर। आप लोग इस क्षेत्र को जो रूप देना चाहते हैं वह बिल्कुल उचित है और सामयिक है क्योंकि विषयों में और कषायों में करोड़ों-अरबों रुपये खर्च होते चले जा रहे हैं। कोई सांसारिक शादी आदि का कार्य होता है तो करोड़ों-करोड़ों रुपये बहाते हो दो-तीन दिन के लिए। चला जाता है सारा का सारा पैसा। और ऐसे क्षेत्रों पर उस राशि का प्रयोग हो जाता है तो कई भव्य जीव यहाँ पर दूर-दूर से आकर के पाँच मिनट भी रेवा के तट पर बैठकर सिद्धों की आराधना कर लें तो आपकी राशि का सही उपयोग हो गया समझ लेना चाहिये।

ग्रन्थों में ऐसा मिलता है कि बिम्बों के निर्माण कराये जाते हैं, उसमें बहुत राशि काम आ जाती है। उसका कोई मूल्य नहीं है, पर उस बिम्ब के माध्यम से वह अपने स्वरूप को पहचान लेता है, यह महत्त्वपूर्ण बिन्दु है। यहाँ पर यदि आप लोग वित्त को लगाकर, खर्च कर भव्य जीवों का आह्वान करते हैं तो यह बहुत अच्छा काम होगा; लेकिन यह ध्यान रखना लक्ष्य हमेशा-हमेशा सिद्ध बनने का ही रखना चाहिए। एक बार इस प्रकार के क्षेत्रों की शरण से, आधार से, माध्यम से, हमारा कायाकल्प हो जाये तो क्या कहना।

काया-कल्प दो प्रकार का है। जहाँ पर उपचार और औषधि काम नहीं करती, वैद्य और डॉक्टर जवाब दे देते हैं कि अब हमारे पास कोई इलाज नहीं है तो उस समय काया-कल्प का एक

प्रकार का प्रावधान आता है। उसमें पथ्य के माध्यम से कल्प कराया जाता है जिसमें यह काया कंचन के समान बन जाती है। जैसे नया शरीर मिल जाता है। तो जिस स्थान पर, जिस साधना के माध्यम से अनंतकाल से काया का दास बना हुआ है उस आत्मा का जब काया-कल्प होता है, तो उसके सुख का कोई पार नहीं। इस भूमि पर जिन्होंने सिद्धगति प्राप्त की उनको जो सुख मिला वह शब्दातीत है। जब से उन्होंने शिवत्व को प्राप्त कर लिया तब से अलौकिक आनन्द उन्हें प्राप्त हुआ, और यह क्षेत्र उनके लिए निमित्त हुआ। एक-एक क्षेत्र, एक-एक नर्मदा का तट इस तरफ और उस तरफ कोई भी ऐसा तट नहीं जहाँ से सिद्ध न हुए हों। महाराज हम यहीं पर तीर्थ बनाने जा रहें हैं इसलिए यही तो रेवातट है, ऐसा नहीं। यह आपका सामर्थ्य है कि एक स्थान विशेष को तीर्थ बना रहे हो, शास्त्रों में वो रेवातट कहाँ तक है उसकी कोई सीमा नहीं है।

इन तटों के ऊपर साढ़े पाँच करोड़ मुनि-महाराजों को सिद्धत्व प्राप्त हुआ। वह नर्मदा जा रही है और कह रही है कि तुम हमारी शरण में आये हो, यहाँ पर सिद्धत्व अवश्य मिलेगा, लेकिन ध्यान में रखना, मन में कुछ और तन में कुछ और वचन में कुछ और रखोगे तो फिर कुछ नहीं मिलेगा। फिर तो जीवन यों ही व्यर्थ चला जायेगा।

तन की गर्मी तो मिटे मन की भी मिट जाए।
तीर्थ जहाँ पर सिद्ध सुख अमिट अमिट मिल जाए॥

तीर्थ उसी का नाम है जहाँ पर सिद्ध सुख का संपादन हुआ करता है। शारीरिक, मानसिक, वैचारिक बाह्य जो कुछ भी सुख-शांति है सब यहाँ पर है, लेकिन इतना ही नहीं यहाँ के वायुमण्डल में वह क्षमता है जो सिद्धात्म अनुभूति को पैदा कर सके। यहाँ क्षेत्रों के स्पर्श ऐसे हैं जो निर्विकल्प समाधि में साधक को डुबकी लगाने में निमित्त बन सकते हैं। यहाँ के सूर्य प्रकाश में, यहाँ के कण-कण और अणु-अणु में वह शक्ति विद्यमान है। राजवार्तिककार अकलंकदेव ने एक स्थान पर उल्लेख किया है वह क्षेत्र आपके लिए वरदान है जहाँ पर अनेकों सिद्ध हो चुके हैं। आँख मीच (बन्द) कर वहाँ पर बैठ जाओ तो तुम्हारा उद्धार हो जायेगा। वह क्षेत्र तुम्हारे लिए वरदान है जिन क्षेत्रों में सिद्धत्व का सम्पादन अन्य आत्माओं ने किया है। उन तिथियों में और उन क्षेत्रों में तुम बिना मुहूर्त अपनी साधना प्रारम्भ कर दो, निश्चत रूप से तुम्हारी साधना को बल मिलेगा।

एक व्यक्ति ने कहा महाराज को बहुत दिनों तक यहाँ रुकना चाहिए। भैया बात ऐसी है कि वर्षा काल में तो बादल बहुत दिनों तक टिक जाते हैं। अभी तो पौष की मावठ है एक-दो दिन, एक-दो दिन ऐसे ही वर्षा होती है और उसी में काफी हो जाता है। सर्दी के समय पर ज्यादा वर्षा होना धान या खेती के लिए अच्छा नहीं माना जाता। इसलिए हम ज्यादा तो नहीं कह सकते हैं लेकिन इतना तो कह ही सकते हैं कि जितनी वर्षा होती है उतने में धान पक जाये तो अच्छा माना जाता है।

बहुत खाने से शक्ति बहुत आती है यह धारणा आप छोड़ दीजिए चूँकि आपको लोभ अभी भी सता रहा है। सन्त सान्निध्य हमेशा बने रहें। ठीक है, लेकिन यह ध्यान रखना इसी प्रकार की वर्षा अन्यत्र भी होनी चाहिए। एक-एक क्षण का मूल्य अभी ज्ञात नहीं होगा। क्षण की बात है, क्षण कितने-कितने निकल चुके हैं प्रमाद दशा में, मोह निद्रा में और संसार के अन्य कार्यों में, उसका कोई हिसाब-किताब नहीं है। पाप के फल के रूप में जो सम्पदा आती है उसको पुण्य के रूप में ढालने की प्रक्रिया प्रारम्भ कर देता है वह धन्यवाद का पात्र है। यदि दान के माध्यम से, त्याग के माध्यम से, छोड़ने के माध्यम से उसको हम पाप से पुण्य के रूप में परिवर्तित करने की प्रक्रिया अपना लेते हैं तो यह सबसे महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

चाहे गृहस्थ हों, चाहे संन्यासी हों उनका लक्ष्य नर्मदा के अनुरूप ही होना चाहिए। आत्मा का झरना सतत शाश्वत रूप से बहना चाहिए। नर्मदा दो तटों में बंधकर के आगे बढ़ रही है और विशाल सागर में जाकर मिलती रहती है। अपने तटों का उल्लंघन करते हुए वह इधर-उधर नहीं जाती। आप लोगों का भी यही कार्य है। गृहस्थ को भी लक्ष्य में हमेशा-हमेशा सिद्धत्व रखना चाहिए। मध्य प्रदेश में सिद्ध क्षेत्रों की संख्या बहुत है। इसमें यह रेवा नदी का तट है। हमें भले ही आज सिद्धत्व प्राप्त न हो किन्तु हम सिद्धों की आराधना अवश्य कर सकते हैं, सिद्धों की आराधना सिद्ध बनने का बीजारोपण है। आज करोगे बीजारोपण तो वह अवश्य फलीभूत होगा।

॥ अहिंसामय धर्म की जय॥

❑ ❑ ❑

दादाजी की तृष्णा

मानव की सुख-शान्ति की जो इच्छा है वह सही है या नहीं, इसके बारे में एकदम तो नहीं कहा जा सकता। युगों-युगों से यह संसारी प्राणी सुख चाहता है लेकिन सही सुख किसमें है इसका ज्ञान, इसका बोध नहीं है, न ही सही दिशा में आस्था है।

व्यक्ति मन को प्रसन्न करने में लगा है। मन क्या-क्या चाहता है इसके बारे में हम सीमा नहीं बाँध सकते। उसे जब तक रोकते नहीं तब तक उसकी चाह की उड़ान चलती रहती है। विश्व की विभूति को प्राप्त करने के लिए ही दौड़ लगाता रहता है। आप लोग सब लगा रहे हैं। बड़े-बड़े लोग लगाते हैं मन की प्रसन्नता के लिए, मन की खुराक को ढूँढ़ने के लिए। युग के आदि में भरत चक्री हुआ है, उसकी भी इच्छा थी कि मैं सबसे बड़ा सम्राट् बनूँ, मैं अकेला सम्राट् रहूँ और सारी जनता मेरे चरणों की दास बने। यह दास बनाने की भूख आज की नहीं, धारणाएँ आज की नहीं हैं अनादिकाल से चली आ रही हैं। प्रत्येक व्यक्ति यह चाहता है कि मैं उस सिंहासन का मालिक बन

जाऊँ। भारत एक है, राष्ट्रपति पद भी एक है, लेकिन प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्रपति बनने की इच्छा रखता है। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि उस ऊँचाई तक मैं भी पहुँच जाऊँ और प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार भी है। तुम राष्ट्रपति बनना नहीं चाहते हो क्या? चाहता हूँ। आप यही कहेंगे। प्रसंग आ जाये, अवसर मिल जाये तो अवश्य उस कुर्सी पर बैठने का प्रयास करूँगा और जो बैठ जाते हैं वह पुनः बैठने की इच्छा भी करते हैं। कुर्सी का एक ऐसा ही प्रभाव रहता है कि वहाँ पर प्रत्येक व्यक्ति पहुँचना चाहता है। भरत चक्री को अवसर आया और वह अकेला बनेगा यह भी ज्ञात था, दूसरा कोई प्रतिपक्षी नहीं था। बिना प्रतिपक्ष के युग के आदि में उसको खड़े होने का मौका मिला था। नियति ने चक्रवर्तित्व का अधिकार उसी को दिया था। बिना प्रतिपक्ष बहुत कम हुआ करता है। लोकतंत्र में विपक्ष का होना पहले अनिवार्य होता है। फिर बाद में पक्ष को भी आनन्द आता है। यदि विपक्ष नहीं है तो सम्भव नहीं कि किसी को आनन्द आए। एक करोड़पति हो और हजारों लखपति हों तो फिर करोड़पति का साफा तो बिल्कुल फरफराता रहता है। बिना हवा के भी हवा पा जाता है। यदि सारे के सारे करोड़पति हो जाते हैं तो एक सोचता है कि कोई लखपति मिले तभी आनन्द है नहीं तो आनन्द नहीं आयेगा। खाने से नहीं, पीने से नहीं, लखपति बनने से नहीं, करोड़पति बनने से नहीं, अरबपति बनने से नहीं किन्तु एक करोड़पति हो और एक लखपति हो तब आनन्द आता है। करोड़पति वाला अरबपति के पास जाना नहीं चाहता। करोड़पति लखपतियों के झुण्ड में पहुँचना चाहता है। यह जो खुराक मन की है, इसको पूर्ण करने के लिए इस युग में कितने प्रयास किए गए, इसका कोई अंदाज नहीं लगाया जा सकता। दरिद्र व्यक्ति भी यह चाहता है कि मैं इस स्वप्न को साकार करूँ। चक्रवर्ती की भी यही भावना होती है, लेकिन कुछ चक्री ऐसे हुए हैं जिन्होंने अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थ की चरम सीमाओं को प्राप्त किया है। ऐसे व्यक्ति आदर्श बन जाते हैं। शान्ति, कुन्थु और अरह तीन भगवान् की प्रतिमाएँ अधिक मिलती हैं। शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ की ही क्यों? इसका महत्त्व है। महत्त्व यह है कि ये तीर्थंकर भी थे, कामदेव भी थे और चक्रवर्ती भी थे। धर्मचक्र भी चलाने वाले, काम पुरुषार्थ को भी करने वाले और मोक्ष पुरुषार्थ भी करने वाले थे।

चक्रवर्ती भीतर से रस लेता है या नहीं? यह मैं आपके सामने रखना चाहता हूँ और यदि चक्रवर्ती केवल चक्र की ओर ही देखता है तो क्या परिणाम निकलता है? अपने ही भाई बाहुबली से पराजित होना पड़ा और चक्रवर्ती चक्रवर्तित्व को प्राप्त करने के उपरान्त भी उस चक्कर से दूर रहना चाहता है तो दुनियाँ उसे आदर्श मान लेती है। इस घटना के माध्यम से हम ज्ञान कर सकते हैं।

भरत चक्री अपने शयनकक्ष में है। उसके दूत या उसके सेवक ने कहा कि–"**महाराज आपका अर्थ पुरुषार्थ सफल हुआ, चक्र रत्न की उत्पत्ति हुई है।**" आप चुनाव के लिए खड़े हो

जाते हैं, परिणाम घोषित होता है तो सुख और शान्ति का कोई पार नहीं रहता। सुनने के उपरान्त भी चक्री अस्थिर नहीं हुआ केवल एक सामान्य ही परिणाम रहा। उसी समय और एक दूत आकर सूचना देता है कि राजन् अभी-अभी काम पुरुषार्थ के फलस्वरूप पुत्ररत्न का लाभ हुआ है। संसार में जब दाम्पत्य जीवन प्रारम्भ हो जाता है तो काम पुरुषार्थ के फल पुत्ररत्न की प्राप्ति अनिवार्य हो जाती है। यदि सन्तान नहीं है तो फीका-फीका-सा लगने लग जाता है आप लोगों को।

''खीर तो है लेकिन मीठा उसमें नहीं रहता''। जिस फल की वाञ्छा को साथ में लेकर के वह गृहस्थी को अपनाता है उसका फल मिलना भी चाहिए। लेकिन उसमें ज्यादा गाफिलता का अनुभव न करें। बहुत कम यह अवसर प्राप्त होता है। चक्री वस्तु व्यवस्था को ध्यान में रखता हुआ वस्तुस्वरूप का विचार करता रहता है।

कौन-सा सही शान्ति और सुख का साधन है, इसका निर्णय, इसकी पहचान, इसका विश्वास बहुत कम लोगों को हुआ करता है और जब हो जाता है तो फिर इसके उपरान्त वह निम्नकोटि के पदार्थों के लाभ में सुख एवं शान्ति का अनुभव नहीं करता। युग के आदि की बात है, अभी की नहीं वह सेवक आया था उसने मन में यह विचार किया था कि ओ-हो मेरी बड़ी प्रशंसा होगी, मुझे बहुत पुरस्कृत किया जायेगा। लेकिन वह चक्री के व्यक्तित्त्व को देखकर सोचता है कि कैसा व्यक्ति है यह चक्रवर्ती? चक्र का लाभ हो गया फिर भी किसी भी प्रकार से उतावलापन नहीं है।

विद्यार्थी परीक्षा दे देता है, परिणाम घोषित होने की तिथि की प्रतीक्षा करता है और यह विश्वास रहता है कि मैं उत्तीर्ण हो जाऊँगा; लेकिन फिर भी अखबार में अपना रोल नम्बर देखने की इच्छा हमेशा बनी रहती है। यह क्या है? विश्वास होते हुए भी परिणाम सुनने का लालच तो बना ही रहता है। सुना था उस चक्रवर्ती ने भगवान् के मुख से कि, यहाँ पर प्रथम चक्रवर्ती होगा तू। सुनने के बाद उसे सौभाग्य प्राप्त हो रहा है, उसे कुछ न कुछ तो उतावलापन महसूस होना चाहिए था लेकिन नहीं हुआ। क्यों नहीं हुआ? इसलिए नहीं हुआ क्योंकि वह ज्ञानी है, जानता है कि यह कोई कीमती चीज नहीं है, अच्छी चीज की कीमत का ज्ञान हो जाये, फिर बाद में उससे कम कीमत वाली वस्तु आपके सामने लाकर रख दी जाये तो आप उतावले या प्रभावित नहीं होंगे, इसलिए नहीं होंगे क्योंकि यह तो यों ही मिल जायेगी, तो कौन-सी ऐसी कीमती चीज थी जो गृहस्थ आश्रम में भी उन्हें प्रभावित कर रही थी?

उसी वक्त जब उसके सामने तीसरे सेवक ने आकर कहा कि १००० वर्ष की तपस्या के उपरान्त ऋषभदेव को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई है, यह सुनकर चक्री की खुशी का पार नहीं रहा। उपरोक्त दो समाचार सुनने पर इतनी खुशी नहीं हुई थी। विशेष चीज की प्राप्ति होती है तो पक्षपात हो जाता है। जिसको हम चाहते हैं उसकी वार्ता सुनकर उसका संदेश, समाचार सुनकर मन में

उल्लास होता है। अर्थ और काम पुरुषार्थ का थोड़ा-सा लाभ हो जाता है तो धर्म को भूल जाते हैं। रागरंग में इतने रम जाते हैं कि मान-मर्यादा भी नहीं रहती। राग-रागिनी के लिए आज दादा और नाती दोनों एक कक्ष में बैठ जाते हैं। इतिहास में ऐसा नहीं होता था लेकिन आज साक्षात् देख सकते हैं। एक परिवार के सभी प्रकार के सदस्य एक साथ देख रहे हैं टी. वी. पर फिल्म। दादाजी, दादीजी, बेटा, बहू पोता सभी एक साथ रागान्वित चित्र देखते हैं। क्या संस्कार दे पायेंगे बच्चों को आप लोग?

समझ में नहीं आता बार-बार वही खाना, वही पीना, वही वासना, फिर भी अंत का यहाँ पर कहीं दर्शन नहीं हो रहा है।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः।
कालो न यातो वयमेव याताः ॥
तपो न तप्तो वयमेव तप्ताः।
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा॥

यह श्लोक अब तो पुराना होता जा रहा है लेकिन मर्म प्रभाव देखो तो आज मर्मभेदी होता चला जा रहा है। भोग नहीं भोगे बल्कि भोगों ने हमें भोगा है। काल नहीं आया, लेकिन हम ही काल के कवल हो गये। दादाजी की तृष्णा और नाती की तृष्णा, दोनों की तृष्णा को देखें तो दादाजी की तृष्णा और ज्यादा भी हो सकती है। क्योंकि काल का प्रभाव जवान के ऊपर कम पड़ा। दादाजी बहुत पुराने हो गए इसलिए उनके ऊपर ज्यादा पड़ा।

बहुत छोटा था उस समय की बात है। एक इमली का पेड़ था, और उसमें इमली के फल लग गये। उन्हें तोड़ कर खाने लगे लोग क्योंकि उसमें खटाई तो है ही। अब वह वृक्ष बूढ़ा हो गया, उसकी त्वचा बिल्कुल ही वृद्ध हो गई, वह झुकने को हो गया लेकिन ध्यान रखो वह इमली का वृक्ष कितना ही बूढ़ा हो जाये लेकिन उसकी खटाई कभी भी बूढ़ी नहीं हुआ करती; बल्कि पुराने इमली के वृक्ष की इमली और अधिक खट्टी होती है। इन्द्रियों में परिवर्तन हो सकता है, शरीर के प्रत्येक अंग में परिवर्तन हो सकता है लेकिन मन की प्रणाली में अंतर आये यह कोई नियम नहीं है। जब मन की प्रणाली में कोई अंतर नहीं आता है तो उस समय ये चार पंक्तियाँ कहना अनिवार्य हो जाता है। उपरोक्त श्लोक में भारतीय सभ्यता छुपी हुई है।

हाथ में तृष्णा रहती है, आँखों में तृष्णा रहती है, नासिका में तृष्णा रहती है, जिह्वा में तृष्णा रहती है, पैरों में तृष्णा रहती है। आखिर तृष्णा का आवास कहाँ है? इन सबमें तृष्णा नहीं है।

तृष्णा के घर तो हम स्वयं हैं। हमारा मन है जिसके माध्यम से तृष्णा पली रहती है, वह बूढ़ी नहीं हुई। कमर टूट गई है, नाड़ हिल रही है और सफेद बाल आ गये हैं। कई चक्रवर्ती, कई कामदेव तो ऐसे हुए उनको एक सफेद बाल दिख जाय तो पावागिरी की राह पकड़ लेते थे, लेकिन आज पूरा

ही सर गंजा हो जाये फिर भी वह बात समझ में नहीं आती। बुरी बात तो मत मानना/ इसका बुरा तो मत मानना क्योंकि हमने देखा है और देखते रहते हैं, यह कहना इसलिए आवश्यक हो जाता है। आज बाल सफेद हो जाने पर भी काले बनाने का औषध लगा रहे हैं और तो और डाई करके सारे के सारे लोग काले बनाने में लगे हुए हैं। भले ही काले बाल बना लो लेकिन आपके जो मुख के ऊपर झुर्रियाँ हैं उनको किसी भी मशीन के माध्यम से जवानी का रूप नहीं दिया जा सकता। कर भी लो तो जो इन्द्रियों को ऊर्जा देने वाली मशीन है उसको तो जवान नहीं किया जा सकता। यदि इस कोशिश में आप हो तो वह सम्भव नहीं, वह दूसरी पर्याय में ही सम्भव हो सकती है। पर्याय से पर्यायान्तर होने का समय आ गया है फिर भी ज्ञान नहीं हो पा रहा है। युग को जागरूक करने का, किसी भी प्रकार से विपरीत दिशा में जा रहे युग को सही दिशा में लाने का संतों द्वारा प्रयास किया जाता है और उसके लिए बहुत सारी पोथी लिखने की आवश्यकता नहीं होती। सूत्र रूप में भी संकेत दिया जा सकता है। संकेत के लिए बहुत सारी लाइनों की आवश्यकता नहीं होती, कभी-कभी चुटकी भी संकेत का काम कर सकती है। कभी-कभी आँखों का इशारा भी पर्याप्त होता है। यूँ तो आप भागवत को सुनाते चले जायें, महाभारत भी सुनाते जायें, तो भी कम हो जाता है। भगवान् भी साक्षात् आ जायें तो भी समझा पायें, कठिन है। भगवान् को भी वेदी पर बिठा दोगे और आरती-पूजा करते हुए कहोगे कि भगवान् भोग भोगने में, वैभव को जोड़ने में मैं असमर्थ हो गया हूँ, भगवान् मेरी सहायता कीजिये। लेकिन ध्यान रखना भगवान् भी उस ऊर्जा को लौटा नहीं सकते। प्रकृति तो अपने स्वभाव के अनुसार कार्य करेगी, आप कितना ही विकल्प करें। घर का क्या होगा। घर बसाया गया है तो एक दिन गिर जायेगा। ईंट, पत्थर हैं खिसक जायेंगे, भूकम्प आ जायेगा तो सब समाप्त हो जायेगा। भूकम्प से डरने से भूकम्प रुकने वाला नहीं, वह तो सब समाप्त कर देगा। जो कोई भी कृत्रिमता है वह समाप्त हो जायेगी।

आज भी भूकम्प हो रहे हैं, पहले भी भूकम्प होते थे, राजा और रंक सब एक साथ समाप्त हो जाते हैं। किसान खेत में बीज बोता है। जब फसल आ जाती है फिर उसको काटता है। दूसरी फसल बोने से पूर्व उसकी जड़ें भी सब समाप्त कर देता है हल चला करके। सृष्टि की भी यही नीति है कि वह भूकम्प एवं प्रलय आदि से जमीन को उलट-पुलट करता है, फिर से नया युग चालू होता है, जो आप नहीं चाहते हैं। आपके नहीं चाहने से या चाहने से यह कार्य नहीं रुकने वाला।

चक्रवर्ती को चकरत्न का लाभ हुआ किन्तु उससे वह प्रभावित नहीं हुए। पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई उससे वह खुशी का अनुभव नहीं कर पाए, किन्तु ऋषभनाथ भगवान् को केवलज्ञान की जो ज्योति प्राप्त हो गई उससे भरत चक्रवर्ती को आनन्द का अनुभव हुआ, वह अनुपम अनुभव है। इसलिए आनन्द हुआ कि कम से कम अपने जीवन काल में हमें यह तो पता चल जाय कि धर्म क्या

होता है? पाप-पुण्य क्या होता है? संसार से मुक्ति क्या होती है? अपना-पराया क्या होता है? क्या जीवन है? क्या मौत है? इसके बारे में आप जो भी प्रतिदिन देखते रहते हैं, जानते रहते हैं लेकिन यह रहस्य समझ में नहीं आता। कितनी बार मरण हो चुके हैं शरीर के लेकिन प्रत्येक बार आँखों में से पानी बहाया। मृत्यु नहीं चाहिए, जन्म-जीवन चाहिए-लेकिन जीवन और मृत्यु इन दोनों का जोड़ा है। जब से जीवन प्रारम्भ होता है, तब से प्रारम्भ हो जाता है मृत्यु का भी काल।

दीपक में तेल भर दो, बाती रख दो, बाती जला दो, दीपक जलना प्रारम्भ हो जाता है। जीवन प्रारम्भ हुआ। आप लोग समझ रहे हैं जीवन प्रारम्भ हुआ लेकिन उसी क्षण से जो दीपक में तेल डाला था वह तेल जल रहा है तब प्रकाश प्राप्त हो रहा है। जीवन ज्यों ही प्रारम्भ होता है त्यों ही मौत उसके साथ-साथ चल रही है। शरीर की छाया के समान साथ-साथ चल रही है। छाया यह काली है यह मौत के समान है। यह शरीर दिखता है प्रकाश में यह जीवन के समान है। यह ज्ञान था चक्रवर्ती को अतः हर्ष के साथ वह चल दिया उस ओर जिस ओर केवलज्ञान का लाभ आदिनाथ भगवान् को हुआ था। और जाकर सब बातें वह पूछता है, आत्मा की बात पूछता है। अब आप लोगों को सोचना है चूँकि यह हमेशा-हमेशा पढ़ाई जा रही है, भैया अच्छे ढंग से खेती करो, अच्छे ढंग से दुकान चलाओ, अच्छे ढंग से व्यवसाय करो, घर का पालन-पोषण जो भी है वह करो क्योंकि यह भी जरूरी है और यह भी शिक्षण ऋषभनाथ भगवान् ने ही युग के आदि में दिया था लेकिन यह कब तक? तब तक, जब तक हम इस शरीररूपी आत्म तत्त्व को नहीं पहचान पाते। पहचानने के बाद ये सब गौण हो जाते हैं।

फसल लहलहाती है और हरी-भरी है लेकिन हरी-भरी फसल को नहीं काटा जाता है। फसल पकनी चाहिए तब वह काटी जाती है। जब फसल पक जाती है तब हरी-भरी नहीं रहती, तब धान उत्पन्न होता है। जब तक हरी-भरी रहेगी तब तक उस धान में दूध निकल सकता है। आटा नहीं निकल सकता। आत्म तत्त्व की बात भी ऐसी ही है। असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प, विद्या सारे के सारे यह दूध की भाँति ही हैं। यह कच्चा जीवन माना जाता है। यह पका जीवन नहीं माना जाता। और ज्यों ही पका जीवन आ जाता है तो यह सारी की सारी चीजें गौण हो जाती हैं। हरी-भरी लहलहाती हुई फसल को देखकर किसान फूला नहीं समाता। लेकिन हमेशा अगर फसलें हरी रहेंगी तो चिन्ता करने लग जाता है कि मैंने जिस उद्देश्य को लेकर बीज बोया था अब वह बाल क्यों नहीं आ रही हैं? क्योंकि उसमें फूल नहीं आ पा रहे, यदि फूल आ गए हैं और झरने लग जायें तो घास तो रह जायेगा लेकिन धान नहीं आ पाएगा। दृष्टि हमेशा किसान की उस धान की ओर रहती है, जिसके माध्यम से जीवनयापन होता है। चक्रवर्ती का विकास भी ऐसा ही चल रहा था कि वह फसल पककर धान के रूप में सामने खड़ी हो। भले ही अपने जीवन में नहीं पकी, भले ही अपने

खेत में नहीं पकी। ऋषभनाथ भगवान् के जीवन में तो कम से कम पक गयी। हम देख लें उस फसल को, हम उस आटे का/आटेदार धान का दर्शन कर लें वह क्या होता है?

केवलज्ञान एक ऐसी ही वस्तु है, आत्म-पुरुषार्थ के बल पर उन्होंने प्राप्त किया था। और वह अनन्तकाल के लिए भोग्य वस्तु उन्हें प्राप्त हो गई। यह ज्ञान, यह संदेश, यह उपदेश अब हमें प्राप्त हो। एकमात्र यही भूख थी भरत चक्रवर्ती को। लेकिन आप लोगों को हमेशा-हमेशा यह बोध नहीं रह पाता, रहना चाहिए। उदासीन हो जाते हैं। यहीं पर नहीं, विदेशों में भी सुन रहे हैं सब लोग उदासीन हो जाते हैं। उदासीन किससे हो जाते हैं? परिवार से हो जाते हैं। परिवार से इसलिए हो जाते हैं क्योंकि परिवार उनसे उदासीन हो जाता है। वहाँ पर आश्रम खुल रहे हैं जो वृद्ध माता-पिता हैं उनका निर्वाह अन्त में ठीक-ठाक कैसे हो, उनका पालन-पोषण कैसे हो यह प्रबन्ध किया जा रहा है। चक्रवर्ती के सामने अन्तिम सीमा थी। अर्थ और काम के फल में विशेष हर्ष क्यों नहीं हुआ। क्यों नहीं प्राप्त हुआ उन्हें सुख। इसलिए नहीं हुआ क्योंकि इस रहस्य को उन्होंने समझ लिया था। आपकी यह हमेशा भावना बनी रहती है कि मैं ये बनूँ, वो बनूँ, मुझे ये मिले, मुझे वो मिले लेकिन मिलने के उपरान्त क्या होगा? उड़ान उड़ाते चले जाओ लेकिन कहाँ तक आप उड़ोगे? कितने भी आप उड़ते चले जाओ लेकिन अन्त नहीं, मन की उड़ान है, मन की वांछाएँ हैं मन की माँग है। इनको पूर्ण करने में कुशलता नहीं, इनकी पूर्ति में सुख-शान्ति नहीं है, इनकी पूर्ति कभी नहीं हो सकती। कोई छोर नहीं हुआ करता इच्छाओं का। 'और' की ओर देखते चले जाओ तो वाक्य बढ़ता ही चला जाता है। जितनी बार आप वाक्य में और लगाओगे वह वाक्य बढ़ता चला जाता है। बेलन फेरते जाओ और वह रोटी की लोई बढ़ती चली जाती है। वह तो कम से कम कहीं न कहीं जाकर रुक सकती है। लेकिन और लगाने के बाद आपकी पंक्ति कभी विश्रान्त नहीं हुई। महाराज 'और' लगाकर लिखने की भी एक कला होती है। कला तो होती है यह निश्चत बात है। वाक्य को पूर्ण किए बिना 'और' लगाते हुए लिखते चले जाओ उसका कोई छोर नहीं। एक ही बार में कह दो कितना चाहिए? बार-बार माँगने की अपेक्षा से एक ही बार कह दो कितना चाहिए? नहीं-नहीं, कितना कहने से एक सीमा आ गई। हम सीमातीत चाहते हैं। देते जाओ। आप देते जाओ। बस! 'इसका अन्त नहीं है' इसको जानना ही एक प्रकार से भेद-विज्ञान कहा गया है और इसका अन्त कहाँ है? इसकी ओर हम न देखें यही एकमात्र अन्त है। जहाँ पर आप खड़े हैं वहीं पर पूर्व है, वहीं पर पश्चिम हो सकता है यदि पश्चिम नहीं चाहते हो तो पूर्व की ओर मुख कर दो तो पूर्व आ जायेगी। जहाँ पर खड़े हैं वहीं पर पश्चिम भी विद्यमान है और जहाँ पर आप खड़े हैं वहीं पर पूर्व विद्यमान है। इसलिए दिशाबोध प्राप्त करो दिशा नहीं। दिशा कभी भी प्राप्त नहीं होगी। आपको दिशाबोध प्राप्त हो सकता है। दिशाबोध का नाम ही दिशा का सही मायना है। बोध प्राप्त करिए। सूर्य के माध्यम से दिशा का बोध प्राप्त हो

जाता है। उसी प्रकार भेद-विज्ञान के दर्शन से हमें दिशाबोध प्राप्त हो जाता है। नहीं तो हम पश्चिम की ओर जा रहे हैं। विश्व को दिशाबोध देने वाला जैसे दिवाकर है। पूरे के पूरे पशु-पक्षी तक इसके माध्यम से लाभ उठा लेते हैं और अपनी यात्रा को समटेते हैं तथा अपनी यात्रा को प्रारम्भ कर देते हैं।

ऐसे प्रत्येक युग में एक-एक आदर्श पुरुष होते रहते हैं। जिनके माध्यम से युग को दिशाबोध प्राप्त होता है। युग के आदि में ऐसे गृहस्थ भी थे जिनके भीतर सम्यग्ज्ञान विद्यमान था। वे कभी भी यह नहीं चाहते थे कि मैं ये करूँ, मैं वो करूँ क्योंकि करूँ-करूँ कहते-कहते बहुत बार हो गया। किसी ने भी अपने पूर्ण कार्य नहीं किये। अब भागो मत, रुको। रुकना ही एक प्रकार से हमारे लिए सही मंजिल है। कहाँ तक चलना है यह मत पूछो, कहाँ रुकूँ यह पूछो। कहाँ रुकूँ इसके लिए कोई क्षेत्र की आवश्यकता नहीं है। जहाँ रुको वहीं पर रुक जाओ, पर्याप्त है। आपकी मंजिल वहीं है। जहाँ पर आप रुकेंगे वहीं से मोक्षमार्ग प्रारम्भ हो जाता है। उड़ान के लिए भागने की आवश्यकता नहीं है। थोड़ी बहुत होती है किन्तु वह उड़ान के लिए ही होती है। आगे यदि और नहीं है तो ऊपर उठना बहुत जल्दी हो सकता है। मैं आपको एक बात पूछूं? बहुत बड़ी-बड़ी वस्तुओं को आप उठाने की हिम्मत करते हो, करते ही चले जाते हो लेकिन एक बार अपने आपको उठाकर देख तो लो किसी का सहारा लिए बिना। अपने आपको उठा नहीं पा रहे और भारत को उठाएँगे, विदेश को उठाएँगे, अमेरिका को उठाएँगे। स्वयं का स्तर गिरता जा रहा हो और दुनियाँ को उठाने की बात आप लोग करते हैं समझ में नहीं आता। ऋषभनाथ एवं भरत चक्रवर्ती इस युग के महान् अवतार माने जाते हैं। वे यहाँ से अपनी आयु पूर्ण करके चले गए। अब हमें उनके सिद्धान्तों को याद करना है। अनादिकाल से विषयों की पुनरावृत्ति हो रही है। एक क्लास में कब तक पड़े रहोगे? आगे बढ़ो- लेकिन मुझे समझ में नहीं आता कि आप लोगों ने एक ही कक्षा में युगों-युगों व्यतीत किए हैं, फिर भी अपने आपको महान् ज्ञानी समझ रहे हैं। दो साल एक कक्षा में कोई विद्यार्थी रह जाता है तो गर्दन बिल्कुल झुक जाती है। बाजार में मुख दिखाने के योग्य नहीं रहता; लेकिन आप लोग एक ही असंयम की कक्षा में रह जाते हैं। चूँकि बहुत भीड़ साथ है इसीलिए आप लोगों को महसूस नहीं होता है। सम्भव है कि आप लोगों ने निर्णय लिया हो कि मैं अकेला थोड़े ही हूँ साथ में और भी तो हैं।

वह वृक्ष इमली का भले ही बूढ़ा हो गया परन्तु उसकी खटाई अभी जवान है। उसको जितनी मात्रा में आप पहले प्रयोग करते थे उससे कम भी कर लो तो भी वह चीज खटाई की मानी जाती है। वह कौन-सा मन है जिसमें तृष्णा पल रही है, वह कौन-सी धारणा है जिसके आगे बड़ों-बड़ों की धारणाएँ भी फेल हो जाती हैं, उपदेश भी फीके हो जाते हैं निष्क्रिय हो जाते हैं, अप्रभावक रह जाते हैं और हमारी वह धारणा पूर्ववत् वैसी की वैसी बनी रहती है। यह मोह का ऐसा प्रभाव है जिसके

कारण हम अनेक प्रकार की वेशभूषा बदलते हुए भी पूर्ववत् ही अपने आपको बनाए रखते हैं। कभी मनुष्य हो जाते, कभी देव हो जाते, कभी छोटे हो जाते, कभी बड़े हो जाते हैं। कुछ सामग्रियों में अन्तर भले ही हो किन्तु मूल में कोई अन्तर नहीं आ पा रहा।

मोह को जीतना ही मनुष्य की सफलता मानी जाती है। युग के आदि में चक्रवर्ती ने इसी काम को किया था और वे धन्य हुए। ऋषभनाथ भगवान् की दिव्यध्वनि को साक्षात् उन्होंने अपने कानों से पान किया था। हम यदि चाहें तो इस दिवाकर का उपयोग कर लें और अपने जीवन को मोड़ दें उस ओर, जिस ओर ऋषभनाथ भगवान् गए, पाण्डव गए हैं, कामदेव गये हैं और बहुत सारे गए हैं जिनके नाम स्मरण से ही अन्धकार पलायन कर जाता है। किन्तु वे ठीक हमसे विपरीत थे इसलिए वे संसार से ऊपर उठे हैं। चाहें तो हम उनके समान बन सकते हैं लेकिन चाह हमारी होगी, राह हमारी नहीं। सांसारिक प्राणी चाह के साथ अपनी ही राह चुन लेता है इसलिए वह भटक जाता है। चाह हमारी हो और राह भगवान् की हो तो मंजिल सहज ही प्राप्त हो जाती है। चाह के साथ-साथ हम अपनी राह बनाने का प्रयास न करें। ऋषभनाथ का जो उपदेश था उसका प्रभाव चक्रवर्ती पर पड़ा। उन्होंने अपने जीवन को अवश्य ही सम्पन्न और पूर्ण बनाने का प्रयास किया। हमें अब 'और' नहीं चाहिए, हमें अब छोर चाहिए। संसार दशा का अन्त चाहिए। मोक्ष का एकमात्र अर्थ यही है कि वह पर्याय जो कि दुख के लिए कारण है उसका अन्त करके हम उस पर्याय को प्राप्त करें जिसके प्राप्त होने पर संसार में पुनः आवागमन नहीं होता।

अहिंसा परमोधर्मः की जय।

❑ ❑ ❑

दर्प का दर्पण

सामने विशाल दर्पण है, वह दर्पण साफ-सुथरा है और उसमें देखा जा रहा है। बार-बार देखा जा रहा है। अपने आपको सजाया जा रहा है। रूप निखर जाय इसकी कोशिश चल रही है। बार-बार कंघी की जा रही है। अपने उन घुंघराले, काले बालों को वह रूप दिया जा रहा है जो प्रत्येक व्यक्ति की आँख का आकर्षण केन्द्र बन जाय। वह अपने अलंकार, अपने आभूषण देखता जा रहा है। बार-बार सजाया जा रहा है। एक आभूषण अच्छा नहीं लगता तो दूसरा आभूषण लगाया जाता है। आभूषण में परिवर्तन, अलंकार में परिवर्तन और आकार-प्रकार में निखार लाने का प्रयास चल रहा है। वह व्यक्ति ऐसा एकाग्र हो गया है। अच्छा लग रहा है। बहुत अच्छा लग रहा है। मन में भाव उठ रहा है और उसी में तृप्ति की अनुभूति हो रही है। इसी बीच उस रूप के साथ एक दूसरा रूप टकराता है और एक रूप है और एक कुरूप है। स्वरूप की ओर दृष्टिपात न होने से कुरूप से अपने को बचा

रहा है। रूप को निखारा जा रहा है। रूप में से जो रस निकलता है उसको चूसना है। वह उस रूप रस का कूप बना हुआ है। कुरूप में रस नहीं है। उसको दूर करना चाहता है। लेकिन करे कैसे? नहीं चाहते हुए भी कुरूप देखने में आ गया। ज्यों ही कुरूप देखने में आ गया त्योंही रंग में भंग हो गया। वह सब किरकिरा हो गया। अब क्या करें कौन आया है? कैसे आया है? कहाँ से आया है? क्यों आया है? कैसा रूप था? कहाँ चला गया? यह सुन्दर शरीर ऐसा कैसे हो गया? एड़ी से लेकर चोटी तक कोढ़ की दुर्गन्ध बहने लगी। जिस शरीर से पहले सुगन्धी बहती थी। जिस रूप को देखने के लिये विश्व तरसता था और स्वयं भी तृप्ति का अनुभव करता था। प्रिय का परिवर्तन हो गया है और वहाँ पर कोढ़ वह रहा है जिसकी ओर कोई भी देखने की इच्छा नहीं करता। और इसी दशा में उसका अवसान हो जाता है। उस कुरूपकर्म का अवसान नहीं हुआ किन्तु जीवन का अवसान हो गया। अभी तो उस कर्म की प्रारम्भिक दशा है। रूप राशि की धनी कुरूपता की गठरी बाँध कर मर जाती है। सर्वप्रथम वह कुत्ती के रूप में जन्म लेती है। काम पुरुषार्थ के फलस्वरूप गर्भवती हो जाती है। सन्तानों की रक्षा के लिये कुत्ती एक स्थान में सुरक्षा ढूँढ़ लेती है और वहाँ पर रहती है और जब बच्चों को जन्म देती है उसी समय किसी के कारण वह स्थान आग की चपेट में आ जाता है। उसी आग में वह कुत्ती अपने बच्चों सहित समाप्त हो जाती है। मरकर वह सूकरी बन जाती है। यही दशा उसकी वहाँ भी हो जाती है। इस प्रकार जन्म-मरण करते-करते अन्त में उस घर में कन्या के रूप में जन्मती है जहाँ पर कोई जाना-आना नहीं चाहता है। जहाँ मछलियों की गन्ध आती है वहाँ पर उसका जन्म हो जाता है। जिस दुर्गन्ध में पूरा परिवार रहता है किन्तु ज्यों ही इस कन्या का जन्म होता है त्यों ही दुर्गन्ध असहनीय हो जाती है अतः परिवार कहता है कि हम इसके साथ नहीं रह सकते। इसका नाम रखा गया दुर्गन्धा या उसको पूती गन्धा कहो। उसको गाँव से बहुत दूर एक स्थान दिया जाता है। जिस स्थान से हवा भी जल्दी न आ सके। दुर्गन्धा नाम सुनते ही लोग नाक को बंद करना चाहते हैं। अकृतपुण्य का अर्थ यही है, कृत पाप जिन्होंने पाप ही पाप किया है और उस पाप के परिपाक मैं उसे यह पर्याय मिली। वह दुर्गन्धा अपना जीवनयापन कर रही थी, पापकर्म को भोग रही थी और वहीं पर एक व्यक्ति को देखा उसने। अरे इनका कैसा जीवन है? ये स्नान नहीं करते हैं। कपड़े भी नहीं पहनते, कोई रूप संवारते नहीं किसी रूप की ओर इनका आकर्षण नहीं। न गन्ध की ओर आकर्षण है, न रूप की ओर आकर्षण है। न खाने की बात, न दिखाने की बात है। भेष तो सामान्य है लेकिन ओज और तेज विशेष है लेकिन रूप नहीं सँवारते हुए भी इनका रूप देखो कैसा है। इस बात पर वह सोचने लगी। सर्दी का समय था। जब दिन अस्त हुआ, रात ज्यों ही चालू हुई तो देखती है कि ये रात में भी ऐसे ही रहते हैं। ऐसे व्यक्तित्व से वह प्रभावित हो गई और चरणों में वन्दना कर निवेदन किया कि आप महान् हैं। मुझे कुछ उपदेश दीजिये। इस प्रकार उस महान् व्यक्तित्व ने उसे

समझाने का प्रयास किया जो एक दिगम्बर साधु था। उस दुर्गन्धा को समझाने का प्रयास किया। दुख की मारी थी अत: एक बार में ही समझती चली गई।

महाराज ने कहा–तीन–चार भव के पहले तू जिस रूप में थी उस रूप और इस रूप की तुलना कर ले। उसको एकदम जातिस्मरण हो जाता है। जो अतीत में थी स्मरण में वे पूर्वभव उभर के आ जाते हैं। एक सूकरी का जन्म, एक कुत्ती का जन्म और एक गधी का। एक जन्म में अप्सरा-स्वरूप नारी दर्पण में मुख देखती हुई दिखती है। दुर्गन्धा आश्चर्यचकित रह गई कि चार भव पूर्व मेरा यह सौन्दर्य था। बाद में ऐसी घृणित पर्यायें। महाराज से पूछती है भगवन् ऐसा परिवर्तन क्यों हुआ? तब महाराज कहते हैं चौथे भव को ध्यान से देख। तू अपने रूपमद में डूबी हुई दर्पण देख रही थी। उसी समय मेरे जैसा नग्न साधु वहाँ से चर्या के लिए निकल रहा था उनका प्रतिबिम्ब दर्पण में पड़ गया। उसे देख तू घृणा से भर गई। उनके प्रति तूने अपशब्द कहे, जिसके परिणामस्वरूप यह तेरी दुर्दशा हुई है।

देखिये वही रूप आज भी उस नारी के सामने है लेकिन मन में घृणाभाव नहीं बल्कि आदर भाव है। आज का रूप स्वरूप की ओर ले जा रहा है। पहले वह रूप कुरूपता की ओर ले जा रहा था। उस समय वही मुद्रा थी जिस समय उसके दर्पण में (Reflected) हुए थे। लेकिन आकर्षण का केन्द्र दर्पण में अपनापन था। वही मुद्रा आज है। आज दर्पण में नहीं किन्तु आज उनके चरणों में/अर्पण में है आकर्षण। यह दुर्गन्धा की पर्याय बहुत अच्छी है। क्योंकि इस पर्याय से सुगन्धी की ओर जाने का एक रास्ता मिल रहा है। दुनियाँ भिखारी इसलिए हो रही है कि भविष्य की चिन्ता है सबको। कई लोग आ करके कहते हैं महाराज हमारा भविष्य क्या होगा? कई लोग आ करके पूछते हैं, महाराज, भारत का भविष्य क्या होगा? महाराज विश्व का क्या होने वाला है? महाराज मेरा आगे क्या होने वाला है? होगा क्या? जैनाचार्यों ने भविष्य के माध्यम से सम्यग्दर्शन का स्रोत नहीं बताया। कल्पना का विषय भविष्य बनता है किन्तु अतीत भविष्य का नहीं। वह प्रकृति में आई हुई एक घटना है। सामने आ जाये तो चौंक जायेंगे। चिन्तन का विषय मिलता है कि ऐसा क्यों हुआ? कारण ढूँढ़िये, इसमें कौन क्या निमित्त है? क्यों पलट गया? इस प्रकार अतीत पर चिन्तन करने से अपने आप ही अपने उपादान के बारे में आपको जानकारी मिलेगी। बन्धुओ! अतीत हमारा क्या रहा? महावीर भगवान् अभी वर्तमान में हैं। उनका अतीत क्या था ऋषभ भगवान् वर्तमान में हैं उनके अतीत में क्या था? यह दुर्गन्धा। इसका अतीत क्या था? वह रूप लावण्य उसका अतीत था। अतीत गर्त नहीं है। वह एक सिलसिला है। परम्परा कहते ही हमारा उपयोग चला जाता है इतिहास की ओर।

(English) में भविष्य के लिए क्रिया पद का प्रयोग किया जाता है तो (Will) लगाया जाता है (Shall) लगाया जाता है। किन्तु बहुत का प्रयोग जब कर लेते हैं, तो (Perfect) पूर्णता

का द्योतक हो जाता है। और पूर्णता की ओर हमारा उपयोग जाता है तो निश्चत रूप से रहस्य खुलता चला जाता है। हमें आनन्द चाहिए लेकिन सुख मिलेगा (Perfect) में। सुख का स्रोत क्या है हमें मालूम होगा। किसका स्रोत क्या है, भविष्य नहीं बता सकता। वर्तमान बता सकता है, जब हम होश-हवास में हों। जिस समय बहुत अच्छा रूप था, जो चमड़ी का था, उस रूप की मदहोशी में स्वरूप की ओर जिनकी गति है ऐसे स्वरूपनिष्ठ को देखकर उसे घृणा का भाव जागृत हुआ। निन्दा के भाव आ गये। ऐसा मन में आया कि ये मेरा रूप लावण्य, इसके सामने ये क्या नंग-धड़ंग रूप आ गया। इस प्रकार का परिणाम होते ही कर्म बिगड़ गया। रहस्य खुलता चला गया। मुनि महाराज ने कहा तुम अपने स्वरूप को देखो, यह रूप तो कई बार मिला और कई बार चला गया, ये रूप तुम्हारा नहीं, ये एकमात्र पर्याय है। यह स्थाई नहीं, पुण्य पाप फल माहिं हरख विलखौ मत भाई। यह पुद्गल परजाय उपजि विनसै थिर थाई। आगे क्या पर्याय मिलेगी इसकी कोई चिन्ता मत करो। आशा मत करो। पहले क्या थी, यह देख लो और यह ध्यान रखो, पहले की अपेक्षा हम विकास की ओर हैं या नहीं। अतीत को देखेंगे, वर्तमान नजर आयेगा। देखते चले जाइये आप, अतीत के माध्यम से तुलना कीजिये। परम्परा अनन्त है। इस परम्परा का अन्त हो सकता है या नहीं? हो सकता है। कैसे होगा? स्वरूपनिष्ठ बनो रूपनिष्ठ नहीं। मुनि महाराज की ये बातें अमृत तुल्य प्रतीत हुईं तो उस दुर्गन्धा ने व्रत ले लिये। उसका अब भविष्य देख लीजिये जब उसने श्राविका के व्रत लिये। सम्भवतः आर्यिका के व्रत लिये थे। वहाँ से उस पर्याय को पूर्ण करके उस दुर्गन्धा ने मरण कर रुक्मिणी के रूप में जन्म लिया जो कृष्ण की पटरानी बनी। व्रतों का प्रभाव देख लीजिये। क्या रूप था, बीच में क्या हुआ, अब क्या होगा, जिसके पेट से प्रद्युम्न का जन्म होता है। जो मोक्षगामी था। पतन हुआ तो क्यों हुआ था? उसकी पर्याय दृष्टि हो गयी थी अतः वह पर्यायों में उलझती चली गयी। फिसलती चली गयी। उसका परिणाम यह निकला।

हर एक का इतिहास ऐसा ही कुछ है। इससे हम अपने आपको अलग नहीं कर सकते। ऐसा मानकर अपने जीवन को धर्ममय बनाओ, सुख-दुख में समता रखो। ज्ञानी न सुख से आकृष्ट होता है न कभी दुख से दूर भागना चाहता है। उन्हें केवल जानता रहता है। वह दुर्गन्धा सोचती है घर वालों ने मुझे निकाला, बहुत बड़ा उपकार किया। यदि घर में रखते तो घर में घुल मिल जाती। तब इस स्वरूप का कभी बोध ही नहीं होता। जब जागे तब सबेरा। लहर उठती है। हवा का निमित्त पाकर सरोवर में उठती और उसी सरोवर में समाती भी चली जाती है। लगता है रहस्य है। लेकिन यथार्थ का पता चलने पर ज्ञात होता है कि यह इसका स्वभाव है। इसी प्रकार अपने द्रव्य में भी ऐसी पर्यायें निकलती हैं। आखिर ये क्या हैं? सोचना प्रारम्भ कर दीजिये। पर्यायें उत्पन्न होती हैं और समा जाती हैं तथा उस पर्याय को उत्पन्न करने वाले की ओर भी दृष्टिपात करिये तो अपने आप ही पता चल

जायेगा कि वस्तुतः क्या रहस्य है। बार-बार समझायें तो भी समझने वाली बात नहीं है। समझाने की बात भी नहीं है। जब भी आप चाहेंगे तब ही यह रहस्य खुल सकता है। नहीं तो हमेशा यह रहस्य, रहस्य ही बना रहेगा। क्योंकि प्रश्न आपका है तो आनन्द भी आपको आने वाला है। पक्ष बनाकर मैं उसका उत्तर देने का प्रयास भी कर लूँ तो भी आनन्द आने वाला नहीं है। दुर्गन्धा का रहस्य खुल गया। जिस निमित्त को देखकर घृणा का भाव आया था आज उसी निमित्त के प्रति आदर भाव आ रहा है। दुर्गन्धा ने मुनिराज के उपदेश को हृदय में धारण किया तथा अणुव्रतों को धारण किया और समतापूर्वक जीवनयापन करने लगी। मिथ्या परम्परा को छोड़कर सम्यक् परम्परा में प्रवेश पा लिया। परम्परा एक महत्त्वपूर्ण शब्द है। परम्परा में दो शब्द हैं। शब्द की व्याख्या करके मैं समाप्त कर रहा हूँ। यह भी एक रविवार की परम्परा है। 'परम्' का अर्थ होता है संस्कृत में उत्कृष्ट 'परा' यानि एक पराकोटि। अंतिम स्टेज। उसका नाम भी उत्कृष्ट है। जहाँ पर डबल उत्कृष्ट है उसका नाम परम्परा है। तो इस परम्परा में आप नहाते चले जाओ। रविवारीय परम्परा यहाँ पर चालू हुई है। यहाँ पर कितने रविवार निकल गये यह तो परम्परा की बात है। क्योंकि महाराज की यह परम्परा है। रविवार के दिन प्रवचन होता है और रविवार को आना आपकी परम्परा है। आपको जाना है। मुझे भी यहाँ से विहार करना है। आना और जाना यह परम्परा है। परम्परा में दुनियाँ डूबी हुई है। यह भी ध्यान रखना, कोई भी व्यक्ति इस परम्परा को तोड़ना नहीं चाहता और इस परम्परा से हटकर हम काम करेंगे यह भी एक परम्परा है। हे परम्परा, तुम्हारी शरण मैं चाहता हूँ किन्तु कौन-सी परम्परा? जो उत्कृष्ट परम्परा है। उस परम्परा में हमें जाना चाहिए लेकिन परम्परा को छोड़ना नहीं चाहिए। दो परम्परायें हैं-एक नई परम्परा और एक पुरानी परम्परा। एक नई पीढ़ी और एक पुरानी पीढ़ी, कौन-सी पीढ़ी को आप चाहते हो? हम तो (Science) की पीढ़ी को चाहते हैं। इसके-लिए (Silence) होना अनिवार्य है। लेकिन (Science) को जानना भी एक परम्परा है। विज्ञान की परम्परा भी अपनी परम्परा है। और अज्ञान की भी परम्परा है। दोनों परम्पराओं में कहाँ तक मेल है। इसको जानकर हमको किसी एक परम्परा में चलना है। उत्कर्षता की ओर जाना ही सही-सही परम्परा मानी जाती है। और जिस परम्परा की शरण में हमारा इतिहास हमेशा-हमेशा दुखपूर्ण रहा उस परम्परा से हमको हटना है। अब हटना और नहीं हटना, ये हमारे ऊपर निर्भर है। इसके लिये कोई भी परम्परा दोषी नहीं है। क्योंकि ज्ञान का जब तक हमने प्रयोग नहीं किया तब तक हम परम्परा के ऊपर दोषारोपण करते रहे, किन्तु वस्तुतः परम्परा कोई भी दोषारोपण के योग्य नहीं, क्योंकि एक अज्ञान की धारा और दूसरी ज्ञान की धारा है। दोनों के लिये परम्परा शब्द लगे हुए हैं। बन्धुओ! मैं कहना चाहता हूँ-परम्परा का कोई अन्त नहीं होता है। लेकिन परम्परा का परिवर्तन अवश्य हो जाता है। यह परिवर्तन ही आज के वक्तव्य का आशय है। उस दुर्गन्धीपने से और सुगन्धीपने से जो कुछ भी परम्परा चल रही थी उससे हटकर ज्ञान जागृत

हुआ। दुर्गन्धा की परम्परा बदलकर सम्यक् हो गई और आगे उसका अपने आप में भविष्य उज्ज्वल होता चला गया। जो व्यक्ति अपने भविष्य को उन्नत करना चाहता है उसे भी अपनी मिथ्या परम्परा को छोड़कर सम्यक् परम्परा की शरण में आना चाहिए।

॥ अहिंसा परमोधर्मः॥

❑ ❑ ❑

प्रज्ञा चक्षु

यहाँ पर सब अपने-अपने कर्त्तव्य करते हैं और कर्त्तव्य के फलस्वरूप उसके फल को प्राप्त करते हैं। कर्त्तव्य से विमुख होना फल से विमुख होना है। कर्त्तव्य अपना होता है, अपने लिये होता है किन्तु उद्धार के लिये बाहर के पदार्थ को भी निमित्त बनाया जा सकता है। कुछ ऐसे साधक होते हैं जो अपनी आत्मिक साधना अपने आपके माध्यम से करते हैं किन्तु उस समय दूसरा कोई साधक उस साधक को निमित्त बनाकर अपना उद्धार कर लेता है। दूसरी बात यह कहना चाहूँगा कि कुछ साधक ऐसे होते हैं जो दूसरे का निमित्त लेकर अपने आपकी साधना में लीन हो जाते हैं।

आप देख लीजिये, आपको भी अपनी साधना पूर्ण करनी है। आपको कहाँ जाना है, ये मुझे ज्ञात नहीं, आपको ज्ञात करना है। हाँ, चलने से पूर्व आप पूछताछ कर सकते हैं कि मेरा भला किसमें है। बहुत लम्बी-चौड़ी राह को पार करके आप आये हैं। बल्कि यूँ कहना चाहिए वह राह ही नहीं थी जहाँ से आप आये हैं। भटकते हुए आये हैं, किन्तु अब भटकन के बिना सीधा जाना है, जहाँ से पुनः लौटकर नहीं आना है। आपको यह निश्चत करना है कि हमें वहाँ तक जाना है या नहीं? सुख-शान्ति प्राप्त करने का उद्देश्य रखते हैं लेकिन सुख का चुनाव, सुख की परिभाषा ज्ञात नहीं है। इसीलिए सुख को कई ढंगों से परिभाषित किया जाता है। उन्हीं में से एक को आप लोगों ने भी चुना होगा। ध्यान रखो, एक बार प्राप्त होने के बाद पुनः न छूटे उसी का नाम सुख होता है। एक बार धारा बहती हुई सागर में मिल जाये तो पुनः वहाँ से बाहर नहीं आती। नदी, पहाड़ की चोटी से निकलकर सागर में जाती है। नदी कभी भी लौटकर पहाड़ की चोटी की ओर नहीं जाती। इसी प्रकार हमें उस सागर तक जाना है। सागर तक जाने के लिये नदी को दो तटों के बीच से बहना पड़ता है। सरिता के पास यदि तट न हों तो सरिता सागर का मुख नहीं देख सकती। आपको अपने तटों को बाँधकर उसके बीच में से निकलना है। अन्यथा आपकी वह मंजिल आपके पास नहीं आयेगी। आप को वहाँ तक जाना है तो जाने के लिये कटिबद्ध होना है कि आपके तट बहुत अच्छी तरह से मजबूत बने रहें।

संसार में प्राणी यात्रा बहुत जल्दी चालू कर देता है किन्तु बहुत जल्दी वह खो भी देता है। पूर्ण नहीं कर पाया आज तक। इस संसारी प्राणी ने उस यात्रा को पूर्ण करने के लिये मजबूती के

साथ, उस साधना पथ को नहीं अपनाया जिसके तट मजबूत हैं। गर्भ में आप कई बार आ चुके हैं। जन्म आपका कई बार हो चुका है और कई तपस्याएँ भी आपने की हैं। नहीं की हैं, ऐसी बात नहीं है और आज ज्ञान का युग है, विज्ञान का युग है। आज उस विज्ञान का एक प्रकार से विकास देखने में आ रहा है किन्तु अन्तिम कल्याण, जिसको बोलते हैं 'निर्वाण' यह आज तक नहीं हुआ है। दुख मिटा नहीं और सुख हासिल नहीं हो सका। उसका मूल कारण यही है कि हमारा चुनाव गलत है। वह चुनाव क्या है? हमें बुद्धि का प्रयोग करना है, विवेक जागृत करना है। उस चीज को प्राप्त करने के लिये बहुत कसरत की आवश्यकता नहीं और शारीरिक शक्ति की भी विशेष आवश्यकता नहीं है। किन्तु एकमात्र यह निर्णय करना है कि आज तक जिन-जिन साधनों के द्वारा हमें सुख प्राप्त नहीं हुआ उनके द्वारा तीन काल में सुख मिलने वाला भी नहीं है। किन्तु सोचना यह है कि कौन-सा ऐसा साधन है जिसके द्वारा शाश्वत सुख उपलब्ध हो सकता है। आँख के द्वारा, रसना के द्वारा और नासिका के द्वारा उपलब्ध नहीं हो सकता। किन्तु वह केवल विवेक के नेत्रों से ही देखा जा सकता है, जाना जा सकता है। जिन्होंने इस नेत्र के माध्यम से उसको उपलब्ध किया उनके पैर धोकर आप निर्देश प्राप्त कर लें। सुख-शान्ति कहाँ है?

जग में सुख है ही नहीं।
खुद में सुख की खान॥
निज नाभि में गन्ध है।
मृग भटकत बिन ज्ञान॥

यह निश्चत है कि गन्ध के लिये मृग भटकता चला जाता है, भटकता चला जाता है। गन्ध आ रही है, गन्ध का स्रोत कहाँ है? यह पता नहीं है और वह भटकना प्रारम्भ कर देता है। भटकता-भटकता वह रुक जाता है, गिर जाता है लेकिन फिर भी उसे यह ज्ञान नहीं है कि गन्ध कहाँ से आ रही है? गंध तो उसकी नाभि में से आ रही है। आप लोग सुख चाह रहे हैं, आप लोग भी दुनियाँ में सुख ढूँढ़ रहे हैं लेकिन सुख तो आपकी आत्मा में है, यह आपको ज्ञान नहीं है। इसका ज्ञान न होने से हम लोगों ने अनन्तकाल को यों ही खो दिया। ऐसा खो दिया जिसका अब हमें पश्चाताप ही एकमात्र मिलने वाला है। अनन्तकाल व्यतीत हो गया किन्तु हमें इस सुख का एक समय के लिये भी अनुभव नहीं हुआ। जिन्हें हुआ, उनका मार्गदर्शन हमने स्वीकार किया नहीं।

सूर्य प्रथम घड़ी में उगता है और अपनी यात्रा प्रारम्भ कर देता है। आसमान में लाखों मीलों ऊपर वह सूर्य की यात्रा प्रारम्भ है और लगता है जैसे आपके आँगन में आ रहा है। रुकने वाला है, ऐसा लगता है। उसकी ओर देखेंगे तो रुका हुआ लगता है। किन्तु बाद में ऐसा लगता है पाँच मिनट के उपरान्त जैसे वह खिसक गया है क्योंकि छाया दिखती है। छाया जहाँ पहले थी वह वहाँ से अन्यत्र

स्थानांतरित हो चुकी है। वह सूर्य रुकता हुआ-सा लगता है लेकिन रुकता नहीं। हमें बुलाता हुआ-सा लगता है लेकिन बुलाता नहीं। मात्र ऐसा लगता है मानो हमारे लिये अपने किरणमयी हाथों को छोड़कर कह रहा हो कि तुम भी आ जाओ मेरे साथ। वह ऐसा कहता सा लगता है लेकिन कहता नहीं। जब सूर्य का उदय हो गया, तो वह तीन लोक को प्रकाशित करता है यह उसका महान् उपकार है। आप सोये हैं अपने घर में। सूर्य का उठना हो गया, आपका उठना नहीं हुआ क्योंकि किसी ने उठाया ही नहीं आपको। सूर्य ऊपर आ गया फिर भी आपकी नींद नहीं टूटी। सूर्य आने का प्रयास कर रहा है। आया है आपके पास, लेकिन अपनी यात्रा को रोकते हुए नहीं। आपके घर के लिए नहीं आया किन्तु आपके घर के पास से घर के ऊपर से गुजर रहा है वह। आपने अपने दरवाजे बन्द कर रखे हैं। खिड़कियाँ भी बन्द हैं। कोई भी प्रवेश नहीं कर सकता हमारे घर के भीतर क्योंकि घर का निर्माण हमने किया है। अब उठाये तो कौन उठाये? फिर सूर्य का प्रकाश किसी छिद्र के मुँह से भीतर भी आ रहा है। फिर भी आप उठते नहीं। रजाई ऊपर लेकर सो जाते हैं। फिर भी उसका प्रयास है किन्तु रुकता हुआ नहीं, जाता हुआ आपको उठा रहा है। कैसे उठा रहा है? सूर्य के पास दो साधन हैं उठाने के-एक प्रकाश-किरण, दूसरा ताप-उष्णता। किरणों के माध्यम से उसने उठाना चाहा किन्तु आपने आँख बन्द रखी। दूसरे साधन के माध्यम से उठाना चाहा। हाथों-हाथ आप में ऊष्मा आयेगी। रात में सूर्य का उदय नहीं होने के कारण ऊष्मा का अभाव रहता है किन्तु दिन ज्यों ही उदय हो जाता है त्यों ही, विज्ञान कहता है कि अपने शरीर में एक प्रकार से उष्णता का प्रवाह प्रारम्भ हो जाता है। निश्चत है, उस उष्णता के कारण ही आपमें पाचन-शक्ति बढ़ती चली जाती है। इसी प्रकार सूर्य आपके पास ऊष्मा छोड़ देता है और उसके माध्यम से आपको गर्मी लगती है। गर्मी लगने से आप क्या करते हैं? पहले रजाई को हटा देते हैं। जहाँ हटा दिया वहीं किरणों के माध्यम से सूर्य के दर्शन हो जाते हैं। जब तक रजाई नहीं हटाओगे तब तक सूर्य का दर्शन तो नहीं होगा किन्तु ऊष्मा की अनुभूति तो अवश्य होगी आपको।

जब कभी भी इस विश्व में महान् आत्मा ने जन्म लिया और अपनी यात्रा प्रारम्भ की उस समय उन्होंने यही कार्य किया। यह कार्य उनका अनिवार्य कार्य नहीं है। दूसरे के लिए उनका कार्य नहीं होता; किन्तु दूसरा अपना कार्य कर लेता है तो बहुत अच्छी बात है। उसके लिए धन्यवाद देने के लिये भी वह नहीं आता। आप धन्यवाद दे दो तो भी वह सुनने के लिए तैयार नहीं होता क्योंकि आपका कार्य हो गया, बहुत अच्छी बात है। मैं करना नहीं चाहता था लेकिन हो गया, आप सावधान हो गये बहुत अच्छी बात है। ऐसे-ऐसे अनन्त सूर्य हमारे सामने से गुजर चुके हैं किन्तु हम लोगों की आँख नहीं खुली। हम लोगों ने बुद्धि का प्रयोग नहीं किया। ऐसी महान् विभूतियों का उपयोग नहीं किया। आज हम अपने आप को पश्चाताप की गर्त में देखते हैं और भीतर आत्मा में ऐसी पीड़ा होती

है कि कितना अज्ञानरूपी अन्धकार है जो कि सूर्य सामने आ गया तो भी हमने आँखों को खोल कर देखा तक नहीं। ऐसे तेजपुञ्ज व्यक्तित्व आये फिर भी उनका महत्त्व हमने नहीं समझा। और आज केवल छोटे से दीपक के लिए हम लोग सोच रहे हैं। हमारे पास दीपक है, निश्चत बात है। लेकिन दीपक कब काम करता है? आप लोग सोचो, विचार करो। दिन में दीपक काम नहीं करता। किन्तु दिवाकर का जब अभाव होता है उस समय दीपक काम कर जाता है। रात में दीपक का मूल्य समझ में आ जाता है। आज वे चले गये, निश्चत बात है। लेकिन एक दीपक का रूप हमारे सामने विद्यमान है। इसके माध्यम से अतीत के खण्ड में जितनी आत्मायें चली गई उनका मूल्यांकन कर सकते हैं, करते हैं और एक बार अपनी आत्मा को, अपने कलुषित भावों को धिक्कारते हैं। कितनी हम अनर्थ की क्रियायें और अनर्थ के कार्य कर चुके, इनका लेखा-जोखा लगा सकते हैं।

संसार है तो मोक्ष है। भोग है तो योग है। सुख है तो दुख है, अशान्ति भी है। ये दोनों धारायें अनादिकाल से चल रही हैं। उन धाराओं में से एक धारा सांसारिक प्राणी के लिए प्रमुख रही है, जो भोग धारा है, संसार की धारा है। सुख-शान्ति चाहते हुए भी हम अपने आपको इस विषाक्त वातावरण से ऊपर नहीं उठा पाये इन्हीं विषयों में सुख ढूँढ़ रहे हैं। अब यह सोचना है कि हमें विषयों की गन्ध तो बहुत बार आ गई। वह सुगन्धी कहाँ से आती है उसे पहचानना है। ''निज नाभि में गन्ध है, मृग भटकत है बिन ज्ञान'' पर की तरफ दौड़ने वाला ज्ञान, ज्ञान नहीं है। आप टॉर्च के द्वारा दूसरे को देख सकते हैं। टॉर्च के द्वारा दूसरे आपको देख सकते हैं। दूसरे पदार्थ के ऊपर टॉर्च का प्रभाव पड़ सकता है। ध्यान रखें टॉर्च को आप अपने ऊपर डाले तो भी उस टॉर्च के द्वारा आपको अपने आपका ज्ञान नहीं होगा। होगा तो भी अपने मुख का नहीं होगा, ये ध्यान रखें। हाथ का हो सकता है, पैर का हो सकता है, पेट का हो सकता है और किसी का हो सकता है। किन्तु उस टॉर्च को आप मुख के ऊपर भी छोड़ दो तो टॉर्च तो दिख सकती है लेकिन अपना मुख नहीं दिख सकता। इस विज्ञान से क्या मतलब है? जिसके द्वारा वह दूसरे को दिखा सकता है लेकिन स्वयं देखने में नहीं आ सकता उस विज्ञान से कोई मतलब नहीं। उस विज्ञान की यहाँ बात कही जा रही है जो अपने आपको दिखा देता है। जैनदर्शन इसी विज्ञान की बात करता है। आँख के द्वारा दुनियाँ को देखना सरल है किन्तु आँख के द्वारा आँख को देखना असंभव है। आप अपनी आँख दूसरे को दिखाते हो लेकिन आँख को जरा सा कह दो कि हे आँख! तू दूसरे को ही देखती है कभी अपने आपको तो देख ले। नहीं देख पायेगी क्योंकि उसके पास वह हिम्मत नहीं, शक्ति नहीं, क्षमता नहीं, योग्यता नहीं। धन्य हैं वे, जिन्होंने अपने ऐसे प्रज्ञा चक्षु को जगा लिया। ऐसे दीपक को जला लिया कि संसार के सारे तूफान आ जायें तो भी वह उस तूफान से कभी भी बुझने वाला नहीं है। आज के दीपक ऐसे हैं जो बुझ जाते हैं। बुझे हुए ही हैं।

कभी सोचा है आप लोगों ने पंचकल्याणक महोत्सव क्या होता है? उद्धार की बात जिसमें निहित है, वह पंचकल्याणक होता है। उसमें मेरा कहना है कि पंचों का भी कल्याण होना चाहिए। प्रायः लोग यह कहते हैं कि पंचकल्याण होता है। पंचों का कल्याण नहीं होता। पंचों का कल्याण नहीं होता क्योंकि प्रपंचों में पड़े रहते हैं इसे भली-भाँति समझने पर प्रपंचों को छोड़ने पर कल्याण हो सकता है। इन पंचकल्याणकों से शिक्षा लेनी चाहिए। ऐसा विचार आना चाहिए कि वह गर्भ भी धन्य है, वह जन्म भी धन्य है, वह तप भी धन्य है। वह ज्ञान तो धन्य है ही किन्तु वह उनका मरण भी धन्य है। इन आत्माओं का मरण तो होता ही नहीं, शरीर का मरण हो जाता है और आत्मा को तो शरीरातीत अवस्था प्राप्त हो जाती है। वस्तुतः 'निर्वाण' का अर्थ ही सही मायने में जन्म माना जाता है। आज तक यह बन्धन में पड़ा हुआ है, संसारी प्राणी जेल में पड़ा हुआ है। जेल को जेल यह समझ नहीं पा रहा है। जेल में रहते हैं लेकिन जेल क्या वस्तु है यह ज्ञात नहीं है उसे। यहाँ रह रहे हैं। रहते-रहते ऐसा हो गया कि मानो यही स्थाई घर हो। शरीररूपी जेल को ही घर मान रहा है अतः यह शरीर न छूट जावे इसकी ही चिन्ता करता रहता है। भीतरी आत्मा की बात कोई पूछना नहीं चाहता, जो वास्तविक घर है। अपनी आत्मा की बात यदि कोई बताता है तो सुनते नहीं और सुन भी लेते हैं तो एक कान से सुनकर दूसरे कान से छोड़ देते हैं। उसके ऊपर अमल करने की चिन्ता किसको है? किसी को भी नहीं। बहुत समय निकल चुका हमारे जीवन का। वह आत्मतत्त्व महत्त्वपूर्ण नहीं रहा है हमारे सामने। केवल इधर-उधर की बातों में हमारा समय, जीवन निकल जाता है। आत्मा का उद्धार किसमें है? कैसे होता है, यह बात बहुत कम हम समझते हैं और समझने की चेष्टा भी बहुत कम करते हैं। नीति-न्याय का संचार हो, भारतवर्ष में ही नहीं किन्तु सारे विश्व में, किन्तु, इस ओर दृष्टि किसी की भी नहीं जा रही है। आज करोड़ों रुपये खर्च हो जाते हैं, होते रहेंगे यह निश्चत बात है। लेकिन जैनधर्म की महिमा क्या है? वस्तुतः जैनदर्शन क्या है? इसकी सर्वोपयोगिता क्या है? इसके बारे में बहुत कम लोग सोच रहे हैं। सोचने के लिये कह भी दिया जाता है तो कहते हैं कि हाँ महाराज, सोचते हैं, ऐसा कहकर चले जाते हैं, लेकिन सोचते कम और कहते ज्यादा हैं। इससे जैनधर्म की प्रभावना होने वाली नहीं है। जैन धर्म की जो सर्वोपयोगिता है वह समझनी है। यह समय आया है जब आपको उसे विश्व के कोने-कोने तक ले जाना है।

हिंसा करना महान् पाप है, झूठ बोलना महान् पाप है, चोरी करना भी महान् पाप है, कुशील भी महान् पाप है, लेकिन किसी ने भी आज तक परिग्रह को पाप समझा ही नहीं। परिग्रह का अर्थ क्या होता है? परिग्रह का अर्थ होता है आत्मा की परतन्त्रता जिसके ऊपर आधारित होती है उसका नाम परिग्रह है। आत्मा जिसके द्वारा अपने स्वतन्त्र रास्ते को छोड़कर के भटकाव में पड़ जाता है उसका नाम परिग्रह है। यह मीठा जहर का काम करता है। लेकिन त्याग के माध्यम से रास्ता खुल

जाता है। आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने अपने 'प्रवचनसार' जैसे दिव्य ग्रन्थ में यह लिखा है कि इस परिग्रह से मोह छूटेगा तभी यह संसारी प्राणी आत्मा के वैभव के बारे में पहचान सकेगा/जान सकेगा। सबसे महान् पाप तो यही माना जाता है 'परिग्रह' जिसके माध्यम से आत्मा की दिव्य ज्योति मिट जाती है।

केवलज्ञानरूपी शक्ति आत्मा की जैसे कुंठित हो गई, समाप्त जैसी हो गई है। ध्यान रखो पुद्‌गल कर्म के कारण। यह पुद्‌गल क्या है? वस्तुतः परिग्रह है। एक भीतरी परिग्रह माना जाता है वह केवल ज्ञानावरण कर्म, जिसके आवरण से आत्मा का दिव्यज्ञान भी समाप्त हुआ है, दिव्य प्रकाश समाप्त हुआ है और अन्धकार चारों ओर फैला है। उस अन्धकारमय जीवन के सामने कोई भी व्यक्ति जाज्वल्यमान तेज देख नहीं सकता; क्योंकि अन्धकार के पास में वह आँखें हैं ही नहीं। अन्धकार हमेशा काला दिखता है। देखने वालों को वह काला ही परिचय में आता है उसके पास वह धोलापना/धवलपन है ही नहीं। परिग्रह महान् पाप माना जाता है बन्धुओ! धनादिक परिग्रह, उसके बन्ध के लिए मुख्य कारण होता है। केवल ज्ञानावरण कर्म का बन्ध तब तक होता रहता है जब तक आपके पास मोह उदय में रहता है और मोह का दूसरा नाम मूर्च्छा परिग्रह है, ऐसा कहा गया है। उसकी आप रक्षा करोगे तो केवलज्ञान प्रकट नहीं हो पायेगा और यदि केवलज्ञान की उत्पत्ति चाहते हो तो मोह का त्याग बताया गया है। उसके लिये एक स्थान पर लिखा है कि आचार्यों को, सन्तों को, श्रमणों को अपना आत्म-कल्याण करते-करते ऐसी देशना देनी चाहिए जिसके द्वारा समाज का जो अन्धकार है वह मिट जाये। उपदेश में यही कहा जाता है कि जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करो तो निश्चत रूप से यह अन्धकार मिट सकता है। जिनेन्द्रदेव को पहचानना अनिवार्य है।

हमारे भगवान् कैसे होते हैं? हमारे भगवान् के पास तिलतुष मात्र भी परिग्रह नहीं होता। वीतरागता का उपदेश देने के लिये वे खड़े हो जाते हैं लेकिन राग में डूबे हुए व्यक्ति को उनका उपदेश हजम नहीं हो सकता। किसी भी प्रकार से इन रागियों को वीतरागता की ओर आकर्षित करना, यह अपेक्षित है। आपका मोह छूट जाये। मोह मजबूत नहीं हो, मोह टूट जाये। इस अपेक्षा से यह दान, यह त्याग, इसका उपदेश दिया गया। हाँ, ये ध्यान रखें कि अगर बहुत परिग्रह बढ़ाते जायें और थोड़ा-सा निकालें तो इससे कोई मतलब सिद्ध होने वाला नहीं है। मतलब तब सिद्ध होगा जब आय के अनुपात में दान की क्रिया बढ़ जाये तो यह मूर्च्छा घट सकती है।

जहाँ धन की आवश्यकता है वहाँ धन को दान में लगाना चाहिए। जहाँ तन की आवश्यकता है तो तन को लगा देना चाहिए। यदि वचन की आवश्यकता है तो वचन को लगा देना चाहिए और यदि मन की आवश्यकता है तो मन को लगा देना चाहिए।

इन्द्र और कुबेर सोचते हैं कि हम कब इस वैभव से हाथ धोकर नीचे चले जायें मनुष्य गति

को प्राप्त कर लें और आप क्या सोचते हैं? कि हम यहाँ से जल्दी-जल्दी मनुष्य से ऊपर कैसे चले जायें? स्वर्गीय वैभव को प्राप्त करने की इच्छा रहती है, यह गलत बात है। धर्म के रहस्य को समझने वाला व्यक्ति ही इसको समझ सकता है कि वस्तुतः धन का मार्ग, मार्ग नहीं है। धन के त्याग का नाम ही धर्म है। जिनके राग का त्याग होता है उनके लिये धर्म का उपदेश सुनने की पात्रता प्राप्त हो जाती है। मोह के कारण संग्रह कर लेता है। जब ज्ञान हो जाता है तो उसको खोल देता है। खोल क्या देता है, उसको पीछे छोड़ देता है और चला जाता है; क्योंकि यह मेरे लिये बाधक तत्त्व है। यह राग आग के समान है, ऐसा सन्तों का कहना है। यह राग विष के समान है, ऐसा सन्तों का कहना है। यह भारत की धर्म प्रणाली एक ऐसी प्रणाली है जो आगे बढ़ना चाहती है, पीछे हटना नहीं चाहती। और पीछे जो रह गया उसकी सुरक्षा की फिक्र नहीं करती। यह धन की फिक्र, चिन्ता आप लोगों को सताये चली जा रही है। धन के कारण ही धर्म छूटा हुआ है। हमारे भगवान् जो प्रतीक के रूप में रहते हैं वे कैसे है? मालूम है आप लोगों को कि वे वैभव के ऊपर बैठते हैं और आपके ऊपर वैभव बैठता है। आपमें और जिन के जीवन में यही अन्तर है। यह वैभव आप अपने सिर पर लाद लेते हैं और स्वयं को भाग्यशाली समझते हैं और हमारे भगवान् वैभव को नीचे रख देते हैं। कभी छूते भी नहीं। वैभव से बिल्कुल दूर रहते हैं। मोह नहीं है, मोह नहीं है तो भय नहीं है, भय नहीं है तो परिग्रह नहीं है और परिग्रह नहीं है तो पूर्ण स्वतंत्रता है। आप बँधे हुए हो और लोभी हो अतः परतन्त्र हो। चाहते हैं सुख लेकिन सुख का साधन क्या है यह ज्ञात नहीं है। कुन्दकुन्द भगवान् ने यही कहा है कि इन गृहस्थों को, इस समाज को दान पूजा का उपदेश दो।

दान की आवश्यकता है लेकिन दान वही माना जाता है जो आदान की आकांक्षा से दूर रहता है। तीर्थंकर एवं साधु सारी दुनियाँ को सन्मार्ग दिखाते हैं लेकिन फल के रूप में कुछ माँगते नहीं। कोई देना भी चाहता है तो लेते नहीं। फिर भी पटक देता है वह, तो भी उसे छूते नहीं। उस तरफ देखते नहीं। अर्थात् दानी आदान की आकांक्षा नहीं करता। निकांक्षित त्याग होना चाहिए। दान, वह दान जो कभी भी कहता नहीं कि मैंने दान दिया है। दान कहाँ दिया? मान लीजिये हमने कुछ खा लिया। तीन-चार ग्रास पेट में चले गये। सामने थाली भरी हुई है। हाथ में ग्रास है, मुँह में ग्रास चबाया जा रहा है। ज्ञात हो गया इस भोजन में अन्न में विष है। उस समय आप क्या करेंगे? कोई बात नहीं इस बार भोजन तो बहुत दिनों के बाद मिला है। कल से नहीं खायेंगे। अभी तो खा लेने दो। कहेंगे क्या आप? नहीं, जब तक अज्ञात था तब तक वह थाली थी और बहुत मिष्ठान्न था और सब कुछ था और डकार ले रहे थे लेकिन ज्यों ही विष है, यह सुनने में आया त्यों ही उस थाली को और हाथ में जो था उसको फेंक देते हो और मुँह में जो है उसको निगल लिया? नहीं, उसको थूक देते हो और जल्दी-जल्दी चलो, डॉक्टर को फोन करो। जल्दी और भागते हुए चले जाओगे। जल्दी करो-जल्दी

करो, जितना चाहो उतना पैसा ले लो डॉक्टर साहब। लेकिन क्या हुआ? बताओ तो सही। विष खाने में आ गया। कैसे मालूम पड़ा? ऐसे मालूम पड़ा। कितने ग्रास खा लिये। ३-४ ग्रास खा लिये। आपने विष खा लिया है। उल्टी की सोच रहा हूँ लेकिन उल्टी नहीं हो पा रही है। डॉक्टर साहब उल्टी करा सकते हो तो जल्दी उल्टी कराओ। डॉक्टर साहब कहते हैं उल्टी करा तो दूँ लेकिन विष तो फैल-गया है खून के अन्दर। डॉक्टर साहब आपके बस में जो कुछ हो जल्दी-जल्दी कर लो। ऐसा कोई इन्जेक्शन, कोई टेबलेट निकाल कर दे दो ताकि हमारे प्राण बच बायें। डॉक्टर पूरा पुरुषार्थ करता है, वह निकाल देता है आपके विष को और आप उसके चरण-स्पर्श कर लेते हैं।

इसी प्रकार मोक्षमार्ग में हमारे विष को विषाक्त वातावरण को निकालने वाले वे हमारे गुरु हैं हमारे कुन्दकुन्द है, हमारे जिन हैं , भगवान् हैं जिनके दर्शन मात्र से यह अनंतकालीन व्याप्त हुआ विष भी समाप्त हो जाता है। अमृत के खोज की कोई आवश्यकता नहीं है बन्धुओ, विष से बचो। निश्चत रूप से अमृत मिलेगा। अमृत कहीं दूर नहीं है। विष खाते चले जा रहे हो आप। उस विष से बचाने वाला जिनधर्म है। जिन्होंने अपने गृहस्थाश्रम में रहकर भी इस प्रकार की कलुषता से बचने के लिए प्रयास किया, जिनधर्म की प्रभावना के लिये यथाशक्ति अपने समय पर जहाँ जैसा चाहिए आवश्यकता हो, उसे लगाकर व्यक्तियों को इस अहिंसा, इस सत्य, इस अनेकांत धर्म की ओर आकर्षित करने का प्रयास किया, उनका वह जीवन इस अवसर्पिणी काल में /पंचम काल में भी धन्य है। वह चतुर्थ काल का अनुभव कर रहा है क्योंकि आज वह जगा है, ऐसा जगा है कि आज तक जो प्रकाश नहीं देखा था वह दिख गया। वह सद्निमित्तों को पाकर अपने आपका भला कर रहा है यही एक सही विज्ञान है और ज्ञान चक्षु है, यही आपको समझना है। आप अपनी संतान के लिये भी इसी प्रकार का उपदेश दीजिये। परिग्रह के जंजाल में उसे मत फँसाइये। सिर्फ लिमिटेड, बाउण्ड कर दीजिये। एक सीमा बाँध दीजिये। सीमातीत सुख को पाना चाहते हो तो कम से कम आप परिग्रह की सीमा बाँध दीजिये। परिग्रह को अभिशाप, महान् दुख का कारण और महान् पाप समझ लीजिये। आचार्य उमास्वामी ने मूर्च्छा परिग्रह कहा है। धन के प्रति ऐसी मोह-ममता मत रखिये कि धन का अभाव होते ही अपने जीवन में दुख का अनुभव होने लग जाये, नहीं। धन तो आया है और चला जायेगा। यह उपदेश आप दूसरों के लिये भी देते हैं। देते हैं कि नहीं? धन क्या वस्तु है रुपया-पैसा क्या वस्तु है? अरे! ये तो हाथ का मैल है। अहा कैसा उपदेश है। अरे हाथ का मैल है तो निकाल कर देते क्यों नहीं? उसको तो आप जेब में रखो। ट्रेजरी में रखो। यह ठीक नहीं है। धन का लोभ ही संसार को बढ़ाने वाला है।

मनुष्य ही धन का लोभ रखता है और स्वर्ग के देव धन का लोभ नहीं रखते हैं। इसलिए धन छोड़ो। तिर्यंच आज तक सोने-चाँदी का जेवर पहन करके, आभरण पहन करके, आपके यहाँ आये

होंगे? हमें सुना देना, आये हैं क्या? यह अलग बात है कि आप लोगों के यहाँ गाय है या भैंस है तो आप ही उसे आभूषण लटका दो तो बात अलग है। फिर भी वे उसे श्रृंगार के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते। वह तो उसे बंधन मानेगी उससे छुटकारा पाने का प्रयास करेगी। आप ही एक ऐसे व्यक्ति हैं, आपका ही एक ऐसा व्यक्तित्व है, जो जड़ के माध्यम से अपने आपकी शोभा बढ़ाना चाहता है। अन्य कोई भी प्राणी नहीं। आप अभी नहीं फेंक पा रहे हैं क्योंकि उसका मूल्यांकन ज्यादा किया है आपने और धर्म का कम किया। धर्म को प्राप्त करने के लिए धन को पर ही नहीं दुख का मूल कारण मानना पड़ेगा। धन्य हैं ऐसे समन्तभद्र महाराज, जिन्होंने आप जैसे व्यक्तियों को यह समझाने का प्रयास किया है। बार-बार समझाना ही तो हमारा कर्त्तव्य है (Its is our duty)। यह हमारा कार्य है। कोई जबरदस्ती नहीं है। इसके माध्यम से यह समझ आपको फौरन प्राप्त होती है, तो ठीक है, नहीं तो यह सूर्य उदयाचल से उदित होकर अस्ताचल की ओर जा रहा है। उसने अपनी यात्रा पूर्ण कर दी। हमारा भी समय हो गया। आये हैं तो चले भी जायेंगे। आप को भी यहाँ से जाना है। आये तो हैं लेकिन भटकते हुए आये हैं। सही रास्ता पकड़ करके सही दिशा में और सही मंजिल पर पहुँचें यही एकमात्र भावना रहती है, रहनी चाहिए।

इस अर्थ के युग में धन का दान बहुत हो रहा है। आहार दान भी हो रहा है। शास्त्र दान भी हो रहा है लेकिन अभय दान गौण हो गया है। अभयदान के सम्बन्ध में एक उदाहरण देता हूँ।

एक बार की घटना है। सारा का सारा जंगल जुड़ गया और सारे के सारे वनचर भयभीत होकर जिधर आश्रय मिला उधर भागने के लिए तैयार हो गये। बचने का कोई भी रास्ता नहीं, क्या करें। हाथी, शेर, चीते और भी कई अन्य पशु-पक्षी सब के सब भयभीत होकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। एक तालाब की ओर वह बढ़ने लगे और तालाब चारों ओर से घिर गया। जहाँ पर सारे के सारे प्राणी हैं लेकिन एक-दूसरे की ओर वे लोग देख नहीं रहे केवल एकमात्र अपनी सुरक्षा देख रहे हैं। इसी बीच एक खरगोश भी भागता-भागता आ गया। देखता है कि अब मेरे लिये कहाँ पर स्थान है? जगह वह देखता रह गया। सब कुछ खचाखच भर गया है, जैसे यहाँ सभा भरी है। कोई भी वहाँ से हटना नहीं चाहता। कोई भी वहाँ से उठना नहीं चाहता। सब अपने-अपने स्थान पर डट गये हैं। कोई किसी की बात नहीं सुन रहा है और उस खरगोश की ओर एक महान् आत्मा की दृष्टि गई। खरगोश की आँखों में उन महान् आत्मा की आँखें चली गई। वह चाहता था शरण, वह चाहता था जगह, वह चाहता था अभय। किन्तु अभय किस रूप में दिया जाये। शरण किस रूप में दिया जाये? उसकी दयनीयता को किस रूप में स्वीकार किया जाये। केवल आँखों के माध्यम से ही शरण दें केवल भावों के माध्यम से ही अभय दें कैसे करें? क्या करें? वह सोचता है। मैं एक महान् आत्मा शरीर की अपेक्षा से और मेरे पास चार पैर हैं। पर बात इतनी है कि मैं यदि इस समय एक चरण को ऊपर उठा

लूँ तो संभव है इस प्राणी की पूर्णतः रक्षा होगी और मेरे लिये पर्याप्त है तीन पैर। मैं खड़ा रह सकता हूँ। चल भले ही ना सकूँगा लेकिन खड़ा हो सकता हूँ। मेरी भी रक्षा होगी, सबकी रक्षा हो रही है। सबको अभय मिला है। एक छोटा-सा प्राणी और आया है। इसको भी मिलना चाहिए और उसने अपना पैर उठाया। बस उसने अपना स्थान जमा लिया। खरगोश स्थान जमा लेता है और हाथी अपना एक पैर उठा लेता है। **अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम**। दुखी जीवन सुख का अनुभव करने लगा। सारा का सारा दुख भूल गया कि कहाँ लपटें चल रही हैं? और वह तालाब के किनारे स्थान पा जाता है, हाथी के पैर के नीचे। एक कहावत, संभव है वहीं से चल पड़ी थी कि हाथी के पैर में सब कुछ समा जाता है। आप लोगों को सुन करके विस्मय होगा कि जंगल में ऐसी भी घटना घट सकती है क्या? हाँ! हाँ! भीतरी आत्मा वहीं रहती है। हर आत्मा अहिंसा की उपासना कर सकती है, वह दूसरे को अभयदान दे सकती है। वह दूसरे के ऊपर कृपा भी कर सकती है। और दूसरे के ऊपर वह अनुग्रह करके इस प्रकार से धर्म का प्रतिपालन भी कर सकती है। पशु जाति में रहने वाली आत्मा भी इसी प्रकार की है जिस प्रकार मनुष्य पर्याय में रहने वाली आत्मा। किसी कर्म के उदय से, किसी पाप के उदय से, किसी पूर्व में अर्जित विधि के कारण से भिन्न-भिन्न वेश, भिन्न-भिन्न स्थान, भिन्न-भिन्न क्षेत्र, भिन्न-भिन्न क्षयोपशम के साथ यहाँ पर जीवन यात्रा आप लोगों की चल रही है।

अपने-अपने कर्म का फल भोगे संसार।
एक खस टाटी सींचता, एक ले रहा बहार॥

कोई सेठ साहूकार है और एयर-कंडीशनर में बैठा है। बाहर कोई दरिद्र है, गरीब है और वह गर्मी के दिन में खस-खस की टाटी को सींच रहा है। लू में खड़े होकर खस की टाटी को सींच रहा है। और भीतर एक ऑफीसर बैठकर भोजन करने के उपरान्त शान्ति की लहर ले रहा है। यह सब कर्म और कर्म के उदय का फल है। चारों गतियों में चौरासी लाख योनियों में अनेक राष्ट्रों में-देशों में नरक-निगोद आदि में सब गतियों में संसारी प्राणी इस प्रकार पाप व पुण्य कर्म का फल भोग रहा है।

इसलिए भोग के समय में भी जिस व्यक्ति के मन में अन्य जीवों के प्रति करुणा, वात्सल्य प्रेम जागृत हो जाता है उस समय वह धन, ऐशोआराम, विषयसामग्री, कषाय भूल जाता है और वह आत्मा से दुखियों को गले लगा लेता है, स्वागत कर लेता है। वस्तुतः धन का कोई मूल्य नहीं है। धन की वजह से दो व्यक्तियों के मन के बीच एक प्रकार का विरोध आ जाता है। दो व्यक्तियों के बीच में यह धन आ जाता है तो धर्म को थोड़ा सरकना पड़ता है। अर्थ की आँखों में परमार्थ नहीं झलक सकता। धन का यह मोह, धन का यह राग संसारी प्राणी के लिये अभिशाप सिद्ध हुआ है। पशुओं में धन नहीं होता, पशुओं में मकान नहीं होते। पशु परिग्रह का अंबार नहीं लगाते। लेकिन धन के द्वारा जितना अनर्थ मनुष्य करता है उतना अनर्थ कोई पशु-पक्षी नहीं करते। सिंह से आप बहुत

डरते होंगे। सिंह बहुत पापी होगा आपकी दृष्टि में। लेकिन भगवान् कहते हैं सिंह मनुष्य से ज्यादा पापी नहीं है। नरसिंह महान् पाप का मूल बना हुआ है। जब तक दृष्टि में अर्थ रहता है तब तक वह जघन्य अनर्थ भी कर सकता है और जब वह अपनी आँखों से अर्थ को गौण कर देता है, परमार्थ की ओर दिशा दृष्टि करता है तो पशुओं में भी भगवत् स्वरूप का अवलोकन हो सकता है, पक्षियों में भी इस प्रकार का दर्शन हो जाता है, लेकिन मनुष्य में यदि विवेक जाग जाय तो इससे बड़ा कोई भला जीव नहीं है।

मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो कुछ विचार कर ले तो विश्व के कल्याण का रास्ता प्रशस्त कर सकता है और मनुष्य यदि अपना तृतीय नेत्र खोल दे तो विश्व को ध्वस्त भी कर सकता है। विश्व को मिटाने का प्रयास आज मनुष्य के द्वारा चल रहा है। दानव और देव के द्वारा नहीं, पशु-पक्षी के द्वारा नहीं और किसी के द्वारा नहीं केवल मनुष्य ही एक अभिशाप सिद्ध हो रहा है इस सृष्टि के लिए। अतः मनुष्य के लिये ही हित-उपदेश देने की आवश्यकता पड़ रही है और मनुष्य को जब हम उपदेश देते हैं तो उस समय पशु-पक्षी जो भी सुनते हैं वे भी ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा कर लेते हैं जो कि आप लोगों के लिए टेढ़ी खीर बन जाती है। लेकिन उसने तो सहज ही स्वीकार कर लिया कि खरगोश को शरण दे दी और खरगोश की आँखों में हर्ष के आँसू आ गये और उस समय हाथी ने यह समझा कि एक का आज जीवन और बच गया। मेरा तो बचा ही था। ध्यान रखें-अहिंसा धर्म कहता है, सब धर्म यही कहते हैं, ऋषभनाथ भगवान् ने यही कहा था कि अहिंसा ही हमारा महान् उच्च उपास्य देवता है। अहिंसा के अभाव में संसार में हिंसा होगी तो संसार पूरा का पूरा ध्वस्त हो जायेगा। संसार पूरा का पूरा समाप्त हो जायेगा। प्रलयकाल उस दिन आने वाला है जिस दिन इस धरती से पूर्णतः अहिंसा धर्म उठ जाना है। यह निश्चत बात है। बीच-बीच में ये जो प्रकोप आ रहे हैं, ये प्रकोप उसी के प्रतीक हैं। हिंसा का तांडव नृत्य जैसे-जैसे होता है वैसे-वैसे सृष्टि में प्रलय आता है। हाथी ने कभी जरूर किसी संत से अहिंसा का पाठ सीखा होगा।

रामायण की पृष्ठभूमि कहाँ से शुरू होती है? आप लोगों को ध्यान रखना चाहिए। रामायण राम के माध्यम से नहीं, रामायण सीता के माध्यम से नहीं, रामायण और किसी पात्र, व्यक्ति के माध्यम से नहीं, रामायण की पृष्ठभूमि में विशेष रूप से हाथ है उस जटायु पक्षी का, जिसने राम के आश्रय को पाकर के, जिसने राम की शरण में आकर के राम जिस समय मुनियों के लिए आहारदान दे रहे थे उस समय, आहारदान की अनुमोदना करके अपने आपको धन्य माना था और उस सन्त की चरणरज में वह लोट-पोट हो गया था। उस समय ऐसा कहा जाता है कि उस जटायु पक्षी के जितने भी बाल थे वे सारे के सारे केसर जैसे स्वर्णमय हो गये थे। उस समय राम ने कहा था कि यह भी एक महान् भव्य जीव है। उस समय सन्त ने कहा था कि जिस प्रकार आपके भाव उज्ज्वल हुए हैं

उसी प्रकार इसके भाव भी उज्ज्वल हुए हैं। उसी ने रामायण की पृष्ठभूमि में कार्य किया था। सर्वप्रथम वह महान् नीच कार्य करने वाला जो रावण था, उस रावण पर प्रहार करने का यदि श्रेय सर्वप्रथम मिलता है, तो जटायु को और किसी को नहीं। हनुमान तो बाद में आये हैं। लेकिन सर्वप्रथम राम की अनुपस्थिति में, लक्ष्मण की अनुपस्थिति में सीता की रक्षा के लिये उसी ने सर्वप्रथम प्रहार किया था रावण के ऊपर। यह अहिंसा धर्म का प्रतीक है। पक्षी में भी अहिंसा धर्म के प्रति भाव उत्पन्न हो जाता है तो हे मानव प्राणी, फिर सोचो, विचार करो, किस ओर आपकी यात्रा हो रही है। धन के पीछे, वैभव के पीछे, क्षणिक ऐश्वर्य के पीछे, आप लोग क्या-क्या अनर्थ करते हों? गलत बात है। हिंसा से जीवन सुखी नहीं होगा। अहिंसा की शरण अन्ततोगत्वा लेनी ही पड़ेगी।

॥ अहिंसामय धर्म की जय॥

❑ ❑ ❑

ऐसे थे हमारे गुरु

गुरुवर आचार्य श्री ज्ञान सागर जी मुनि महाराज का आज समाधि दिवस है। महाराज की समाधि हुए बहुत दिन हो गये। अतीत के समय का ज्ञापन जीव और पुद्‌गलों के ऊपर आधारित है। इतना बड़ा कालखण्ड का व्यतीत होना तथा ज्ञात करना कठिन है लेकिन जीव के परिणाम के माध्यम से उस अमूर्त दृश्य की भी पहचान हो जाती है। नया-पुराना, छोटा-बड़ा, आना-जाना यह सारे विकल्प हैं। विकल्पों में उलझा हुआ प्राणी ही उस अखण्ड में भी खण्डता का बोध या अनुभव करता रहता है। जिन्हें वस्तु का स्वरूप ज्ञात होता है, वह कभी भी इन विकल्पों में उलझता नहीं। सुख-दुख एक विकल्प जन्य आत्मा की प्रणाली है, परिणाम है। अज्ञान के कारण ही सुख को अच्छा और दुख को बुरा स्वीकार किया जाता है। सुख को जानना बुरा नहीं, सुख को अच्छा मानना और दुख को बुरा मानना, यह एक प्रकार से पीड़ा है, आर्तध्यान है। आर्तध्यान में डूबे हुए इस युग के सामने धर्मध्यान के अमृत में डूबने वाले उस व्यक्तित्व का, साधक का (आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज का) क्या प्रदर्शन किया जाये। युग हमेशा ज्ञानी के विपरीत चलता है। उनसे क्या मिला, इसके बारे में कहने की कोई आवश्यकता नहीं, हमने जब कभी जिज्ञासा की उस समय उन्होंने क्या संबोधित किया यह बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वे पार नहीं अपार थे। हमने कुछ चाहा तो उसके बदले में उन्होंने क्या हमें संकेत देने का प्रयास किया, यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। रसोई बन जाती है, उसको परोसी जाती है, किन्तु महत्त्वपूर्ण बात यह है कि माँ जब कभी भी उस भोजन का सेवन कराती है, उस पेय को पिलाती है, उस समय उस पेय को घोल-घोल कर पिलाती है। क्या घोलती है उस समय समझ में बात नहीं आती है। लेकिन बात जब समझ में आती है, तब माँ नहीं रहती है। माँ के नहीं रहने पर प्रायः उसका महत्त्व और बढ़ता चला जाता है। जीवन के अनुभवों को घोलती है माँ घुट्टी में, उसी प्रकार जीवन की अनुभूतियाँ साधकों को पिलाते हैं गुरु। आचार्य कुन्दकुन्द जैसे महान् अध्यात्म प्रेमी आत्मा की बात सहजता से साधक को एक गाथा में दे देते हैं, उन्होंने कहा मोक्षमार्ग के तीन उपकरण हैं, यथा-

उवयरणं जिण मग्गे लिंगं, जह जाद रूवमिदि भणिदं।
गुरुवयणं पिय विणओ सुत्तज्झयणं च णिद्दिट्ठं॥

स्वयं का करण साधकतम हुआ करता है और साधकतम करण के लिए उपकरण बहुत अच्छे काम में आ जाते हैं। सर्वप्रथम उन्होंने जिन लिंग को उपकरण माना है, लेकिन आचार्य कुन्दकुन्द ने सावधान किया है कि कैसा होना चाहिए वह लिंग? यथाजात होना चाहिए। मोक्षमार्ग में बुद्धि-मस्तिष्क काम नहीं करता है, मोक्षमार्ग में हृदय काम करता है, अथवा बालक का मन जैसा होता है, वैसा निर्मल मन काम करता है। **यथाजात** का अर्थ क्या होता है? यथाजात का अर्थ-

'जैसा जन्म' अभी लिया है, उस बच्चे को न माँ-पिता से, न भाई-बहिन से मतलब है न उसका कोई परिवार है, न व्यवसाय है, न लाभ है, न हानि है, न मेरा है, न तेरा है, कुछ भी नहीं, न संयोग है, न वियोग है।

यह प्रथम शर्त है, प्रथम उपकरण है– यथाजात जिनलिंग। यथाजात यह शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण है, उपकरण है। हम वृद्ध होना चाहते हैं, वृद्धों को समझाना चाहते हैं, बालक बनना कोई पसंद नहीं करता, यही एक मात्र चातुर्य था कला का, कि वे वृद्ध थे मैं नहीं मानता, वे बालक के समान यथाजात थे, उनको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ।

गुरु महाराज की क्रिया में रहस्य रहता था। ये राज आज उद्घाटित करना चाहता हूँ। आचार्य ज्ञानसागर महाराज कहा करते थे कोई यहाँ पर बालक बनना नहीं चाहता है, समझाने वाले/सिखाने वाले/पढ़ाने वाले दुनियाँ में बहुत मिलेंगे, लेकिन बालक की भाति दुनियाँ में कोई नहीं बन सकता ये ध्यान रखना और महाराज जी को बहुत अच्छा लगता था, वो कहते थे कि बालक बनना इतना आनंददायक लगता है, कह नहीं सकते। कोई विकल्प नहीं, दुनियाँ संकल्प-विकल्प में मिट जाये, लेकिन बालक तो हंसी/मुस्कान के साथ जीता है। उसका दुनियाँ से कोई लेना देना नहीं, वह मतलब की बात सोचता है, यह पागलपन है, जो ज्यादा सोचता है, वो ही पागल बनता है, बालक अभी तक पागल नहीं बना यह ध्यान रखना। जो अधिक सोचते हैं मस्तिष्क भारी हो जाता है, बोझिल हो जाता है, निश्चत रूप से उनके तकलीफ हो जाती है। एक सैकण्ड में अपनी भूलों को भूलने की कला, जिसके पास विद्यमान है, वह बालक है। एक चांटा मार दें तो वह रोने लग जाता है। अश्रुधार गालों पर आ जाती है और एक चुटकी बज जाती है, तो वह तुरन्त मुस्कराने लगता है, गाल पर वह अश्रु बूँद दिख रही है, लेकिन वह हँस रहा है। इसको बोलते हैं, बालकवत/यथाजात है। यह यथाजात बालक वृत्ति हमारे भीतर आना चाहिए। आचार्य श्री कहते थे ऐसे श्रमण को मोक्षमार्ग में हमेशा प्रसन्नता बनी रहती है। अक्षुण्ण रूप से यात्रा अंतिम क्षण तक बनी रहती है, यदि तुम भी यथाजात बने रहोगे तो तुम्हारी यात्रा सानन्द सम्पन्न हो जायेगी।

फिर इसके उपरान्त दूसरे उपकरण में आचार्य कुन्दकुन्द लिखते हैं– **गुरुवयणं** – गुरु के वचन माँ के वचन के तुल्य होते हैं, भाषा होती है, सीखी जाती है, स्कूलों में जाकर के। अध्ययन करके लेकिन जब कोई पूछता है कि आपकी मातृभाषा कौन सी है? अर्थात् माँ की भाषा कौन सी है? तुम्हारी मातृभाषा– 'गुरुवयणं' ये मातृभाषा है। गुरु ऐसे वचन दे देते हैं, जिससे शिशु शिष्य की यात्रा में कभी बाधा नहीं आती है, इसी को बोलते हैं घोल-घोल कर उसे पिलाया जाता है। यह शिशु भी अपने आप ही आनंद के साथ घूँट लेता चला जाता है। ग्रन्थों को पढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं। गुरु ने क्या वचन दिये हैं इसे समझने की बात है। समस्याओं को हल करने की क्षमता उनके

(आचार्य श्री) शब्दों में उनके वचनों में रहती थी। यह दूसरा उपकरण है। तीसरा उपकरण है विनय। हमें आज नय की आवश्यकता नहीं विनय की आवश्यकता है। नय ज्ञान विनय को भुलाने वाला होता जा रहा है, आज विकल्प पैदा करने वाला हो गया है, तर्क पैदा करने वाला है। विनय में तर्क नहीं चलता है। विनय में नम्रता रहती है, विनय में स्वीकारोक्ति रहती है, विनय में हमेशा व्यक्ति लघु होता चला जाता है। विनय गुण हमेशा उसको झुकाता हुआ पुनः उठाता हुआ, यात्रा तक पहुँचा देता है, ये विनय है।

इसके उपरान्त चौथा उपकरण दिया हुआ है 'सुत्तज्झयणं च णिद्दिट्ठं' अर्थात् 'सूत्र का अध्ययन' यह चौथा उपकरण है। आज का युग विपरीत चल रहा है। सूत्र का अध्ययन पहले कर देता है। सेल्फ स्टेडी इस युग की महान् उपलब्धि है। विनय की कोई आवश्यकता नहीं है। गुरु के वचन क्या हैं? इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। यथाजात क्या है? इससे कोई मतलब नहीं है। सूत्र हमारे पास है, सब काम हो जायेगा। बन्धुओं! नहीं होगा क्योंकि सूत्र का उद्घाटन भी गुरुओं की सेवा और भक्ति के माध्यम से हुआ करते हैं। धवला जी में वीरसेन स्वामी ने कहा है कि सम्यग्दृष्टि के द्वारा सम्यग्दृष्टि को समझाने के लिए सूत्रों को उद्घाटन किया जाता है। महान् जो सूत्र होते हैं, वे विश्वस्त व्यक्तियों के लिए ही दिये जाते हैं और सम्यग्दर्शन उत्पन्न होने के उपरान्त ही सूत्र का अध्ययन उद्घाटित होता रहता है।

आज विनय, गुरुवचन एवं यथाजात रूप की ओर दृष्टि नहीं है। समझ में नहीं आता सूत्र का अध्ययन क्या काम करेगा। वह केवल तोता रटन्त पाठ होता चला जाता है। कुछ भी पाठ नहीं आता तो भी यदि गुण ग्रहण होता है तो भी काम चल जाता है, यह बात आचार्य महाराज जी ने प्रवचनसार का अध्ययन कराते समय कही थी। इन चार उपकरणों के साथ रहेंगे तो सब काम अपने आप हो जायेंगे। वह शिष्य कहीं भी रहे वह स्व-पर का कल्याण कर लेगा। और ये नहीं है तो गुरु के चरणों में भी रहेगा तो भी कोई काम होने वाला नहीं है। गुरु के पास रहकर भी गुरु से दूर रह सकता है और गुरु से दूर रहकर भी शिष्य गुरु के पास रह सकता है। ये कठोर वचन हैं सुनते समय लगता है ऐसा क्यों कहा जा रहा है? हाँ ये बिल्कुल ठीक है। गुरु के साथ रहने का नाम साथ रहना नहीं है। बल्कि गुरु का हाथ जिसके मस्तिष्क पर रहता है उसका कभी भी गुरु से साथ छूटता नहीं है भले ही वह बाहर विहार करता रहे। पर एक बार का भी वह स्पर्श अनंतकालीन भीतरी कर्म शृंखला को तोड़ने में सक्षम रहता है। वे संस्कार, वे प्राण, वे प्रतिष्ठायें अमर हो जाती हैं। प्रतिष्ठित मूर्ति जितनी पुरानी होगी उतना ही उसमें अतिशय होगा, उतने ही उन संस्कारों में अधिक तेज आता चला जाता है, क्योंकि वह पुराना होता चला जाता है। प्रेम के साथ यदि एक बार भी हाथ फेर दिया जाता है, तो सभी काम फल पूर्ण हो जाते हैं। माँ चली जाती है, लेकिन उसका काम होता चला जाता है। संस्कार की बात है।

गुरु महाराज ने क्या नहीं दिया? हमने क्या लिया यह विचारणीय है। सागर बहुत लम्बा चौड़ा रहता है। हमारी प्यास बुझाने के लिए चुल्लू पर्याप्त हो जाता है। हमने कहाँ तक का उसका पान किया ये समझने की बात है। **गुरु कभी भी शासन चलाना नहीं चाहते, शासित कोई होना चाहता है उसके लिए दिशा बोध संकेत अवश्य देते हैं। बार-बार सोचता हूँ, विचार करता हूँ मैं कब उन जैसा बनूँ। ये ही सोचता हूँ क्या मिला, क्या लिया, उसका उपयोग कहाँ तक किया?** थाली सामने रख दी गई, परोस दी गई, व्यंजन परोस दिये गए, खाया कितना यह नहीं देखा जा रहा है बल्कि लोगों को तृष्णा रहती है और परोसा जाना चाहिए ये पागलपन माना जाता है।

ये बातें दिनों दिन याद आती चली जा रही है– ''विद्या कालेन पच्यते'' ये उनका शब्द था, यह वाचन करना सरल है लेकिन पाचन हमेशा चारित्र के माध्यम से ही होता है। यह संकेत उनका था, और सूत्र का अर्थ यही बताता है कि वह काल में ही पचता है। जो दिशा बोध प्राप्त है, वह चारित्र के माध्यम से ही पकता चला जाता है। हम यदि पाचन शक्ति को बढ़ाते हैं, तो उन्होंने जो दिया है, वह सब पच सकता है और यदि हम अपनी पाचन शक्ति नहीं बढ़ाते, या केवल स्मरण ही करते चले जाते हैं तो पचेगा नहीं सड़ेगा, अफरा चढ़ जायेगा। यदि खाया हुआ बचता है तो वह अभिशाप सिद्ध होता है और पेट में कुछ भी नहीं बचता है तो वरदान सिद्ध होता है, आप क्या चाहते हैं? उस सूत्र में अर्थ है– **विद्या कालेन पच्यते हे भगवान्! हे दीपस्तम्भ! आपसे मुझे अब दीप नहीं द्वीप चाहिए जिस पर मैं ठहर सकूँ। भव सागर में आते-आते, गोते खाते-खाते, तैरते-तैरते हाथ भर आये हैं, अब हाथों में पैरों में बल नहीं रहा, शिथिलता आ गई है, अब हमें केवल द्वीप चाहिए यानि विराम चाहिए। आचार्य ज्ञानसागर महाराज से मैं दीप नहीं चाहता, द्वीप चाहता हूँ। जैसे उन्होंने किनारा पाया उसी प्रकार हमें भी किनारा मिल जाये हमें भी वह समाधि में लीन होने का सौभाग्य प्राप्त हो जाये। हमें पर नहीं, स्व चाहिए। स्व में जो लीन हो जाता है पर के लिए वह आदर्श बन जाता है। स्व-पर कल्याणी दृष्टि चाहिए।**

आचार्य शान्तिसागर महाराज ने एक बात कही थी, भगवान् का दर्शन कैसे करें? जैसे भगवान् बैठे हैं वैसे बैठ जा पहले, बच्चों को सिखाया जाता है पालथी लगाकर। पंगत में बैठना, इसके बाद परोसा जायेगा। अगर ज्यादा गड़बड़ करोगे तो आधा परोसा जायेगा। पूरा लड्डू चाहते हो तो भगवान् जैसे बैठ जाओ, अगर आँख खोलकर बैठोगे तो उसको आधा ही मिलेगा। कोई भी आँखें नहीं खोलता, भगवान् का दर्शन करना चाहते हो तो पहले भगवान् जैसा बैठना तो सीख लो।

यह बात निश्चत है, कि हम बातें बहुत करते हैं। चर्चा तक सीमित रह गया ज्ञान। ज्ञान का प्रयोग समाप्त हो गया, योग समाप्त हो गया। अब उपयोग स्थिर कैसे हो सकेगा? कहाँ लगेगा? बस संयोग और वियोग में ही उपयोग की लीला चल रही है। कैसा प्रायोगिक जीवन

था ज्ञानसागर महाराज जी का, जो पढ़ा उसको प्रयोग में लाने का प्रयास किया। इर्द गिर्द जो कोई भी बैठ जाता है, उस पर छाप पड़ती चली जाती थी। एक बार कार्बन नीचे रखा हो फिर निश्चत रूप से नीचे के पन्नों पर यथावत् उतरकर आयेगा। उसका दबाव उसका प्रभाव अवश्य उभर करके आयेगा। आज प्रयोग का नामोनिशान समाप्त होता चला जा रहा है। अंतिम घड़ी तक उन्होंने अपने को प्रयोग की शाला में ही पाया। वे अनुशासन की बात कहते नहीं थे, स्वयं अनुशासित रहते थे, आत्मानुशासित होते थे अतः कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती और अनुशासनशील व्यक्ति को देखकर सामने वाला अपने आप अनुशासित हो जाता था।

भगवान् के समान बैठने के उपरान्त, भगवान् कैसे बैठे हैं, यह प्रशिक्षण देने की कोई आवश्यकता नहीं होती है, मात्र प्रयोग की आवश्यकता होती है। कम शब्दों में अधिक अर्थ देने की क्षमता उनके वचनों में विद्यमान थी। **और वे कहते कम थे, करते ज्यादा थे, तो बिना कहे ही असर पड़ता था और हम करते कम हैं, कहते ज्यादा हैं इसलिए असर कम पड़ता चला जा रहा है।**

अब तो हमें भी समझ में आने लगा है, कहना अब बंद कर देना चाहिए क्योंकि **कहने की मात्रा जब बढ़ जाती है तो करने की मात्रा घट जाती है।** तो करने की मात्रा बढ़ाने में ही लग जाना चाहिए तभी काम होता है अन्यथा नहीं हो सकता और निमित्त तो निमित्त हुआ करता है। उनकी लीनता, उनकी तल्लीनता अद्भुत थी, उनकी निरीहता अद्भुत थी। निर्भीकता की बात तो कहना ही क्या है! जो तल्लीन हो जाता तो निश्चत रूप से निर्भीक/निरीह होता है। जिसका जितना ध्यान लगता है उतना वह निःशंक होता है, और निःशंक का अर्थ भय रहित होना। वे हमेशा-हमेशा कुन्दकुन्द की वाणी में कहा करते थे। कुन्दकुन्द ने शंका का नाम भय लिया और सम्यग्दृष्टि को भय से रहित होना चाहिए और भय से जो रहित हो जाता है, वह स्वरूप में लीन हो जाता है। वैरागी दृष्टि से देखा जाये तो निर्भीक होना बहुत अच्छा माना जाता है। आध्यात्मिक दृष्टि में जो लीन हो जाता है, विलीन हो जाता है, वह वस्तुतः स्व-पर के लिए वरदान सिद्ध होता है और निश्चत रूप से अपनी आत्मा को उन्नत बना सकता है, एक सी लीनता उनमें अंतिम क्षणों तक पायी गयी। वे कहा करते थे कि कर्त्तव्य में कभी भी कर्त्तापन नहीं होना चाहिए। कर्त्तव्य अप्रमत्तता का द्योतक है, प्रवृत्ति होते हुए भी। और कर्त्तापन हमेशा प्रमाद, ज्यादा अहंकार और स्वामित्त्व का प्रतीक बन जाता है, जिसके द्वारा अपनी यात्रा रुक जाती है हमेशा-हमेशा। ये उनसे हमने सीखा है। कर्त्तव्य करते जाओ, कर्त्तव्य से विमुख नहीं होना, निश्चत रूप से अपनी तल्लीनता प्राप्त होगी। सामने वाले को स्वीकार है तो ठीक, नहीं तो विकल्प करने की आवश्यकता नहीं है, हमें इससे आगे बढ़ने की आवश्यकता नहीं है। आपको पता होगा कि रामायण कैसे बनी? एक बार सीता ने लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन किया और राम ने हिरण के कारण और रावण ने सीता हरण के कारण अनर्थ कर लिया।

यदि चारों सीमा में रहते, तो कुछ भी गड़बड़ होने वाला नहीं था। जो उपकरण बताये हैं, उपकरण बोलते हैं ''उपकार करोति इति उपकरणं'' जो उपकार करता है वह उपकरण, जो उपकार नहीं करता है, उसको पास नहीं रखना चाहिए। अतः वही उपकरण रखे गये कुन्दकुन्द द्वारा जो मोक्षमार्ग पर चलने के लिए उपकारी सिद्ध हो रहे हैं। ये गाथा हमेशा कहते थे हमारे सामने गुरुदेव।

''पडिवज्जदु सामण्णं जदि इच्छदि दुखपरिमोक्खं''

श्रामण्य को अंगीकार करो, दुख से मुक्ति यदि इष्ट है तो। दुख से घबराये हो तो श्रमणता को स्वीकार करो। श्रमणता कोई विशेष बात नहीं है, केवल यथाजात कर देना, बाहर से यथाजात हम हो जाते हैं, लेकिन कुन्दकुन्द का कहना है कि जो बाहरी और भीतरी दोनों ओर से यथाजात होता है, उसका नाम यथाजात। जैसा बाहर है-वैसा ही भीतर हो। बाहर तो यथाजात यानि बालक का रूप है, और भीतर पालक का रूप हो, ये कहाँ साम्य बैठता है? तन को नग्न बनाया, मन को अभी तक नहीं बनाया तो काम नहीं चलेगा, मन में यदि वह नग्नता आ गयी तो तन की नग्नता सार्थक हो जाती है और वह पूज्य हो जाती है, स्व और पर को कल्याणकारी हो जाती है। उनका वह यथाजात बालकवत् वह सौम्य मुखमंडल विशाल ललाट उसके ऊपर झुर्रियाँ भी देखने को नहीं आतीं थीं। केवल जान सकते थे, इस पार्थिव ललाट के ऊपर कितनी रेखाएं हैं। लेकिन रेखाएँ कहीं उलझी हुई नहीं थीं, वह निश्छलता उनके ललाट, उनकी आँखों में हमने पायी। हमेशा सरलता जीवन का लक्ष्य था, विरोध उनके जीवन में नहीं आया, बोध हमेशा शोधोन्मुखी बना रहा, कभी भी बोध का प्रदर्शन नहीं रहा, हमेशा लक्ष्य दर्शन की ओर रहता था। किन शब्दों के द्वारा उस महान् व्यक्तित्व की हम प्ररूपणा करें हमें समझ में नहीं आता, उनकी तल्लीनता कैसी थी, मैं इस उदाहरण के माध्यम से आपके सामने रख रहा हूँ- बहुत छोटा था। किन्तु हमेशा-हमेशा कार्य कैसा होता है? क्या होता है? ये देखता रहता था। कार्य होने के उपरान्त कारण की पहचान होती थी और कारण के माध्यम से कभी-कभी कार्य की ओर दृष्टि गढ़ाये रखता था और एक दिन एक कुँए पर बैठा था। कुँआ जल से भरा है, अब क्या करें, ऊपर आम का वृक्ष है और तोते वगैरह अथवा हवा के माध्यम से आम टकरा करके जब गिर जाते, उस आम के वृक्ष के नीचे एक टीन वाला मकान था, उसके ऊपर गिरते थे, आवाज होते ही हम उसे उठाने चले जाते, लेकिन हम उसको पकड़ नहीं पाते और वह गिर करके नीचे कुँआ में चला जाता। अरे, ज्यों ही नीचे चला जाता, अब क्या करें? सोचा आम जल में डूब जायेगा लेकिन देखते क्या हैं कि वह आम डूबा नहीं और वह तैरने लगा तब आशा बंधी की अब वह पकड़ने में आ जायेगा, जाकर के किसी भी तरह पकड़ करके निकाल लेते, लेकिन वह कच्चा ही निकलता, तो हमने कहा ये कैसी बात है। आम टूटा और डूबा नहीं। जब दूसरे, तीसरे ऐसी संख्या बहुत होती, ऊपर बंदर बैठते, बन्दर उन कच्चे आमों को तोड़कर के फेंक देते, तो हम बच्चे नीचे

वाले बंदर (सभा में हँसी) देख लेते ये कैसी बात है? आम डूबते क्यों नहीं? लेकिन एक बार पीला-पीला आम जब हमारे सामने गिरा और देखा यह भी तैरेगा तो पकड़ में आ जायेगा, लेकिन ज्यों ही गिरा कुँए में चला गया लेकिन कच्चे आम के समान तैरा नहीं, डूब गया। अब पता लग गया ये कैसी बात है। पीला आम तो ऊपर नहीं आया और हरे-हरे आम तो हर-हर करते ऊपर आ गये। ये क्या है? **जो कच्चा होता है, वह हमेशा-हमेशा रस की प्राप्त के लिए पुनः पेड़ की ओर देखता रहता है और जो पका हुआ होता है वह रस से लबालब भरा हुआ रहता है। वह पेड़ की ओर नहीं देखते और नीचे डुबकी लगा लेता है, आचार्य ज्ञानसागर महाराज जी के जीवन में हमने यही देखा। वे कभी बाहर से रस नहीं लेते, भीतर से इतना अध्यात्म का रस भरा हुआ रहता था। वो किसी की आकांक्षा नहीं करते थे। यह निश्चत बात है हमेशा-हमेशा वे यही कहा करते थे, जब आत्मा अमृतकुण्ड है, तो हम प्यास बुझाने बाहर क्यों मृगमरीचिका में वृथा भटकते फिरें।**

युग की दीनता और अज्ञानता उनसे देखी नहीं जाती थी, लेकिन कर्त्तव्य तो कर्त्तव्य होता है, अनेक महान् संत हुए उन्होंने अपने शिष्यों के साथ जबरदस्ती नहीं की। तो हमारे साथ ये भी कैसी जबरदस्ती करते। कर्त्तव्यों के प्रति उन्मुख करने का प्रयास अवश्य करते थे। किसी उलझन को सुलझाने की बात जब पूछते तो महाराज कहते थे कि समय पर सब काम होता जायेगा, **संतोष रखा करो। जिसके पास संतोष नहीं होता वह कभी किसी भी प्रकार से उन्नत नहीं हो सकता, जो व्यक्ति उतावली कर देता है वह कभी भी काम को पूर्ण नहीं कर सकता है। उतावली करने से कार्य पूर्ण नहीं होता उलझता और चला जाता है।**

यह निश्चत है कि अपने उपादान के माध्यम से कार्य होता है, लेकिन उस उपादान के योग्य निमित्त को भी अपने पुरुषार्थ बल पर जुटाते रहना, इतनी ही पुरुषार्थ की सीमा है आगे नहीं बढ़ सकते हैं। यह कर्त्तव्य की एक परीक्षा है कि हम उस संतोष को कहाँ तक आत्मसात् किये हुए हैं, क्योंकि

''अलंघ्यशक्तिर्भवितव्यतेयं हेतुद्वयविष्कृतकार्यलिंगा''

स्वयंभू स्तोत्र - ७/३

उस भवितव्यता की पहचान दो कारणों के ऊपर ही निर्धारित है। दो कारणों के द्वारा जो अविष्कृत कार्य है, वही उस भवितव्यता की पहचान है। इसलिए हम अपनी मति, अपनी बुद्धि के द्वारा कहाँ तक पहचान सकते हैं, वहीं तक पहचान लें, फिर उसके बाद सीमा का उल्लंघन नहीं किया जा सकता। कार्य तो अपने क्रिया कलापों के माध्यम से सम्पन्न होगा। ऐसा न्याययुक्त आध्यात्मिक व्यवहार आदि सारी कुशलतायें हमने उनमें देखी और कभी भी आग्रह वाली बात नहीं थी ज्यादा आग्रह करने से पदार्थ का मूल्य कम होता है। ज्यादा टीका लिखने से मूल का महत्त्व कम

हो जाता है। आप लोग कहोगे कि महाराज ये बात तो गलत कही आपने। नहीं भैया ठीक कह रहा हूँ। जितने भाष्य बनेंगे, जितनी टीका टिप्पणी लिख दी जायेगी जितनी पत्रिका बनेगी उतना ही मूल को चखने का कोई प्रयास नहीं करेगा और टीका-टीकाओं में रहेंगे और टीका टिप्पणी चालू हो जाती है। हम देखते हैं टीकाओं में मतभेद हैं मूल में कोई भेद नहीं है। आज तो बहुत सारी टीका टिप्पणी उन्हीं टीका टिप्पणियों के माध्यम से ही होने लगी। मूल तक पहुँचने के लिए अब हमारे पास गति ही समाप्त हो गयी। हमेशा हमेशा मूल के ऊपर दृष्टि रखने की बात वो कहा करते थे। हिन्दी वे नहीं देखने देते थे, मूल के ऊपर सोचो विचार करो, यह सूत्र उनका मुझे आज प्राप्त है। तत्त्वार्थसूत्र को जितने बार पड़ता हूँ उतने बार मुझे बहुत आनंद आता है और महाराज जी का सूत्र ताजा होता चला जाता है। भाद्र पद में ही उसका विषय उद्घाटित होता है। बहुत सारी बातें अपने आप उद्घाटित होती चली जाती हैं। यह गुरु महाराज की कृपा है। जितना मूल के ऊपर हम अध्ययन करेंगे, उतना ही हमें आनंद आयेगा।

कुन्दकुन्द महाराज की गाथाएं आत्मसात् कर लेना चाहिए। आज कुन्दकुन्द नहीं है, लेकिन कुन्दकुन्द नहीं होने के उपरान्त भी ये ध्यान रखना, हमें कुन्दकुन्द के भावों तक जाने के लिए कुन्दकुन्द की गाथाओं में ही एक प्रकार से डूबना आवश्यक है। हमेशा-हमेशा कुन्दकुन्द की गाथाओं में डूबे रहने वाले ऐसे आचार्य श्री ज्ञान सागर महाराज हमारे लिए वरदान सिद्ध हुए हैं, इसमें संदेह ही नहीं है। लेकिन ये बात बार-बार आ जाती है, कुछ समय और वो दे देते तो और अच्छा होता,ये नहीं सोचते कि हम और कुछ उनसे समय ले लेते तो और अच्छा है। लेने के लिए गाथायें अभी दी हुई हैं ले सकते हैं। हमारी वृत्ति हमेशा-हमेशा द्रव्य की ओर रहती है, भाव की ओर नहीं। ऐसी स्थिति में कुन्दकुन्द तो मिलने वाले नहीं है लेकिन कुन्दकुन्द के भाव हमारे सामने हैं।

एक काल का परिणमन जो द्रव्य में हमेशा-हमेशा हुआ करता है, उसको जानकर के युगों-युगों पूर्व अतीत में जो चले गये हैं, जो अनंत सिद्ध हुए हैं, उनको भी हम अपना आदर्श बना सकते हैं। ये बनाने की कला आँख बंद करते ही आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज जी के पास थी। दो पंक्तियाँ जो कि उनकी समाधि के उपरान्त मुझे मिली थी। उनको देखने से ऐसा लगा कि ये पंक्तियाँ ज्ञानसागर महाराज के ऊपर बिल्कुल फलित हो जाती हैं। वह पंक्तियाँ यह हैं-

जब पहाड़ ही बना तब धूप से क्या
जब साधु ही बना तब भूप से क्या
जब सागर ही बना फिर कूप से क्या
और जब चिन्मय ही बना फिर रूप से क्या

उनका अध्यात्म इन पंक्तियों में हमने देखा, वह सौभाग्य हमें भी प्राप्त हो। मैं बार-बार

सोचता रहता हूँ वह घड़ी कब आये। नहीं, अब तो सोचना बंद कर रहा हूँ वह घड़ी कब आये ये कहने की अपेक्षा, वह घड़ी अभी भी है। कब की चिंता नहीं और जिसका अब छूट गया, तो कब तो कभी मिलने वाला नहीं है।

जिस प्रकार आप लोग चतुराई के साथ व्यापार करते हो। एक बोर्ड लगा देते हो '**आज नगद कल उधार**' और उस व्यक्ति के पास से नगद ले लेते हो, और कल के लिए कह देते हो, बेचारा वह कल की इच्छा से आज नगद आपको देकर चला जाता है, और कल आते ही कहता है, आज पुनः दे दो, हाँ-हाँ ठीक है, लाओ नगद। कल कहा था न आपने। क्या कहा था बताओ '**आज नगद कल उधार**'। हाँ! कल कभी आता नहीं। कब-कब की चिंता में अब को खोने वाला आचार्य ज्ञानसागर महाराज को पहचान नहीं पाता। २५ वर्ष हो गए पंडित जी मूलचन्दजी लुहाड़िया, किशनगढ़ वक्तव्य दे रहे थे उनको हमने ३० साल से देखा, हमेशा-हमेशा हाँ महाराज कल देखेंगे, समझ में भी नहीं आता। महाराज जी ने भी कहा- मैं ब्रह्मचर्य अवस्था में था, उस समय में भी ये बातें करते थे, महाराज के साथ ही बात करते थे। बात ही करते थे, बात ही करते रह गये। किन्तु काया तो परिवर्तित हो गई। उनको महसूस हो रहा होगा। जिस समय काया में माया थी, उसको तो उन्होंने खो दिया, अब दुनियाँ के कार्यों में उलझ गये। अब करूँ? कब करूँ? कल करूं? तो ये ध्यान रखना चाहिए था, वो स्वयं भी एक वणिक् हैं और ये वणिक् प्रत्येक समय पर ये बोर्ड लगाये रखते हैं, आज नगद कल उधार, कल कभी आता ही नहीं है। कल कोई वस्तु है ही नहीं। भविष्य में क्यों झूल रहे हैं। इसी का नाम है, आचार्य ज्ञानसागर महाराज को नहीं समझना। इसलिए ऐसे व्यक्ति कभी आप लोगों को निर्देशन देने लग जायें तो इनके निर्देशन कभी प्रभावकारी नहीं हो सकते।

निर्देशन मानना चाहिए आचार्य ज्ञानसागर महाराज जैसे साधकों का। उनके अनुसार चलने वाला एक कदम भी चला देते हैं तो भी ठीक है। लेकिन ऐसे केवल बात करने वालों से महाराज ज्ञानसागर जी कहते थे बचियो, क्योंकि वे कभी भी यहाँ तक जाने नहीं देंगे। वह बात करने वाले महाराज नहीं थे, उनके द्वारा साहित्य का इतना विशाल भण्डार बनाया गया। आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने मुनि अवस्था में बहुत कम लिखा। लेकिन पंडित अवस्था में लिखते चले गये और जब समझ में बात आ गयी, तो सब विकल्प छोड़कर यथाजात रूप धारण कर लिया। समयसार की हिन्दी टीका उनकी अंतिम कृति मानी जा सकती है, उसका उन्होंने अच्छे ढंग से चिन्तन मंथन के साथ **लखा फिर लिखा**। लिखना तो जीवन पर्यन्त हुआ, अब तो लखने का अवसर प्राप्त हुआ है ऐसी भावना मुनि अवस्था धारण करते ही हो गई थी। हमेशा-हमेशा प्रचार प्रसार से दूर रहने वाले, वह साधकों से कहा करते थे मैं प्रचारक नहीं, एक साधक हूँ और साधक हमेशा साधना प्रिय ही होता है। उनका जीवन का लक्ष्य क्या है? यह तो उनके जीवन के अंतिम क्षणों से ही ज्ञात हो सकता है।

यह बात अलग है उनके पास वज्रवृषभनाराच संहनन यदि होता तो निश्चत रूप से कैवल्य को उपलब्ध कर लेते और अनेकों के लिए वह कार्यकारी सिद्ध हो जाते। लेकिन कर्म का ऐसा संयोग है, उसके कारण से वह कार्य नहीं हुआ। लेकिन उनका कार्य रुका हुआ नहीं है, जब तक मुक्ति नहीं हुई तब तक उनकी साधना बनी रहेगी क्योंकि वह आत्म साधक थे। **चारित्र के साथ ज्ञान की साधना करने वालों के ज्ञान संस्कार के रूप में पर भव में भी जाते हैं।** लेकिन अविरत अवस्था में जो ज्ञान रहता है। उसका कोई पतियारा नहीं रहता है, ऐसा शास्त्र का उल्लेख है। जब नेत्र खुल गये और पैर मंजिल की ओर बढ़ने लगे, अब डरने की कोई बात ही नहीं, मंजिल पास आयेगी या हम मंजिल के पास चले जायेंगे। ये ध्रुव सत्य है। श्रद्धान के साथ ही उनका जीवन श्रद्धा के तद्रूप था। इतनी क्षीण काया में भी, वह ज्योत जलती थी और वह तेज था उनमें कि उन्हें देखकर डरा हुआ व्यक्ति भी साहस पा जाता था, हमें बहुत विकल्प होते थे। ज्ञानसागर महाराज जी के जाने के उपरान्त हमारा क्या होगा। अरे स्वार्थी दुनियाँ ये तो सोच रहा है हमारा क्या होगा अरे भाई ये भी सोच लेना चाहिए कि प्रति समय कितना बड़ा उपकार किया है अतः उनको जल्दी-जल्दी सद्‌गति हो, उनकी यात्रा पूर्ण हो, यह भी विचार करना चाहिए। उनसे हमें इतना साहस मिला है कि अब डरने की बात नहीं है। आदि रहित अंत रहित ये महान् समुद्र होते हुए भी तैरने वाला व्यक्ति कभी भी डरता नहीं है। ऐसा जहाज हमें प्राप्त हो गया। ऐसी दिव्य दृष्टि हमें प्राप्त हो गई। ऐसा पथ हमें प्राप्त हो गया। अब मंजिल की चिंता नहीं। अब यही विकल्प है कि वह घड़ी जल्दी-जल्दी आ जाये। वह घड़ी आनी अवश्य है क्योंकि परिणाम हमारे भीतर हो रहा है, घड़ी अवश्य आवेगी। घड़ी जो बंधी हुई है, वह रुक सकती है, लेकिन यह परिणमन कभी भी रुक नहीं सकता। ध्रुव की ओर जो यात्रा प्रारम्भ हो गई अब मंजिल कभी भी ओझिल नहीं हो सकती है। निश्चत रूप से हमें प्राप्त होगी। ज्ञानी को कभी भी भविष्य में घटित होने वाली उस परिणति के ऊपर विस्मय नहीं होता, आकुलता नहीं होती, भूमिका के अनुसार हो जाये तो भी उसका अलग ही स्वाद होगा। हमें भी वही स्वाद प्रति समय आना चाहिए और इससे भी आगे बढ़ करके आये ये भावना होनी ही चाहिए। आकुलता नहीं है। आकुलता करने से कर्त्तव्य च्युत हो जाता है जीव। कर्त्तव्य के लिए भी आकुलता होती है, मैं मानता हूँ लेकिन कर्त्तव्य की आकुलता वह सामयिक होती है। त्रैकालिक नहीं हुआ करती है क्योंकि कर्त्तव्य के उपरान्त अपना जो गंतव्य है, लक्ष्य है, उसकी ओर हमेशा दृष्टि चली जाना चाहिए। ऐसे ज्ञानसागर महाराज श्री के चरणों में बार-बार नमोस्तु करता हूँ। आज भले ही परोक्ष कहता हूँ लेकिन वो परोक्ष नहीं है। हमारे लिए तो वे हमेशा-प्रत्यक्ष हैं।

तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं तव हपदद्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनेन्द्र तावद् यावद् निर्वाण सम्प्राप्तिः ॥(समाधि भक्ति-७)

❑ ❑ ❑

रामायण के आदर्श

विश्वविज्ञं विधि-वेदं वीरं वैराग्य वैभवम्।
संगमुक्तं यतिं बुद्धं केशवं संभवं शिवम्॥

मंगलाचरण में मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ जो विश्व को जानने वाला है, विश्व वेत्ता है, वीर है, महावीर है, विराग है, परिग्रह से दूर है, ऐसे राम/शिव/शंकर/महावीर के लिए नमस्कार है। राम से सारा का सारा विश्व परिचित है। जिन्होंने कर्त्तव्य का प्रतिक्षण पालन किया उनको कोई भी युग नहीं भूल सकता, युग युगान्तर होने के बाद भी वह स्मरण में आ जाते हैं, युगों-युगों व्यतीत हो गये वह आज भी हमारे स्मरण के विषय बने हुए हैं। हमारी बुद्धि अधूरी है उनके व्यक्तित्व के बारे में, उनकी महानता के बारे में, उनकी कर्त्तव्यनिष्ठा के बारे में, उनकी ऊँचाईयों के बारे में विचार नहीं कर पाती है। केवल नाम में, रूप में उलझ जाती है। दुनियाँ ध्यान रखे भगवान् जो होता है, वह भगवान् ही होता है। वह किसी जाति, किसी पक्ष, किसी क्षेत्र को लेकर नहीं चलता, किन्तु उसका पूरा-पूरा संबंध ही विश्व के साथ जुड़ जाता है। विश्व का प्राणी यदि उसे याद करता है, उसे दिशा निर्देश मिलता है उसे नकारता नहीं, किन्तु वो कहता है, हाँ तुम भी अपने पद को प्राप्त करो, निश्चत रूप से हमारे जैसा वैभव पा सकते हो। राम का समस्त जीवन ही स्मरण करने योग्य है।

चाहे बाल्य काल हो, चाहे गृहस्थ आश्रम हो, चाहे प्रौढ़ आश्रम हो, कोई भी आश्रम हो आवश्यक रूप से शिक्षा देता है। उनके जीवन के कुछ बिन्दु आपके सामने रखना चाहता हूँ। जिनके माध्यम से हमारी जितनी कमियाँ हैं, याद आ जाये। हमारा अनुकरण उनकी ओर हो जाय। स्वार्थ परायणता एवं मोह के कारण से सारे प्राणी कितने विरूपित हो जाते हैं, आश्चर्य होता है। अयोध्या में चारों तरफ खुशहाली है। राम का राज्याभिषेक होना है। लेकिन एक सौतेली माँ की महत्त्वाकांक्षा ने रंग में भंग कर दिया। कैकेयी ने घोषणा कर दी, मेरा पूत राज्याभिषेक से युक्त हो। इतना ही नहीं राम यहाँ से चले जायें। घटना आप लोगों को ज्ञात है। स्वार्थ परायणता संसार की प्रकृति से बनी है, लेकिन इस संसार में रहकर भी ऐसे महामानव होते हैं। जो इन तुच्छ चीजों की ओर दृष्टिपात नहीं करते हुए भी उस विशाल सम्राट में लीन होना चाहते हैं और विश्व को उस ओर अग्रसर करने का प्रयास करते हैं और कहते हैं कि इस ओर आओ और स्वीकार करते हैं चुनौती को।

राम अपनी माँ कौशल्या के पास जाकर कहते हैं कि माँ मुझे आज आशीर्वाद दीजिए। मेरा लक्ष्य जल्दी-जल्दी पूरा हो सके। पिताजी की आज्ञा का मैं पालन कर सकूँ आपका आशीर्वाद फलीभूत हो। माँ कहती हैं– बेटा! क्या कह रहा है। हाँ निश्चत है कि पिताजी की आज्ञा का उल्लंघन नहीं हो सकता, आज्ञा शिरोधार्य है। मुझे अभी-अभी यहाँ से चले जाना है। माँ कौशल्या थी, बेटे राम को जाया है, आँचल का दूध पिलाया है। इसलिए आँख भर आती है, पुत्र वियोग की बात सुनकर।

फिर भी क्षत्रिय पुत्र की माँ साहस बटोर कर कहती है। बेटा तेरा भाव पूर्ण हो, भगवान् का हाथ तेरे ऊपर रहे। ज्यों ही आशीर्वाद मिलता है, वे (राम) जाने के लिए तैयार होते हैं, पीछे से लक्ष्मण की आवाज आती है– वनवास जा रहे हो भैया? हाँ लक्ष्मण! पिताजी की एवं माता कैकेयी की आज्ञा है। तुम्हें यहीं रहना है। यह सुनते ही लक्ष्मण कहते हैं–असम्भव! जहाँ आप वहीं पर यह आपका चरणदास, आपका अनुज रहेगा। वह स्वयं कहता है मैं तो आपके साथ चलूंगा। मैं यहाँ पर आपके बिना नहीं रह सकता यह असली बात है। कोई माने या न माने लेकिन मुझे तो यहाँ पर नहीं रहना है। क्योंकि माता-पिता तो चले जाते हैं कुछ दिन के बाद अर्थात् आयु समाप्त कर मरण को प्राप्त हो जाते हैं लेकिन भाई साथ देते हैं और समस्त जीवन भाइयों के साथ रहना है। माता-पिता भले ही नींव रख लेते हैं, लेकिन प्रासाद में बैठ करके भाई-भाई की छाया का अनुभव करना है और एक-दूसरे से मिल करके रहना, यही एक मात्र जीवन होता है और इसमें सुख मिलेगा। आपके साथ रहने को मैं आ रहा हूँ। उसके उपरान्त राम ने कहा–नहीं लक्ष्मण! ऐसा नहीं कहो, माताजी-पिताजी का एक दिन का भी साथ जीवन को सुखी बना देता है। बड़ों की कभी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। तुम्हें रहना है और मैं ये कह रहा हूँ मेरे साथ रहना चाहते हो तो मेरी आज्ञा को तुम्हें भी पालन करना है, मेरे साथ रहने की तुम्हारी भावना से ही तुम मेरे साथ हो, ऐसा मानो। क्योंकि साथ तन से नहीं हुआ करते हैं और न ही धन से हुआ करते हैं, साथ हुआ करते हैं, केवल आज्ञा के पालन से। राम के उपदेशों में कितनी गहनता है।

आज राम का जन्म हुआ राम का जन्म पालने में है। लेकिन राम का पालना बहुत अद्भुत है और स्वयं राम अपने आप में है, महापुरुष हैं। महापुरुष हमेशा महान् हुआ करते हैं, तन से नहीं भीतर से। आज्ञा का भीतर से सम्बन्ध होता है। निश्चत रूप से हम आज महावीर भगवान् के साथ जी रहे हैं, आज हम भी राम भगवान् के साथ ही जी रहे हैं, यदि उनकी आज्ञा का पालन करने का स्मरण हमें है और बनती कोशिश उनकी आज्ञानुसार चलने का प्रयास हम कर रहे हैं तो निश्चत रूप से हमारा जीवन उनके जीवन के साथ चल रहा है।

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

महान् संतों ने यह युक्ति दी है। निश्चत बात है जो पुराण पुरुष हुए हैं उनकी आज्ञा का यदि हम अनुपालन कर रहे हैं तो निश्चत रूप से हम भी उनके ऊपर उपकार कर रहे हैं क्योंकि उनका भी भाव यही है।

युग को संदेश मिलता रहे। हमेशा-हमेशा यह युग उनके आदर्श तक पहुँचने के लिए कोशिश करता रहे। इस प्रकार का भाव हमेशा-हमेशा संतों का भी रहता है, हुआ करता है और संत

के उपासकों के मन में भी यही भावना रहती है। युग शान्ति का स्वाद हमेशा लेते रहें, कभी भी दुख का अनुभव न हो। **अयं निजः परोवेति** यह मेरा यह तेरा ऐसा विचार संकीर्ण बुद्धि वाले व्यक्तियों का हुआ करता है। **''उदारचरितानां तु...जिनका उदार दिल होता है, सबका उद्धार हो इस प्रकार का भाव उनमें पलता है वे उद्धार करने वाले जगद् उद्धारक होते हैं। ऐसे महान् उद्धारकों के संकीर्ण भाव नहीं हुआ करते हैं। वह तो सोचते हैं कि सबका कल्याण हो ''क्षेमं सर्वप्रजानां'' जितने भी जीव हों सबका उद्धार हो। इस प्रकार की भावना के लिए कोई बड़े-बड़े भवन की आवश्यकता नहीं है। इसके लिए एयरकंडीशनर की आवश्यकता नहीं है। मात्र विशाल हृदय की आवश्यकता है।**

लक्ष्मण मेरी बात मान लो, पिता की आज्ञा का उल्लंघन मैं नहीं कर सकता और मुझे यहाँ पर रुकने की नहीं, वन जाने की आज्ञा दी गई है। लक्ष्मण कहते हैं, आप तो जंगल में विपत्ति भरा जीवन व्यतीत करने जा रहे हो और मैं भवनों में रहूँ यह सम्भव नहीं होगा।

रामचन्द्र जी कहते हैं, अरे! जंगल में भी मंगल है यही देखने जा रहा है तू चिन्ता मत कर, तू मेरी आज्ञा मान, यहाँ रह। मुझे जंगल के मंगल का आनन्द लेने दे। लक्ष्मण कहता है–भैय्या आपके साथ मंगल चलता है, आपके जाने के बाद यहाँ तो मुझे अमंगल नजर आ रहा है। अतः मैं भी मंगल का अनुभव करना चाहता हूँ, चाहे जंगल हो या मंगल मैं तो तुम्हारे साथ रहूँगा। दोनों सीता सहित चल दिये वन की ओर और चित्रकूट पहुँच कर विश्राम किया।

रामचन्द्र जी के वनवास जाते समय भरत अयोध्या में नहीं थे, ननिहाल गये हुए थे। यदि भरत उस समय होता तो शायद यह घटना टल सकती थी। कुछ दिन बाद भरत जब अयोध्या लौटा और समाचार जाना तो राम के बिना बहुत ही व्याकुल हो गया और अपनी माँ की स्वार्थ लिप्सा को धिक्कारता हुआ राम भैय्या को खोजने के लिए चित्रकूट जाता है। रामचन्द्र जी भरत को बहुत समझाते हैं। लेकिन भरत हठ करते हैं कि मैं आप को साथ लेकर ही लौटूँगा। अंत में राम ने जब आज्ञा देकर बाध्य किया तब भरत कहते हैं कि भैय्या में चरण पादुका ले जाकर सिंहासन पर बैठा लूँगा और इनका सेवक बनकर राज्य की व्यवस्था करूंगा।

विचार करो कितना महान् दृश्य होगा उस समय का जब **राम और भरत दोनों (गद्दी पर) बैठना नहीं चाह रहे हैं और आज के पिता उठना नहीं चाह रहे हैं, अंतर इतना ही आ गया है। राम की जन्म जयंती तो मनाई जा रही है क्योंकि भारतीय संस्कृति में कुर्सी से ऊपर उठने वालों की जयन्ती मनाई जाती है कुर्सी पर बैठने वालों की कोई भी जयन्ती नहीं मनाई जाती है।** हाँ! यदि उनसे और कोई स्वार्थ सिद्ध होता हो तो अवश्य हम मना लेते हैं। लेकिन आज के राजनेता राजसत्ता के भूखे हैं। एक सूक्तिकार ने लिखा था– **रजोनिमीलितगुणाः पदमर्जयन्ति कुपथे........ ॥** जो पढ़े

लिखे हैं, साक्षर हैं, वो भी कुपथ पर चलकर पद अर्जित करते हैं अर्थात् उन्मार्ग गामी हो जाते हैं, क्योंकि 'रजोनिमिलित गुणाः' जिस समय स्वार्थ परायणता आ जाती है, राजसत्ता समाप्त हो जाती है।

भरत को राज्य मिल रहा है। लेकिन वह कहता है मुझे नहीं चाहिए। "**न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नपुनर्भवम्। कामये दुखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।**" कितना उज्ज्वल भाव है, आज रामनवमी है। आप रामनवमी मना रहे हैं।

राम के नाम पर आप क्या-क्या करने का इरादा कर रहे हैं थोड़ा तो विचार करो। राम के जीवन को पहचानना चाहते हो लेकिन राम का नाम लेकर के रावण का काम करते हो तो ध्यान रखो राम के फल को कभी नहीं पाओगे। संसार कभी भी तुम्हें आदर्श रूप से याद नहीं करेगा, यदि करेगा तो वह अभिशाप के रूप में करेगा, कंटक के रूप में करेगा। यही कहेगा हमेशा-हमेशा कि एक आततायी हुआ था जैसा रावण। जंगल में रहकर के राम कहते हैं न कामये राज्यं मुझे राज्य की कोई आवश्यकता नहीं। न ही मुझे स्वर्ग की आवश्यकता है। न कामये मोक्षं मुझे अभी मोक्ष भी नहीं चाहिए क्योंकि "**कामये दुखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनं।**" जब तक संतप्त धरती को शांत नहीं देख सकूँगा तब तक मुझे मुक्ति में भी सुख का अनुभव नहीं मिलेगा। ऐसे राम थे। मुझे राज्य को छोड़ दुख से तपती हुई जनता का उद्धार करना है। ऐसा हृदय/ऐसी आँख राम की थी।

जिसमें करुणा का सरोवर हमेशा लहराता रहता था। नीर-क्षीर विवेकी हंस के समान विवेकवान थे राम, कितनी ऊँचाई को लेकर राम का जीवन था, हमारे पास वैसा व्यक्तित्व भी नहीं कि उस ऊँचाई को हम देख सकें। उसकी ऊँचाई को हम पा नहीं सकते, हम तैर नहीं सकते, उनके व्यक्तित्व के सरोवर में हम डुबकी लगा नहीं सकते। वो एक ऐसे अथाह सागर हैं, जिसमें हम डुबकी लगाने को चले जाये तो डूब जायेंगे, धराशायी हो जायेंगे क्योंकि हमारे पास उन जैसा व्यक्तित्व नहीं है। हमारे पास वैसी बुद्धि नहीं है, वैसा जीवन नहीं जो कि हम आदर्श जीवन आत्मसात् कर सकें लेकिन इसके उपरान्त भी पवित्र भावना से हम राम के जीवन को अंग-अंग में समा सकते हैं। फिर राम से पृथक हमारा जीवन रहेगा नहीं। लेकिन हमारे पास जो कुछ भी है, उसको निकालना होगा, समाप्त करना होगा, तब यह संभव है।

राम ने भरत को आज्ञा दी किन्तु भरत ने भी राम से कहा- मैं आपकी चरण पादुका को आदर्श मानकर अपने कर्त्तव्य का पालन करूँगा और यदि कर्त्तव्य से विमुख हो जाऊँगा तो मैं आपका भैय्या कहलाने योग्य नहीं रहूँगा। भरत चरण पादुका को सिंहासन पर विराजमान करके अयोध्या में आकर राज्य का संचालन करने लग जाता है। लेकिन भरत का तन यहाँ है किन्तु मन राम में लगा हुआ था बार-बार संदेश भेजता कि राम भैय्या मैं आपके बिना यहाँ पर कैसे रह सकता हूँ? लेकिन कभी-कभी तन की दूरी के माध्यम से आनंद का अनुभव दुगुना हो जाता है। आस्था में

अवगाढ़ता आती है। चलचित्र जितने दूर बैठकर देखते हो तो चित्र अच्छा दिखता है और पास में बैठने से अच्छा नहीं दिखता है। इसी प्रकार तन की दूरी मन को अधिक श्रद्धालु बना देती है निश्चत बात है। एक पतंग उड़ाने वाला बालक छत के ऊपर पतंग उड़ाने बैठ जाता है और वह पतंग बहुत ऊपर चली जाती है, लेकिन डोर की छोर एक उसके हाथ में रहती है, इस छोर को वह यूँ खींचता है, तो वह पतंग हाँ मैं तुम्हारे अधीन ही हूँ तुम्हारे साथ लगातार संबंध जुड़ा हुआ है और अपने सम्बन्धी की डोर के माध्यम से संकेत कर उड़ती रहती है। उसी प्रकार राम और भरत में प्रेम रूपी डोरी का सम्बन्ध है। भरत आनंद का अनुभव ले रहा है। हाँ भैय्या ने मुझे चरण पादुका देकर के बहुत बड़ा उपकार किया।

यहाँ प्रसंग में एक और आदर्श पात्र स्मरण करने योग्य है, जिसे बहुत कम लोग जानते हैं। वह है लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला। लक्ष्मण से उर्मिला ने कहा, मैं भी साथ चलूँगी तब लक्ष्मण ने कहा– यहाँ माँ अकेली है उनकी सेवा करनी पड़ेगी, तुम्हें यहीं रहना होगा, वह उर्मिला एक तरह सीता से बढ़कर निकली। सीता तो सहवासी यानि राम के साथ-साथ रही। स्त्री पति के साथ कहीं रहे वह उसका घर ही है। उर्मिला आशा एवं आज्ञा की डोर में बंधी रह गई। सीता राम के साथ में है लेकिन उर्मिला को तो सही-सही वनवास था। चौदह वर्ष तक बिना पति के रहना अपने आप में महानता है। सभी लोग राम लक्ष्मण को त्यागी कहते हैं उर्मिला का नाम कोई लेता ही नहीं। भरत का राज्य संचालन आवश्यक है। लक्ष्मण एवं सीता को राम का साथ मिलने के कारण से सूनेपन का विशेष अनुभव नहीं हो रहा है। वह राम के साथ हैं, जंगल किसी को जंगल लग नहीं रहा है।

इन घटनाओं को याद करने पर पता चलता है कि उस समय से ही त्याग की परम्परा मानी जाती है यह यही वंश रघुवंश माना जाता है। लेकिन रघुवंशी राम के जीवन में और हमारे जीवन में कितना अंतर आ गया। हम विपरीत दिशा में चले जा रहे हैं। उनके आचार-विचार और हमारा आचार-विचार बिल्कुल विपरीत देखने में आ रहा है। इतना तो हमें ज्ञात है कि रामनवमी है, मना रहे हैं लेकिन जीवन की दिशा, दशा एवं संस्कारों से संस्कृति जो आज बन रही है वह रावण नवमी की तरफ जा रही है। एक आक का दूध होता है और एक गाय का दूध होता है। रंग सफेद है अतः देखने में दोनों में अंतर ही नहीं है लेकिन गुण धर्म बिल्कुल विपरीत है। एक है जीवन विनाशक और एक पोषक है, जीवन दाता है। रावण की विचारधारा आक के दूध के समान थी और राम की नीति गाय के दूध के समान थी।

राम के जीवन के समान बनना चाहिए। राम के जीवन को हम अपने जीवन में देख सकते हैं। महावीर भगवान् को आज हम अपनी जीवन चर्या में देख सकते हैं। उनके जीवन के साथ हमारा मोक्ष अनुबद्ध हो सकता है। ये गठबंधन हमारे ऊपर आधारित है। यदि हम स्वार्थ परायणता छोड़ देते

हैं तो ये संभव है। **'न कामये अहं राज्य'** मैं राज्य की कामना नहीं करता, **'न स्वर्ग कामये'** स्वर्ग की इच्छा मैं नहीं रखता। **'न पुनर्भव'** पुनर्भव की भी मैं इच्छा नहीं रखता। **'कामये अहं एकमेव आर्तिनाशनम्'** एक मात्र में चाहता हूँ मेरी ये वाञ्छा है कि **'दुख तप्त प्राणिनां आर्तिनाशनम् कामये'** संसारी प्राणियों के आर्त की पीड़ा का अभाव कैसे हो? कब हो? ये मात्र मैं चाहता हूँ ऐसे जगत्कल्याणक राम जब जंगल जा रहे हैं। तब वहाँ की सारी की सारी जनता की आँखों में आँसू आ जाते हैं।

भरत जी यहाँ पर रह गये राम जी वनवास चले गये, सीता भी साथ चली गई। उर्मिला यहाँ पर आशा एवं आज्ञा की डोर से बंधी रह गई। ये चेतना के अनन्य उपासकों की कथाएँ हैं, जो आज वर्षों के उपरान्त भी हम लोगों को ऐसे बाध्य कर देती हैं कि तुम क्या कर रहे हो?, क्या कह रहे हो? और किस ओर तुम्हारी दृष्टि है? यह चैतन्य का भोग आज तक तुम्हें मिला नहीं। जड़ रूप भोग सामग्री मात्र आँखों की विषय बन गई है, यह इन्द्रियों के विषय मात्र हैं, वसुधैव कुटुम्बकम् यह बिल्कुल विलोम हो गया। वसु अर्थात् द्रव्य धन, द्रव्य को धारण करना हमारा जीवन बन गया। बाकी चेतना से हमारा नाता है ही नहीं केवल मशीन सी केवल यह यांत्रिक युग के पीछे दौड़कर केवल तन के अधीन होते चले जा रहे हैं। आदर्शमय चैतन्य की उपासना छूटती चली जा रही है।

राम के जीवन में कैसी-कैसी घटनाएँ घटी यह आपको ज्ञात है सीता की परीक्षा हुई कब/क्यों हुई? फल क्या हुआ? पास कौन हुआ? यह सब आपको ज्ञात है। सीता पास हुई, पास होने के बाद राम के साथ नहीं रहना चाहती है। आज का अंतिम प्रसंग है सीता राम के साथ रहना नहीं चाहती है और उस समय राम कहते हैं-नहीं इस परीक्षा के उपरान्त ही हमारा जीवन प्रारम्भ होना था और लव कुश हमारे हैं, ये राज्य करेंगे। सीता सोचती है जब परीक्षा में पास हो गये। फिर स्कूल से कोई मतलब नहीं रहता। स्कूल से मतलब केवल बुद्धि बढ़ाना है। अब राम के साथ कक्षा में रहकर हमें कुछ पढ़ना नहीं है। हम पास हो गये और आपकी कृपा हो गई। हमें उत्तीर्णता मिली १००/१०० आ गये। यह श्रेय आप पर चला जाता है और विचार करती है। आत्मा भिन्न है, शरीर भिन्न है इस सिद्धान्त को हमें अपनाना है। पहले राम-सीता अभिन्न हैं। गठबन्धन हुआ था किन्तु सीता ने वह गठबन्धन तोड़ दिया। अब दोनों अलग हैं कोई किसी का नहीं वह अस्तित्त्व शरीर के साथ था, छूट गया। सीता सोचती है अब कुछ और पढ़ाई नहीं करना। अब तो थीसिस लिखना है, अब तो शोध करना है, अब अनुभव करना है। अब शोध की भी आवश्यकता नहीं अब तो बोध करना है। अब विश्व का कोई भी व्यक्ति प्रलोभन नहीं दे सकता और बस वह सीता परीक्षा के उपरान्त पृथ्वीमती आर्यिका के पास दीक्षित हो जाती है। वह आर्यिका सीतामती बन जाती है। राम वंदना कर रहे हैं। राम कहते हैं- आज पुरुष के लिए मोक्षमार्ग क्या होता है? नारी के द्वारा ज्ञात हुआ। मैं भूल गया था, मैं बाहरी-बाहरी

राज्य विस्तार में रहा, इसी का अनुपालन करता रहा और मानता रहा यही मेरा कर्त्तव्य है लेकिन तुमने एक और आगे कदम बढ़ाये, ऐसा साहस जुटा लिया, ऐसा बोध प्राप्त कर लिया, साक्षात बोध के लिए चल पड़ी हो। धन्य हैं और वहाँ पर राम आर्यिका सीतामती की वंदना करते हैं, इसलिए लोग सीता-राम बोलते हैं। सीता पहले आर्यिका बन जाती हैं तो राम उनको वंदना करते हैं। यही एक मात्र निश्चत पथ है जिस पथ को अपनाने के बाद विश्व विश्व रूप में ज्ञात हो जाता है।

विश्व मेरा नहीं, विश्व किसी का नहीं। विश्व तो विश्व है। प्रत्येक कण-कण अपनी स्वतन्त्रता को लिए हुए है। ध्यान रखो जो सत्ता की भूख को मिटाना चाहते हैं वे यह नहीं सोच पाते कि दूसरे के ऊपर हुकूमत चलाना जघन्य कार्य माना जाता है। हाँ! यदि सामने वाला कह दे हम अनजान हैं, हमारे पास बुद्धि/शक्ति नहीं है, हमारे पास विवेक नहीं है, आप शक्ति सम्पन्न हो, कुछ दिशा निर्देश देकर मेरी रक्षा करो, तब अकिञ्चन भाव से मात्र अपना कर्त्तव्य पूरा करता हुआ विचार करता रहता है। निर्देश दे देता है, तुम्हारी सत्ता भिन्न है, हमारी सत्ता भिन्न है, इस प्रकार का जो अवलोकन अपने दिव्य ज्ञान से करता है, उसी का नाम सम्यग्ज्ञान है।

हम प्रत्येक व्यक्ति के ऊपर सत्ता चलाने के लिए लगे हुए हैं। राजसत्ता दूसरे के ऊपर सत्ता चलाने के लिए नहीं है, यह अनंतकालीन घोर दुख की परिपाटी है, यह रीति संसार को बढ़ाने वाली है, ध्यान रखिए! इस प्रकार समस्त संकल्प विकल्प छोड़कर सीता आर्यिका बन जाती है। सीता के इस वैराग्य से राम के हृदय की मोह ग्रन्थि ढीली पड़ गई। कुछ दिन के उपरान्त लव-कुश को राज्य व्यवस्था सौंपकर राम भी आत्माराम को खोजने की तैयारी में चल पड़े वह विचार करने लगे-

नाहं रामो न मे वाञ्छा, भोगेषु च न मे मनः।
शान्तिं समाप्तुमिच्छामि स्वात्मन्येव यथा जिनः॥

जिस प्रकार जिनेन्द्र भगवान् स्वात्मन्येव स्थित होते हैं। 'जिन' वह होता है, जो जीतता है अपनी आत्मा को, कर्मों को/कषायों को शान्त कर देता है। इन्द्रियों को वशीभूत कर लेता है, वह जिन माना जाता है। जिनेन्द्र भगवान् अपनी आत्मा में, सुख शान्ति में लीन हो गये हैं उसी प्रकार आज राम कह रहे हैं-'**नाहं रामो**' दुनियाँ मुझे भले राम कह दे लेकिन आज तक में चक्कर में था ये मुझे राम कह देते तो मैं अपने को राम मानता रहा हूँ। नहीं आज भेद-विज्ञान हुआ, भेद पता चला मैं आत्म सम तो हो सकता हूँ लेकिन आप लोगों के द्वारा कहा हुआ राम नहीं हो सकता। यह स्वयं राम कह रहे हैं वैराग्य के क्षणों में नाहं रामो-मैं राम नहीं हूँ। यह राम केवल शरीर का नाम है। न मे वाञ्छा-मुझे कोई इच्छा नहीं है। भोगेषु च न मे मनः-मेरा मन पंच इन्द्रियों के विषयों में कभी लुब्ध नहीं हो सकता। एक मात्र शान्तिमिच्छामि-मैं शान्ति को चाहता हूँ। इसका अर्थ-न सीता के साथ शांति मिली, न रावण को जीतने के उपरान्त शान्ति मिली न लक्ष्मण भरत आदि मिलने के उपरान्त

भी शान्ति मिली, बहुत लोग उनकी सेवा करने के लिए तत्पर हो गये, उसमें भी उन्हें शान्ति नहीं मिली। शान्ति बाहर नहीं, शान्ति भीतर है। वसन्त की बहारों में भी नहीं है, जंगल में भी नहीं है, भीतर मंगल में है। उसको देखने का प्रयास करो। आज नेत्र खुले हैं राम के। वो राम कह रहे हैं, **मैं राम नहीं हूँ, राम आज आत्मा के उन्मुख हो गये हैं, आत्मज्ञान उन्हें प्राप्त हो गया है। और सोचते हैं राम कि मुझे यथा जिन बनना है।** जिनेन्द्र भगवान् ने जिस प्रकार सुख शान्ति ढूंढी और सुख शान्ति में लीन हो गये। उसी प्रकार में भी केवल आत्मा में लीन होना चाहता हूँ।

एकाकी निःस्पृह शान्तः, पाणिपात्रो दिगम्बरः।
कदाहं संभविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षमः॥

मैं दिगम्बर कब बनूँगा, मुनि कब बनूँगा, मैं पाणिपात्री कब बनूँगा, ऐसा विकल्प करते हुए सोचने लगे, मुझे वस्त्रों की कोई आवश्यकता नहीं, मैं अकेला हूँ, दूसरे की कोई आवश्यकता नहीं, मैं निस्पृह हूँ, स्वभाव से मैं दिगम्बर हूँ मैं स्वयंभू बनना चाहता हूँ, संसार के जड़ कर्मों को काटना चाहता हूँ। जिन कषायों ने संसार को खड़ा कर रखा है, उसको मूल सहित उखाड़ना चाहता हूँ। जब तक हम पेड़ को काटते चले जाते हैं तब तक वसन्त की बहार में पेड़ पुनः कोपल को धारण कर लेता है। जड़ सहित उखाड़ देते हैं, तो कुछ दिनों में वह राख-राख हो जाता है, उसी प्रकार इस संसार का प्रासाद निर्मूल करना चाहता हूँ उसके लिए एक मात्र एकाकी होना आवश्यक और दिगम्बर होना अनिवार्य है। शरीर से ही नहीं भीतर से जो आत्मा में ग्रंथियाँ/कषायें बैठी हैं उनसे भी मैं दूर होना चाहता हूँ, निस्पृह होना चाहता हूँ यही राम की भावना/कामना है। यही राम की प्रार्थना है। यह दृश्य उस समय का प्रस्तुत किया गया है जिस समय राम इस भूमि पर गृहस्थ अवस्था में सीता की आर्यिका दीक्षा अपनी आँखों से देख रहे थे तथा संसार की असारता का अनुभव कर रहे थे। कुछ समय के बाद राम ने भी अपने चिन्तन के अनुसार दिगम्बर दीक्षा ले कर सिद्ध पद को प्राप्त कर लिया। आज राम संसार के बंधनों से छुटकारा पाकर अनंतकाल के लिए अनन्त धाम को प्राप्त कर सिद्धालय में विराजमान हैं। हमारी भी यही भावना है हम भी उसी पद को प्राप्त करने की साधना कर रहे हैं। हमें सिद्ध परमेष्ठी पद प्राप्त हो। ऐसे राम के सिद्धान्तों को और अपने जीवन से मुक्त राम को मैं नमस्कार करता हूँ।

❑ ❑ ❑

''अपने अपने कर्म का फल भोगे संसार''

जैसा बीज बोया जायेगा, वैसा ही फल प्राप्त होगा, यह नीति है। इस पर प्रत्येक का विश्वास है। फिर भी अज्ञान दशा में आँख बन्द करके बीज बोया जाता है और आँखें खोल कर फल खाया जाता है। फल जब खाता है उस समय हर्ष और विषाद करता है। जो मीठा फल होता है उसका

आनंद/उत्साह के साथ सेवन करता है, जब कड़वा फल मिलता है तो कहता है मुझे नहीं चाहिए, मुझे ऐसा क्यों दिया गया? ऐसी धारणा उसकी बन जाती है। अज्ञान दशा में बोया हुआ बीज जब फलता है, तब आँखें भर आती हैं। ''अपने-अपने कर्म का फल भोगे संसार'' यह निश्चत है, चाहे गरीब हो/अमीर हो, राजा हो या रंक हो, नर हो या नारी हो, गृहस्थ हो या संत हो। प्रत्येक के लिए यह अनिवार्य होता है कि किए हुए कर्म का फल उसे भोगना ही पड़ता है तो उसमें आगे-पीछे क्यों देखा जाये? और क्यों सोचा जाये? यदि उससे दूर होना चाहते हैं तो बीज बोते समय सोच लेना चाहिए।

कर्म रूपी बीज बोने का कोई समय नियत नहीं होता है, इसे समझ लें और हर समय जागृत रहें। बोने का कार्यक्रम प्रतिपल चल रहा है। जब वह भोजन कर रहा है, तब भी बीज बोया जा रहा है। कर्म का नया बीज बोता है, उसी समय में पुरानी फसल काटता भी चला जाता है। फसल की कटाव और बीज का वपन होना इन दोनों में एक क्षणवर्ती पर्याय बनकर कर्म बंध एवं निर्जरा की प्रक्रिया चलती रहती है। बोया तो अच्छा है, लेकिन बहुत बार ऐसा होता है कि काटते समय पश्चाताप होता है। अच्छा बोया जाता है, फिर भी फसल अच्छी नहीं आती और उसमें भी बुरा फल निकलता है। बोने के उपरान्त उसमें कलम पद्धति और चालू हो जाती है। पेड़ आया और उससे कलम पद्धति से दूसरा स्वाद लेना चाहें तो ले सकते हैं। इस प्रकार कर्मों के बोने में और फलानुभूति में भी अंतर आ जाता है। अच्छे भावों के साथ बोये थे, किन्तु बीच में भाव बुरे हो गये तो अच्छे भी बुरे के रूप में परिणत हो जाते हैं और कभी-कभी ऐसा भी होता है कि बुरे बोए जायें और अच्छा फल मिल जाये, लेकिन वह बहुत कम होता है। ज्यादातर तो बुरे का बुरा ही फल मिलता है।

बुराई का अच्छाई के रूप में संक्रमण कम होता है अच्छाई का बुराई के रूप में संक्रमण होने में देर नहीं लगती। बुराई का अच्छाई के रूप में संक्रमण होने में बहुत पसीना बहाना पड़ता है। आहार के लिए निकले हैं ऋषभदेव महाराज, अभी भगवान् नहीं हैं, भगवान् बनने के पथ पर हैं। यह बात अलग है, अभी भी वे महाराज हैं, पूज्य पद है और भोजन के लिए निकले हैं, किन्तु उनका भोजन नहीं हुआ है। क्यों नहीं हुआ? संभवतः आप लोगों ने विनय पूर्वक भोजन नहीं कराया होगा। महाराज हम तो तैयार थे पर वो क्या चाहते थे, हमें मालूम नहीं हुआ। एक दिन नहीं हुआ, २ दिन नहीं हुआ ऐसे छह माह निकल गए। क्यों निकल गए? आहार क्यों नहीं हो पाया? ''**अपने-अपने कर्म का फल भोगे संसार**'' तीन लोक के नाथ बनने वाले हैं और ऐसी अद्वितीय उनकी प्रतिमा/दिव्य शरीर है, जिसमें कोई झुर्रियाँ नहीं पड़तीं, जिनका शरीर सूर्य की भाँति चमकता है, जिस रूप को तीन लोक के प्राणी एक टक देखते रहने से भी तृप्त नहीं होते। ऐसा विश्व का कल्याण करने वाला नेता आहार को निकले और आहार ना हों, यह कैसी बात है। इतना तेज पुण्य है। ऐसा पुण्य

तो किसी का नहीं होगा जो वृषभनाथ भगवान् का था। जिनके चरणों में सेवा करके इन्द्र अपने को धन्य- धन्य कृतकृत्य मानता है, जिसके संकेत मात्र से कुबेर अयोध्या की रचना करता है। ऐसा इन्द्र जिनके चरणों में रहता है, जीवन में आदि से अंत तक लेकर, गर्भ में आने से पूर्व में ही सारी की सारी व्यवस्था जिसने संभाली थी, ऐसा व्यक्तित्व है, ऐसा तेज पुण्य होने के उपरान्त ऐसा क्यों हो रहा है? ''अपने-अपने कर्म का फल भोगे संसार'' आपको थोड़ा विलम्ब हो जाये भोजन में तो थाली ही चक्र बन जाती है। ऐसी भूख प्यास छह महीने तक कैसे सहन करते रहे? छह महीने के बाद उठे थे। छह महीने तक तो उन्होंने उठने का उपक्रम भी नहीं किया, तथा छह महीने तक उन्हें आहार नहीं मिला।

'कर्म फल' ये प्रत्येक व्यक्ति की हिस्ट्री प्रस्तुत करते हैं। कर्म इतिहास साक्षी हैं, प्रमाण हैं। इतिहास में क्या कब किया पता नहीं चलता। कई लोग पूछते हैं कि हमारा भविष्य बता दो तो मैं कहता हूँ जो वर्तमान में कर्म का उदय आ रहा है वही अतीत है और जो आज वर्तमान में कर रहे हो वही भविष्य है। कोई काल के द्वारा मिलने वाला नहीं, जो भीतर बंध रहा है, उसी के द्वारा फल मिलने वाला है। वह भविष्य के ऊपर डिपेण्ड करता है। ये इतिहास है किसी को भूखा रहना पड़ रहा है, किसी को प्यासा मरना पड़ रहा है। यह एक इतिहास है किसी को दुख हो रहा है, किसी को सुख मिल रहा है। गत रविवार में एक इतिहास हुआ था और यह जो वर्तमान रविवार है इसका भविष्य क्या होगा, इसकी प्रतीक्षा है। कोई काल के द्वारा फल नहीं मिलता। एक ऐसी रील, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव-भाव की मर्यादाओं के अनुसार चलती रहती है। कुछ परोक्ष होता है, कुछ प्रत्यक्ष आ जाता है, परोक्ष में बंध होता है क्योंकि बंध की प्रक्रिया हमारे दिमाग की बात नहीं है। दिमाग के द्वारा बंध तो होता है, लेकिन दिमाग का वह विषय नहीं बन पाता।

सत्य को नकारा नहीं जा सकता। इस सत्य को पहचानने की कोशिश करना चाहिए। जो प्रतिपल बोया जा रहा है वह आगे भविष्य का निर्माण करने वाला होता है। कई लोग कहते हैं महाराज ऐसा आशीर्वाद दे दो ताकि मेरा भविष्य ब्राइट हो, अच्छा/प्रकाशमय हो। कैसी विचित्र बात है। वर्तमान में अंधकार में रहें और माँग करें ब्राइटनेस की। ऐसा क्यों हो रहा है? इसे ज्ञात नहीं है कि मैं अपने भविष्य का निर्माता स्वयं हूँ और वर्तमान में अज्ञान के साथ कर्म कर रहा हूँ तो अज्ञान रूपी अंधकार मिलेगा, और ज्ञान के साथ कर रहा हूँ तो ब्राइटनेस अवश्य प्राप्त होगा।

मेरी आँखों के ऊपर कोई भी पर्दा डाल नहीं सकता, ये विश्वास जिसको होता है, वो भविष्य की चिन्ता नहीं करता है। जो अतीत में कुछ किया है वो मुझे फल न मिले ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। लेकिन इसमें एक युक्ति अवश्य है अतीत में यदि किया है तो उसको परिवर्तित किया जा सकता है, वर्तमान की लाईट में ये कार्य किया जा सकता है, अज्ञान दशा में किया हुआ कार्य ज्ञान

दशा में समाप्त किया जा सकता है, एक हद तक/एक सीमा तक। पूर्णतः समाप्त नहीं किया जा सकता। किन्तु हद तक आना भी एक बहुत अच्छा कार्य माना जाता है। कुछ न कुछ परिवर्तन संभव है, लेकिन यह तब संभव है जब हम रहस्य को समझ सकें। ऐसा नहीं, कार्य पूर्ण कर लो फिर उस कार्य को परिवर्तित करना चाहो तो संभव नहीं।

द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव-भाव के अनुसार ही ये परिवर्तन संभव है। अतीत में क्या-क्या कर आये हैं? इसका कोई भी अंत नहीं है। कब से करते आये हैं? इसका भी कोई अंत नहीं है। क्या करते आये हैं? इसके बारे में बताने की आवश्यकता इसलिए नहीं है कि जो वर्तमान में फल मिल रहा है अच्छा/बुरा यह अतीत का ही किया हुआ है। उठते हैं आहार के लिए ऋषभदेव, यह निश्चत है भूख लगी है, भूख मिटाने का इरादा है और सामग्री भी सामने है, लेकिन सामग्री मात्र जुटाने से भूख नहीं मिटती। भूख-भूख कहने मात्र से भूख नहीं मिटती। माँगने से बहुत जल्दी मिट जाती, यह भी गलत है। माँगने वाला माँग सकता है, देने वाला दे सकता है हाथ में। अपने हाथ से दिया जा सकता है और माँगने वाला व्यक्ति मुख तक ले आ सकता है और भीतर पहुँचने को है और चबाते-चबाते भी चाब बंद हो जाती है। देखते-देखते जीवन लीला समाप्त हो सकती है और कभी-कभी कोई व्यक्ति मरते-मरते नहीं मरता है। कब से देख रहे हैं पलंग पर पड़ा-पड़ा बेहोशी में जी रहा है। भेजना चाहे तो भी नहीं भेज सकते हैं, रोकना चाहेंगे तो भी रोक नहीं सकते, देना चाहें तो भी दे नहीं सकते, लेना चाहें तो भी ले नहीं सकते। यह बात प्रत्येक पल घटित हो रही है, प्रत्येक पल महसूस करने की बात है और वह महसूस करने की प्रक्रिया चालू हो गई एक दो दिन करके इस तरह छः माह निकल गये, सब लोगों को यही विचार आ रहा है कि क्या हो गया? क्यों नहीं हो रहा है आहार ऋषभ देव का? क्या चाहते हैं? सुनते हैं कि ऋषभनाथ के पुत्र भरत चक्रवर्ती के नाम से आज ये भारत विख्यात है, सुनते ये भी हैं सर्वार्थसिद्धि से अवधिज्ञान को लेकर उतरे थे, जब अवधिज्ञान है तो अपने आप सोच सकते हैं, कि पिताजी ऋषभनाथ जब आये हैं तो ये क्या चाहते हैं? क्यों आये हैं? और बार-बार क्यों आ रहे हैं? प्रतिदिन कोई संकेत नहीं कर रहे हैं, कोई अंगुली का इशारा भी नहीं, मुड़कर देखते भी नहीं, सामने जाने के उपरान्त कुछ देखते नहीं, सामने से ऐसा लगता है हमारी ओर आ रहे हैं और सीधे चले जाते हैं, ऐसा क्यों हो रहा है? कुछ तो होना चाहिए संकेत? अवसर्पिणी काल है, थोड़ा संकेत तो होना चाहिए। लोगों को दुविधा में मत रखा करो। हम तो तुच्छ प्राणी हैं, आप तो बड़े हैं, कम से कम इतना तो होना चाहिए। इशारा काफी हो जाता है, हम सब कुछ प्रबंध कर देंगे लेकिन इशारा कुछ नहीं होता है, न मौन तोड़ते हैं, न इधर-उधर देखते हैं। छह माह बहुत हो गये। आधा वर्ष हो गया सर्दी से गर्मी आ जाती है, एक अयन समाप्त हो जाता है, वैशाख शुक्ला तृतीया आखातीज यानि अक्षय तृतीया आ गई। आज वह पुनरावृत्ति समाप्त हो गई, किसके माध्यम से हो गई? भरत-

बाहुबली के माध्यम से, नहीं।

श्रेयांस राजा था, चारण ऋद्धिधारी मुनिराज को पूर्वभव में आहार दान कराया था, और आहार दान सीधा नहीं होता है, आहार दान की प्रक्रिया अपने आप में अलग होती है। उसकी शुरूआत उसका अंत कहाँ से होता है? आप लोगों को ज्ञात रहना चाहिए। चक्रवर्ती को ज्ञात नहीं रहा, संस्कार की बात है, ऐसे संस्कार भी नहीं होंगे उनके। नहीं तो अवश्य ही वह स्वप्न आ जाता चक्रवर्ती को, बाहुबली को और भी सेनापति आदि किसी को स्वप्न नहीं आया, राजा श्रेयांस को स्वप्न आया। हाँ, ये बात हो गयी भगवान् ने डायरेक्ट काम नहीं किया। स्वप्न से याद दिलाया, ये अच्छी युक्ति है, ऐसा आप लोग सोच सकते हो। लेकिन ध्यान रखना यह जैन धर्म है, इसमें साधु को कृत/कारित/अनुमोदना से त्याग करना पड़ता है। वह स्वप्न राजा श्रेयांस को अपने पूर्व भव के संस्कारों से आया था। संस्कार अपने आप उभर कर आ जाते हैं।

''**अपने-अपने कर्म का फल भोगे संसार**'' यह फैक्ट है, केवल पात्र का ही अंतराय होता है, ऐसा नहीं है। अंतराय कर्म का उदय दो के बीच में आता है, दाता और पात्र इन दो के बीच में आता है। अंतर एक में नहीं पड़ता, अंतर पड़ता है, वह दो के बीच में ये रहस्य माना जाता है। बिना पात्र के दाता का क्या उदय चल रहा है? ये ज्ञात नहीं होता है और बिना दाता के पात्र का क्या उदय हुआ है? यह भी नहीं जाना जाता है। लेकिन एक पक्ष हमेशा रोता है, एक पक्ष बिना रोये वहाँ से जल्दी-जल्दी निकलकर आ जाता है। एक पक्ष साक्षी बनकर रह जाता है, एक पक्ष साक्षी नहीं बन पाता, वह कहता है, हमारा महान् कर्म का उदय है।

यह कौन-सा कर्म? इसका कार्य क्या है? उमास्वामी तत्त्वार्थ सूत्र में कहते हैं- ''**विघ्नकरण मंतरायस्य**'' अच्छे कार्यों में विघ्न आना यह अंतराय कर्म है। बुरे कार्यों में विघ्न डालना, वह विघ्न नहीं, किन्तु वह अच्छा कार्य माना जाता है। बुरा कार्य रुक जाये और अच्छे कार्य चालू हो जायें वह विघ्न नहीं माना जाता-तो ''**श्रेयान्सि बहू-विघ्नानि**'' अच्छे कार्यों में ही विघ्न आया करते हैं। व्यक्ति के सामने वह कर्म नो-कर्म के रूप में उपस्थित हो जाता है, यह देखने में नहीं आता। राजा श्रेयांस को संस्कार के कारण स्वप्न पड़ा, स्वप्न के बाद वह सोचने लगे अरे बड़ी भूल हो गयी। छह महीने तक मुनिराज आये और चले गए और वो क्या चाहते हैं ज्ञात नहीं है। वह सोचता है कि हम लोग सब कुछ दे रहे हैं लेकिन नवधा भक्ति से नहीं दे रहे हैं। इसलिए प्रभु आते हैं और बिना कुछ लिए चले जाते हैं। यहाँ पर कुछ बातें विचारणीय हैं। पहली बात तो श्रावकों की गलती है कि वह नवधा भक्ति भूल चुके हैं उस भूल के कारण अहार नहीं हुआ छह माह तक। इस छह माह तक क्यों ध्यान नहीं आई नवधा भक्ति? अथवा छह माह तक श्रेयांस को स्वप्न क्यों नहीं आया? तो इसमें मूल कारण है दाता का दानान्तराय एवं पात्र का लाभान्तराय कर्म का तीव्र उदय।

श्रेयांस का भी कर्म का उदय था और प्रभु का भी। ये दान देना चाहते हैं 'दातुमिच्छति' देना चाहता है, लेकिन 'न ददाति' अन्तराय कर्म नहीं देने देता। इसी प्रकार लेने वाला लेना चाहता है, तो लाभांतराय कर्म का क्षयोपशम, उपभोगान्तराय कर्म का क्षयोपशम आवश्यक है, ये किसी को ज्ञात नहीं है। जब कार्य हो जाता है। पंच आश्चर्य हो जाते हैं। जब ज्ञात होता है, कि अरे अंतराय कर्म का उदय होने के कारण यह सब नहीं हो रहा था, नहीं हो सकता है। दान कार्य हो तो आश्चर्य हो। छह महीने तक यह पुण्य कार्य नहीं हुआ, बाद में श्रेयांस राजा के द्वारा यह कार्य सम्पन्न हुआ। पूछा गया, ऐसा कैसे हुआ? अवधिज्ञान जब था तो अवधिज्ञान से सोच लेता, देखो अवधिज्ञान से जब सोचा जाता है, जब अन्तराय कर्म का क्षयोपशम हो। सब कुछ सामग्री पास रहते हुए हम इसका प्रयोग करें, ये कोई नियम नहीं है। **''दाने-दाने पर खाने वाले का नाम लिखा है''** यह युक्ति यहीं विराम को प्राप्त नहीं होती बल्कि जैन सिद्धांत कहता है इसके साथ यह भी कहो कि दाने-दाने पर लिखा है देने वाले का नाम।

दाता और पात्र दोनों के नाम चाहिए तभी वस्तु व्यवस्था बनेगी। ''अपने-अपने कर्म का फल भोगे संसार'' यह बहुत रहस्यपूर्ण वाक्य है। दूसरे-दूसरे का नहीं, अपने-अपने कर्म का। माँ के कर्म का फल माँ को मिलेगा, पिता का कर्म पिता को ही फल देगा। बहिन का कर्म बहिन को ही फल देगा, पुत्र का कर्म पुत्र को ही फल देगा, ये निश्चत है। अपना-अपना फल मिलता है। कुछ सीमा तक परिवर्तन किया जा सकता है। उसकी एक पृथक प्रक्रिया है वह बंधा हुआ कर्म या तो स्वमुख से आयेगा या परमुख से आयेगा, अपने आप समाप्त नहीं होगा।

ऐसा तेज पुण्य भरत का नहीं निकला और किसी का नहीं निकला, किन्तु श्रेयांस राजा का निकला! भरत-बाहुबली का पुण्य फीका रह गया। ऐसा कौन-सा पुण्य है जो तीर्थंकर को बुला ले? तीर्थंकर तो तीन लोक के नाथ हैं, उन का तो बहुत तेज पुण्य है, लेकिन तेज पुण्य होते हुए एक लघु पुण्य के द्वारा भी सम्बन्ध को प्राप्त हो जाता है। इसमें कोई दो राय नहीं है। पूर्व का पुण्य है कि छह महीने के उपरान्त उनके दरवाजे पर खड़े हुए।

अब दूसरी तरफ विचार करें कि ऋषभदेव को छह महीने तक आहार क्यों नहीं मिला? कर्म जो पूर्व में बांधा, वह कर्म कहता है कि भले ही आप तीर्थंकर बन जाओ लेकिन जो आपने पूर्व में कर्म किया है, उसे अवश्य दुनियाँ के सामने रखूँगा कि आपकी क्या हिस्ट्री है? आपने क्या गुनाह किये हैं? ये दिखाना आवश्यक है। एक-एक घड़ी के लिए एक-एक माह का अनुपात लगाया जा सकता है। छह घड़ी के लिए अंतराय किया था, उन्होंने पूर्व जीवन में। ऋषभनाथ भगवान् का एक किसान के रूप में खलियान में बैलों के द्वारा दांय करा रहे थे। बैलों को ज्वार के सिट्टों पर घुमा रहा था, जिसके माध्यम से दाना अलग-अलग होता चला जा रहा था और बाकी भूसा अलग-अलग

होता चला जाता था, ये सारा का सारा कार्य चल रहा था। घुमाते समय एक बैल ने अपना मुँह मार दिया और ज्वार के सिट्टों को मुख में लेने का प्रयास किया। तो किसान ने दायें रोककर एक नहीं दोनों बैलों को भी मुश्का बांध दिया। नीचे मुख करता तो ऊपर से चाबुक मारता, यह छह घड़ी तक उन बैलों को मुश्का बाँधे रहा, फिर खोल दिया। छह घड़ी का कर्म यह छह महीने तक निकाचित कर्म के रूप में उदय में बना रहा, बैल खाना चाहता था और उसको बंद कर दिया। कोई हिंसा नहीं, लेकिन यह भी एक हिंसा हो गयी। यदि आप भोजन कर रहे हो और उसका मुख बंद कर दिया जाये तो? आपके सामने यह कहना चाहता हूँ कि मुश्का का यह फल मिला। मारा नहीं, पीटा नहीं, कुछ भी नहीं किया। आज तो बैलों का ही वध कर दिया जा रहा है।

कल एक लेख पड़ा था सोचना भारत की यह दशा हो गई। आज कहना पड़ता है कि क्या यह वही भारत देश है? यही कृषि प्रधान देश है, वे ही बैल हैं, वो ही गाय है, वो ही सब कुछ है। किसान की यह सामग्री मानी जाती है, पशु धन यह देश की शोभा मानी जाती है, जिसके परिश्रम के माध्यम से अनेक प्राण, अनेक मानव जीवित रहते हैं। लेकिन ऐसे उपकारी पशु धन का ही वध करने के प्रयास की व्यथा अखबार में लिखी हुई थी। दो ट्रकों में २५-२५ गायें, दो ट्रक में कैसे भर दिया गया? बताओ और पैर लोहे के तारों से बाँधे हुए थे, खून रिस रहा है और प्रत्येक के मुख में कपड़ा ठूँस दिया गया, ताकि आवाज न करें। ताकि उसकी आवाज आप न सुन सको। पुलिस को संदेह हुआ पुलिस पीछे पड़ गयी। ड्राइवर फरार हो गया। जनता एकत्रित हो गयी, गौशाला का प्रबंध था, उसमें ले जाकर के उनको रखा। उसमें कई गायें प्रसूति के योग्य भी थी। बोल भी नहीं सकतीं, आवाज भी नहीं दे सकतीं। भगवान् का नाम वह मन से ही ले रही थीं। यह राष्ट्र की नीति, प्रजातंत्र की नीति, यह कैसी राजनीति है? कुछ समझ में नहीं आता। जीवित अवस्था में उनके प्राणों को समाप्त कर देना और उस मांस को विदेश निर्यात कर देना और विदेश से मुद्रा मिलने के बाद भारत की उन्नति कर देना, क्या आप मंजूरी देते हैं? इस प्रकार से राष्ट्र का विकास आप चाहते हैं? नहीं चाहते। निर्दयता के साथ कत्लखाने की ओर ले जा रहे हैं फिर भी आप मौन बैठे हो। न पानी न भोजन की व्यवस्था। जीवित अवस्था में मरण का अनुभव? और कैसा अनुभव? बहुत कटु अनुभव। भीतर जो गर्भ में बछड़े हैं, उनका क्या होता होगा? उनके लिए हवा कहाँ से मिलती होगी? यह सब कुछ त्रासनायें, सब कुछ यातनायें, यह सब कुछ विपदायें? मूक जानवर सहन करते चले जा रहे हैं? क्या उनके जीवन के बारे में आप नहीं सोच सकते हैं?

ऐसी कौन सी आपकी परिस्थिति आ गई है? इस प्रकार गाय धन के निर्यात से, मांस के निर्यात से आप उन्नत देश बनाना चाह रहे हैं? हाँ महाराज। प्रत्येक नेता कहता है हम कटिबद्ध हैं, राष्ट्र को उन्नत बना करके ही रहेंगे, गरीबी मिटा करके ही रहेंगे। लेकिन ध्यान रखना! ऐसी दुर्नीति से

गरीबी नहीं मिटा सकते। भले ही गरीबों को ही मिटाते चले जायें। इन मुद्राओं के माध्यम से गरीबी नहीं मिट रही है, गरीब अवश्य मिट रहे हैं। जो व्यक्ति दो बैल दो गाय रखते हैं। उनका परिवार आनंद से चल रहा है। लेकिन धन का प्रलोभन देकर के उनसे आनन्द के साधन छीन लिये जा रहे हैं। ये बहुत अन्याय है और उस अन्याय को और हिंसा को देखते हुए यदि आप अक्षय तृतीया मनाते हो तो हमको समझ में नहीं आ रहा है। मेरा तो कहना है कि आज वृषभनाथ भगवान् का नाम भले ही मत लो तो भी चल जायेगा, लेकिन वृषभ का ध्यान अवश्य रखना चाहिए।

बचाओ उन वृषभों को ताकि आपका कल्याण हो सके। गाय भैंस सभी जीवों की कथा हम पुराण ग्रन्थों में पड़ते हैं, तो आप के समान वह भी व्रतों का पालन करते हैं, भगवान् के प्रति उनकी भी अटूट आस्था रहती है श्रावक होने के नाते। सम्यग्दृष्टि-सम्यग्दृष्टि के लिए उपयोगी बनना चाहिए। गाय बैल भैंस भी सम्यग्दृष्टि हो सकते हैं, वे घोषणा नहीं करते कि हम देश व्रती श्रावक हैं, उनके पास मानसिकता है, लेकिन मूक जानवर हैं। यह राष्ट्र उन्नति की बात करते हैं। आपके जीवन को उन्नत बनाने की बात करते हैं। गरीबी को मिटाने का नारा लगाते हैं। गरीबी तो दूर, गरीब ही मिटते जा रहे हैं। पशु गरीब हैं इनको मारकर मांस निर्यात करना क्या गरीब को मिटाना नहीं है। मुद्रा इसके द्वारा कितनी मिलती है? दिखाओ तो सही, ये केवल ५ अरब तक पहुँचने वाली है। लेकिन जानवरों की हत्या हो जाती है। कम से कम ५० से ७० लाख के बीच में जानवर कट जाते हैं। अब सोचिए कि यह संख्या और राशि कितनी मिल रही है? धन का उत्पादन तो अन्य स्रोत से हो सकता है, लेकिन जानवरों के उत्पादन के लिए कोई भी फैक्ट्री, कोई खान नहीं है। उसका एक मात्र स्रोत पुण्य के उदय से जन्म मिलता है और अधूरे जीवन में थोड़े से मांस के लिए उनको समाप्त कर रहे हैं। ये चेतन धन माना जाता है। ७-८ रविवार से इसी की चर्चा सुनी आप लोगों ने प्रवचनों से कि मांस निर्यात बंद आन्दोलन को कैसे भी हो हमें सफल बनाना है।

तीर्थंकर ऋषभनाथ होने वाला यह जीव भी अतीत में थोड़ी सी भी गलती कर देता है, तो उसे दण्ड मिला और इतना तेज पुण्य होने के उपरान्त भी उपसर्ग छह महीने तक हुआ। छह महीने तक घूमते रहे और वह ऋषभनाथ कर्मों को साक्षी होकर के देख रहे हैं और चिन्तन धारा चल रही है। देखो, मैंने ये अपराध किया था, उसका फल मुझे भोगना पड़ रहा है और आपको कौन सा फल मिलेगा? आप वोट देकर यह कह देते हैं, हमारी दुकान में कोई समस्या नहीं आनी चाहिए, न ही इनकम टेक्स ऑफिसर आना चाहिए, आ जाये तो वहीं के वहीं ठीक कर दीजिए फोन के द्वारा। ध्यान रखना! कभी इन मूक प्राणियों पर ध्यान दिया करो। यदि इन मूक प्राणियों की समस्याओं का ध्यान नहीं रखते तो ध्यान रखना डायरेक्ट, इनडायरेक्ट इनके प्रति अत्याचारों का समर्थन हो जाता है और वह पाप आपसे छूट नहीं सकता है। बड़े-बड़े कत्लखाने हैं जिनमें एक-एक दिन में १०-१०

हजार गाय-बैल काटे जा रहे हैं। एक कत्लखाने में दूर-दूर से जानवरों को बुलाया जाता है क्योंकि यहाँ स्थानीय जानवर नहीं मिलते तो देश भर से पशु ट्रकों में भरकर लाये जाते हैं और टनों-टन मांस का निर्यात होता चला जा रहा है। अनाज वायुयान से नहीं आता किन्तु जलयान से आना-जाना होता है। लेकिन मांस निर्यात के लिए अविलम्ब भेजना होता है नहीं तो सड़-गल जाये। इसलिए वायुयान के माध्यम से भेजा जाता है। ''लोभ पाप का बाप बखाना'' अब लोभ कैसा? इतनी हत्या के द्वारा ५-६ अरब कोई वस्तु नहीं होती।

९००-९०० करोड़ के एक-एक घोटाले सुन रहे हैं, जिसमें अरबों-अरबों की राशि समाप्त हो रही है और यहाँ पर कौन सी राशि की उन्नति हो रही है? कौन सी आमद हो रही है? और कुछ भी तो एक्सपोर्ट कर सकते हैं। धान्य का कर सकते हैं, कृषि प्रधान राष्ट्र होने के नाते फल-फूल का कर सकते हैं। ये भी कृषि के अंदर आ सकता है तो भारत से खनिज पदार्थ आदि का निर्यात करके बहुत अच्छी मुद्रा प्राप्त कर सकते हैं। आप भारतवासी हैं भारत में रहते हो तो राम, महावीर, आदिनाथ के आदेशों (उपदेशों) को अपने जीवन में अपनायें और सारे विश्व में अहिंसा विश्व धर्म की पताका फहरायें, यही मेरी भावना है।

❑ ❑ ❑

राजा की नियत-प्रजा की नीति

विश्वविज्ञं विधं वेदं वीरं वैराग्य-वैभवं।
संगमुक्तं यतिं बुद्धं, केशवं संभवं शिवम्॥

राजा और प्रजा इन दोनों का संबंध मूल और चूल जैसा है। वृक्ष के कई अंग हुआ करते हैं उसमें जो मूल अंग है मूल, जिसे जड़ कहते हैं, यह अंग पूरे वृक्ष की ताजगी के लिए हमेशा-हमेशा पुरुषार्थरत रहता है। वह मूल अंग, जड़ पाताल की ओर भी चला जाता है और उस वृक्ष की आवश्यकताओं की पूर्ति करता रहता है। वृक्ष तो कभी फल रहित भी होता है, कभी वह पत्तों रहित रह सकता है, कभी वह और भी अंगों उपांगों के बिना भी रह सकता है, किन्तु जड़ के बिना नहीं रह सकता। ज्यों ही मूल समाप्त हो जाता है, तो उसका पूरा का पूरा वैभव समाप्त हो जाता है। यह निश्चत है, इस संबंध को जो भूल जाते हैं या जो इस संबंध से अपरिचित रहते हैं वे उस पेड़ को काटना चाहते हैं, काट भी लेते हैं और यह मान भी लेते हैं कि पेड़ समाप्त हो गया लेकिन पुनः वह वृक्ष पूर्व की भाति ज्यों का त्यों हरा हो ही जाता है। कितनी भी बार काटें तो भी वह वृक्ष पुनः फैल जाता है अपने शीतल वैभव के साथ। लेकिन जब तक मूल सुरक्षित रहता है तब तक की यह बात है।

एक माली हैरान है, वह प्रत्येक दिन अपने बगीचे में जो फूल-फल के पेड़ लगे हैं, उनकी रक्षा एवं उन्नति के लिए प्रयासरत है, लेकिन एक दिन वह देखता है, सोचता है कि इस पेड़ को मैंने

खाद भी समय पर डाली है, पानी का सिंचन भी किया है, उसे लहलहाने के लिए लाड़ प्यार भी उसे दिया है फिर भी कौन सा कारण है कि यह ताजगी से रहित है। इधर-उधर वह देखता है कोई कारण ज्ञात नहीं है फिर बाद में वह सोचता है कि इर्द-गिर्द देखना ही पर्याप्त नहीं है, आगे पीछे भी देखना पर्याप्त नहीं है, बाहर देखना ही पर्याप्त नहीं है, भीतर भी देखने की आवश्यकता है। हम बाहर तो देख लेते हैं और समझ लेते हैं कि हमारा कर्त्तव्य पूर्ण हो गया। भीतर देखना भी आवश्यक है तो पेड़ के भीतर देखें। पेड़ के भीतर तो नहीं देख सकते क्योंकि पेड़ के भीतर देखने का अर्थ उसकी जड़ों की ओर देखना आवश्यक है। तो उसने थोड़ी सी मिट्टी को जो मूल के ऊपर थी उसको हटाना प्रारम्भ कर दिया और तीन-चार अंगुल नीचे की ओर चला जाता है। जाते-जाते वह वहाँ पर एक दृश्य देख लेता है, उसे विस्मय होता है और एक तरह से उसे अपनी अज्ञानता के ऊपर ग्लानि भी आती है।

ओ हो! इस ओर हमारी दृष्टि नहीं जा पाई, जड़ में छोटा सा कीड़ा लगा है। वह वृक्ष कुल्हाड़ी की मार को सहन कर सकता है, करने के बाद भी हरा हो सकता है लेकिन छोटे से कीड़े का मुख से जड़ में काटना वह सहन नहीं कर पा रहा था क्योंकि वह मर्मस्थल माना जाता है। उस पर छोटा सा प्रहार जीवन को ही समाप्त कर सकता है। ऊपर से लगता कुछ नहीं है लेकिन मर्म पर वह चोट कर जाता है। छोटा सा कीड़ा वह जड़ को काटने में लगा हुआ है। ऊपर का विशाल वृक्ष भी सूखने को हो जाता है। भरी गर्मी में ज्येष्ठ मास में भी, पानी सिंचन यदि ऊपर किया जाये, नीचे न किया जाये तो भी वृक्ष सूख जायेगा और नीचे मूल में पानी का सिंचन हो जाता है, ऊपर भले न हो तो भी लहलहाता है। ये कैसा संबंध है वृक्ष का? वृक्ष को पानी पिलाओ। ऐसा करने से मैं सोचता था, कोई मुख होगा वृक्ष में जिसमें माली पिलाता होगा। टहनी को डुबोता होगा पानी में, या और किसी माध्यम से पिलाता होगा। धरती को पानी पिलाओ का अर्थ यही होता है जड़ में पानी डालना। अर्थात् जहाँ जड़ वहाँ की मिट्टी का सिंचन करना ही वृक्ष को पानी पिलाना है।

वर्षा का जल यदि मूल में पहुँच जाता है तो उससे सम्पूर्ण रूप से सभी जगह हरियाली छा जाती है। उस कीड़े को उसने उठा करके अन्यत्र रख दिया और पुनः पूर्ववत् मिट्टी को पूर दिया। कल आकर के देखता है वो पेड़ खुश था नव चेतना दिख रही थी क्योंकि अब मूल में कोई वेदना नहीं थी। बाहरी वेदना कोई वेदना नहीं मानी जाती है क्योंकि बाहरी वेदना विकास के लिए कारण भी हो सकती है, हुआ करती है किन्तु भीतरी वेदना विकास में बाधक सिद्ध होती है। हमें राजा और प्रजा का सम्बन्ध क्या है? इसे समझाने का प्रयास करना चाहिए। आज चूँकि लोकतंत्र और प्रजातंत्र का समय आ गया है। तिथि गौण हो गई तारीख का साम्राज्य है, अभी ये तिथि स्वतंत्र नहीं हुई है। उस पर अभी तारीख का बोल बाला है। लोग तिथि भूल गये हैं, तारीख याद रखते हैं। तिथि भूल जाते हैं, वह अतिथि को भी भूल जाते हैं। अतः आप स्वतंत्रता की तिथि नहीं बता सकेंगे, स्वतन्त्रता की

तारीख कौन सी है, (सभा से आवाज आती है १५ अगस्त) ये स्वतन्त्रता का दिन है। फिर इसके उपरान्त स्वतंत्रता दिवस का अर्थ प्रजा को जिस दिन सत्ता मिली। राजा गायब, प्रजा को सत्ता मिली। प्रजा के अनुसार कार्य होगा। ये लोकतंत्र है, बहुत अच्छा माना जाता है, लेकिन इसकी अच्छाइयाँ इसका महत्त्व समझें तब हो सकता है, नहीं तो नहीं। प्रजा का और राजा का जो संबंध है वह यदि मिट जाता है तो प्रजा का स्वयं का क्या कर्त्तव्य है? समझ लें, नहीं समझती है तो प्रजा अपने लक्ष्य को कभी पूर्ण नहीं कर सकती। वर्षों के उपरान्त भी अभी प्रजा को ज्ञात नहीं है गहरी जड़, अपने कर्त्तव्य/स्वतंत्रता दिवस/गणतंत्र दिवस आने के उपरान्त ध्वजारोहण आदि आवश्यक औपचारिक कार्य तो हो जाते हैं, लेकिन प्रजा एवं राजा के कर्त्तव्य उनके द्वारा संपादित नहीं हो पा रहे हैं। देश की संस्कृति में लहलहापन किसके माध्यम से होता है। इसके लिए कारण क्या है? क्षेत्र काल है? प्रजा/राजा, कौन/क्या कैसे हैं? पहले हम अपने जीवन में खुशहाली लाना चाहेंगे तब बाद में ये बाहर की ओर आ जाती है। ये बाद की बात है। प्रसंग लेना चाहता हूँ कि हमारी मानसिकता में वह ताजगी आये। वह ताजगी क्या वस्तु है? वह एक-ताजगी और एकता-जगी वाली बात है। ताजगी तो चाहिए लेकिन कैसे मिले। पहले प्रजा को खुशहाली देने वाला राजा तो होता था।

राजा के द्वारा वह मिलती थी, लेकिन आज स्वयं सारे के सारे राजा हो गये, सत्ता चलाने वाला एक होता था और हम शासित होते थे और काम चलता था। एक उदाहरण द्वारा हम अपने भाव को व्यक्त करते हैं। एक छोटा लड़का कहता है माँ मेरा विकास कब होगा? मैं बड़ा कब बनूँगा? मैं आसमान को कब छूऊँगा? माँ सुनती रहती है, वह बेटा कहता है मैं जो प्रश्न पूछ रहा हूँ उत्तर दो। माँ कहती है बहुत अच्छी भावना है बेटे! तुम्हारी भावना फलीभूत हो और आशा पूर्ण हो, पर ये ध्यान रखना बेटा! आसमान को छूना बहुत आसान नहीं है। हम समझते हैं कि आसमान को देखना ही आसमान को छूना है तो आसमान को देखना और आसमान को छूना, बहुत अंतर है। माँ कहती है तुम्हारा कार्य पूर्ण हो बेटा, मैं भावना भाती हूँ। लेकिन कब संभव है बेटा यह? जब तक मेरे भीतर (पृथ्वी रूपी माँ के अन्दर) उतर कर तुम पाताल की ओर भी अपनी मजबूती की सत्ता प्रतिपादित नहीं कर सकते तब तक आसमान को छूने की बात भूल जाना चाहिए। बात आपको समझ में आ रही होगी। वहाँ पर पेड़ बड़ा होना चाहता है, पेड़ तो बड़ा बहुत जल्दी हो जायेगा, लेकिन तूफान आयेगा तो गिर जायेगा, यदि जड़ें मजबूत नहीं हैं।

लेकिन कुछ वृक्ष तूफान आने के बाद वह झुक जाते हैं, तूफान चला जाता है, तो फिर उठ जाते हैं, वह कौन उठता है, जिसकी जड़ें मजबूत होती हैं। जिसका मूल आधार मजबूत हुआ करता है। पेड़ का विकास दो तरफ से प्रारम्भ होता है, एक आसमान की ओर और एक पाताल की ओर। गहरी जड़ खाद और पानी की गवेषणा कर लेती है और वृक्ष को रस देकर हरा भरा कर देती है। इस

प्रकार विकास दिन दूना और रात चौगुना होता चला जाता है। इस प्रक्रिया को न समझ पाने के कारण हम तत्त्व की बात नहीं समझ पाते। पहले की बात भूल जाते हैं, कारण के बिना कार्य को समझने की चेष्टा करते हैं।

आपका जीवन ताजगी मय क्यों नहीं है? उसका कारण यही है ऊपर ही ऊपर आप सींचते चले जा रहे हैं। उसका मूल ही समाप्त हो गया। जो राजा का काम करने वाला था, वह राजत्व गुण खो बैठा है। आज प्रजा भी अपना प्रजापन खो चुकी है। अतः यथा राजा तथा प्रजा वाली कहावत समाप्त कर देनी चाहिए। जैसे मेघ ऊपर आते हैं तो किसान ये कहता है आजा-आजा। क्या आ जाये? और वर्षा हो भी जाये तो भी कुछ होने वाला नहीं है। यदि खेती हम ठीक नहीं रखेंगे, बादल आने से क्या मतलब निकलता है? बताओ। खेती यदि आपकी ठीक है, समय पर बीजारोपण है, अच्छे बीजों का वपन है, तो निश्चत रूप से जब कभी भी वर्षा होगी, फसल लहलहायेगी। इन घोषणाओं के माध्यम से फसल नहीं आने वाली, सो विचार करो। समय-समय पर यदि आप अच्छे कार्य करते चले जायेंगे तो आपके लिए वह शपथ ग्रहण सार्थक है और आप लोगों ने बिठाया है नेता पद पर लेकिन चुनावी प्रक्रिया में कहा जाता है कि ये चुनाव में खड़े हैं। खड़े होना पड़ेगा चुनाव में। बैठकर के चुनाव नहीं किया जा सकता है, धीरे-धीरे खड़े होना पड़ता है। जिसके पास दो पैर नहीं है, उसे भी चुनाव के लिए खड़ा ही होना पड़ेगा, ये नियम है। इसका अर्थ ये होता है कि जो खड़े होने का नियम नहीं रखता वह व्यक्ति प्रजा के लिए अथवा आप लोगों के लिए क्या कर सकता है? लेकिन ये बातें सब पुरानी होती चली गईं कि हमारा क्या कर्त्तव्य है? किस दिशा में अपन को कार्य करना है?

५० वर्ष हो गये, लेकिन ध्यान नहीं जा रहा है। प्रजा सत्तात्मक का अर्थ यही होता है कि **प्रत्येक की निष्ठा भी होनी चाहिए कि मैं अपनी ड्यूटी, अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करूँ। किस दिशा में मुझे कार्य करना है? स्व का कार्य हो जाये पर्याप्त है। प्रत्येक व्यक्ति अपना-अपना कार्य करता चला जाये, पूरा कार्य हो जायेगा**, इसी को बोलते हैं, प्रजासत्तात्मक चिह्न और वह राष्ट्र अन्य राष्ट्रों से अवश्य आगे बढ़ेगा लेकिन वह आगे नहीं बढ़ रहा है, अभी ५० वर्षों के उपरान्त भी। अपने लिए ऋण लेने की आवश्यकता पड़ रही है, योजनाएँ बन जाती हैं लम्बी चौड़ी लेकिन उसकी पूर्ति नहीं कर पाते हैं और क्यों नहीं कर पाते? एक व्यक्ति के मुख से हमने सुना था भले ही वह व्यंग्य होगा-अभी पंचवर्षीय योजनाओं में जो राशि निर्धारित की जाती है उसका चार आना भी अच्छे ढंग से उपयोग नहीं हो पाता। पंचवर्षीय योजनाओं के लिए ही चुनाव है? काम करने के लिए नहिं? वित्तमंत्री की आवश्यकता है बजट बनाने के लिए? जो अपने घर का या स्वयं का बजट पूर्ण नहीं कर पा रहा हो वह देश के बजट को बनाये तो कैसे काम चलेगा? बजट बनाने से कोई काम

नहीं चलेगा, उसकी पूर्ति भी आवश्यक है। लम्बी चौड़ी योजनाएँ हम बना लें, लेकिन उनकी कार्य रूप परणति न कर पायें, तो उन योजनाओं से कोई मतलब नहीं है। प्रयोजन किस दशा में है? योजनाओं का काम क्या है? मूल आवश्यकताओं को पहले प्रबंध कर दीजिए। जैसे मैं पूछता हूँ कि टिनोपाल का पहले प्रबंध करना चाहिए या पहले साबुन सोड़ा का? कपड़े को साबुन से धोया नहीं, साफ किया नहीं और टिनोपाल देने से क्या प्रयोजन? अच्छे ढंग से, गंदगी दूर होने के बाद टिनोपाल कार्यकारी है, वह बाद का कार्य है। स्टेण्डर्ड का कार्य चाहते हो, पहले स्टेण्ड तो हो जाओ। खड़े होने की हिम्मत नहीं और कहते हैं कि हमें स्टेण्डर्ड चाहिए। केवल बाहरी दृश्य की ओर जा रहा है मानव! पहले ये नहीं होता था। मूल के ऊपर दृष्टिपात होता था और इस ढंग से प्रजा का पालन हुआ करता था और आज स्वतन्त्रता के बाद भी प्रजा का पालन नहीं हो रहा है क्योंकि प्रजा पालन के लिए पालक की आवश्यकता है, दूसरी बात बालक अपने आपको पालक मान रहा है। प्रत्येक व्यक्ति पालक बनने की सोच रहा है।

अब बालकों का दर्शन ही नहीं होता। सभी जगह पालक-पालक बनने की होड़ लगी है। इसलिए आज के पालक, पालक की साग सब्जी जैसे बन गये। ये प्रजा की सत्ता हो गयी, अब पालन किसका करना, सब अहमिन्द्र/इन्द्र हो गये, हम क्या कम हैं? बस ये ही कहते चले जाओ। कम कोई नहीं है अधिक कौन है? भगवान् जानते हैं। बड़े कौन हैं? प्रजा राजा का संबंध पवित्र था, आज भी रहना चाहिए। इसका रूप भले बदल गया हो किन्तु जो व्यक्ति जिस स्थान पर नियुक्त किया गया है, वो व्यक्ति अपने ढंग से पालन/अनुशासन कराये तो बहुत कम वित्त में ही बहुत बड़ा काम हो सकता है लेकिन वह नहीं हो पा रहा है। ध्यान रखना, केवल अर्थ विकास से हम व्यवस्था पूर्ण कर लें ये संभव नहीं किन्तु परमार्थ के साथ यदि अर्थ का प्रयोग करते चले जायें तो अवश्य इसका बहुत बढ़िया काम हो सकता है, इतना खर्च करने की कोई आवश्यकता नहीं। पानी सिंचन के लिए एकाध लोटा सिंचन कर दो, पूरा का पूरा वृक्ष हरा हो जायेगा, लेकिन मूल यदि हरा है तो ये काम हो सकता है। मूल तो सूखता चला जा रहा है, बाहरी पानी का अंश शीघ्र समाप्त हो जाता है और भीतर से पानी पा लेता है, उसके लिए कुछ दिन तक पानी नहीं भी दिया जाये और ऊपर से सूर्य प्रकाश की तपन मिले तो भी वृक्ष हरा भरा रह सकता है और टिका हुआ रहता है और आप चले जायेंगे उसकी छाया में तो वह शीतलता प्रदान भी करता है। एक पौराणिक घटना आपके सामने मैं प्रस्तुत करता हूँ। वह कहाँ तक घटित होती है वर्तमान युग में यह हमें सोचना है। हमारे जो कुछ भी कदम हैं वह गलत दिशा में जा रहे हैं। हम अपने स्टेण्डर्ड के लिए बहुत कुछ वित्त खर्च कर रहे हैं, उसका उपयोग कहाँ तक है, ये भी देखना है, कभी-कभी करना भी पड़ता है लेकिन हमेशा ही करना पड़े ऐसी कोई बात नहीं। कभी-कभी कर लें तो चल सकता है-

एक राजा ने अपनी प्रजा से सीधे-सीधे कर न लेने की अपेक्षा बहुत सारे पहलू के द्वारा कर ले लिया वस्तु स्थिति ये थी। प्रजा तो ठीक चल रही थी लेकिन राजा को पैसे की कमी पड़ती थी, वो येन-केन-प्रकारेण प्रजा से वित्त को लेना चाहता था। सीधे तो राजा धन ले नहीं सकता अतः पहले एक शर्त रखी और कहा कि देखो ये तुम सब लोगों को पूर्ण करना पड़ेगी, यह नहीं करते हो तो ये कर देना पड़ेगा। प्रजा के सामने समस्या खड़ी हो गयी, इसको देखकर के सोचते हैं क्या करें? राजा की आज्ञा है, नहीं करते हैं तो दण्ड के रूप में प्राण दण्ड भी मिल सकता है। व्यक्ति उस समय घबरा गये। सोचने लगे अब तो हम बच नहीं सकते? एक बुद्धिशाली व्यक्ति ने पूछ लिया कि आप लोग घबरा क्यों रहे हो? समस्या क्या है? प्राण दण्ड के लिए समस्या है, येन-केन-प्रकारेण इसका हल करना संभव नहीं है। वह व्यक्ति पूछता है कि क्या बात है? बताओ तो सही! जनता ने कहा कि राजा का कहना है कि यह जो बकरा है एक माह बाद भी इसका वजन ३० किलो रहना चाहिए। कम हो जाये या बढ़ जाये तो भी नहीं चलेगा, यथावत् रहना चाहिए। ऐसा राजा का कहना है। कम बढ़ तो हम कर सकते हैं, थोड़ा कम बड़ खाने देंगे। क्या करें? अब तो मरना है। हमारे सामने यही समस्या है। वह सज्जन बोले- घबराओ मत इसका भी जबाब है। प्रश्न है तो उत्तर अवश्य है। कई लोग उत्तर की समस्या में डूब जाते हैं। जिसके पास प्रश्नों का कोष है, तो उसका ज्ञान विकास की ओर होगा। जो व्यक्ति प्रश्न उठा सकता है तो उत्तर भी होगा। आज आप लोगों की खोपड़ी प्रश्न हीन हो गयी। उत्तर की ओर देखते हैं। जब हम स्कूल में पढ़ा करते थे, गुरुजी गणित देते थे तो उत्तर की तरफ हम देखते थे और धन करना है, गुणनफल करना है इसका हमें कोई मतलब नहीं। बस कापी से उत्तर देखकर लिख देते थे। लेकिन ऐसे नम्बर नहीं मिला करते हैं। नकल के लिए भी अकल चाहिए। इसलिए शुद्ध लेख की परम्परा आयी, तुम देखकर के लिखो गलत हो गया तो नम्बर कटेगा। हाँ होशियारी के साथ लिखो, नकल से नहीं। बुद्धि विवेक के साथ लिखो। कहाँ, क्या, किस विधि से करना है? समस्याओं में कभी चिंतित मत होओ। उस सज्जन ने कहा-इस बकरे को ४-४ बार अच्छी तरह खिलाओ। गादी के ऊपर उसको सुलाओ, भाग्य खुल गया। उसको घास मत खिलाओ, दूध, घी खिलाओ दिन भर खिलाना, रात भर सुलाना, लेकिन ध्यान रखना उसके बाजू में दो सिंह के पुतला बना देना। बस सब कार्य ठीक हो जायेगा। पुतले हू-बहू शेर जैसे लगने चाहिए। एक माह हो गया और बकरे को लेकर एक माह बाद वह गया और कहा जितने किलो का यह बकरा था, वह उतना ही है, इसे संभालो। राजा सोचता है कि यह तो हमारे से भी आगे के निकले इन्हें फंसाने की/ अपने अंडर में लाने की बात सोची थी लेकिन इन्होंने प्रश्न का उत्तर दे दिया। हमारे से भी आगे के निकले। राजा ने पूछा कि यह वही बकरा है, कि दूसरा है। आप ही पहचान कर लीजिए। राजा ने पूरी की पूरी पहचान कर ली, ज्ञात हुआ कि यह वही बकरा है।

द्रव्य की ओर देखते हैं, तो वही मूल का ज्ञात होता है। द्रव्य पहले भी वही था और आगे भी वही रहेगा। बदलता सा लगता है, लेकिन वो बदलता नहीं, मूल में वह ज्यों का त्यों बना रहता है। यह द्रव्य का स्वभाव है। इतना विकास हो गया कि ऐसा लगता है जैसे आप लोग कहते हो कि यह वस्तु पहले १० रुपये में आती अब १०० रुपये में आने लगी ऐसा समझते हो कि दाम बहुत बढ़ गये। भाव नहीं बढ़े यदि दूसरी तरफ अर्थात् वेतन की तरफ देखें तो आज ३० वर्ष पूर्व में कोई १०० रुपये वेतन पाता था, आज वही ५००० पा रहा है। यानि ५० गुना आ गया क्योंकि ३० वर्ष पूर्व में १०० रुपये में १ तोला सोना मिलता था, आज तो ५००० रुपये में एक तोला मिलता है। ३० वर्ष पहले भी एक तोला और आज भी एक तोला आता है। महंगाई कहाँ बढ़ी? पहले द्रव्य को पकड़ने का प्रयास करो, पदार्थ की ओर मत देखो। यही स्थिति बकरे के सम्बन्ध में है। खाने से मोटा और खाने से पतला होता है, ऐसा नहीं। उसका मापदण्ड अलग है। राजा कहता है मैं तुम्हारे से प्रसन्न हूँ। पहले तुम ये बताओ तुमने एक माह में ३० किलो वजन ज्यों का त्यों कैसे रखा? खिलाया क्या? खूब खिलाया, मोटा ताजा क्यों नहीं हुआ? ये ही तो रहस्य है राजन्! राजा ने कहा कम से कम ये रहस्य तो बताओ, इसका भार ज्यों का त्यों कैसे रखा? कोई महाराज जी के पास तो नहीं गये थे, कोई जादू टोना तो नहीं किया था। जनता ने कहा– संत भी इस कार्य को नहीं कर सकते राजन्! क्योंकि कार्य तो उपादान की योग्यता पर हुआ करते हैं, उस बकरे के पास उपादान की योग्यता है। वह सज्जन उस बकरे को चार बार खिलाते थे। उससे जितना खून बढ़ता था सामने बंधे हुए शेर को देख उतना ही खून उसके डर से सूख जाता था। ये ही तो राज है राजन्! बकरे को सन्तुलित रखने का रहस्य राजा समझ नहीं पाया। केवल वित्त आ जाये, कोश समृद्ध हो जाये, यह वणिक बुद्धि जिस राजा के पास है, उसके द्वारा राज्य नहीं चल सकता। ध्यान रखो, पूरी-पूरी सम्पदा यदि राजकोष में चली जावे तो भी संभव नहीं। आज के नेता अच्छे ढंग से कार्य करे, ऐसी आशा कम है। प्रजा अपने कर्त्तव्य करती चली जावे तो भी राज्य का कोश अपने आप समृद्ध नहीं होगा क्योंकि दुराचरण रूपी शेर सामने बंधा है। किसान की कमाई को आज देश में बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार सब निगलता जा रहा है। बकरा खा लेता फिर प्रसन्नता के साथ इधर-उधर देखता है तो डर जाता है। अड़ौस-पड़ौस/आजू-बाजू के ऊपर आधारित है। तराजू आजू-बाजू के ऊपर आधारित है। उस रहस्य को कोई देख नहीं रहा है, समझ नहीं पा रहा है। इतनी जल्दी विकास और इतनी जल्दी विनाश। ये तो हाथ की बात है। एक दिन हाथ मिलाते हैं/शपथ समारोह होते हैं, समर्थन देते हैं, दूसरे दिन मित्रता समाप्त, समर्थन वापस। कैसे चलेगा यह देश?

देश में चुनाव होते हैं, लोग सोचते हैं, नई सरकार देश को समृद्ध करेगी लेकिन सरकार को तो चौबीस घंटे कुर्सी बचाने का डर लगा रहता है। त्रिशंकु सरकार की समर्थन की वापसी कब हो

जाये कहा नहीं जा सकता। अविश्वास प्रस्ताव रूपी शेर देश की योजनाओं को पुष्ट नहीं होने देता है। योजनाएँ बनाने मात्र से कोई विकास नहीं होता। परमार्थ हीन अर्थ की ओर जितनी दृष्टि रहेगी, उतनी ही देश में अराजकता/भ्रष्टाचार फैलेगा, अनर्थ होगा। संस्कृति विनाशक/अनर्थकारी अधिक अर्थ किस काम का? ऐसा वह गहना किस काम का जिससे नाक-कान कट जाये? ज्यादा अर्थ किस काम का जो जीवन की शांति भंग कर दे?

ज्यादा वित्त आयेगा, मद/अहंकार होगा, अनेक प्रकार के बुरे भाव होंगे, इसलिए दान पुण्य की व्यवस्था हमारे आचार्यों ने बनाई है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद जो बचता है, उसे दे दिया। कितना रखा है? संस्कृति रक्षा एवं परोपकार में धन को लगाना चाहिए, इसी का नाम तो रामराज्य है। जितना मशीन में आवश्यक है उतना दे दो न। इतना संग्रह, इतनी महत्त्वाकांक्षा की क्या आवश्यकता है? इसलिए भारतीय संस्कृति के अनुसार नीति हैं ''**मोटा खाओ, मोटा पहनो और विचार अच्छे रखो**'' गाँधी जी ने दो पंक्ति याद रखी थी ''**सिम्पिल लिविंग एण्ड हाई थिंकिंग**''।

आज उलट गया ''हाई लिविंग नो थिंकिंग'' कोई विचार की आवश्यकता नहीं। आज विचार निम्न होते जा रहे हैं। खाओ, पीओ, मस्त रहो बस! क्या जमाना आ गया? ये ही स्वतन्त्रता है? नहीं। आत्मा का स्वभाव जानना देखना है। हमें विचार करने की क्षमता प्राप्त नहीं है, तो अपने स्वभाव को कैसे जानेंगे, देखेंगे और कैसे राम/महावीर बनेंगे? कैसे हम हनुमान जैसे बनेंगे? हम उस कुल के उस वंश की परम्परा में लगे हुए पेड़ पौधे हैं, लेकिन आज समझ में नहीं आता किस ओर बहना चाह रहे हैं? लोग बहते जा रहे हैं, पता तक नहीं हम कितने बहकर आ गए। ५० वर्ष के बाद भी हम समझ नहीं पा रहे हैं, कि क्या स्वतन्त्रता है, क्या सत्ता है? और क्या उन्नति है, क्या अवनति है? ये नहीं समझ पाये, जीवन यूँ ही आया और चला गया। प्रवाह आया और बह करके चला गया। बाढ़ आ गयी और सद्विचारों को बहा करके चली गयी। सत्य क्या है? स्वभाव क्या है? ये अपने को समझने थे, इसीलिए यह स्वतन्त्रता थी। उस बकरे के माध्यम से राजा को समझ में आ गया कि बाधक साधनों से भी बचना आवश्यक है। यदि इर्द-गिर्द बाधक साधन हमेशा बने रहते हैं तो हमारे उपाय किसी काम के नहीं है। कितना भी आप करो इसका कोई परिणाम नहीं निकलने वाला है। वहीं के वहीं हम रहेंगे। यदि विकास चाहते हो, तो सही दिशा में विकास करो। जिसमें विकास के लिए अर्थ की आवश्यकता है, उतना तो रखो। जिस अर्थ से हमारा परमार्थ, संस्कृति, हमारा धर्म, हमारा कर्त्तव्य समाप्त हो जाते हैं तो उससे कोई मतलब नहीं रखना चाहिए उसके बिना भी चल सकता है। कम है ऐसा मत समझो। उसी में काम चल सकता है तो काम चलाना चाहिए, ये ही एकमात्र विवेक माना जाता है। यहाँ ज्ञान की आवश्यकता नहीं किन्तु विवेक की आवश्यकता है।

तीन शक्तियाँ हैं हमारे पास। उम्र के हिसाब से वह अपने आप में परिवर्तन लाती हैं, कम उम्र

में भी बहुत कुछ विवेक जागृत हो सकता है, किन्तु सबसे ज्यादा बढ़ोत्तरी होती है तो वह इच्छा शक्ति की होती है। वह २५ साल तक कायम बनी रहती है, धीरे-धीरे ३० साल तक वह घट करके अपने रूप में वह उभर करके आ जाती है, फिर इसके उपरान्त विकास हो जाता है, तो वह समय होने के उपरान्त विवेक जागृत हो जाता है। "**नियर अबाऊट फोर्टियस**" लगभग ४० तक आना चाहिए तब कहीं जा करके विवेक जागृत होता है। किसी-किसी को संस्कार के कारण, वंश परम्परा के कारण या अड़ौस-पड़ौस के प्रभाव के कारण कम उम्र में भी विवेक जागृत हो जाता है। हमें ज्ञान की नहीं, विवेक की आवश्यकता है। ज्ञानचंद नहीं बन सकते तो विवेकानंद अवश्य बन सकते हैं। विवेक का अर्थ भेद-विज्ञान होता है, अपना और पराया। विवेक का अर्थ होता है, अच्छा और बुरा। विवेक का अर्थ होता है, कौन साधक है, कौन बाधक है। इस प्रकार का विवेक जागृत होता है। तो बाधक को छोड़कर के साधक को अपनाने की कला अपने जीवन में आ जाना ही जीवन का एक प्रकार से नया कदम माना जाता है। इसी को उन्नति कहते हैं और उसी के माध्यम से सुख और शांति मिल जाती है। ये सब साधन हम लोगों को पूर्व भव के पुण्य के माध्यम से मिले हैं, उसी के अनुसार हम लोगों को चलने का प्रयास करना चाहिए। राजा को समझ में आ गया कि मैंने प्रजा को बिना प्रयोजन सताने का प्रयास किया। मेरा राज्य तो विवेकशील जनता के माध्यम से ही शान्ति का अनुभव करेगा। आज उस तरह के व्यक्तित्वों की आवश्यकता है।

❑ ❑ ❑
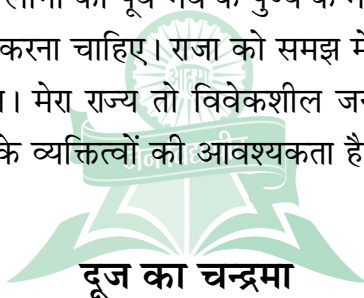
दूज का चन्द्रमा

शुक्ल पक्ष में गर्मी कितनी भी हो, फिर भी सुनते हैं समुद्र में एक प्रकार से ज्वारभाटा होना निश्चत है, विशेष रूप से सूर्य कितना भी तपे इससे कोई मतलब नहीं है। वह समुद्र में निश्चत रूप से उठेंगे। लेकिन कृष्ण पक्ष में क्यों नहीं उठते? १२ घंटे तपा सूर्य शुक्ल पक्ष में ज्यों ही दिन डूबता है, उससे पहले ही चन्द्रमा आसमान में विद्यमान रहता है। प्रकाश भी देता है और अनेक प्रकार के समुद्र में परिवर्तन भी ला देता है। उपमा दी जाती है, उसका जीवन दूज के चन्द्रमा की तरह प्रकाशित हो। ऐसा कहा जाता है क्योंकि चाहे गर्मी, सर्दी या वर्षा हो, हमेशा कहा जाता है। शुक्ल पक्ष के कारण ही वह मर्यादित कार्य चलता रहता है। दूज के उपरान्त तीज, चौथ इस प्रकार मुहूर्तों में भी शुक्ल पक्ष के मुहूर्त मंगलकारी माने जाते हैं। अच्छे कार्यों में शुक्ल पक्ष की तिथि मंगलकारी मानी जाती है।

१५ दिन तक क्रम से प्रकाश बढ़ता जाता है और एक तरह से प्रकृति में आह्लाद करने की क्षमता उस शुक्ल पक्ष में रहती है। सुनते हैं, शुक्ल पक्ष में अमृत कण बिखरते रहते हैं और ऐसे

बिखरते-बिखरते पूर्णिमा के दिन पूर्ण बिखर जाते हैं। इससे ठीक विपरीत कृष्ण पक्ष आ जाता है और उसमें ये खूबी रहती है। कृष्ण पक्ष आते ही चन्द्रमा समाप्त नहीं होता है, एक-एक कलायें गायब होती चली जाती हैं। पूर्णिमा के ठीक एक दिन बाद भी वही कृष्ण पक्ष है और एक कला फिर कम होना शुरू हो जाती है। कलाएँ घटती रहती हैं इसलिए कृष्ण पक्ष माना जाता है और कृष्ण पक्ष में समुद्र अपने आप बैठता चला जाता है। उन दिनों में भी यद्यपि प्रकाश मिलता है लेकिन वह दूज का चन्द्रमा नहीं माना जाता। दिन अस्त होते ही दिखने में आना चाहिए उसी चन्द्रमा को मंगलकारी माना जाता है। शिव जी की जटाओं में जो चन्द्रमा का चिह्न देखा जाता है वह शुक्ल पक्ष के दूज का माना जाता है। अब हमें अपने जीवन की ओर देखना है कि हमारा जीवन शुक्ल पक्ष के समान है या कृष्ण पक्ष जैसा है। हमारे जीवन के पक्ष किस ओर मुड़े हुए हैं और हम विनाश की ओर हैं कि विकास की ओर? ये हम देखें कि हमें भी कुछ शान्ति/आह्लाद/उत्साह के क्षण प्राप्त करना है। यदि कृष्ण पक्ष के समान हमारे जीवन में प्रकाश है, समय पर प्रकाश का प्रयोग नहीं हो रहा हो, उपयोग नहीं हो रहा हो, तो निश्चत ही हम अमावस्या की ओर हैं। अमावस्या की ओर जो कृष्ण पक्ष का चन्द्रमा होता है, उसकी कलाओं का प्रतिदिन अभाव होता रहता है। ऊपर से नीचे की ओर आता चला जाता है और शुक्ल पक्ष में नीचे से ऊपर की ओर होता चला जाता है। इसे लेश्याओं में इस प्रकार घटा सकते हैं। शुक्ल लेश्या यदि हीयमान होती है और पीत लेश्या वर्धमान होती है, तो पीत लेश्या हमारे लिए लाभप्रद होती है। किन्तु शुक्ल लेश्या हमारे लिए लाभप्रद नहीं हुई क्योंकि हीयमान है। कृष्ण पक्ष में हमें भले ही चन्द्रमा बहुत बड़ा मिलता है तो भी वह हमारे लिए हानिप्रद होता है।

प्रकाश अक्षुण्ण बना रहे। प्रकाश अक्षुण्ण शुक्ल पक्ष में बना रहता है। हमें सोचना है जब जीवन का अंतिम समय गुजरता है तो अंधियारा नहीं होना चाहिए। धीरे-धीरे भले ही उजाला बढ़ता चला जाये, लेकिन वह वर्धमान होना चाहिए। पीत से पद्म, पद्म से शुक्ल धीरे-धीरे होती चले जाये, हीयमान शुक्ल लेश्या ठीक नहीं है। वर्धमान पीत लेश्या ठीक है। उसमें हमारा संयम, हमारी दृष्टि ठीक बनी रहती है। उसके कारण सभी को लाभ मिल सकता है, स्व का तो लाभ उसमें है ही। ऐसा जीवन कैसे बने? इस प्रकार जीने को हमारे लिए कौन सी सामग्री का आलम्बन लेना है। किस सामग्री से हमारा जीवन विकासोन्मुखी होता है यह सोच लेना चाहिए। ५० वर्षों से लगभग स्वतंत्रता भारत को मिली। दिनों दिन अमावस्या की ओर भारत जा रहा है। कृष्ण लेश्या धीरे-धीरे बढ़ती चली जा रही है। प्रकाश समाप्त होता चला जा रहा है। मूल धर्म एक मात्र अहिंसा है। अहिंसा के अभाव में कोई भी धर्म, धर्म नहीं कहलाता है। भले ही उसे धर्म का नाम दे सकते हैं लेकिन मूल धर्म केवल अहिंसा है। अहिंसा के माध्यम से निश्चत रूप से वह धर्म पूज्य हो सकते हैं। आपका सत्य तब सत्य कहलाता है जब उसके पीछे धर्म रहता है। आपका अस्तित्त्व तब अस्तित्त्व कहलाता है, जब पृष्ठ के

पीछे धर्म रहता है। आपका निष्परिग्रह तब माना जाता है, जब उसके पीछे वह धर्म रहता है। वह धर्म है 'अहिंसा धर्म'। अहिंसा की पूजा करके परिग्रह को छोड़ना सार्थक है। जब अहिंसा को हम जीवित रखना चाहेंगे तभी आपका धर्म जीवित रह सकता है। यदि नहीं है तो सब धर्म बेकार माने जाते हैं। किसान खेती करता है, बीज सर्वप्रथम बो देता है उससे पूर्व में वह हल चलाता है कहीं देखा होगा आप लोगों ने जिस समय वह हल चलाता है। उस समय में बिल्कुल खुली जमीन रहती है।

मेढ़ रहते हैं, मेढ़ यदि रह भी जाये तो उसमें बन्धन कुछ भी नहीं रहता और बैल घूमना चाहते हैं तो वे दूर तक घूम के आ जाते हैं और जब वह जमीन तैयार कर दी गई, बीज वपन कर दिया गया, इसके उपरान्त अंकुर उत्पन्न हो जाता है, अंकुर उत्पन्न होते ही वह एक प्रबंध कर देता है, चारों ओर उसकी बाड़ी लगा देता है। ये बाड़ी क्यों लगाई? खेत कहीं चला न जाए। खेत न कहीं गया, न आगे जायेगा खेत तो वही का वहीं है। बाड़ी आती है और चली जाती है। फसल आती है और चली जाती है। किसान आता है और चला जाता है। खेत वहीं के वहीं रहता है। खेत की रक्षा के लिए बाड़ी है या खेती की रक्षा के लिए बाड़ी है? भारत की रक्षा के लिए धर्म है या भारतीयता की रक्षा के लिए धर्म है, यही भारत, समर भूमि में परिवर्तित होने वाला है। ये ध्यान रखो! भारत में प्रलय होने वाला है, ये भी ध्यान रखो। ये सब कुछ समाप्त होने वाला है, ये समाप्ति से पूर्व की बात यहाँ कही जा रही है। "**भारत की रक्षा आप नहीं कर सकते है, भारतीयता की रक्षा कर सकते हैं।**" अहिंसा रूपी बाड़ी लगाई गई है और स्वतंत्रता छिन न जाये, इसमें कोई दूसरे राष्ट्र आकर मुँह न मार लें इसके लिए लगाई है। अहिंसा इसलिए आवश्यक है कि धन की नहीं, वैभव की नहीं, ये तो होता रहता, आता रहता, चला जाता है, भारत के कुछ संस्कार जीवित रहें, इसके लिए यह काम किया गया है। किसान बीज बोने के उपरान्त, अंकुर होने के बाद ही बाड़ी लगाता है। किन्तु ५० वर्ष के उपरान्त भी यहाँ पर बाड़ी की व्यवस्था नहीं है। यदि भारत से अहिंसा ही उठ जायेगी तो मैं समझता हूँ यहाँ पर कुछ नहीं रहने वाला है। अहिंसा की रक्षा के लिए भारत ने आज क्या प्रबंध किया? भारत के लिए मैं समझता हूँ एक तरह से कृष्ण पक्ष चल रहा है, शुक्ल पक्ष नहीं है। दिनों-दिन, दिनों-दिन हिंसा ही हिंसा चारों ओर सिर उठाती चली जा रही है, अंधकार चारों ओर फैल रहा है, फिर बाद में कब शुक्ल पक्ष आयेगा? जिसमें आनंद की लहरें उठेंगी। आनंद की लहरें तब उठती हैं, जब आसमान में चन्द्रमा भले ही बादलों में छुपा हुआ क्यों न हो। अहिंसा देवता हमारे पूज्य देवता हैं। इसके बारे में हमने क्या बहुमान व्यक्त किया? उसको सुरक्षित रखने के लिये क्या किया? कुछ भी नहीं किया। कन्नड़ में कहावत है– 'बेलयुद्ध बलवन्न मेयदु' ये जो बाढ़ लगाई गई है, यही उठ करके खेती को खा गई, ये संभव है। भारत के द्वारा भारतीयता नष्ट हो रही है। जब यहाँ पर ब्रिटिश गवर्नमेन्ट काम करती थी, उस समय इतनी हिंसा नहीं थी जितनी की आज हिंसा हो रही है। आप लोग कहोगे कि

महाराज स्वतंत्रता मिलने के बाद कुछ न कुछ विकास होना चाहिए। ये हिंसा का विकास होता चला जा रहा है। पशुओं को सर्वप्रथम आप लोगों ने विषय बनाया। उनको समाप्त करके देश का विकास कर रहे हो, (अब तो धीरे-धीरे बच्चों को क्रूरता का शिकार बना लोगे तो निश्चत रूप से वह एक दिन आयेगा कि व्यक्तियों के ऊपर भी प्रहार करेगी यह विकास की हवस।)

आज भारत की स्वतंत्रता ५० वर्ष होने को हो गये लेकिन धर्म की ओर इतनी दृष्टि नहीं है, जितनी कि दृष्टि इसकी धन की ओर है और उसके धन के कारण ही यह धर्म को समाप्त करता चला जा रहा है। एक ऐसा समय आयेगा, इसके पास इतनी क्रूरता आ जायेगी कि वह किसी भी धन के लिए वह कुछ भी कर सकता है। अपनी उस धन की प्यास को बुझाने के लिए धनिक बनने के लिए वह किसी के भी ऊपर प्रहार कर सकता है क्योंकि येन-केन-प्रकारेण इसी को बोलते हैं। उसकी रफ्तार अपने आप ही बढ़ रही है। कोई मशीन चालू कर दी जाती है, कुछ समय लगता है, कुछ मिनटों के उपरान्त उसमें गति आ जाती है। गति क्या महाराज, प्रगति हो जाती है। यही हो रहा है। हिंसा का बटन दबा हुआ है। क्षण-प्रतिक्षण इसमें बढ़ोत्तरी हो रही है। ५० वर्ष के उपरान्त भारत में ऐसे हिंसा के संस्कार पड़ गये कि अब दया-दया कहते-कहते भी दया समाप्त हो जायेगी। क्योंकि कृष्ण पक्ष के होने के उपरान्त प्रतिदिन प्रति घंटा विलम्ब से चन्द्र प्रकाश मिलता है दूसरे दिन दो घंटे विलम्ब से होगा, तीसरे दिन ३ घंटे विलम्ब के साथ चन्द्रमा उत्पन्न होगा। तब तक तो अंधकार रहेगा। आज दया की बात ऐसे ही हो रही है।

पहले दया की गंध कैसी आती थी? सुन करके ही वह अपने आप दया के भाव आते थे, अहिंसा की उपासना किस ढंग से की जाती थी, वह आज पुराण ग्रन्थों तक ही सीमित रह गयी है। हिंसा का प्रखर ताप भीतर आ गया, अब वह पित्त भड़कायेगा। आप कितना भी अमृत कलश पिला दें, वह तो झटके के साथ बाहर आके रहेगा क्योंकि गर्मी बहुत पड़ चुकी। शरीर की प्रकृति अब समाप्त हो गयी। शरीर की प्रकृति जब संतुलित नहीं रही तो आप कूलर भी चला दो, तो भी जीवन रहने वाला नहीं और बाहर भले ही यह तपन हो, यदि भीतर प्रकृति स्वस्थ है, निश्चत रूप से आप कुछ भी खा लो, तो भी वह ९८ डिग्री से ऊपर बढ़ नहीं सकता। भले ही वह बाहरी तापमान ३५ डिग्री से लेकर एक-एक डिग्री बढ़ते-बढ़ते ५० डिग्री तक भी पहुँच जाये तो भी वह स्वस्थ प्रकृति भीतर बिल्कुल ठंडा करा के रखेगी और पसीना आ जायेगा। बिल्कुल मेनटेन हो जायेगा। यदि शारीरिक प्रकृति असन्तुलित है तो १०-२० डिग्री बाह्य तापमान में (कड़ाके के ठंड में) भी अन्दर का तापमान १०७-१०८ डिग्री हो सकता है। लू किस को लगती है महाराज, निमाड़ की लू प्रसिद्ध है। आपने अभी क्या देखा, अभी क्या जाना? ऐसी बात है। हाँ लेकिन लू में भी प्रवास किया जा सकता है। भीतर यदि पानी की मात्रा हो तो कोई बाधा नहीं। पर यदि पानी भीतर नहीं है और खाली बैठे हैं

तो कूलर के पास भी बैठे तो कूलर की हवा भी लू के रूप में परिवर्तित हो जायेगी ये निश्चत बात है। अहिंसा के बिना यदि ५० वर्ष निकाल दिये और आगे कूलर आ जाये विज्ञान के माध्यम से या बर्फ की डली पर भी आप बिठा दो तो भी आपका बुखार शांत नहीं होने वाला। स्वस्थ शरीर के लिए गरम पानी भी दे दो तो भी कूलर का काम कर जायेगा और अस्वस्थ शरीर के लिए बर्फ की डली के ऊपर भी बिठा दो तो वह गर्मी नहीं जा सकेगी क्योंकि बाहर के माध्यम से भीतर की गर्मी नहीं जाती। वो उसका अपने आप में अलग वातावरण होता है। जब अहिंसा देवता ही समाप्त हो जायेंगा तो शेष सारे के सारे धर्म किस काम के? किसी के काम के नहीं।

इसके लिए यह सब कुछ है, अहिंसा के अभाव में सब कुछ समाप्त है और इस अहिंसा को जीवित रखना है। आप लोग कहते हो कि महाराज अहिंसा की बात आप करते हो लेकिन कोई ऐसा आशीर्वाद दीजिये, जिससे धन लक्ष्मी खूब आ जाये फिर हिंसा अपने आप बंद हो जायेगी। यह आपका सोचना गलत है। धन की वृद्धि के साथ हिंसा और भड़केगी/अराजकता फैलेगी। यह भी ध्यान रखना धन लक्ष्मी जहाँ जायेगी वहाँ से शान्ति देवी लुप्त हो जायेगी। बाहर से लक्ष्मी आ जाती है तो शान्ति देवी जो कुल देवता है वो चली जाती है। आज जितना भी वित्त बढ़ता चला जा रहा है उतना ही वित्त या विज्ञान विकृत होता चला जा रहा है। पैसा आ जाता है तो पैसा किस स्थान पर खर्च करें यह दिमाग नहीं चल पा रहा है। जिस व्यक्ति के पास इतना भी दिमाग नहीं है कि अर्थ का उपयोग कहाँ पर करना है, यद्वा-तद्वा करेगा तो धर्म के स्थान पर अधर्म ही करेगा। अर्थ के माध्यम से जीवन में शांति मिलनी चाहिए, तो शान्ति तो नहीं मिलती है। शान्ति तो तब मिलती है जब हम अपनी बुद्धि से काम लें। धन का विकास उतना ही होना चाहिए जितना कि धर्म का विकास होता चला जाये। लेकिन आज बाढ़ उसी खेत को खा रही है। आज वही स्वतंत्रता अहिंसा को लुप्त कर रही है, आज वही स्वतंत्रता संस्कृति को लुटाने में जुटी हुई है।

अब ५० वर्ष में बहुत कुछ मिट चुका। अब शेष क्या रहा है? कृष्ण पक्ष में आपका गमन हो रहा है, अब धीरे-धीरे प्रकाश तो मिल रहा है लेकिन उस प्रकाश में वह आनंद नहीं है, लेकिन शुक्ल पक्ष टल चुका है। अब यह याद रखो यदि शुक्ल पक्ष का वातावरण बनाना चाहते हो तो संस्कृति दूर जो पीछे रह गयी है दृष्टिपात करिएगा, करना चाहें तो कर सकते हैं और यदि कर लिया तो संभव है कि वह लौटकर आ सकती है। दिन अस्त होने से पूर्व में ये कार्य होना चाहिए। १० योजनाएँ ५-५ वर्ष की हो चुकी यहाँ पर। लेकिन जैसी-जैसी योजनाएँ होती चली जा रही हैं वैसे- वैसे यहाँ पर जो शांति और समृद्धि आना चाहिए वो नहीं आयी।

हम बुंदेलखण्ड से इधर की ओर आ रहे थे, भिन्न प्रान्तों में/जिलों में होते हुए आ रहे थे। उस समय ये कहा गया कि ये जो हरियाली दिख रही है हरित क्रान्ति का फल है। इन नहरों के माध्यम

से सुदूर तक देखो वह हरियाली छाई है। मैंने कहा कि हरियाली को खाने वाले जानवर आज नहीं बचे। इनको तो समाप्त किया जा रहा है, तो हरित क्रांति कैसी? इसके उपरान्त श्वेत क्रान्ति लाने का और विचार है। तो श्वेत क्रान्ति कैसे आ जायेगी? श्वेत का अर्थ दुग्ध का उत्पादन आज तो सिन्थेटिक दूध आ गया, जल्दी-जल्दी चाहिए, असली दूध नहीं मिल सकता।

दूध भी, आज सुनते हैं रासायनिक पद्धति से दूध बनाया जा रहा है। वितरित किया जा रहा है। कालान्तर में इसके प्रकोप होंगे, एक साथ उसके दुर्गुण नहीं आते उसके परिणाम बाद में आते हैं। जब आते हैं तब तक तो बुद्धि समाप्ति पर ही रहती है। भिन्न-भिन्न खोजों के माध्यम से आज आविष्कार हो रहे हैं जिसके माध्यम से बदल-बदल करके विष की ओर दुनियाँ को ले जाया जा रहा है। किसी समय यहाँ पर चाय को कोई भी व्यक्ति नहीं जानता था लेकिन आज तो चाय लोकप्रिय है। इसके लिए क्या किया जाता था? हमने सुना था कि पहले मुफ्त ही बांटते थे और बुला-बुला करके चाय फ्री में पिलाते थे और पीते-पीते जैसे-जैसे वह आदत पड़ गई तो फिर इसके उपरान्त आज २ रुपये में एक कप मिलती है। कई लोग अष्टमी चर्तुदशी तो कर सकते हैं लेकिन चार बार चाय पिये बिना नहीं रह सकते। पर्व के दिनों में भी ऐसे लोग आ जाते हैं। महाराज हम उपवास १० कर सकते हैं। आप आशीर्वाद दें तो चाय तो ले सकते हैं? ये स्थिति होती है। तो वह अमृत छुड़वाया है, जहर की आदत डाल दी। विष दो तरह के होते हैं- एक कड़वा एक मीठा। अहिंसा को समाप्त करने के लिए ऐसे-ऐसे बोल आपके लिए दिये जा रहे है, हिंसा ने ऐसी जड़ें पकड़ ली हैं जीवन में। उनको समाप्त करना बहुत मुश्किल हो गया है। उसकी जड़ें पाताल तक पहुँच गयी हैं, उसके संस्कार इतने घने हो गये कि हम उनको निकाल नहीं पायेंगे। जहर जब पूरे शरीर में व्याप्त हो जाता है तो भरोसा कम रखना चाहिए। चिकित्सा कितनी भी कर लो वह जहर समाप्त नहीं हो पाता। निश्चत रूप से अंत ही होगा क्योंकि जहर रग-रग में व्याप्त हो गया। अहिंसा कण-कण में थी, अब हिंसा कण-कण में अवतरित हो गयी।

बाहर ही बाहर अहिंसा की बात करेंगे तो कुछ होने वाला नहीं है, आपको अब कटिबद्ध होना है, श्वेत क्रान्ति, हरित क्रान्ति के लिए आप सजग हो गये थे। उसी प्रकार पशु-धन आपके इर्द-गिर्द रहेगा। पशुओं को देखने से कभी क्रोध नहीं आता, आता भी है तो तात्कालिक आता है। पशुओं के सामने कुछ भी बातें कर लो, वह सुनते नहीं है, लेकिन एकान्त में आप कुछ भी बोलते हैं, तो दीवार के भी कान हैं, ऐसा कहा जाता है। पशुओं के भी कान हैं। ऐसा किसी ने नहीं कहा कि इनके सामने कैसा बोल रहे हो। गाय के सामने कुछ भी कह दो वह आपको दूध ही देगी। आपके खिलाफ कुछ भी कह नहीं पायेगी, वह हमारे लिए शत्रु नहीं है। मनुष्य को देख कर के आप मान करते हैं, मनुष्य को देखकर आप क्रोध करते हैं, मनुष्य के खिलाफ आप मायाचार कर देते हैं, मनुष्य से लोग और कुछ कर लेते हैं। लेकिन पशुओं से चारों कषाय आप नहीं करते हैं।

इसलिए पशुओं को देखकर क्रोध-मान-माया-लोभ हमारे लिए जागृत नहीं होते। बल्कि ये ध्यान रखना आपके कषाय शान्त करने में सहायक हो सकते हैं पशु। वह मित्रवत् है, वह मातृ तुल्य है, वह पिता के समान है। उसके माध्यम से कई निर्देशन आपको मिल सकते हैं। वात्सल्य अंग सम्यग्दर्शन का अंग माना जाता है, वह किसी मनुष्य को केन्द्र रखकर नहीं कहा गया। वत्स यानि बछड़ा और बछड़े के साथ गाय का जो सहज रूप से संबंध होता है, उससे उसका वात्सल्य का निर्माण हुआ। मतलब वात्सल्य का उत्पादन करने वाली जननी गाय है। सम्यग्दर्शन के एक अंग को ही समाप्त किया जा रहा है, फिर बाद में किसके साथ किसका क्या सम्बन्ध है वात्सल्य का अर्थ ही गायब हो जाये। गाय बैल (वृषभ) जब तक जीवित रहेंगे तब तक ही वात्सल्य अंग रह सकता है। हमारे विचार से असि, मसि, कृषि,वाणिज्य, शिल्प और विद्या ये छह कर्म हैं और ये भविष्यवाणी जब से ही है कि जब तक ये षट्कर्म हैं तब तक आपका सब कुछ चलता रहेगा, असि मसि समापन से सम्यग्दर्शन भी लुप्त हो जायेगा। वात्सल्य अंग भी समाप्त हो जायेगा। सहज रूप से करुणा, वात्सल्य, सहज रूप से प्रेम, सहज रूप से अहिंसा का दर्शन हम पशुओं से पा सकते हैं। प्रकृति कितनी भी कुपित हो जाये, किन्तु पशुओं में जो नियम हैं, उनका उल्लंघन नहीं होता है लेकिन मनुष्य कई प्रकार के परिवर्तन कर जाता है। कितने परिवर्तन कर लिए मनुष्य ने? ग्रीष्म काल की चीजें सर्दी के दिनों में और सर्दी की चीजें बरसात में लाना चाहता है। ये ही तो विज्ञान है। लेकिन इसके माध्यम से दिमाग खराब हो जाता है। प्रकृति-प्रकृति के अनुरूप चलती है। पशु-धन अनुकरण करते है। समन्तभद्र स्वामी जी ने रत्नकरण्डक श्रावकाचार में जितनी भी उपमा दी है, वह पशुओं की उपमा दी है। अभयदान में सुअर की, भक्ति में मेंढ़क की। मनुष्य के लिए कुत्ता भी अच्छा कार्य करता है। इसलिए कहा कि पशुओं में नेचुरल रूप से स्वाभाविक परिणति रहती है।

मनुष्य को आठ वर्ष के बाद सम्यग्दर्शन का नियम बनाया, पशुओं के लिए यह नियम नहीं। पशु के पास तो ऐसी क्षमता आ जाती है कि वह अंतर्मुहूर्त होने के उपरान्त सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है गर्भज हो या सम्मूर्च्छन कोई भी हो। सम्यग्दर्शन की शक्ति के उद्घाटन के लिए मनुष्य को ८ वर्ष अंतर्मुहूर्त चाहिए तो पशु के लिए एक अंतर्मुहूर्त आवश्यक है। कितना विकास, कितनी सहजता, कितनी धर्म के प्रति आस्था। सिंह के लिए भी ऐसा है? हाँ मनुष्य से जल्दी सिंह को सम्यग्दर्शन हो सकता है, नरसिंह की बात ही अलग है और सिंह की बात ही अलग है। घोड़े हैं कुत्ते हैं, गाय है, भैंस हैं, ऊँट, बिल्ली, हाथी सभी को यही नियम बता दिया गया। मनुष्य के लिए क्या-क्या प्रबंध करना पड़ता है।

मूलाचार में मुनि महाराज की चर्या को गोचरी कहा है। हाँ मुनिराज छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलने वाले हैं। उनको शिक्षा दी जा रही है कि गाय के समान चरो। घास नहीं उसकी वृत्ति

रखो, वृत्ति कैसी? गाय को चरने रख दो, फिर आँख उठाकर देखती नहीं। भरते चले जाओ, पेट भर गया बस! कौन दे रहा है, कैसा दे रहा है, कोई मतलब नहीं, शान्त भाव से लेती रहती है। इसलिए मुनियों के लिए भी गोचर्यावत् अपनी चर्या करने को कहा है मनुष्यचर्यावत् नहीं कहा, क्यों? मनुष्य खाता है, खिलाने वाले को भी खाता है, मनुष्य क्या नहीं खाता। अंत में माथा भी खा जाता है, लेकिन गाय कभी भी माथा नहीं खाती है। आपके माथे के विकास के लिए मिष्ठ दूध प्रदान कर जाती है। घास फूस खा करके भी वह अपनी गोचरी चर्या करती है। ये ध्यान रखना। इसके उपरान्त एक शब्द और आता है अपने कोर्स में 'गवेषणा' यह भी गाय शब्द से उत्पन्न हुआ है। गो से ही गवेषण होती है, यह गाय दूर तक चरने के लिए चली जाती है उसी प्रकार आप भी घर में नहीं बैठो दूर तक चले जाओ। एषणा समिति का पालन करते हुए गवेषणा करो। शुद्धि की गवेषणा करो, अशुद्धि की नहीं। शुद्ध आहार कहाँ-कहाँ मिलता है, शुद्ध चारा जहाँ तक खाने को मिले वहाँ तक चले जायेंगे। कितना भी परिश्रम क्यों न हो, वहाँ तक वो पहुँच जायेगा। गवेषणा, गोचरी वृत्ति एवं वात्सल्य ये तीन शब्द कोर्स में आज गौरवशाली हैं जो मनुष्य के लिए दिशाबोध के रूप में मंत्र का काम कर रहे हैं। गोधूलि काल को मंगल यानि गायें जब चारा चर कर गाँव की तरफ लौटती हैं उस काल को मंगल कहा है।

कृष्ण पक्ष की भयंकर अमावस्या सामने हैं और पूर्णिमा बहुत पीछे रह गयी, चन्द्रमा का दर्शन अब संभव नहीं है। ऐसे पवित्र आदर्शों को प्रस्तुत करने वाले इन पशुओं को सरे आम कत्ल कराया जा रहा है। इन शब्दों से इतना ज्ञात होता है कि अवश्य ही पशु के माध्यम से मानव का जीवन एक प्रकार से आह्लादित हो उठता है। दया धर्म इनके माध्यम से निश्चत रूप से आगे बढ़ा जा सकता है। उसको यदि जीवित रखने का संकल्प यदि आप लोगों का है तो यह कार्य आप लोगों को तात्कालिक कर लेना चाहिए। कल का आज और आज का अभी कर लेना चाहिए। जिसके द्वारा और हानि होने वाली है, वो यहीं की यहीं रुक जाये और आगे विकास के लिए हमारे रास्ते प्रारम्भ हो सकते हैं। ५० वर्ष भले ही चले गये लेकिन आज भी यदि प्रारम्भ कर दें तो बहुत जल्दी प्रगति हो सकती है। भारत, प्रभु भजन करने वाला देश है। प्रभु का भजन करने वाला व्यक्ति हमेशा-हमेशा अहिंसा की उपासना ही करता रहता है, अहिंसा को अपना जीवन मानता है, एक-एक अंग में अहिंसा उसके फूटती है, उसी के माध्यम से उसकी जीवन चर्या आगे बढ़ती है। प्रत्येक मानव अपने ऊपर अहिंसा के ही संस्कार डालता है, तभी यहाँ जन्म लेना सार्थक माना जाता है, ये ध्यान रखो। कुल हैं स्वदेश हैं, जहाँ पर अहिंसा पाली जाती है, वहाँ पर जन्म होना बहुत कठिन माना जाता है, दुर्लभ माना जाता है। आप लोगों का जन्म हुआ तो है लेकिन अब अगले जन्म के लिए क्या भूमिका कर रहे हैं? यह आप लोग देख लो। यहीं से उत्थान होता है और यहीं से बहुत बड़ा पतन भी होता

है। पतन के चिह्न देखने में आ रहे हैं, उत्थान के चिह्न बहुत कम नजर आ रहे हैं। अभी इसमें कुछ लिखा जा सकता है, उसमें कुछ किया जा सकता है। एक पल भी भारतीय होने के नाते अहिंसा की सेवा की जाती है तो पल्योपम काल तक भी वह शान्ति साम्राज्य की स्थापना की क्षमता रखती है। पल्योपम काल तक वह एक पल भी कार्यकारी हो सकता है। उस क्षण को गंवाना नहीं, जितना बने उतना कोशिश करके उसी ओर बढ़ने का प्रयास करना चाहिए।

❑ ❑ ❑

मृग का आदर्श

जैसे आप लोग एक समाज के अंग के रूप में अपने आपको महसूस करते हैं, समाज की कुछ व्यवस्थाएँ होती हैं, सबके सहयोग से उसको पूर्ण करने का प्रयास करते हैं। ऐसे ही पशुओं की भी व्यवस्था होती है। एक जंगल में सिंह रहता था। वह प्रतिदिन २-४ जानवरों को मारता था और एक जानवर को खाता था। सभी जानवरों ने मीटिंग कर व्यवस्था बनाई कि व्यर्थ में अनेक जानवर मरने की अपेक्षा प्रतिदिन एक जानवर वनराज के सामने उनके भोजन के लिए प्रस्तुत हो जाया करेगा। व्यवस्था बना ली गई। वनराज ने स्वीकार कर ली। व्यवस्था के अनुसार अनेक मेम्बर बन गये, उनमें एक सदस्य खरगोश भी था वह सोच रहा है मेरा नम्बर कब आ जायेगा। लेकिन जब सदस्यता अंगीकार कर ली है, तो नम्बर तो आयेगा। अपनी-अपनी बार वाली बात है। जब जीवन प्राप्त होता है तो मरण साथ ही चलता है। जब दीपक में बाती डालकर उसको जलाया जाता है, तो यह निश्चत है कि एक दिन तेल समाप्त होगा, वह भले ही अंतिम बूँद के लिए सोचे कि मेरा नम्बर तो बहुत बाद में आयेगा, लेकिन आयेगा अवश्य। एक दिन उसका क्रम आ गया तब तक उसने यह भी सोच रखा था कि जिस दिन मेरा नम्बर आयेगा तब मुझे क्या करना है? जैसे पहले के क्रम में हुआ है वही करना है कि कुछ और करना है? उसका क्रम आया तो वह सहर्ष तैयार हो गया। इसको देख करके जिनका नम्बर आने वाला था वे घबरा रहे थे। उन्होंने सोचा कि भैया ये कौन सा व्यक्तित्व है जो सहर्ष एक चुनौती की बात कर रहा है, हम मरेंगे नहीं जीवित लौट कर आ जायेंगे। आज आखिरी नम्बर होगा इसके बाद किसी को नहीं जाना पड़ेगा। सभी लोग सोच रहे थे छोटा सा खरगोश है घबरा जायेगा। संसारी प्राणी को मृत्यु का नाम सुनते ही घबराहट हो जाती है। ये कुछ समझ में नहीं आता, वह प्रत्येक समय घबराहट के कारण अपनी उम्र, अपनी बुद्धि अपनी संस्कृति को खोता रहता है और इसके परिणाम स्वरूप १० दिन के बाद जो मृत्यु है वो १० दिन पहले ही आ जाती है। उज्ज्वल संस्कृति भी धूमिल हो जाती है और जो बहुत दुर्लभ बुद्धि है वह पागलपन की ओर अपने आप बढ़ने लग जाती है। उसने ऐसा नहीं किया, बुद्धि का प्रयोग किया। उसने सोच लिया था कि अपने को सफलता प्राप्त करनी ही है और वह आगे बढ़ता है सहर्ष। आज मेरा नम्बर

है। जहाँ जाना था उसे वहाँ जाता है। थोड़े विलम्ब से जाता है, थोड़ा विराम कर लेता है, फिर दूर से आवाज करता हुआ वहाँ पर पहुँच जाता है।

आज इतना छोटा जानवर आया वह भी विलम्ब से? वनराज कहता है– क्यों रे! इतनी देरी से क्यों आया? तब खरगोश ने कहा–क्या करूँ? रास्ते में एक आप जैसा ही दूसरा शेर मिल गया था और वह मुझे पकड़ने लगा तब भागता हुआ छुपकर बहुत लम्बे रास्ते से होकर आया हूँ राजन्। वनराज सोचने लगा वह कौन हो सकता है? यदि ऐसा हुआ तो प्रतिदिन हमारे शिकार को रोकेगा। वनराज कहता है चल पहले बता वह कौन है? कहाँ रहता है? पहले उसी का काम तमाम करता हूँ बाद में तेरा करूँगा। चलिये राजन्! हम भी यही चाहते हैं। वह इसी जंगल में एक कुँए में रहता है, जैसी आपकी आवाज वैसी उसकी आवाज, जैसी आपकी काया वैसी उसकी काया, जैसा आपका आकार वैसा उसका आकार है। जो कुछ है उसमें और आप में कोई अंतर नहीं। कौन हो सकता है? शेर बोला। वो कौन हो सकता है, आप जानो। लेकिन उसी की हरकत के कारण विलम्ब हुआ। मेरी गलती क्षम्य हो, आपने जिसके लिए बुलाया मैं तैयार हूँ। नहीं-नहीं ये कार्य बाद में होगा। वनराज कहता है–डरो मत मेरे साथ चलो। जैसी आपकी आज्ञा। आपके सामने हम क्या कह सकते हैं? हम तैयार हैं। हम यहाँ से जायेंगे नहीं। अच्छा ये बताओ जाना कहाँ पर है? जो बड़ा था उसे आगे होना चाहिए। लेकिन बुद्धि का ऐसा प्रभाव रहता है, वह खरगोश आगे-आगे हो गया और वह शेर पीछे-पीछे हो गया, अभी कितनी दूर है? महाराज अभी पास ही है। चल-चल जल्दी चल। यहाँ तो कुछ नहीं दिख रहा है, ऐसे नहीं दिखता महाराज। आवाज नहीं आ रही है, ऐसी अभी आवाज नहीं आयेगी क्योंकि अपने-अपने क्षेत्र में हम पहुँच जाते हैं। आवाज प्रारम्भ हो जाती है, अपने-अपने महल में ये सब कार्य होता है। अपने-अपने वार्ड में ये सब कार्य होता है, अपने पक्ष के सामने ही ये सब कुछ कहा जाता है। जब विपक्ष आ जाता है, तो पक्ष बलवान हो जाता है। यह सब हमेशा तुलनात्मक चलता रहता है। चल जल्दी बता वो कहाँ पर है? इधर आइये वह कुँए के किनारे पर गया। महाराज धीरे से देखना, क्यों धीरे से देखें? तो उधर से आवाज आती क्यों धीरे से देखें? तू कौन है? अन्दर से आवाज आती है तू कौन है? मैं बोल रहा हूँ इधर आओ, फिर आवाज आती है मैं बोल रहा हूँ इधर आओ। ये जैसी आवाज देता है वहाँ से भी वैसी आवाज आती है। आप थोड़ा सा झुक करके देख लीजिए, झाँक लीजिए वो दिखेगा। तो वह झाँकता है। भीतर झाँकने के उपरान्त वस्तुतः उसमें कोई भी अंतर नहीं था। जैसा ये यूँ झाँकता, तो कुंए में जैसी उसकी मूँछें, वैसी उसकी मूँछें, ये भी तनी हुई, तो वो भी। ये भृकुटी चढ़ाकर देखता तो वह भी भृकुटी चढ़ाकर देखता। एक्शन में कोई भी अंतर नहीं। गुस्सा आ जाता है और आप लोगों को ज्ञात है, बुद्धि तब तक काम करती है, जब तक होश हवास रहता है।

जब व्यक्ति क्रोध, आवेश में आ जाता है तो पारा गरम हो जाता है और गरम पारा होने के उपरान्त ठंडा होना मुश्किल होता है। बुखार नापने का थर्मामीटर होता है। गर्मी के कारण उसका पारा चढ़ जाता है। उतारने के लिए झटका मारना पड़ता है। शेर का भी पारा गरम हो गया प्रतिपक्षी को देखकर छलांग लगा देता है। खरगोश मौन है, वह जान रहा है कि वहाँ पर न पक्ष है न विपक्ष है, मात्र अपनी छाया को ही प्रतिपक्षी समझ रहा है। जब अपनी छाया, शत्रु रूप में दिखने लग जाय तो विनाश निश्चत है। कौन-सी कक्षा में? दूसरी कक्षा में, छोटी कहानी यह पढ़ी थी।

वह छोटा सा खरगोश और वह सिंह। यह मृग है, वह मृगराज है, वन का राजा माना जाता है। प्रजा की अपनी बुद्धि हुआ करती है। जब कभी भी पुराण उठाते हैं तो पढ़ने में आता है कि जब राजा प्रजा को सताने लगता है तो प्रजा मिल कर राजा को शिक्षा देती थी और नहीं मानता था तो राजगद्दी से उतार देती थी। प्रजा के प्रतिकूल नहीं चल सकता, राजा प्रजा पर अनुशासन जरूर रख सकता है। राजा प्रजा के हित की बात सोचे और प्रजा राजा की आज्ञा स्वीकार कर अनुशासन में रहे तो देश में सुख समृद्धि रह सकती है।

एक-दूसरे के होकर के हम अपना कार्य कर सकते हैं। दोनों आँख के सहयोग से कार्य होता है। एक आँख दूसरी आँख के लिए सहयोग दे रही है। उधर की आँख इधर नहीं आ सकती है क्योंकि बीच में एक दीवार है। पहले से एक बॉर्डर है। इसका उल्लंघन नहीं कर सकती। उल्लंघन नहीं करते हुए भी एक दूसरे को सहयोग तो दे सकती है। यह अनिवार्य है। प्रजा हमेशा सहयोग देती चली जाती है।

प्रजा सोचे अपनी सीमा क्या है? कहाँ तक हम सहयोग दे सकते हैं? किसको दे सकते हैं? आज इसको भूल जाते हैं। उसका परिणाम है यह भारत राष्ट्र आज जो उन्नति की ओर बढ़ना चाहिए वह दिनों-दिन अवनति की ओर चला जा रहा है। स्वतन्त्र होते हुए भी वस्तुतः और पर-वश सा होता जा रहा है। उसमें कारण, बुद्धि का सही समय पर सही प्रयोग नहीं करवा रहे हैं। बुद्धि किसी के पास कम है, यह मानने के लिए मैं तैयार हूँ लेकिन जब तिर्यंचों के पास में इस प्रकार की सूझ बूझ हो सकती है और वह राजा के लिए अपना महत्त्व क्या है वह दिखा सकता है, तो यह मनुष्य होकर क्यों नहीं दिखा सकते? हम पुराणों को पढ़ते हुए आते हैं, प्रणाली के वह संस्कार भारतीय मनुष्य के ऊपर हैं। अभी आप महावीर भगवान् की बात कर रहे थे। कभी आप आदिनाथ, पार्श्वनाथ की बात करते हैं। उससे पूर्व में भी यही बात की जाती थी, वेद-पुराण इन बातों से भरे हुए हैं। यह भी हम कहते हैं और बताते हैं और गौरव का अनुभव करते हैं। मुझे यह बात समझ में नहीं आ रही है कि जिस कार्य के लिए ५० वर्ष हो गये लेकिन उसका कोई परिणाम नहीं निकल रहा है क्योंकि नीचे की ओर होता चला जा रहा है। माइनस में जाना, कोई समझ में नहीं आ रहा है, एक नम्बर नहीं आता कोई बात नहीं, लेकिन माइनस तो नहीं आना चाहिए।

लेकिन हम समझते हैं कि माइनस में सही कम से कम हैं, यही धारणा गलत है। पहले एक कक्षा से प्रारम्भ हो जाता था, लेकिन आज एक कक्षा के ४ माइनस श्रेणी वन टू थ्री फोर इसके बाद प्रथम कक्षा यानि इतना गुजरना आवश्यक है। वह क्यों हो रहा है? आप ८ वर्ष से पहले स्कूल में पहुँचाना चाहोगे तो एक कक्षा के ४ पाठ करना ही होंगे, माइनस से शुरू होती प्रारम्भिक शिक्षा।

५० वर्ष हो गये, बुद्धि का विकास होना चाहिए था। लेकिन यह विकास नहीं है, बल्कि हमारा लड़का पढ़ने के लिए चला जायेगा तो बहुत जल्दी होशियार होगा। ये गलत धारणा है। उसका जो बल है, ज्ञान बल है वह ८ वर्ष से ही प्रारम्भ होता है। सोच समझ ७ वर्ष में भी हो सकती है, लेकिन एक दम ही दो तीन वर्ष के उपरान्त पढ़ना प्रारम्भ कर दो, नहीं हो सकता। समय पर सही-सही करना चाहिए। मैं यह कहना चाह रहा हूँ कि प्रजा और सत्ता दोनों होने के उपरान्त भी आज प्रजा अपने दायित्व से परिचित नहीं हुई या होने का प्रयास ही नहीं किया। उसका परिणाम यह हम देख रहे हैं। जिसके लिए स्वतन्त्रता मिली थी, उसके लिए कुछ प्रयास किया जा रहा है कि नहीं ये भी समझ में नहीं आ रहा है। उस समय राजा के साथ जो मंडली रहती थी वो राजा तो नहीं लेकिन राजमंडली अवश्य कहलाती थी। राजा को सही निर्देशन देती थी। लेकिन आज प्रजामंडली है कि राजमंडली है, समझना बहुत कठिन हो गया। आज तो अनेकों पार्टी बन रही हैं लेकिन इतनी पार्टी की क्या आवश्यकता है। आज संघर्ष चल रहा है और ऐसा संघर्ष चल रहा है कि १३-१३ घंटे बहस चलती है संसद में, परिणाम कुछ नहीं निकलता। लेकिन इतने घंटों की कोई आवश्यकता नहीं है। उलझते चले जा रहे हैं।

कुछ समझ में नहीं आता। पक्षी के पास यदि दो पंख रहते हैं उसकी यात्रा बहुत जल्दी और बहुत दूर तक रहती है, यदि पक्षी के पास पंख और ज्यादा हो जायें तो फड़फड़ाने की वहाँ पर गुंजाइश ही नहीं होती और वह पक्षी उड़ भी नहीं सकता। भारत की शासन मंडली भी ऐसी ही हो रही है। जितने पंख उतना ही पक्षी के लिए खतरा। यदि पक्षी उड़ नहीं सकता तो उसको कोई दबोच सकता है। बिल्ली तो इधर उधर घूम ही रही है। अब चूँकि पंखों के कारण वह बिल्ली पास नहीं आ रही। लेकिन पंख फड़फड़ाते-फड़फड़ाते यदि टूट गये तो बिल्ली तो खड़ी ही है। दो ही पक्ष हो जाते हैं, तो बहुत ही अच्छा है, यहाँ पर दो पक्ष आ जाते हैं। ध्यान रखना, एक पक्ष दूसरे पक्ष को काम दिये बिना चल नहीं सकता। आज तक कोई पक्षी एक पंख के ऊपर उड़ नहीं सका, धीरे-धीरे मैं वहाँ पर आ रहा हूँ जहाँ पर आपको आना है। बहुत दूर काल की अपेक्षा होने के बाद वहाँ पर नहीं आ पाये, ये हम लोगों की कमजोरी माननी चाहिए।

तो जब वह खरगोश यह सोचना प्रारम्भ कर देता है। जो व्यक्ति अपना स्वभाव नहीं जानता। जो व्यक्ति अपनी वस्तु क्या है, पहचानने की कला नहीं रखता, उस व्यक्ति को कभी भी मौत के

कमरे में ढकेल दिया जा सकता है। कोई भी व्यक्ति ढकेला जा सकता है और आज आप सभी मौत कूप के किनारे हैं और लाया गया है आपको, आप स्वयं नहीं गये और आपकी कमजोरी के कारण यहाँ तक आने का यह अवसर प्राप्त हुआ। एक व्यक्ति ऐसा है जो पीछे पड़ा है, जो आपको अपना परिचय दिलाना चाहता है लेकिन आप अपने से परिचित नहीं हो पा रहे हैं। अपनी शक्ल को देखने के उपरान्त भी यह मेरी शक्ल है, यह तक जिसे ज्ञान नहीं, वह व्यक्ति कभी भी राजा नहीं बन सकता। वह राजा होते हुए भी निश्चत रूप से मौत के कुँए में गिर जायेगा। सिंह को ओवर कान्फिडेन्स था। मैं इतना बलवान हूँ सबको दबोच दूँगा। मेरे हाथ में सत्ता है, सबको आना पड़ेगा और इसी आवाज के बल पर, क्रमश: सारे के सारे आते चले गये मौत कूप मैं। वो चले गये और सबको निर्बल बनाया गया। लेकिन उसकी वह नीति उसको ही खा गयी। एक खरगोश ऐसा पैदा हुआ जिसने बुद्धि से काम लिया, जिसने चतुराई से काम लिया, जिसने धैर्य रखा। जहाँ पर बुद्धि है, जहाँ पर कर्त्तव्य है वहाँ पर निश्चत रूप से विजय हो सकती है, होती है। लेकिन ये ध्यान रखना आप एक पक्ष को समृद्ध बनाने का प्रयास करेंगे, तो आप लोग खरगोश की नीति नहीं समझ पायेंगे।

जिस व्यक्ति को आप भेज रहे हैं, वह व्यक्ति अपना राष्ट्र है, यह नहीं समझता है और अपनी कुर्सी की ओर मुँह करता है। कुर्सी कोई अपनी नहीं हुआ करती है, कुर्सी के पास दो पैर नहीं, ४ पैर होते हैं। ध्यान रखो ४ पैर वाले के ऊपर बैठा जाता है। आप दो पैर वाले हैं, ४ पैर वाले के ऊपर बैठना चाह रहे हैं सोचना चाहिए आपको। वो कभी भी गिर सकता है, उसके पास कोई बैलेन्स नहीं। दो पैर वाला ही बैलेन्स रखता है। ४ पैर वालों के पास अपना कुछ बैलेन्स नहीं है और एक-एक कम कर दो तो निश्चत रूप से कुर्सी गिर जाती है। आज यही बातें हो रही हैं १३ घंटे योजनाएँ बनती हैं। पहले तो चुनाव के लिए खड़े हो जाते हैं फिर चुनाव जीतने के बाद बैठने की बात करते हैं। ये समझ में नहीं आता चुनाव के लिए खड़े हैं तो बैठना नहीं चाहिए खड़े रहना चाहिए। वह पद है, उसके माध्यम से कुछ कार्य किया जाता है, बैठकर के कार्य ठीक नहीं हुआ करता है। कार्य जो किया जाता है वह बुद्धि के माध्यम से कार्य किया जाता है। सिंह को यह भी ज्ञान नहीं था कि यह मैं ही हूँ या मेरा केवल प्रतिबिम्ब है, प्रतिछाया है, उस छाया की भी पहचान नहीं की। सबसे ज्यादा मूर्ख निकला वह मृगराज जो वह मौत के कूप में गिर गया, गिर नहीं गया उसको गिराया गया। गिराने वाला कौन है, गिरने वाला कौन है? यह देखने की बात है। कितनी युक्ति के साथ उसने जंगल के जीवों को बचा लिया। ये दूसरी कक्षा में लिखने की आवश्यकता थी। हमेशा इन छोटी-छोटी कक्षाओं के बारे में सोचता हूँ। ये दूसरी कक्षा में लगाने योग्य नहीं है। बड़े-बड़े ज्ञानियों को शिक्षा देने वाली कथा है खरगोश इस प्रकार का कार्य कर सकता है और खरगोश की कथा के ऊपर बड़े-बड़े शोध हो रहे हैं। लेकिन राष्ट्र को बचाने की हिम्मत किसी भी खरगोश के पास नहीं है।

एक से एक मृगराज भी पशुओं का भक्षण करते जा रहे हैं और प्रजा है देखती जा रही है। **''यथा राजा तथा प्रजा''** की युक्ति आप लोगों को ध्यान में लानी थी। राष्ट्र के हित में आप लोगों का कहाँ तक हित है, विचार है, प्रयास है, जिनको चुनकर भेज दिया उनको सोचना चाहिए। चुनाव राष्ट्र के हित में है, मैं नहीं मानता। जिस राष्ट्र में गुणों का, योग्यता का योग्य व्यक्ति द्वारा मूल्यांकन नहीं होता, वह राष्ट्र तीन काल में उन्नति नहीं कर सकता। उन्नति का कारण कभी पैसा/धन नहीं हुआ करता। बिल्डिंग आप बनाते चले जाओ, ये उन्नति का मार्ग नहीं है क्योंकि प्राचीन काल में बिल्डिंग में शिक्षण नहीं हुआ करता था। ऐसे क्षेत्र हैं, ऐसे पेड़ हैं, पेड़ के नीचे ऐसी नीति दी जाती थी जो बड़े-बड़े राष्ट्र को चलाने की हिम्मत उनके पास आ जाती थी। चाणक्य की नीति और उसकी चोटी और चोटी की गांठ बस यह पर्याप्त था भैया! यह गांठ खुल नहीं सकती जब तक कार्य नहीं होगा। आज तो चोटी ही नहीं, फिर चोटी के विद्वान कहाँ से बनेंगे। चोटी के विद्वान क्यों कहा जाता है? चोटी का विद्वान का अर्थ - **इतना करके ही चोटी की गाँठ खोलूँगा, ऐसा संकल्प लेते थे। उस गाँठ में ऐसी शक्ति रहती थी। जब कभी आप पहचानेंगे गाँठ के माध्यम से देख सकते हैं। उसने एक बार ठान लिया तो उसको समाप्त करना जिसकी नियत बुरी है, यही है नीति।**

आज प्रत्येक राजनेता चाणक्य नीति नहीं समझ पा रहा है। चुनाव की नीति आ जा रही है। बार-बार मेरे पास आकर के कहते हैं ये पक्ष वाले, ये विपक्ष वाले, दोनों मिलकर के राज्य चला रहे हैं। त्रिशंकु सरकार देश को चला रही है। तीन-तीन पक्ष विपक्ष मिलकर देश की कुर्सी पर बैठे हैं, कुर्सी तो टूटेगी ही। ये बात समझ में नहीं आती है। उस खरगोश के समान आज की यह प्रजा हमेशा-हमेशा जागृत रहनी चाहिए कि जिसको हमने आगे चुन करके आज भेजा है वह किस ढंग से काम कर रहा है? उसने अपने बल/बुद्धि पर पूरे-पूरे वन के जीवों को उजड़ने से बचा लिया, उसने चतुराई के साथ अपने बचाव के साथ-साथ दूसरे को भी बचा दिया।

आज इस नीति की आवश्यकता है। राष्ट्र स्वतन्त्र हुआ, उसमें जितने भी प्राणी हैं, वे सुख शान्ति स्वतन्त्रता के साथ जी सके, ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए। ५० वर्ष के बाद उसको समृद्ध बनाने का प्रयास किया जा रहा है लेकिन दिनोंदिन वह अवनति/माइनस की ओर चली जा रही है। अब कब यह उत्थान करेगा? कौन-सा व्यक्तित्व आयेगा? कौन सा ऐसा समय आयेगा? एक व्यक्ति के द्वारा काम नहीं होने वाला क्योंकि यह सारी प्रजा मिल करके देश को उन्नत कर सकती है। आज तो देश को उन्नत बनाने वाले अहिंसा धर्म को समाप्त करके देश को उन्नत बनाने का प्रयास किया जा रहा है। जिसके बलबूते पर बुद्धि, चारित्र, जीवन यापन होते हैं, उन्हीं को आज समाप्त किया जा रहा है। एक दिन में लाखों बड़े-बड़े जानवरों का सरेआम गला घोंटा जा रहा है। सुनने में ऐसा आता है मांस यहाँ पर नहीं खाया जाता, जीवों को मारकर मांस निर्यात किया जाता है और ये भी बात है कोई

भी मनुष्य केवल मांस पर जिंदा नहीं रह सकता, लेकिन आज केवल मांस पर जिंदा रहने का प्रयास चालू हो गया है। खाकर के नहीं। जैसे कहा था अन्न प्राण है।

भारतीय साहित्य में १२ प्राण माने गये हैं। वहाँ पशुधन १२वाँ प्राण कहा गया है, परन्तु तुच्छ मुद्रा रूप धन के लिए अच्छे- अच्छे जाति के जानवरों का कत्ल किया जा रहा है और उसमें से मांस निकाल करके उसको निर्यात किया जा रहा है। यह व्यवसाय की बात कुछ समझ में नहीं आती है। यह भक्षण की बात नहीं, यह व्यवसाय की बात है और व्यवसाय का यदि यह विषय बन गया तो यहाँ पर बहुत जल्दी तूफान आ सकता है। जिसके माध्यम से व्यवसाय चल रहा, वह सब जब समाप्त हो जायगा उस समय क्या होगा? जो जिसके लिए नियुक्त है, वह व्यवसाय का साधन तो नहीं बन सकता किन्तु आज व्यवसाय का साधन ये बना लिया। बड़े-बड़े जानवरों को कत्ल करके भेजा जा रहा है। चर्चा चल रही है कि दुधारू गायें कब तक दूध देती हैं? इन पर रिसर्च चल रही है, शोध चल रहे हैं। कितनी ये दूध दे सकती हैं, ज्यों ही वह दूध बंद कर दे उसको कत्ल कर देना क्योंकि उनको उसके माध्यम से पैसा लाना है और पुनः बेचने में पैसा लगाना है। वैज्ञानिक लोग भी त्रस्त हैं और इसके साथ-साथ ये सोचना चाहिए जिसके जीवित रहने मात्र से प्रकृति में एक अलग ही वातावरण बन जाता है, प्रदूषण खत्म हो जाता है। गाय बैल जिस समय घर लौटे वह समय गोधूलि कहा जाता है। संतों की प्रासुक भूमि इन्हीं के माध्यम से बनती है। मूलाचार में कहावत है, जब गाय, ऊँट, बैल, भैंस चलना प्रारम्भ कर दें तो जमीन प्रासुक हो जाती है। इसके बाद हम चले। इनकी धूल के माध्यम से अपने आप वातावरण शान्त हो जाता है लेकिन आज पहले से उनको समाप्त कर दिया जाता है। जहाँ कहीं भी एक चित्र हम देखते हैं, जिसको वृषभ अवतार बोलते हैं। जिनके माध्यम से दूध मिलता है, कृषि होती है, जिनके माध्यम से माँ की याद आ जाती है। जन्म देने वाली माँ मनुष्य को जन्म भर दूध नहीं पिलाती, जन्म भर दूध पिलाने वाली कौन सी माँ है? वही गाय है, वही बकरी, भैंस है, जिसका दूध पीकर भारत का संचालन कर सकते हैं, नेतृत्व की भी क्षमता रखते हैं और बड़े वैज्ञानिक हो सकते हैं, संत हो सकते हैं, जिनके माध्यम से युग को दिशा बोध प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार के जानवर को यूजलेस (अनुपयोगी) कहकर काटना वैज्ञानिकता नहीं हो सकती। बात कुछ समझ में नहीं आ रही, इसकी ओर कोई भी व्यक्ति या सरकार का ध्यान नहीं है।

कत्ल करके मुद्रा को बढ़ाने की आवश्यकता नहीं होना चाहिए इस बात को बार-बार मैं कह चुका हूँ कि व्यवसाय अलग वस्तु है और निर्वाह अलग वस्तु है। व्यवसाय आपके लिए और भी हो सकते हैं, ऐसा कोई भारत ने ठेका नहीं लिया कि जो मांसाहारी है, उनके लिए मांस पूर्ति करना चाहिए। यह सम्भव भी नहीं क्योंकि बहुत सारे राष्ट्र हैं जो मांसाहारी हैं, ये पूर्ति तीन काल में संभव

नहीं। भले ही छोटा क्यों न हो पर खरगोश की जाति/बुद्धि का हो, और जो कुर्सी पर बैठे हैं, बिठाया गया है दो पैर वाले हैं, उनको समझा दें, जो व्यक्ति अपना अपनत्व नहीं समझता है उस व्यक्ति को किस ढंग से समझाया जा सकता है। राष्ट्र किस बलबूते पर जीवित रहेगा, इसको भी देखना आवश्यक है। जिस पर हम खड़े हैं यदि उसको उखाड़ देंगे तो हमारा जीवन निश्चत रूप से धराशायी हो जायेगा। जो भी पशु पक्षी हैं वह राष्ट्र के अंग माने जाते हैं। बुद्धि के विकास के लिए कुछ ऐसे भी कलरव सुनना चाहिए। कवि जब कभी भी कविता लिखता है, वह अपनी बुद्धि से प्रकृति की गोद में बैठकर लिखता है। वह सागर के तट पर उस आवाज को सुनता है, यदि कल-कल करके नदी बह रही है, उसके तट पर बैठते हुए उसको निहारते हुए अपने आप उस भावों को व्यक्त करता है। उसमें अलग ही प्रकार का अनुभव शब्द के माध्यम से आता है।

युगों-युगों तक उस प्रकृति की गोद में बैठ करके लिखा हुआ वाक्य युग को दिशा बोध देने में सक्षम है। प्रकृति की गोद में रहने वाले ये सारे के सारे जीव जन्तु हैं, इससे आप लोगों को बल मिलता है। आप उस बल को सुदृढ़ बनाने का प्रयास करें और उसके लिए अच्छे खाद्य-पानी का सेवन करें, अच्छे वातावरण में रहकर विचार करने का प्रयास करें। निश्चत रूप से आपकी बुद्धि विश्व के लिए एक आदर्श प्रस्तुत कर सकती है। यहाँ से ही विश्व को आज तक स्रोत मिले लेकिन आज ये स्रोत मिट्टी से ढकते चले जा रहे हैं। अब वह स्रोत युगों-युगों तक खोदने से मिलने वाले नहीं हैं। **सबसे बड़ी हानिकारक सिद्ध हो रही है वह हिंसा जो दाम के लिए, अर्थ के लिए, करोड़ों की तादाद में बड़े पैमाने पर बढ़ती जा रही है।**

प्रत्येक प्रजा का, प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है, प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य है, उन व्यक्तियों तक, उन कानों तक यह आवाज पहुँचाने का प्रयास करें कि सरकार क्यों बाध्य होकर कत्ल करने की अनुमति दे रही है? किसको दे रही है? किसलिए दे रही है? इसके पीछे क्या सही है? इसके बारे में आप लोगों को सोचना चाहिए। एक गाय यदि मर जाये उसके लिए प्रायश्चित ग्रन्थ में दण्ड के लिए कहा गया। कोई अपराध या चोरी करता है तो उसके लिए दण्ड में तुम ५० गायें दो, ५० बैल दो ये कहा जाता था। आज वो पंक्ति देखने से ऐसा लगता है गाय इतनी महत्त्वपूर्ण थी कि जिसके प्रति तुमने अपराध किया वह गायें पाकर अपने को धन्य मानेगा और तेरे यहाँ से गायें चली जायेंगी, यह अपशकुन तेरे लिए सजा है। उस अपराध को दूर करने के लिए गायें-बैलों को दिया जाता था, जीवित धन माना जाता था। उसको बेचा नहीं जाता था, उसके माध्यम से प्रकृति में एक माहौल तैयार किया जाता था। लेकिन उसी को दण्डित किया जा रहा है, बल्कि उसी को समाप्त किया जा रहा है, अब प्रायश्चित ग्रन्थ दुबारा लिखना पड़ेगा। लेकिन कहा जाता है कि कोई कानून/ग्रन्थ लिखा जाता तो कानून को कानून माना जाता है। अब हम कौन से दण्ड दें? सामने देख रहे हैं, वो भी राजा

के माध्यम से हो रहा है, जिसको आपने योग्य बना करके भेजा। जो व्यक्ति इस प्रकार की अनुमति दे रहा है तो क्या आप इसके समर्थक हैं?

केवल मांस निर्यात बंद हो, इस आवाज को केवल आवाज के रूप में नहीं, उनको सोचने के लिए बाध्य होना पड़े इस प्रकार का मार्ग अपनाया जा सकता है। जंगल में एक खरगोश के माध्यम से हो गया जीवों का बचाव। मैं आवाज लगा रहा हूँ, इन्तजार कर रहा हूँ कोई खरगोश के समान अपनी युक्ति इन मूक प्राणियों को जीवन दान देने में लगाए। एक अंतिम समय वह आयेगा, इसके कारण अपने आप ही सोच समझ में आयेगा कि हमने हिंसा की दिशा में जो कार्य किया यह ठीक नहीं किया। मुगल साम्राज्य में भी इसको स्वीकार नहीं किया गया। एक लेख पढ़ा था– कश्मीर के जो शासक हुए हैं उन्होंने भी गाय, बैल, भैंस के मांस के लिए व्यवसायीकरण की स्वीकृति नहीं दी थी। किसी भी शासक ने मांस निर्यात के माध्यम से भारत को समृद्ध बनाने का प्रयास नहीं किया। बहुत सारे व्यवसाय के मार्ग हैं/साधन हैं उनके माध्यम से हम कर सकते हैं और मैं इसलिए कह रहा हूँ कि धर्म का यदि कोई चिह्न है और मूल है तो एक मात्र अहिंसा और दया है। दया के अभाव में धर्म कोई भी नहीं माना जाता। दया ही धर्म का मूल है और जो कुछ भी है वह पाप का मूल है। इसलिए सत्य बोलना, चोरी नहीं करना आदि-आदि सारे धर्म इसी एक मात्र दया धर्म के लिए हैं और इसी के ऊपर इसकी प्रतिष्ठा है। यदि हम सत्य को धर्म के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं तो मूल में दया होना अनिवार्य है। उसी प्रकार अचौर्य को हम प्रतिष्ठित करते हैं तो दया होना पहले अनिवार्य है, अपरिग्रह को भी हम प्रतिष्ठित करते हैं। महावीर भगवान् का यह प्रतिष्ठित धर्म माना जाता है लेकिन यह ध्यान रखना, यह दया के ऊपर आधारित है। परिग्रही व्यक्ति कभी भी पूर्ण दया का पालन नहीं कर सकता है। जो परिग्रह तिल तुष मात्र नहीं रखता है वह व्यक्ति दया का भंडार हो जाता है, दया का सागर हो जाता है और उसके बिना दुनियाँ को उपदेश प्राप्त नहीं होगा, ऐसे में दया निश्चत रूप से मौन रहते हुए भी उसके पास बहुत शक्ति है। यह वात्सल्य अंग उसी की एक देन है, दया के बिना वात्सल्य नहीं होता है। मोह के द्वारा जो वात्सल्य आता है, वह वात्सल्य नहीं स्वार्थ परायण वात्सल्य माना जाता है लेकिन धर्म परायण व्यक्ति ही वत्सल होता है, वह दया के ऊपर ही आधारित रहता है। धार्मिक क्षेत्र में सम्यग्दर्शन की चर्चा होती है, वह सम्यग्दर्शन दया के द्वारा ही प्रतिष्ठित हो सकता है। मूल के अभाव में जिस तरह वृक्ष नहीं, फल नहीं, फूल नहीं, पत्ते नहीं, छाया नहीं उसी प्रकार दया धर्म के अभाव में कोई धर्म नहीं। दया जैसे-जैसे घटती चली जा रही है। यदि मूल हिलता चला जाय, फिर कितना ही प्रौढ़ वृक्ष ही क्यों न हो, वह धराशायी हुए बिना नहीं रह सकता है। जिसकी जड़ों में ढिलाई आ गयी, थोड़ा सा झोंका आ जाता है, गिर जाता है। आज की सत्ता क्यों गिर जाती हैं क्योंकि उसका मूल का पता ही नहीं है। इतना बड़ा राष्ट्र है, कितने बेलेन्स

की आवश्यकता है। यदि भारत को जीवित रूप में रखना चाहते हो, प्राचीनता के साथ तुलना करना चाहते हो तो दया धर्म को तुम जीवित रखने का प्रयास करो। धर्म कभी भी अपने आप जीवित नहीं रह सकता। धर्मात्मा ही धर्म को रख सकता है और धर्म के कारण धर्मात्मा रह सकता है। धर्म के कारण ही धर्मात्मा कहलाता है।

आप धनिक कहलाते हैं, आपके वजह से धन नहीं है, धन की वजह से आप धनिक हैं, यदि वह धन नहीं है, तो आप यहाँ पर बैठ नहीं सकते। १२ प्राण सुरक्षित होना चाहिए तो ११ प्राण आप सुरक्षित रख पाते हैं। मांस भक्षी भी सोच रहे होंगे कि भारत इतना पागल हो गया है, इसकी बुद्धि कहाँ चली गयी है? हमारे मांस के प्रति स्वयं के धन को नाश करके हमारे लिए खुश करने का प्रयास कर रहा है और बदले में क्या ले रहा है? समझ में नहीं आ रहा है। बदले में आपको क्या मिल रहा है? इतने कत्ल होने के बाद आज केवल ढाई या तीन अरब की राशि प्राप्त हुई है भारत को, जब करोड़ों की हत्या हो चुकी है। अगले दिनों में ५ अरब तक पहुँच सकता है। केवल ५ अरब के लिए यानि इतनी छोटी राशि के लिए इतने जानवरों की हत्या? हमें कुछ समझ में नहीं आ रहा है। आप बिल्कुल कटिबद्ध हो जाइये, थोड़ा जोश के साथ।

❑ ❑ ❑

दृष्टि दोष

भावों का आदान प्रदान होता चला आया है लेकिन कभी ऐसा समय भी आता है जब भावों की पहचान समाप्त हो जाती है। हमारे संकेत कार्यकारी सिद्ध नहीं होते, शब्दों का आलम्बन अनिवार्य होता है और शब्दों के प्रभाव कम होने लग जाते हैं तो वाक्यों में रसों का प्रयोग किया जाता है, उसके बिना वह निद्रा टूटती नहीं। रणभेरी हुआ करती है तो वह रणभेरी निद्रा को तोड़ने के लिए नहीं हुआ करती किन्तु खून को दौड़ाने के लिए हुआ करती है क्योंकि उसके बिना वह व्यक्ति कार्य नहीं कर सकता है। शक्ति है, किन्तु उसको उद्घाटित करना अनिवार्य होता है। द्रव्य- क्षेत्र-काल के अनुरूप ये शक्ति काम करती है। कई लोगों की ये धारणा हो सकती है, मनुष्य हमेशा मनुष्य बना रहेगा, उसका पतन नहीं होता, तिर्यञ्च पशु पशु ही रहेंगे, देव देव ही रहेंगे और नारकी नारकी ही रहेंगे। जो जिसको प्राप्त है, उसमें उसी का गुजारा चलेगा लेकिन ऐसा नहीं है। उत्थान पतन भावों के माध्यम से हुआ करता है, बाजार ज्यों का त्यों बना रहता है। क्षेत्र की अपेक्षा बाजार यथावत् रहता है कि उसकी उम्र तक वह बना रहता है। लेकिन फिर भी आप लोगों के मुख से सुनते हैं, कभी-कभी आप लोग कहते हो कि अभी तो बाजार डाउन है। मतलब बाजार बैठ गया यानि बाजार भी खड़ा होता है और कभी बैठता भी है। यह बात कुछ समझ में नहीं आती है। महाराज! भावों में तेजी मंदी हुआ करती है, उसी को ऐसा कहा जाता है कि बाजार में अप-डाउन है और वो बाजार में भी

तेजी मंदी है वह भावों के कारण है तो वह भाव भी जगाया जा सकता है, हमेशा-हमेशा तेजी का भाव रह जाये, रह सकता है। तो उसी प्रकार अपने को कुछ ऐसे भाव लाना है जिससे हमारा पूरा का पूरा कार्य हो सके। क्या करना है उत्थान के लिए? जब हम अपने कदम आगे बढ़ाते हैं तो अपने बढ़ते हुए कदमों के कारण दूसरों का पतन नहीं होना चाहिए यह एक भाव हमारी दृष्टि में, हमारे हृदय में, हमारे मस्तिष्क में हमेशा बने रहना चाहिए। हमारा भाव हमारे लिए उत्थान का कारण हो और दूसरे के लिए पतन का कारण हो, यह धर्म नहीं माना जाता। हम अपनी उन्नति चाहें और दूसरे की अवनति हो यह संभव ही नहीं हो सकता। यह अनेकान्त नहीं है कि हमारे उन्नति के लिए अहिंसा और दूसरे के पतन के लिए हृदय में हिंसा के भाव जागृत हो जायें। लेकिन हो रहा है, हमारे कदमों में और हमारे में ये भाव हों, हम बहुत ही बहुत ही सुकुमारता के साथ अपने पैरों को रखते हैं, कभी कभार कोई भूल हो जाये, चूक हो जाये, असावधानी हो जाये, पश्चाताप होना चाहिए जैसे एक पैर में काँटा गढ़ जाता है। तो कम से कम साढ़े पाँच फीट अंतराल को लिए हुए आँखों में पानी आ जाता है। कौन-सा भाव है वह जो आपकी आँखों में पानी आ गया, पैर में लगे हुए काँटे का दर्द तात्कालिक आँखों में से पानी बाहर भेज देता है ये तो समझने की बात है।

पैरों में काँटा गड़ा है और आँखों में पानी आ जाये, यह बात ठीक है लेकिन कभी ऐसा भी होता है कि अपना कोई व्यक्ति है और उस व्यक्ति को कहीं बाजार में किसी व्यक्ति ले लूट लिया या कुछ मार पीट कर दी, सुनते हैं, तब हमारी आँखों में से पानी आ जाता है ये क्यों? ये कौन-सा भाव है? अपनत्व के कारण है, उसकी आँखों में पानी आ जाता है चूंकि उस व्यक्ति के प्रति अपनत्व है। इसी प्रकार के धर्मात्मा को संसार के समस्त जीवों से अपनत्व हो जाता है तो जब भी उनको मारा जाता है तो उसकी आँखों में करुणा के आँसू आ जाते हैं। धार्मिक भावनाओं के द्वारा भी बहुत बड़े-बड़े काम किये गये हैं और कर सकते हैं। मैं यही बार-बार सोचता रहता हूँ कि अहिंसा की ओर कदम बढ़ाने वाले हिंसा कम करते चले जाते हैं। हिंसा की जाती है या होती है, अहिंसा का पालन किया जाता है। क्या अहिंसा उद्घाटित होती है? इसके बारे में अपने को कुछ अध्ययन भी करना चाहिए। आचार्यों ने ये कहा है या भगवान् ने ये कहा है कि जो हो रहा है वह क्यों हो रहा है? इसको अपने को देखना चाहिए। हमेशा-हमेशा धार्मिक संस्कृति पूर्व की ओर देखती है। पूर्व की ओर अर्थात् इतिहास की ओर देखती है और जो विज्ञान आज का विज्ञान माना जाता है, वह हमेशा-हमेशा आगे की ओर देखता है। धर्मात्मा अतीत के आदर्शों को ध्यान में रखकर आगे बढ़ता है और आज का वैज्ञानिक पूर्वजों के आदर्शों की उपेक्षा करके आगे बढ़ने की कल्पना करता है। हमारी संस्कृति या हमारे पूर्वजों की परम्परा किस पर टिकी थी, जब इसके बारे में हम अध्ययन करते हैं तो ज्ञात होता है कि आज से ५० वर्ष पूर्व में सत्य और अहिंसा के बल पर आजादी/स्वतन्त्रता मिली थी। इसमें

कोई संदेह नहीं कि स्वतन्त्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है। ये कहने मात्र से कैसे प्राप्त हो? इसमें स्वाभिमान बहुत काम करता है, अभिमान नहीं। स्वाभिमान से हम इतिहास की ओर देख सकते हैं। अभिमान से हमें पीछे की ओर मुड़ने की स्थिति आती है। यदि हम थोड़ा सा नैतिकता के नाते सोचें कि हम जिन जीवों को मारकर देश का विकास करना चाह रहे तो क्या विकास हो सकता है? अतीत भवों में हमारा जीव भी उन पर्यायों में से गुजर कर आया हो और हमने उस अपनी पर्याय की रक्षा करने का प्रयास किया हो अर्थात तुम्हारी अतीत की पर्याय ही उनकी वर्तमान पर्याय है तो फिर उनका विनाश क्यों? क्योंकि प्रत्येक जीव का विकास क्रम एक निश्चत पर्यायों से गुजरता है। अनादिकाल की भूमिका में जीव निगोद में एकेन्द्रिय के रूप में रहा करता है फिर इसी एकेन्द्रिय के उपभेदों में भ्रमण करता रहता है। वनस्पति, हवा, अग्नि, जल, धरती के कण आदि इसमें आ जाते हैं। कुछ ऐसे भावों का परिवर्तन हो जाता है, तो एक इन्द्रिय से विकास को प्राप्त होता है उसको दो इन्द्रिय बोलते हैं। जो चलने- फिरने सरकने की क्षमता रखता है, इनको आगम में त्रस संज्ञा दी गई है, पहले जड़ कहा, फिर जंगम कहा। जड़ का अर्थ पुद्गल नहीं, निर्जीव नहीं, जड़ का अर्थ है, अचल और जंगम वह जो त्रस होता है। दो इन्द्रिय के विकास होने से उनको त्रस कहा है। अपनी आकुलता को प्राप्त करने के लिए उसके प्रतिकार हेतु कुछ ऐसा पुरुषार्थ करता है सरकता हुआ चला जाता है। फिर भी वह अपद माना जाता है दो इन्द्रिय की अवस्था में। जब और विकास होता है, भावों के विकास होने के कारण तीन इन्द्रिय हो जाता है, जिसके पास पैर आ जाते हैं। पैर आते हुए भी वह आप जैसे चलता नहीं। उसके पैर अवश्य आ गये। उनके लिए अंधकार कोई बाधक नहीं है और प्रकाश कोई रास्ता बताने वाला सिद्ध नहीं होता। प्रकाश के कारण रास्ता दिखता है। चतुर इन्द्रिय को जब जीव प्राप्त हो जाता है तो आँखें प्राप्त हो जाती है। यहाँ से आँखों का जगत् सामने आ जाता है। रूप सौन्दर्य का वह लाभ लेने लग जाता है, अब इसका विकास और भी होता चला जाता है, पंचेन्द्रिय हो जाता है, तब शब्द वाणी को सुनने की भी क्षमता आ जाती है।

उसके बाद मन आ जाता है तथा इसी क्रम से विकास करता हुआ मनुष्य हो जाता है। मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो बहुत कुछ विकास कर सकता है क्योंकि पशु के पास दो पैर नहीं चार पैर होते हैं लेकिन मनुष्य पैरों का काम ले ले तो ठीक है, यदि हाथ का काम पैरों के स्थान पर ले ले तो वह भी पशुवत् हो जाता है। यह विकास नहीं, उसके विनाश की बात है। या यूँ कह दो कि बुद्धि का प्रयोग नहीं होने के कारण वह कर लेता है। हाथ और पैर यदि दोनों टिका दें तो वह पशु की भाँति ही हो जाता है। तो वह मनुष्य कहाँ-कहाँ पर गलती करता है, अपने भावों के द्वारा इतना विकासशील और विकसित प्राणी होकर भी सबसे ज्यादा विनाशकारी कोई है तो संसार भर में मनुष्य ही है। ये बात अलग है उसकी समीक्षा कौन करता है? स्वयं कर ले तो बहुत अच्छा है।

एक व्यक्ति ने एक लड़के को देखा। वह लड़का सुन्दर होने के साथ-साथ इकलौता था और देखने के उपरान्त वह लड़का तो अपने घर चला गया और जाने के उपरान्त माँ से कुछ बात नहीं करता और थोड़ा भोजन मिल जाये ऐसा संकेत करता है। भोजन लाकर के माँ देने लग जाती है और देखती है, क्या बात है? आज लड़के की आँखें चढ़ी हुई हैं। समझ में नहीं आ रहा है। क्यों बेटा! कहाँ से आ रहा है? वहीं से आया हूँ लेकिन आवाज में जोश नहीं है। कहता है, मुझे अच्छा नहीं लग रहा है। अच्छा नहीं लग रहा। तो भोजन नहीं चाहिए? भोजन तो चाहिए लेकिन अच्छा नहीं लग रहा है। अच्छा-हाथ पकड़कर देखती है तो टेम्प्रेचर बढ़ गया। क्या हो गया इस लड़के को? समझ में नहीं आया। तो उसने दूध पानी जो कुछ देना था दे दिया और सोचती है अब क्या करे और उसे झट से याद आ गया और साबुत लाल मिर्च लाई और उसे उतार कर अग्नि में डाल दी और कहा बहुत तेज नजर लग गई बेटे को। मानव ज्वर दूर करने की योग्यता रखता है लेकिन यदि दृष्टि बिगड़ जाये तो स्वस्थ को ज्वर चढ़ा दे। एक बालक को ऐसी दृष्टि से देख लिया कि ज्वर चढ़ गया। विज्ञान इसको माने या न माने लेकिन वह माँ उसे मानती है और मिर्ची से नजर उतारने से उसका बेटा ठीक भी हो जाता है, वह दवाई के ऊपर ज्यादा महत्त्व नहीं देती। इसका स्रोत क्या? इसको देखने का वह प्रयास करती है और स्रोत को समाप्त करने का वह प्रयास करती है।

भारत हमेशा-हमेशा यंत्र से डरता आया है और यंत्र से डराने का काम भी किया है। लेकिन मंत्र को तंत्र को कभी भी नहीं छेड़ा। आज यांत्रिक युग हो गया यंत्र के पास इतनी शक्ति नहीं है, जितनी मंत्र के पास है। इसलिए मंत्र प्रतिष्ठित हो यंत्र समाप्त हो। यंत्र बंद होना चाहिए क्योंकि कत्लखाने भी एक यंत्र में आ रहे हैं और ये सारा का सारा तूफान खड़ा हो गया। यंत्र को बंद करने के लिए शक्ति चाहिए। अब उस पुद्‌गल के साथ लड़ने की शक्ति किसके पास है? एक व्यक्ति एक व्यक्ति से तो लड़ सकता है लेकिन एक व्यक्ति यंत्र से कैसे लड़ सकता है? यंत्र के माध्यम से व्यक्ति को लड़ाया जा सकता है लेकिन यंत्र से कैसे लड़े? यंत्र से नहीं लड़ना है, यंत्र को खोलने वाले व्यक्तियों से लड़ना है, उनसे भी लड़ने की कोई आवश्यकता नहीं, ऐसे ही अहिंसा का मंत्र फूँकने की आवश्यकता है। ऐसे अहिंसा भावों के साथ लाल मिर्च लाकर उसे विधान सभा/लोक सभा में उतारने की आवश्यकता है। जिनके भावों में ज्वर चढ़ा हुआ है वह नीचे उतर जाये। हमें किसी को कुछ भी नहीं करना है। जो भाव विकृत हुए हैं उनको मंत्रों के द्वारा और तंत्रों के द्वारा जो यंत्रों से पाप हो रहा है उस पाप को समाप्त करना है पापी को नहीं क्योंकि पापी जब पाप छोड़ देगा तो वह भगवान् बनने की क्षमता रखता है। पतित से पावन बनने का यही एक मात्र राजमार्ग है, यह पगडंडी है। कोई भी हो वह पतित से पावन इसी प्रकार हो सकता है।

दया, अनुकम्पा, शान्ति, वात्सल्य एक दूसरे के पूरक भाव को लेकर के यदि विज्ञान खड़ा

हो जाता है तो वह विश्व का बहुत बड़ा हित कर सकता था/कर सकता है लेकिन विज्ञानवाद में इन चारों का अभाव है क्योंकि जड़ की क्रिया में कभी भी करुणा, अनुकम्पा, दया नहीं आ सकती। सुई के द्वारा जो काम किया जा सकता है वह तलवार के द्वारा नहीं किया जा सकता और तलवार के लिए जो खर्च किया जा रहा है वह सब व्यर्थ में किया जा रहा है। सद्‌विचारों के माध्यम से हम सुख और शान्ति के साम्राज्य की स्थापना कर सकते हैं लेकिन आज इतने विकास होने पर भी नहीं कर पा रहे हैं। दुख और अशांति का स्रोत बढ़ता ही चला जा रहा है।

थोड़ा से थोड़ा विचार करिये। एक दृष्टिपात करने से बालक नौजवान का चेहरा मुरझा गया, नजर लग गई उसकी यह दशा हो गई। हरियाली की ओर देखते हैं तो भी इस तरह क्रूर व्यक्तियों के द्वारा वह हरियाली भी सूख जाती है। ये कैसी बात है विचार करो। ऐसी ही बात है, पानी का सिंचन करते हुए भी वह धरती सूख सकती है क्योंकि मशीन से फेंका जाता है पानी जो वह जाता है। पानी पिलाया जाता है, पानी बहाया नहीं जाता। पानी बहाने की क्रिया विज्ञान की है और पानी के सिंचन करने की क्रिया भारतीय संस्कृति है। पहले मशीन नहीं होते थे किन्तु चरस चलते थे और संगीत चलता था और धरती फूल जाती थी और आज धरती की छाती के ऊपर से प्रवाह चला जा रहा है और खेत की मुलायम मिट्टी को लेकर चला जाता है। फसल तो आ जाती है लेकिन अगले साल में वह खेत फसल के योग्य नहीं रहता। उसके लिए और नये आविष्कृत रसायन डालते चले जाओ। यह विज्ञान तो आया लेकिन संस्कृति से हट करके आया।

विज्ञान सन्ध्याकालीन सनसेट है और भारतीय संस्कृति प्रातःकालीन सनराईज है। पश्चिम की ओर जब हम दृष्टिपात करते हैं और पूर्व की ओर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो मनोरंजन को देखने की अपेक्षा से दोनों में ऐक्य नजर आता है। सनराईज सनसेट दोनों को ही देखते हैं। मनोरंजन की अपेक्षा से, दोनों में लाली है। थोड़ी सी बात मैं पूछना चाहता हूँ सनसेट होकर कभी डूबते हुए सूर्य नारायण की आरती की कभी किसी ने? नहीं, परन्तु जिस समय पर सूर्य उगता है, उस सूर्य की आरती की जाती है भारत में क्योंकि जीवन प्रदाता है उगता हुआ सूर्य। वही सूर्य पश्चिम की ओर गया तो डूबते सूर्य की कोई आरती नहीं उतारता है, उगते हुए सूर्य की आरती की जाती है। आज विज्ञान जीवन को अस्ताचल की ओर ले जा रहा है। जिस विज्ञान के माध्यम से जीवन का उत्थान होना था वो उत्थान के स्थान पर पतन होता चला जा रहा है। सूर्य दोनों स्थानों में एक है लेकिन एक वह प्रमाद को छोड़ करके उठ रहा है और एक प्रमादी बन करके नीचे की ओर जा रहा है। सूर्य को अस्ताचल में जाने के उपरान्त संसार मोह की नींद में सो जाता है। जैसे-जैसे विकास होता चला जा रहा है वैसे-वैसे प्रमाद का अभाव नहीं हो रहा है। चेतना जागृत नहीं हो रही है किन्तु वह सुप्त होती चली जा रही है। सुप्त इसलिए होती चली जा रही है कि उसकी एनर्जी, उसकी शक्ति सारी की सारी

जिसके ऊपर निर्धारित है वे स्रोत समाप्त होते जा रहे हैं। यह समाप्त करने की प्रक्रिया हम लोगों को अभिशाप सिद्ध होती जा रही है।

एक बार दृष्टिपात किया बालक की भूख भी बंद हो गयी और ऐसी भी नजर डाली जा सकती है कि भूख और खुल जाये। जितनी भूख खुलेगी उतना वह स्वास्थ्य का प्रतीक माना जाता है लेकिन ज्यादा भूख लगना भी ठीक नहीं है। ज्यादा भूख लगने से फिर राक्षसी वृत्ति होगी, वह भी रोग के अन्तर्गत आ जाता है लेकिन आज बहुत कम व्यक्ति हैं जो ऐसे हैं जिनकी पेट की भूख राक्षसी हो लेकिन यह ध्यान रखना कि मन के माध्यम से इतनी भूख बढ़ चुकी है कि पेट में रखने की गुँजाइश नहीं है लेकिन हम कहीं न कहीं रख देते हैं। तृष्णा की भूख बढ़ रही है जो पेट की भूख से अधिक खतरनाक है। आज मानव की दृष्टि इतनी विकृत हो गई है कि एकेन्द्रिय तक सूख जाती है। मानव जीव को देखकर उससे अर्थ कमाने की सोचने लगता है। यही अर्थ भरी विकृत दृष्टि सर्व स्वाहा किये दे रही है। कोई गाय, हाथी आपको देखे और नजर लग जाये और बुखार आ जाये, आपको ऐसा कभी हुआ? नहीं, वह कहते हैं आप हमसे भयभीत मत होओ, आप अभय रहिए। अपनी दृष्टि से अर्थ निकाल दीजिये और प्यार, करुणा, दया, अहिंसा, वात्सल्य को आँखों में भर लीजिये फिर देखिये इस सृष्टि का वैभव और आपका जीवन और आपका देश का जीवन खुशहाली से भर जायेगा।

❑ ❑ ❑
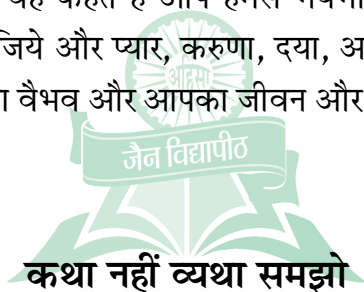
कथा नहीं व्यथा समझो

यह भारत वर्ष है जहाँ पर धर्म की मुख्यता है और जब धर्म की मुख्यता हो जाती है तो धर्म यद्यपि एक होते हुए भी मानने वाले अनेक होने के कारण उसमें अनेक रूप देखने को मिल जाते हैं और मिलते हैं लेकिन इन सबका ध्रुव एक मात्र अहिंसा होता है जिसे धर्म के रूप में हम स्वीकारते हैं। अहिंसा एक निषेध वाचक शब्द है। वह किसका निषेध कर रहा है? हमें समझना चाहिए। विधान किसका है, निषेध किसका है? यह बात ज्ञात हो जाये तो हम बहुत जल्दी उसको प्राप्त कर सकते हैं। अहिंसा हिंसा का विपरीत रूप है। जहाँ पर हिंसा का तांडव नृत्य होता है, वहाँ पर हम अहिंसा के दर्शन नहीं कर सकते। हाँ, केवल कोशों में हम उसको पा सकते हैं। शब्दकोश उस वाक्यभूत अहिंसा के लिए है लेकिन फिर भी जब हम अपने आपको अहिंसा के रूप में विश्व के सामने प्रस्तुत नहीं कर सकते, वहाँ पर हमें उस समय एक मात्र कोश का सहारा ही लेना पड़ता है।

इतिहास में अतीत की घटनाएँ आ जाती हैं उनको हम जीवित अवस्था में देख भी सकते हैं और नहीं भी देख सकते हैं। वह एक स्मारिका का रूप धारण कर लेता है। अहिंसक व्यक्ति का दर्शन

सदा काल होना चाहिए लेकिन कुछ ऐसे प्रसंग होते हैं जो हमारे लिए चिंता के कारण बन जाते हैं। अहिंसा धर्म का ह्रास होता चला जा रहा है इसके उपरान्त भी यह नहीं कहा जा सकता है कि आज अहिंसा के दर्शन ही नहीं हो सकते। इसके दर्शन करने के लिए विचारों में समीचीनता पहले अनिवार्य है। आचार भी समीचीन बन जाता है जब विचार समीचीन होते हैं। हमारे कदम आचार की धरती पर तब पड़ते हैं जब हमारे हृदय में अथवा मस्तिष्क में सद्विचार उद्भुत होते हैं। विचार के अनुरूप ही अचार के कदम आगे बढ़ते चले जाते हैं परिणामस्वरूप आचार के कदम और कदमों के चिह्न हम लोगों को देखने के लिए मिल जाते हैं। विचार किसी गूढ़ अवस्था में रहते, मस्तिष्क में रहते हैं, हृदय में रहते हैं उनका प्रत्यक्ष दर्शन हम नहीं कर पाते हैं और यह संभव भी नहीं है। किन्तु उसकी परिछाया, उसके चिह्न, उसका मूर्त रूप हम आचार में देख सकते हैं। विचारों का कार्य रूप आचार है।

भारत सदैव चरण और आचरण के चिह्नों की पूजा करता आया है किन्तु उन चरण चिह्नों की पूजा करता आया है जिन चरणों में अहिंसा पलती है। जिन चरणों में अहिंसा उतर आती है तो मस्तिष्क में समता/सहानुभूति के विचार विशेष रूप से घर बना लेते हैं। ऐसे महान् पुरुष जो विचारक होते हैं वे आचारवान भी अवश्य हुआ करते हैं।

मौसम का जैसा प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार माहौल का भी प्रभाव पड़ता चला जाता है। मौसम का प्रभाव शरीर के ऊपर, साक्षात् पड़ जाता है और धीरे-धीरे मन पर भी प्रभाव पड़ने लग जाता है। अहिंसक विचारों का प्रभाव युग के ऊपर अवश्य पड़ता है लेकिन आज का युग कुछ आगे बढ़ गया है अर्थात् बहुत पीछे खिसक गया है। विचारों में जब भेद हो जाता है तो आचारों में भेद होना अनिवार्य होता है और आचारों में शैथिल्य बिना कारण के नहीं हुआ करता है। सदैव ही विचारों के द्वारा सोचा जाता है और उसी सोच के माध्यम से आचारों में भेद आता चला जाता है।

एक घटना मैं सुनाता हूँ उस समय की जब विभीषण राम के शिविर में शरणागत होने आया है। युद्ध का समय ऐसा था कि हम अपने श्वाँस के ऊपर विश्वास नहीं रख सकते, वह समय ऐसा था कि हम अपने मन के ऊपर विश्वास नहीं रख सकते, वह समय ऐसा था कि हम अपनी छाया के ऊपर भी विश्वास नहीं रख सकते। पूछना पड़ता है युद्ध के समय में कि शत्रु का भाई आया है? अनेक शंकाएँ उठती हैं। शरणागत की आड़ में कोई षड्यंत्र भी तो हो सकता है लेकिन उसमें भी एक व्यक्ति ऐसा होता है जो इन सब प्रश्नों के लिए स्थान नहीं देता है। गुप्तचर ने समाचार दिया, विभीषण आप से मिलना चाहता है। रामचन्द्र जी ने कहा आने दें, सभी लोग आश्चर्य चकित कि शत्रु के भाई को बिना परीक्षा किये अन्दर आने की अनुमति दे दी। सभी लोग तो सोच रहे थे कि बन्दी बनाने की बात कहेंगे रामजी! जैसा यहाँ पर मौन है, कुछ समय के लिए मौन था वहाँ। फिर कहा गया भेज दो। जब भेज दो यह कह दिया तो भेजना ही पड़ेगा, बिना सोचे यह कार्य नहीं होना

चाहिए। बिना सोचे आपने कहा भेज दो। वो कौन व्यक्ति है? उसके बारे में आपको अध्ययन करना आवश्यक है चूंकि आपका विषय है लेकिन आपका विषय होते हुए भी हम तो कम से कम कहना चाहेंगे क्योंकि यहाँ पर यदि गलत व्यक्ति आ जाये तो खतरा पैदा हो सकता है। जैसे नदी चढ़ जाने से नदी पर बने मकान के लिए खतरा होता है। यदि वह घुस करके शहर में नदी आ जाये उसका प्रबन्ध करना पहले आवश्यक होता है। चाहे वह दिन हो, चाहे रात हो, वह प्रबन्ध आवश्यक होता है, फिर यह नदी तो समुद्र की तरह है। सुनते हैं जब चक्रवात आ जाता है, समुद्र का बहुत सारा जल शहरों में घुस जाता है।

तटों का उल्लंघन हो जाता है वहाँ की आबादी बर्बाद हो जाती है तो यह भी इसी प्रकार का है। रामचन्द्र जी ने कहा शरणागत के सम्बन्ध में ज्यादा विचार नहीं करना चाहिए। विभीषण को अन्दर बुलाया गया। चूंकि वह रावण का भैय्या था और रावण को तो आप समझते हैं इस भारत भूमि के लिए कैसा क्या था? प्रतिवर्ष उसके पुतले जलाये जाते हैं। प्रतिवर्ष उससे मनोरंजन करके उसको उपहास का पात्र बनाया जाता है। चूंकि उसके पीछे बहुत बड़ा इतिहास है। विश्व में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं होगा जो राम रावण विभीषण के बारे में नहीं समझता हो। बड़े-बड़े लेखक अपनी लेखनी का विषय बना चुके/बना रहे हैं। राम ने उसको ज्यों ही देखा, कोई अंतर नहीं आया, उनके मन में। जहाँ पर विराट् जीवन चलता है, विशालता होती है, वहाँ पर इस तरह की संकीर्णता के लिए स्थान नहीं मिला करते हैं।

आपके पास आँख है आँख की पुतली है, उसमें तिनके बराबर स्थान है, इसमें से विराट जन समूह देखने में आ रहा है। यह रिफ्लेक्शन एक विशेषता मानी जाती है। बुद्धि जिसकी संकीर्ण होती है, उसके व्यक्तित्व में/बुद्धि में एक व्यक्ति टिकता है। बाकी सारा का सारा विपक्ष में खड़ा हो जाता है। शतरंज का खेल होता है। शतरंज खेलने वाला यदि संकीर्ण बुद्धि वाला है तो वह हार जायेगा। ऐसा हार जायेगा कि एक सैनिक के द्वारा भी राजा की टोपी गिर जायेगी। उसी शतरंज के समान युद्ध में दो सेनाएँ खड़ी हैं वहाँ अपनी सेना की मजबूती पर ही ध्यान नहीं देना है बल्कि शत्रु सेना की कमजोरी/मजबूती पर भी ध्यान देना है। प्रतिपक्ष को यदि भूल जायेगा, निश्चत है हारेगा और वह अपने पक्ष की कभी भी रक्षा नहीं कर सकता और यदि प्रतिपक्ष को भी अपने अंडर में लेना चाहता है तो वह तीन काल में अजेय होगा।

विचारों में विशालता रखिए। कहाँ से किस ओर से विचारों का प्रहार हो रहा है इस ओर ध्यान रखिए और देखने वाला विवेक/बुद्धि हमेशा जागृत रखे और वह राम ज्यों के त्यों बैठे है, सामने वाला वह व्यक्ति आ जाता है। लक्ष्मण आदि और जो भी सहयोगी थे, वो सारे के सारे उसे देखकर भीतर ही भीतर गर्म होने लगते हैं, इस बात को वह राम बहुत अच्छे ढंग से देख रहे हैं और सोच रहे

हैं। एकाएक राम के अधरों से शब्द निकलते हैं आइये! कैसे आना हुआ। वह हाथ जोड़कर खड़ा होता है, ज्यों ही वह हाथ जोड़ता है, त्यों ही मन में जो संदेह था, वह थोड़ा-थोड़ा सा उतरने लग जाता है।

लेकिन जब उसने कहा कि हे राजा राम आपसे अकेले में बात करना चाहता हूँ। यह सुनते ही लक्ष्मण का पारा गरम हो जाता है। यह षडयंत्री दिखता है, भैय्या को अकेला पाकर कुछ कर सकता है। लक्ष्मण ने कहा- नहीं जो कुछ कहना है सबके सामने कहिये। राम कहते हैं लक्ष्मण से चुप बैठ जाओ, अब क्या करें? हर बात में बैठ जाओ और वह भी चुप बैठ जाओ, बोलो भी नहीं। यहाँ तलवार निकाल कर खड़े होना चाहिए लेकिन क्या करें? भैय्या का आदेश और राम ने एकान्त समय दिया, विचार विमर्श हुआ। बाद में लक्ष्मण को भीतर बुलाया। लक्ष्मण ने देखा, विभीषण भैय्या के चरणों में बैठा है। विभीषण की आँखों में पानी बह रहा है और कह रहा है, हमारे बड़े भाई अनीति/अन्याय पर उतर आये हैं। राज्य का एवं प्रजा का नाश करने के मार्ग पर चल पड़े हैं, नीति की बातें अच्छी नहीं लगती हैं। विनाश कालीन विपरीत बुद्धि हो गई है। अत: मैं भाई का व्यामोह छोड़ कर सत्य का पक्ष लेने के विचार से आपकी शरण में आया हूँ। यह वचन सुनकर लक्ष्मण आश्चर्य चकित रह गया।

राम की यह विशाल विचारधारा आज की नहीं वह तो बचपन की थी, बचपन की ही नहीं पूर्व जीवन की थी। ये तो बहुत सुदूर संस्कारों से संस्कारित थे। इनकी दीर्घ साधना का फल है और जब उनके चरणों में विभीषण रो रहा है, लक्ष्मण भी जो कठोर हृदय वाला था थोड़ा सा पसीज गया। लेकिन लक्ष्मण फिर भी राजा के नाते सोच रहा है- हम एकदम विश्वास करने लग जायें ये ठीक नहीं है। राजा का मन विश्वस्त नहीं होता और महाराज का मन विश्वस्त रहता है हमेशा-हमेशा क्योंकि मन के ऊपर अंकुश रहता है। जिस व्यक्ति के मन के ऊपर अंकुश रहता है, मन इधर-उधर की बात नहीं कर सकता है। जिसका संयम जीवन नहीं होता वही व्यक्ति बार-बार सोचता है कि कहीं ऐसा न हो जाये कि विश्वासघात हो जाये।

अपने मन के ऊपर भी विश्वास नहीं करता है लेकिन जो संयमी होता है, संयम के सम्मुख होता है वह हमेशा-हमेशा अपने मन के ऊपर विश्वास रखता है। नहीं, ये साथ देगा क्योंकि उसका विचार करने के उपरान्त उत्पन्न हुआ है, देखा देखी नहीं हुआ करता और ये बात हुई और दोनों चरणों में बैठ जाते हैं, लक्ष्मण भी फिर कुशल क्षेम पूछता है। राम कहते हैं कि लक्ष्मण इनको अपनी सेना में भर्ती कराना। लक्ष्मण कहता है सेना में भर्ती कराना ये तो बगावत की बात आ गई। एक मिलिट्री दूसरी मिलिट्री को स्वागत करे, ये तो कहीं संभव नहीं। इनको हम यहीं पर बिठा सकते हैं लेकिन हमें विश्वास नहीं हो रहा है कि हमारी सेना में भर्ती होकर अपने भाई की सेना से ईमानदारी से लड़ेंगे!

राम कहता है कि ऐसी बात नहीं है, वह रावण के सामने खड़ा होगा। तुम भी और मैं भी खड़े होंगे। लेकिन आज अन्याय के सामने न्याय खड़ा हो रहा है, यह ध्यान रखना। न्याय का यह पक्ष है। विभीषण ने रावण के अन्याय को सहन नहीं किया और राम के पास न्याय था। उसकी महक, उसकी सुरभि, उनकी नासिका तक पहुँच गयी। इसको कोई रोक नहीं सकता। आप नाक बंद कर लें लेकिन विचारों की गंध ऐसी हुआ करती है और आचारों की गंध वह कभी भी आपके किसी भी अवयव से घुस कर आपको संतुष्ट कर सकती है। भाई-भाई एक ही कोख से जन्म लेने वाले भाई की तरह विभीषण राम और लक्ष्मण का अपना हो गया। सब लोग विस्मित हो गये। दो का काम तीन में आ गया और ये ध्यान रखना तीन होते ही संगीत का प्रवाह अपने आप बढ़ने लग जाता है।

एक नर्तक होता है, एक गायक होता है और एक वादक होता है फिर तालियाँ अपने आप ही बज जाती है। तब वह आनंद अपने आप आने लग जाता है तो ऐसी ही बात हो गयी। ये कैसी घटना? क्या आज यह संभव है? सामने वाला बहुत भ्रष्टाचार की ओर बढ़ रहा है, सामने वाला व्यक्ति विपरीत है, सुनते हैं आज राजनीति में कोई व्यक्ति काम करने लग जाता है तो कहने लग जाता है कि महाराज ये विपक्ष के नेता हैं। मैंने कहा- विपक्ष का कैसा नेता? भाई आपका पक्ष है, वो विपक्ष है। उनके लिए आप विपक्ष हो। दोनों विपक्ष हो गये। देश का पक्ष लेने वाला कोई यहाँ पर है कि नहीं? बड़ी विचित्रता है, हम हमेशा-हमेशा विपक्ष की ओर देख रहे हैं, लेकिन देश का क्या पक्ष होता है, इस ओर नहीं देखा जाता है और संकीर्ण बुद्धि का ये परिणाम होता है कि हमेशा-हमेशा पार्टियाँ खड़ी हो जाती हैं, सत्ता खड़ी हो जाती है। देश के लिए कौन हितकारी है? यह ज्ञात करना बहुत कठिन हो जाता है जबकि दोनों अंग देश के हैं। ये कर्त्तव्य होता है कि कोई चुन करके आ जाता है तो दूसरा भी पक्ष उसको सहयोग दे, ये बात अलग है कि अंधाधुन्ध सहयोग नहीं देना चाहिए लेकिन उसकी कार्य योजना में हाथ बँटाना चाहिए तभी देश की उन्नति हो सकती है। और एक दूसरे को विपक्ष मानते रहे तो देश की उन्नति नहीं होगी और आपकी जितनी योजना है वही देश की उन्नति के लिए कारण है। जब आप खड़े होंगे तो वह अड़ेगा वह खड़ा होगा तो आप अड़ेंगे। ऐसी स्थिति में देश वहीं पर खड़ा होकर के देखता रहेगा।

मंदोदरी ने, विभीषण ने समझाया, प्रजा हार गयी समझाते-समझाते, अपना मन भी कभी-कभी कहता है कि वस्तुतः ये ठीक नहीं कर रहा हूँ लेकिन फिर भी एक बात जब उठ गई तो उसको वापस लेना बहुत कठिन होता है। जो व्यक्ति गलत करे, गलत कदम उठाये और मुख से गलत बोले फिर भी कहे कि यह गलती मेरी नहीं है, अथवा मैं माफी नहीं माँगना चाहता हूँ। ऐसा कहे तो समझ लेना उसका हित होना संभव नहीं है। अहित के बारे में वह सोच रहा है, सही हित से वह वंचित रह रहा है और रावण की यही दशा हो गई। रावण कहता है कि जैसे मैंने पुरुषार्थ पूर्वक सीता को उठाया

था उसी प्रकार राम का पुरुषार्थ हो, लक्ष्मण का पुरुषार्थ हो, फिर बाद में वह सीता मिलेगी। वह अपने आपको अहित के गर्त में धकेल रहा है और सामने वाला पक्ष कहता है– हे रावण! तू छोड़ दे, तू महान् योद्धा होकर के क्षत्रिय होकर के महान् नीतिज्ञ हो करके ऐसा क्यों कर रहा है? राम फिर भी कहते हैं, देख रावण मैं तुम्हें मारने के लिए नहीं आया हूँ लक्ष्मण को भी कह देता है कि इसके ऊपर किसी भी प्रकार का अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग न करें। केवल इतना है कि हम सीता को सुरक्षित लेने आये हैं। लंका के आप राजा हैं आपको कोई मारेगा नहीं क्योंकि राजा के ऊपर कभी भी हाथ नहीं उठाया जा सकता है यह शतरंज खेल का एक नियम है। दूर से उसके लिए 'शह' दिया जाता है। यहाँ हटा दीजिए अपने राजा को। बस इतना ही या तो एकदम पीछे या आजू में, बाजू में या सामने या तिरछे कहीं भी एक घर वह चला जाता है। बस यही उसका कार्य है। अंत-अंत तक राजा के ऊपर हमला बोला नहीं जाता लेकिन राजा को घेरा जाता है अवश्य। रावण घिरता चला जा रहा है और ऐसे-ऐसे सैनिकों से घिरता चला जाता है, जब पतन होता है उस समय ही पतन का कारण नहीं होता। पतन के कारण बहुत पहले हुआ करते हैं। विचारों में, आचारों में अंतर होता चला जाता है। ये अब बातें देखकर के रावण को ऐसा लग रहा है कि मेरी हार निश्चत है और राम विजयी बनेगा और सीता को वह ले ही जायेगा। कोई बात नहीं लेकिन जब तक दम में दम रहेगा तब तक ये हरदम छोड़ने वाला नहीं है। यह भी इसका संकल्प है, कटिबद्ध है। ये कभी भी पीछे मुड़ करके देखेगा नहीं। क्षत्रिय है लेकिन क्षत्रियता रावण के पास नहीं रही।

क्षत्रिय का अर्थ है जो पापों से बचाये प्रजा को, अहित से बचाये प्रजा को। जो व्यक्ति पाप के कुण्ड में स्वयं गिर रहा है प्रजा को वो कैसे बचा सकता है? यथा राजा तथा प्रजा वाली बात है। लेकिन आज राजा नहीं प्रजा है और प्रजा की सत्ता है। प्रजा के पास ऐसी क्षमता होनी चाहिए थी लेकिन नहीं है। आज प्रत्येक व्यक्ति ये नहीं सोच रहा है कि राष्ट्र की उन्नति किसमें है? वह अपनी बात सोचता है मुझे क्या मिलने वाला है? अरे देश को मिलेगा तो मुझे अवश्य मिलेगा। नहीं-नहीं देश को बाद में, पहले मुझे मिलना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति ऐसा करेगा तो देश का क्या होगा? आज देख रहे हैं, आप बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ हैं और राजनीति क्या होती है ये पता नहीं है। जब तक प्रजा के हित में जो नहीं सोच रहा है, वह राजनीति नहीं जानता। वह राम-लक्ष्मण को जान ले, वह रावण को भी जान ले। रावण इतना बड़ा योद्धा फिर भी वह गिर गया, वह ऐसा गिर गया जैसे तूफान में बड़ का पेड़ गिर जाता है।

सबसे बड़ा पेड़ होता है बड़ का लेकिन सबसे नाजुक पेड़ होता है। उसकी गहराई में ज्यादा जड़ें नहीं जाती हैं और बहुत फैली हुईं होती हैं। तूफान में जल्दी शीर्षासन कर लेता है किन्तु बबूल के पेड़ और अन्य पेड़ इस ढंग से नहीं होते। वो इतने फैलते नहीं हैं और फैलते भी हैं तो नीचे गहराई

में पहुँच जाते हैं। जो नीचे गहराई में नहीं जाता है उसका अवसान निश्चत है, उसका पतन निश्चत है और निश्चत रूप से वह अपयश का पात्र बनेगा। ये ही होने लगा। फिर भी राम कह रहे हैं, रावण! सोच ले! सोच ले! और लक्ष्मण कहता है राम को, विभीषण तो पक्ष में आ गए ठीक है लेकिन रावण के ऊपर भी आपकी कृपा बरस रही है? हमें समझ में नहीं आता। भाभी को जिसने चुराया, हाथ लगाया और उसको आप भाई कह रहे हैं? नहीं! यहाँ तलवार लपलपा रही है और जिह्वा कुछ कहने को आतुर हो रही है। राम कहते हैं– हाँ, अवसान होने के बाद कुछ कहा नहीं जा सकता। पतित होने के उपरान्त पावन बनाने की अपेक्षा, पतन होने से पहले ही उसे बचा दें, यही अच्छा होता है। गिराने के उपरान्त या गिरने के उपरान्त उठाने की अपेक्षा गिरते हुए को संभालना बहुत अच्छा होता है। लक्ष्मण बैठ जाओ तुम थक गये होगे। लक्ष्मण कहता है, बैठ जाऊँ ? हाँ! हम आपकी नीति से थके तो हैं ही लेकिन यह थकावट और विशेष रूप से उत्तेजना प्रदान कर रही है क्योंकि जिस व्यक्ति का आज तक विश्वास नहीं है फिर भी आप विश्वस्त हैं। राम कहते हैं जब छोटा भैय्या आ गया तो बड़ा भैय्या क्यों नहीं आ सकता है? सोचने की बात है। एक खून, एक गोत्र, एक जाति इसी का नाम तो संतान है। उसका खून पलट गया तो बड़े भैय्या का क्यों नहीं पलटेगा?

परिवर्तनशील है संसार। एक समय के, एक क्षण के उपरान्त हमारे विचारों में अंतर आ सकता है और सामने वाले व्यक्ति के आचार का अवश्य प्रभाव पड़ता है। उच्च आचरण जिसमें अहिंसा पलती रहती है वह उसका प्रतीक रहता है। जैनों के यहाँ विशेष बात कही है कि तुम अहिंसा के चिह्नों को सुरक्षित रखा करो। व्यक्तित्व की कोई बात नहीं है, व्यक्ति की कोई बात नहीं है लेकिन व्यक्तित्व कहाँ पर छिपा होता है? चरण चिह्नों में रहता है। उन चरण चिह्नों को बार-बार हम माथे पर लगा लेते हैं, उस चरण रज को हम अपने माथे पर लेते हैं क्योंकि चरण रज में अहिंसा की गंध आती है। अहिंसा की वह सुगंध हमारे जीवन को आमूलचूल परिवर्तित करने वाली होती है। संयम की गंध में जो व्यक्ति रह जाता है, उसका असंयम अपने आप ही परिवर्तित होने लग जाता है। बातों से नहीं, विचारों से नहीं। विचारों के द्वारा हम दूसरों को परिवर्तित तो कर सकते हैं लेकिन एक घंटे के बाद वह पुनः परिवर्तित हो सकता है लेकिन आचार के माध्यम से स्वतः जो परिवर्तन आता है वह ऐसा स्थायी परिवर्तन हो जाता है कि पुनः उसके लिए संबोधन की आवश्यकता नहीं पड़ती है क्योंकि वह अहिंसा के चरण चिह्नों की गंध हुआ करती है। आप लोगों को ढूँढ़ने की आवश्यकता है। अभी राम के चरण चिह्न कहाँ-कहाँ पर पड़े हुए हैं? ढूँढ़ने की आवश्यकता है कि राम कहाँ-कहाँ से चलकर चले गये हैं?

सुनते हैं भारत वर्ष में राम का यत्र-तत्र विचरण हुआ है। जंगल में एक- एक कण में उनके वह संस्कार आज भी पड़े हैं और सिद्ध क्षेत्रों की वंदना हम जब करते हैं और पुनीत पावन क्षेत्रों का

दर्शन जब हम करते हैं तो हमारे भीतर सोयी हुई जो चेतना है वह उठने को वाध्य हो जाती और उसके ऊपर ऐसे संस्कार पड़ जाते हैं कि हमारे जो तात्कालिक आचार-विचार जो गंदे हैं वे अपने आप शान्त हो जाते हैं।

लेकिन यह ध्यान रखिए-विचारों में साम्यता लाइये। पक्ष और प्रतिपक्ष को गौण करके चलिए और सही अहिंसा की राह पर चलने का प्रयास कर लीजिए, निश्चत रूप से आपका कल्याण होगा। राम की कथा ही नहीं सुनना है बल्कि राम की व्यथा को पहचानना है। शरणागत वत्सल के आदर्शों को जीवित रखना है तथा विभीषण के आदर्शों को भी आज जीवित रखने की आवश्यकता है। विभीषण की नीति थी कि यदि राजा अन्यायी हो तो उसको छोड़कर न्याय पक्ष में हो जाना चाहिए। सत्य के समर्थन के लिए भाई को भी छोड़ा जा सकता है।

❑ ❑ ❑

गुरुओं के गुरु आचार्य शान्तिसागर

(चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ शान्तिसागर जी महाराज की ८२ वीं पुण्य तिथि पर परम पूज्य आचार्य प्रवर श्री विद्यासागरजी महाराज का उपदेश)

आचार्य समन्तभद्र महाराज ने रत्नकरण्डक श्रावकाचार में श्रावकों को जागृति देने के लिए सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का वर्णन किया है। आज समन्तभद्र महाराज हैं जो सिंह गर्जना के साथ काम करते हैं क्योंकि वहाँ पर किसी प्रकार की लचकदार बात समझ में नहीं आती। जो व्यक्ति सच्चे देव शास्त्र गुरु की उपासना करता है वही व्यक्ति सम्यग्दर्शन का पात्र है। लेकिन उनके सम्यग्दर्शन के बारे में प्रश्न चिह्न (?) लगता है। जो भय के कारण, कषाय के कारण अन्य कोई बात कर देता है तो उसके लिये कहा जाता है कि सम्यग्दर्शन रूपी दिव्य रत्न का लाभ उस व्यक्ति के लिये नहीं होता।

मोक्षमार्ग भयभीत व्यक्तियों को नहीं होता, मोक्षमार्ग लोभ लालच के साथ नहीं चलता, मोक्षमार्ग कषायों के साथ सम्बन्ध नहीं रखता, मोक्षमार्ग तो एक निर्भीक और निरीह व्यक्ति के लिए ही कल्याणकारी है। सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के ऊपर श्रद्धान करने वाला सम्यग्दर्शन का पात्र होता है। विषयों से और कषायों से ऊपर उठना पहले अनिवार्य है। भले ही उस मोक्षमार्ग के ऊपर विश्वास रखने वाला विषयी हो सकता है, कषाय करने वाला हो सकता लेकिन जिसके ऊपर विश्वास रखा जा रहा है वह कषाय से रहित होना चाहिए नहीं तो मोक्षमार्ग सुरक्षित नहीं रह सकता। आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने कहा है कि जिसके ऊपर श्रद्धान किया जाता है वह गुरु कैसा होना चाहिए?

विषयाशावशातीतो निरारम्भो परिग्रहः।
ज्ञान-ध्यानतपो-रक्तस्तपस्वी सः प्रशस्यते॥

(रत्नकरण्डक श्रावकाचार-१०)

जो व्यक्ति मोक्षमार्ग में आरूढ़ होने के उपरान्त पक्ष व्यामोह को नहीं छोड़ सकता तो उस व्यक्ति ने मोक्षमार्ग को अपनाया ही नहीं ये ज्ञात होता है। इसलिए आ. समन्तभद्र महाराज की आचार्य शान्तिसागर जी महाराज ऐसे ही गुरु थे। पंथ व्यामोही उनको अपने ढंग से उनकी चर्या को प्रस्तुत करते हैं यह गलत बात है। ज्ञानसागरजी महाराज ने एक बार शान्तिसागरजी महाराज का एक संस्मरण सुनाया था, उसको ज्यों का त्यों आपके सामने हम प्रस्तुत कर देते हैं। राजस्थान में अजमेर जिलान्तर्गत ब्यावर एक उपनगर है। महाराज जी की समाधि के बाद हमारा प्रथम चातुर्मास वहीं पर हुआ था वहाँ की ये बात है।

वहाँ पर दो नसियाँ हैं। एक बड़ी नसियाँ मानी जाती है, उस नशियां में दोनों शान्तिसागरजी महाराजों का चातुर्मास हो रहा था। एक छाणी के शान्तिसागर महाराज जी के नाम से विख्यात थे और दूसरे दक्षिण के शान्तिसागर जी के नाम से प्रसिद्ध थे जिनकी आज पुण्यतिथि मनाई जाती है। जनता बहुत बावली है। जनता को हमेशा इतिहास का सही-सही ज्ञान कर लेना चाहिए। इतिहास का ज्ञान जिसको सही नहीं होता वह निश्चत रूप से पक्षपात रूपी अन्धकार में भटक जाता है और इस प्रकार का पक्षपात उसके लिये वह अभिशाप ही सिद्ध हो जाता है। उसके द्वारा बहुत प्रकार की भ्रान्तियाँ भी फैल सकती हैं तो जब ये (उस ज्ञानसागर जी) ब्रह्मचारी अवस्था में गये थे, भूरामल नाम इनका प्रसिद्ध था। वाणी भूषण कवि भूरामलजी पहुँचे वहाँ पर। गाँधीजी की ड्रेस में और उनके उस सान्निध्य में ७-८ दिन का सौभाग्य प्राप्त किया। दो शान्तिसागर महाराज को देख करके भूरामलजी प्रभावित हो गये थे। पंडित भूरामलजी साहित्य के सर्जक थे। अपनी जिनवाणी की सेवा करते हुए गूढ़ रहस्य को समझते हुए आबाल गोपाल को साहित्य के माध्यम से जैन दर्शन क्या है? इसको समझाने का, दिखाने का प्रयास इनके मन में हमेशा बना रहा। साहित्य एक ऐसी वस्तु है जिसके माध्यम से हम मुनि कौन होते है? वीतरागता क्या होती है? यह सब ज्ञात हो जाता है। साहित्य वह पदार्थ है जिसके माध्यम से देव-गुरु-शास्त्र का स्वरूप यथार्थ के रूप में समाज के सामने रखा जाता है। मुनि-महाराजों के साहित्य की सेवा करनी चाहिए, हमेशा वो कहा करते थे।

जब पं. भूरामलजी ने देखा उभय शांतिसागर महाराज जी को, उनकी मुद्रा को। यह भी शान्त लग रहे हैं और यह भी शान्त लग रहे हैं। इनको देखते हैं तो इनसे शान्त ये लगते हैं। दोनों शान्तिसागर जी महाराजों को वहाँ के लोगों ने परिचय कराया। दोनों महाराजों ने पं. भूरामल की विद्वता के बारे में पहले से ही सुन रखा था कि इन्होंने महाकाव्यों का सृजन किया है। भूरि-भूरि प्रशंसा हुई उनकी। महाराजों ने कहा कि इतना कठिन साहित्य का सृजन कठिन साधना के माध्यम से आपने कैसे किस ढंग से इसका सम्पादन किया? आदि बातें/चर्चायें हुईं। उन आठ दिनों में उन्होंने मुनि चर्या के बारे में बातें जो सुनी/देखी तो कई शंकाएँ दूर हो गईं। कई लोग जो शान्तिसागर जी के सम्बन्ध में कहते

थे वे पंथ व्यामोह वाले हैं, भूरामलजी ने उनकी चर्या में नहीं देखी। यानि जिस प्रकार की चर्चाएँ होती हैं वे निराधार होती हैं। चर्चा करने वाले व्यक्ति हमेशा-हमेशा बीच में उसको क्या बोलते हैं नमक मिर्च मिलाकर कहते हैं। जिसको बोलना चाहिए, ये तो निश्चत बात है कि नमक मिर्च लगाने से स्वादिष्ट लगता है इसको बघार भी बोलते हैं। लेकिन कभी-कभी ज्यादा बघार के कारण बिगड़ भी जाता है, बिगाड़ देता है, जला हुआ हो जाता है। कोई भी पक्षपात नहीं, कोई भी आग्रह, पंथ व्यामोह नहीं था। ऐसी परम्परा को देखकर जो धारणा बना रखी थी वह सबसे पहले उन्होंने समाप्त कर दी और चर्चा के माध्यम से साहित्य चर्चा, सिद्धान्त चर्चा, अध्यात्म चर्चा के माध्यम से जितने दिन वहाँ व्यतीत किये वे भूरामल जी के लिए स्मरणीय रहे। पंथ व्यामोही श्रावक, हमारे गुरु- हमारे गुरु कह-कह कर गुरु के व्यक्तित्व को संकीर्ण बना देते हैं। हमारे क्या ये तो विश्व के गुरु हुआ करते हैं। पंथ व्यामोही गुरु दुनियाँ के प्राणी मात्र का कल्याण नहीं कर सकता। वह तो अपने पंथ के व्यामोहियों के व्यामोह में जकड़ कर कूप मंडूक बन जाता है। शान्तिसागर महाराज के नाम से पंथ के बारे में प्रचार-प्रसार वर्तमान में चलता है यह वस्तुतः गलत है। गुरु महाराज से सुनने के उपरांत किसी के सामने हम कह सकते हैं, प्रथम बार मैं कह रहा हूँ कि दोनों प्रकार के शान्तिसागर जी महाराज को देखने से दिगम्बरत्व का सच्चा स्वरूप पता चला। आज ये कम से कम भी ४०-४५ वर्ष पूर्व की बात हो गई कम से कम कह रहा हूँ उस समय की ये बात है। दोनों आचार्य ने कहा कि पंथ व्यामोहता श्रावकों की व्यामोहता है, आगम की नहीं। उत्तर-दक्षिण में हम भटक जाते हैं। हमें गुणों की अपेक्षा से परिचय प्राप्त कर लेना चाहिए। कुन्दकुन्द देव ने प्रवचनसार में देव-गुरु-शास्त्र के बारे में पहचान का अर्थ क्षेत्र से नहीं बताया, कुल से नहीं बताया, जाति से नहीं बताया, वंश से नहीं बताया, बताया है मूलगुणों के माध्यम से। गुण सुरक्षित रहेंगे तो हमारे देव-गुरु-शास्त्र सुरक्षित रहेंगे, वो यदि सुरक्षित नहीं रहेंगे तो केवल नाम शेष मात्र रहेगा। जिनदर्शन का मूल उद्देश्य सिद्धान्त है गुणों की उपासना करना और गुणी व्यक्तियों को पैदा कर देना जिसके माध्यम से गुणियों की पहचान समाप्त न हो जाय।

आचार्य शान्तिसागरजी महाराज को जिस पंथ के बारे में सोचा जाता है, मैं समझता हूँ यह अभिशाप का ही एक प्रतीक है। महाराज जी में यह तिल-तुष मात्र भी नहीं था। महाराज जी को मैं मानता हूँ और आप किस रूप में मानते हैं यह भी मैं जानता हूँ। मेरे वचन आप लोग के किये कटु लग सकते हैं लेकिन मैं गुणों की उपासना करना ही श्रेष्ठतर समझता हूँ क्योंकि मैं आचार्य ज्ञानसागर जी का शिष्य हूँ ये ध्यान रखना! और उन्होंने ये ही कहा कि गुण जब तक रहेंगे तब तक जैन धर्म रहेगा, जिस दिन गुण समाप्त हो जायेंगे जैन धर्म का नाम नहीं रहेगा। ये पवित्र धर्म गुणों के ऊपर आधारित है और गुण बाजार में खरीदे नहीं जा सकते। गुणों को पैदा करना होगा आत्मा में और गुणों

के लिये साधना की आवश्यकता होती है और गुण किसी व्यक्ति के चिपकने से नहीं हो सकते। गुण के लिये द्रव्य की ओर उस स्वरूप की ओर देखना पड़ता है तब कहीं वह जाकर के सामने आता है। आज समाज के बीच में ३०-४० वर्ष से मैंने भी कुछ देखने का प्रयास किया वस्तुतः समाज, एक भोली समाज जिसे कहना चाहिए, स्वाध्याय की हीनता होने से इस स्वरूप तक नहीं पहुँचती और परिणाम स्वरूप जो आदर्श है उन आदर्शों के ऊपर धूल फेंकने का प्रयास करती रहती है। ध्यान रखना यदि दर्पण के ऊपर धूल चिपक जाये तो न ही दर्पण की पहचान होगी, न ही दर्पण में अपना मुँह दिखेगा।

हमें अपने स्वरूप की पहचान के लिये सर्वप्रथम उस आदर्श को आदर्श के रूप में रखने का प्रयास करना चाहिए। दोनों शांतिसागर जी महाराज के बारे में जब बातें सुनीं तब ऐसा लगा और गुरु महाराज से ऐसी बात सुनीं और गुरु महाराज ने ऐसी बात कहीं तो इस बात को अवश्य रखना चाहिए समाज के सामने। जो वर्तमान में परम्परा कहकर एक अन्धकार फैलाया जा रहा है उसको निश्चत रूप से दूर किया जा सकता है लेकिन मैं इसके बारे में ज्यादा नहीं कहना चाहता है।

(History of Achary Shanti Sagar Jee) क्या हैं, ये जानने का प्रयास करना चाहिए।

दूसरा एक संस्मरण जो संस्मरण के रूप में नहीं किन्तु श्रमण के जीवन परिचय से मिला। आ. शान्तिसागर जी अपने संघ के साथ उस व्यक्तित्व के पास गये। कालान्तर में शान्तिसागर जी महाराज को भी उन जैसा बनना था, पद प्राप्त करना था। एक संन्यस्त महाराज हैं जिनकी दक्षिण में समाधि हुई है। एक लेख जो पढ़ा था, जो ५० वर्ष पूर्व का लेख हो सकता। लेख से क्या है? कैसा है? यह मैं नहीं जानता। लेकिन शान्तिसागरजी महाराज वहाँ पर उपस्थित अवश्य थे और उनका फोटो भी अपने सामने आता है। आचार्य शान्तिसागरजी शान्त मुद्रा में उस व्यक्ति को देख रहे हैं, दर्शन कर रहे हैं और जो उनकी साधना सल्लेखना की चल रही है, उसको वे सराह रहे हैं। सुना उसमें जो पढ़ा। ये वे व्यक्ति संन्यस्त थे, जो प्रायः करके गुफा में रहते थे। एक एन. उपाध्ये के बारे में भी एक लेख पढ़ा जो सम्भव है, उन्हीं का हो सकता है। महाराज कम से कम सात दिन में एक बार आहार के लिए उठते थे। इस लेख के अनुसार तो ये ज्ञात होता है और अन्त में जब उन्होंने सल्लेखना ले ली तो एक साथ सर्वविध भुक्ति का त्याग कर दिया। कई लोगों ने इसके बारे में टीका टिप्पणी प्रारम्भ कर दी, एक साथ कैसे त्याग कर दिया? जिस व्यक्ति ने अपने जीवन में ८ या ९ दिन में आहार लेने की साधना की है उस व्यक्ति की युक्ति के बारे में आपकी टीका टिप्पणी वह कानों तक ही नहीं ले जायेगी। उस आदर्श मूर्ति के सामने जाकर आचार्य शान्तिसागरजी महाराज अपने संघ सहित बैठे हैं। उसका शायद चित्र भी हमने देखा होगा, चित्र भी है संभव है। उस चित्र की गवेषणा

कर लेनी चाहिए। कौन बड़ा? यहाँ पर कौन छोटा? इसको अपने मस्तिष्क से निकाल दीजिए और यदि आप नहीं निकालते तो ध्यान रखना आप सही मायने में आचार्य शान्तिसागरजी महाराज को नहीं जानते हैं। बीच के व्यक्तियों की बात सुनना नहीं चाहिए। जो शान्तिसागरजी महाराज पहले स्वीकार कर रहे हैं उस बात को पहले समझने का प्रयास करना चाहिए। गुफाओं में रहने वाले वे मुनि महाराज, वे कौन हैं? नाम से ही तो गड़बड़ हो जाता है लेकिन शान्तिसागर महाराज जी उनके पास गये उस आदर्श को देखे, फोटो सामने है। क्यों गये शांतिसागर महाराज जी? सोचने की बात है। इसलिए गये, जिसने अपने जीवन काल में इस प्रकार की कठिन तपस्या करके अंत में–

अन्तःक्रियाधिकरणं, तपःफलं सकलदर्शिनः स्तुवते।
तस्माद्यावद्विभवं, समाधिमरणे प्रयतितव्यम्॥१२३॥

(रत्नकरण्डक श्रावकाचार)

और मुनिपन की बात तो करते हैं और उस सल्लेखना के प्रति कितनी रुचि साधकों की है। वह रिजल्ट सामने आ रहा है। कौन-कौन उसके लिये समर्पित है? आचार्य समन्तभद्र स्वामी जयघोष के साथ कहते हैं मुझे सब मालूम है कि तुम्हारा तप कितना है? तप का फल 'सल्लेखना'! उसमें जो पास होता है, वही तप में पास, बाकी सब ठीकठाक है। इसलिए तप करते हुए सल्लेखना को ध्रुव के रूप में, आदर्श के रूप में सामने रखिये। जब वहाँ सल्लेखना के बारे में देखा, जाना, पहचाना, पूछा और अनुमान लगाया होगा कि हमारे लिये क्या होगा? जिन्होंने दस-दस उपवास करने के साथ आहार करने का अभ्यास किया। आप यदि संकल्प लेकर के करें तो कितना कर सकते हैं, जिसका अनुमान आप लगा सकते हैं। आप लोग अष्टमी के दिन एक उपवास करते हो तो एक महीने पहले सोचना पड़ता है। महाराज शान्तिसागर जी का नाम लेने से काम नहीं चलेगा। वह आदर्श जिनके जीवन में था, उनके सामने बैठें। लोगों की टीका टिप्पणी सुनकर के ऐसा लगा क्या बात हो गई आचार्य शान्तिसागरजी महाराज देखने के लिये गये हैं। आप उस व्यक्ति के बारे में क्या सोच रहे हैं? जो गुरु महाराज अपनी परीक्षा के बारे में सोच रहे हैं– मुझे क्या करना है? और आप लोग क्या सोच रहे हो? आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के बारे में। ये सब गलत है। समाज में आज परम्पराओं को लेकर आचार्य पद को लेकर के जो इन दिनों में पत्र पत्रिकाओं में पुस्तक-पुस्तिकाओं में टीका-टिप्पणी आलोचनाएँ यहाँ तक कि कोर्ट कचहरी तक हो गई। ये बहुत शर्म की बात है।

समाज को इसके बारे में शान्ति रखना चाहिए। आचार्य शान्तिसागरजी की बात करते हो और अशान्ति फैलाते हो। उनकी जीवन चर्या का अध्ययन करने का प्रयास कर लेना चाहिए। पक्षपात से ऊपर उठोगे तभी मुनि की चर्या के बारे में आप सोच सकोगे, पहचान सकोगे और उनसे कुछ प्राप्त

कर सकोगे नहीं तो दोनों कर खाली रखोगे। ये ध्यान रखना ये शान्तिसागर महाराजजी जब उनकी चर्या से प्रभावित हुए, क्यों हुए? "**अन्तः क्रियाधिकरण तपः फलं**" मुझे भी सल्लेखना लेना है, क्या साधना है, उस सल्लेखना के समय पर ज्ञात हो जायेगा। इस प्रकार का एक आदर्श उनके सामने था। आ. शान्तिसागर जी के समय पर दूसरे शान्तिसागरजी थे, ये कई लोगों को ज्ञात नहीं होगा और जो ब्यावर में चातुर्मास इनका मिलकर के हुआ, आप ही बताओ यदि शान्तिसागरजी एक किसी पंथ को रखने वाले होते तो दोनों कैसे मिल करके एक ही जगह चातुर्मास करते?

हमारा भी उसी नसियाँ जी में चातुर्मास हुआ था। एक दिन भी वहाँ पर किसी पंथवाद को लेकर के चर्चा आदि नहीं हुई। वर्तमान में आचार्य शान्तिसागरजी महाराज को लेकर के जो बातें आ गई हैं, वे वस्तुतः शान्तिसागरजी से परे लगती है। भले वह बुरी लगती होंगी वर्तमान के युग को लेकिन इन बातों से तो ये जाहिर हो जाता है। उसको सुधारने का प्रयास करना चाहिए। मेरा कोई आग्रह नहीं, लेकिन सही बात कहने से चूकना नहीं चाहिए। जब आपने बिठा ही दिया इस बात को सुनाने के लिये तो अच्छी तरह सुन लेना चाहिए और आचार्य शान्तिसागर जी कौन थे इसके बारे में सोच लेना चाहिए। अभिरुचि होना प्रत्येक साधु के लिये सहज होना चाहिए। जोश नहीं होना चाहिए रुचि होना चाहिए और रुचि पहले से ही होनी चाहिए और पहले से ही रुचि होगी तो अन्त में उसको सफलता मिल सकती है। मिले भी यह कोई नियम नहीं है। भगवती आराधना में एक प्रसंग है– जो व्यक्ति अपने जीवनकाल में सल्लेखना कर रहा है। उसके पास जाता है आस्था करके, देखकर के अपने साधना की तुलना करता है। उसमें योगदान देता है, सल्लेखना में क्षपक के लिये वैय्यावृत्ति आदि करता है। भगवती आराधना में उल्लेख मिलता है कि उसकी भी सल्लेखना निश्चत होती है क्योंकि जो जिसको चाहता उसके बारे में अभी से सार निकाल रहा हो तो उसको भी वह मिल सकता है किन्तु ये बिना रुचि के सम्भव नहीं, बिना साधना के सम्भव नहीं, बिना निष्ठा के सम्भव नहीं। मुझे भी ऐसा लगा एक साथ भक्त-प्रत्याख्यान कर दिया। ये क्रम कैसे रखा। लेकिन उसके साथ में जब नीचे की पंक्ति पढ़ी तो ज्ञात हुआ जो ८-९ उपवास Minimum एक ही वस्तु लेते थे, ये बात तो अलग ही है। ८-९ उपवास Minimum इसी बात को लेकर के आचार्य शांतिसागरजी उनके पास गये और देखा कैसे हैं? वहाँ पर जाकर देखा जिसके ६, ७, ८, ९ उपवास हमेशा चलते रहते हैं, उनके भक्त प्रत्याख्यान तो पहले से किया हुआ लगता है। जो एक ही भोजन लेते हैं तो उसके लिये क्या त्याग करना? उसके लिए क्या बार-बार त्याग करवाना और त्याग बार-बार करवाने के उपरान्त भी आप लोगों को याद आ जाती है। अपनी भावना से त्याग करने की भी भावना नहीं होती इसलिए त्याग करवाना पड़ता है। ऐसे भी आदर्श होते हैं जो पहले से ही त्याग। इतना त्याग? "**त्याग के बिना मुनि की शोभा नहीं होती। सिंह वृत्ति के बिना मुनि का जीवन**

नहीं है।'' दूसरों के कहने में जो मुनि महाराज आ जाते हैं उनके जीवन की शोभा नहीं है। जो असंयमी मुनियों के लिये कुछ कहना चाहते तो वह संयम मार्गणा में क्या समझता है? और वे मुनि महाराज कैसे जो असंयमी की बात मान रहे हैं? दोनों बातें सोचनीय होती हैं। इतिहास के पढ़ने से पता चलता है कि मुनि महाराजों में सिंह वृत्ति के दर्शन होते हैं। जो सिंह गर्जना से कम नहीं है। वो सिंह भी उन्हीं के चरणों में बैठ जाते हैं। उनके चरणों में नहीं बैठते, जो गुस्सा करता है। उनके चरणों में बैठते हैं जो शान्त स्वभावी होते हैं। वहाँ आकर के ''**उपल खाज खुजावते** '' वाली बात घटित हो जाती है।

निन्दा करे स्तुति करे तलवार मारें या मणिमयी आरती सहसा उतारें।
साधु तथापि मन में समभाव धारे, वैरी सहोदर जिन्हें इक सार सारे॥

ऐसी कुछ पंक्तियाँ हैं जो कि ब्याज में ही लिखी गई थी। इसमें कुछ सन्देह नहीं है वो फोटो भी आज दिखती है। उभय शान्तिसागरजी महाराज के उस संघ में आर्यिका नहीं, कोई ब्रह्मचारिणी नहीं, कुछ भी नहीं। आज भी फोटो देखना हो तो देख सकते हैं। आचार्य शान्तिसागरजी की क्या परम्परा थी? इसका दर्शन करना हो तो ब्यावर चातुर्मास से अवगत कर लेना चाहिए। जो जैसा है उसको वैसा ही स्वीकार करना, वैसा ही कहना, उसका वैसा ही प्रस्तुतिकरण करें। जो जैसा है वैसा ही उसके ऊपर श्रद्धा करें इसी का नाम सम्यग्दर्शन होता है। यदि आदर्श को अन्यथा रूप से अपनी पंथगत धारणाओं के अनुकूल बताकर दुनियाँ के सामने रखेंगे तो लोगों का उस आदर्श के प्रति भी अनास्था भाव हो जायेगा। आपके दोष आदर्श को दोषी बना देंगे। इसलिए आदर्श को आदर्श के रूप में ही रखना चाहिए अन्यथा उनके प्रति अनास्था भाव बहुत जल्दी आ जायेगा वैसे ही आस्था जमाना मुश्किल हो रहा है और उसमें थोड़ी सी गड़बड़ी हम बता देंगे तो अनास्था भाव उसके हो ही जायेंगे। वह सोचेगा ये ऐसे तो वो ऐसे कैसे? इसलिए आचार्य शान्तिसागर महाराज ने जिस जमाने में अपनी कठिन साधना को अपनाया, उसको अन्त तक निभाया उन्होंने। जीवन के बारे में क्या कहा जाये क्योंकि हमेशा-हमेशा वे साधना प्रिय थे।

जिस समय वे थे उस समय रेडियो शायद ही होगा, उस समय टेलीफोन बगैरह बहुत कम काम करते थे। टेपरिकार्ड का प्रचलन कम था। पण्डित जी के मुख से सुना था, जब सम्मेदशिखर जी में संघ गया था तब महाराज जी का दर्शन करने सारा का सारा बिहार प्रान्त ही वहाँ पर आया हुआ था। प्रवचन सभा में जनता ज्यादा हो गई। माइक तो थे ही नहीं उस समय तो क्या करें? तो चारों कोनों में चार महाराजों को भी बिठा दिया। अलग-अलग कोनों की जनता ने अलग-अलग महाराजों से प्रवचन सुना। आज १० व्यक्ति होते हैं तो पहले माइक की आवश्यकता होती है, इतना अन्तर हो गया इस समय और उस समय में। ये प्रभावना का काल आ गया और वो भावना का काल

था। प्रदर्शन के अलावा आज कुछ नहीं रहा। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय अलग वस्तु होती है और बाहरी क्रियायें अलग वस्तु होती हैं। **क्रियाओं के माध्यम से परम्परा को निर्धारित करना यह एक प्रकार से इतिहास को नहीं जानने का प्रयास करना है अथवा आचार संहिता को भुलाने का प्रयास करना है।**

क्रियाओं के माध्यम से नहीं चलता धर्म। आगम ग्रन्थों में कहा गया है कि भिन्न-भिन्न देश की भिन्न-भिन्न क्रियाएँ हैं। लेकिन २८ मूलगुणों की प्रक्रियाएँ क्या भिन्न-भिन्न हैं? इसके बारे में सोच लेना चाहिए। ये मूलाचार का सिद्धान्त माना जाता है। एक संघ दूसरे संघ से मिल जाते हैं उस समय पता चल जाता है। इनकी और उनकी क्रियाओं में कितना अंतर है। आज शांतिसागर जी का नाम लिया जाता है, उनको अपनी क्रियाओं में शामिल करके परम्परा की दुहाई दी जाती है। जो शान्तिसागर की परम्परा थी, उसको भुला दिया और अपनी परम्परा को शान्तिसागर की परम्परा बताकर गुमराह किया जा रहा है। यह आचार्य शान्तिसागरजी की परम्परा नहीं मानी जा सकती। अखबार बाजी को महत्त्व देना ठीक नहीं। प्रत्येक व्यक्ति से ये हम सुनते रहते हैं और आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के बारे में क्या कहा जाये आदर्श क्या है? अभी ये आपके सामने नहीं रखा। आपको देखने, जानने, मनन करने का इशारा किया है। आप लोग उस आदर्श मूर्ति को आदर्शमय रखने का प्रयास करेंगे। आज से दक्षिण और उत्तर, वो और इस प्रकार के भेदभाव किये बिना २८ मूलगुणों की उपासना करने वाले उन आदर्श मूर्तियों के बारे में आस्था करने का प्रयास करना चाहिए।

एक बात अन्त में और कह देता हूँ। आचार्य ज्ञानसागर महाराजजी ने दूसरा एक संस्मरण (ब्यावर) सुनाया था। उनके सामने हुआ था घटित। आचार्य शान्तिसागर महाराज जी बैठे थे और चरणों में जाकर के एक पंथ व्यामोही व्यक्ति गया, वह व्यक्ति महाराज के चरणों के ऊपर दो फूल गुलाब के रखने लगा। महाराज जी ने तात्कालिक कहा ये क्या कर रहे हो तुम? महाराज ये पूजन सामग्री है, मैं तो चढ़ाऊँगा। कैसे कर रहे हो? तुम तो समझदार हो। महाराज! इससे आपको क्या मतलब, ये तो हमारा कार्य है, हम भगवान् के चरणों में भी चढ़ाते हैं। भगवान् के चरण और आपके चरण एक ही तो बात हैं। महाराज ने कहा-गलत बात है। जो बात शास्त्र में नहीं उसे क्यों करना चाहते हो। चरणों के ऊपर क्यों चढ़ाते हो? नीचे पाटे पर चढ़ाओ। प्रतिमा पर भी नहीं चढ़ाना चाहिए जो भी द्रव्य चढ़ाना है उसे वेदी पर चढ़ाना चाहिए। यह आचार्य शान्तिसागरजी ने जवाब दिया था और एक महान् विद्वान के लिए जबाब दिया था। इसकी चर्चा आज कहीं भी नहीं की जाती। इसका अर्थ आचार्य शान्तिसागरजी को पंथवाद में डालना चाहते हैं आप लोग? उनके जीवन का अध्ययन करने का प्रयास कीजिये।

आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के बारे में, दया के बारे में क्या धारणा आप लोगों की है, यह सब ज्ञात होता चला जा रहा है। कहाँ उनकी दया दृष्टि और कहाँ तो तुम लोगों की पंथ-दृष्टि। उन्होंने कभी किसी पंथ का समर्थन नहीं किया। उन्होंने केवल अपने आगम के माध्यम से अपनी चर्या निभाने का प्रयास किया। ये बात अलग है कि कुछ क्रियाएँ उनके पास अलग हो सकती हैं, उस जमाने में जो मुनियों के पास होती थीं। इसका अर्थ ये नहीं है कि वे किसी पंथ के थे। मैं उनको किसी पंथ से बाँधना नहीं चाहता। इसलिए मैं आप लोगों के सामने ज्यादा कहना अब पसंद नहीं करता क्योंकि आप लोगों को ये सुनकर लगेगा कि महाराज जी ये ठीक नहीं कह रहे हैं। आपके लिये भले ही ठीक नहीं हो सकती। मैं आपकी मानसिकता के बारे में कुछ ज्यादा कहना नहीं चाहता लेकिन मैं यह कहना चाहता हूँ कि आपको जब यह बात सही लगेगी तभी आ. शान्तिसागर जी की पहचान सही होगी।

कई बातें हैं जो आज एक दिन में कही नहीं जा सकी। समय पर इसका उद्घाटन अवश्य हो सकता है। लेकिन शास्त्र, आगम प्रमाण और महाराज जी की साधना के साथ ही कही जा सकती है। उनके जीवन में उन्होंने जो संघर्ष किये उसके लिये कौन-कौन निमित्त हुए? क्या-क्या हुए? इसके लिये भी यह इतिहास उस बात का साक्षी है।

आप लोगों को सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की उपासना करना चाहिए तभी आपका सम्यग्दर्शन सुरक्षित रह सकता है। किसी एक व्यक्ति की पूजा जैन धर्म स्वीकार नहीं करता। व्यक्तित्व होना चाहिए और वह व्यक्तित्व पर्सनल्टी नहीं होती है। वह व्यक्तित्व गुणों की उपासना करने के फलस्वरूप प्राप्त होता है। आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज ने हमारे लिये जो कृपा की, आशीर्वाद दिया, दिशाबोध दिया, उसके माध्यम से इस साधना का मर्म क्या है? समझने का और सोचने का और उस तक चलने का हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

आचार्य शान्तिसागर जी के बारे में आचार्य ज्ञानसागर जी पूर्ण विदित थे, परिचित थे, और वे कहते नहीं थे क्योंकि उनकी बात जो समझता नहीं उनके सामने कहने से उसका कोई महत्त्व नहीं होता। आप लोग सुनने के लिये बैठे इसलिए हमने कहा। हमारी तरफ से कोई यह इरादा नहीं मैं सुना दूँ बुला-बुला करके क्योंकि रुचि के बिना सुनाना भी गलत होता है, ये एक नीति भी है। इसका अर्थ नहीं कि मैं आचार्य शान्तिसागरजी के बारे में कुछ नहीं कह सकता या जानता नहीं हूँ लेकिन मैं इसलिए नहीं कहता हूँ कि सुनने की भी एक पात्रता होनी चाहिए और उसको समझने का भी एक साहस होना चाहिए और जो येन-केन-प्रकारेण ग्रहण कर लिया है उनके बारे में उसको तिलाञ्जलि देने का भी एक साहस होना चाहिए।

उसी व्यक्ति के लिये ये रामबाण सिद्ध हो सकते हैं नहीं तो ये रावण बाण भी सिद्ध हो सकते

हैं क्योंकि जिस व्यक्ति की जिस प्रकार की धारणा रहती है उसी के अनुसार अर्थ निकालता रहता है। अर्थ अपने दिमाग से नहीं निकाला जा सकता, प्रसंग के अनुसार ही अर्थ निकाला जा सकता है और निकालना भी चाहिए। ऐसे गम्भीर व्यक्तित्व के बारे में, ऐसे महान् साधक के बारे में जो वर्तमान में, परम्परागत जिसको बोलना चाहिए, आस्थाएँ बन चुकी हैं, वह वस्तुतः आस्थाएँ साधार नहीं है। इस प्रकार कहने में हमें कोई बाधा नहीं होती है। ऐसे साधक की सिद्ध गति जल्दी-जल्दी हो ऐसी भावना है। आचार्य शान्तिसागरजी महाराज की साधना को नहीं कहना चाहते हैं बल्कि पण्डित एवं कुछ साधु गण उनको पंथवाद में घसीटना चाहते हैं। उनके अन्तिम क्षणों में उन्होंने किस ढंग से साधना की थी, उसके बारे में समाज अवगत है। कुछ लिखा हुआ भी है, उसको आप पढ़िये, समझ लीजिये, जान लीजिये। उन्होंने दीर्घ साधना की थी उसको समझ करके आस्था का विषय बनाने का प्रयास कर लीजिये।

❑ ❑ ❑

शंखनाद

"**भावना भव नाशिनी**" इस बात को मैं आस्था के साथ स्वीकार तो करता हूँ लेकिन यह/वह और बलवती बने इस विश्वास के साथ आप लोगों के सामने रख रहा हूँ।

बीच में एक व्यक्ति ने कहा था कि चाबी के पास ऐसी शक्ति रहती है कि जो हथौड़े में भी नहीं होती लेकिन कभी-कभी जब चाबी गुम जाती है तो हथौड़े का प्रहार भी करना पड़ता है। चाबी गुमने के बाद ताला तोड़ना अपराध नहीं है। ताला जब खुलता नहीं तब तोड़ा ही जाता है।

हिंसा को रोकने के लिये कोई प्रतिहिंसा करता है तो उसे हिंसा की संज्ञा नहीं दी जाती। व्यवहार में जैसे पुलिस हिंसात्मक दंगे के लिए गोली फायर भी करती है लेकिन हिंसक नहीं मानी जाती। लगती है उसमें हिंसा सी लेकिन अहिंसा को जगाने के लिये वही एक काम आती है। यदि तेज आवाज के साथ बोलने से हिंसा होती है तो सबसे ज्यादा दिव्यध्वनि में हिंसा होनी चाहिए थी लेकिन होती नहीं। शंखनाद किया जाता है तो उस नाद में हिंसा नहीं होती। हिंसा को हिंसा की वृत्ति से दूर करने के लिये वह शंखनाद किया जाता है तभी सामने वाला व्यक्ति भयभीत होता है अन्यथा नहीं। जब दुर्योधन ने अपनी नीति नहीं छोड़ी तब पाण्डवों को मजबूरन युद्ध का शंखनाद करना पड़ा।

आज भारत की राजनीति में जो दुर्नीति आ गई है तब महाभारत को याद कर लेना चाहिए। आज भारत भूमि रक्त से ओतप्रोत हो रही है। ऐसी स्थिति में परीक्षा की घड़ी है भारतवासियों की। एक बार कृष्ण के हाथ में चोट लग गई, उस समय सत्यभामा एवं रुक्मणी पास में थीं। दोनों ने पूछा क्या हो गया? ओ हो! हाथ में खून बह रहा है, बहुत कष्ट है? सत्यभामा कहती है रुको, मैं कपड़ा

लाती हूँ बांधने के लिए। वह कपड़ा लेने चली जाती है खून बहता रहता है। वहीं पर रुक्मणी थी, क्या हो गया? ये देखो धारा बह रही है वह कपड़ा लेने नहीं दौड़ी उसने सोचा कपड़ा लेने जाऊंगी तब तक तो कितना खून वह जायेगा। अतः उसने पहनी हुई साड़ी के पल्ले को फाड़कर बाँध दिया। वह बहुत बढ़िया साड़ी थी। उसको उसने फाड़ दिया और उसको बाँध दिया। तब तक सत्यभामा आ जाती है कपड़ा लेकर के लेकिन वह पुराना कपड़ा ले आती है।

जहाँ पर जीवन का सवाल है वहाँ पर जड़ वस्तुओं का महत्त्व नहीं होता है। हम लोग जहाँ पर हैं वहीं पर जीवन का संहार हो रहा है लेकिन सत्यभामा जैसे प्लानिंग बना रहे हैं, योजनाएँ बन रही हैं और कागज के पन्नों के ऊपर हम कुछ लिखकर के कुछ भेज रहे हैं और नेता लोग बड़े-बड़े चश्मा लगाकर के पढ़ेंगे विधानसभा में। पढ़ने वाले व्यक्तियों की आँखों में वे अक्षर लाल-लाल नजर नहीं आ रहे हैं क्योंकि उनके आँखों पर गोगल (धूप का चश्मा) लगी हुई है इसलिए वो खून के अक्षर भी आज हरे-हरे जैसे नजर आ रहे हैं।

अरे बंधुओ! योजनाएँ मत बनाओ, जो पशु कट रहे हैं उनको अपने कपड़े फाड़ कर पट्टी बांधने की जरूरत है। करोड़ों की तादाद में उन पशुओं का हनन हो रहा है और हनन करके मांस का निर्यात कर रहे हैं और आप प्रार्थना कर रहे हैं उनसे। वो क्या सुनेंगे? सत्यभामा को जैसे साड़ी प्यारी थी कृष्ण के खून से अधिक, उसी प्रकार नेताओं को धन प्यारा है पशुओं के खून से अधिक। भामा के पास कितना प्यार था पति के प्रति? उन्होंने बड़ी-बड़ी साड़ियाँ और जीवन के लिये बहुत कुछ दे दिया लेकिन खून को बन्द करने के लिये उनके पास कोई कपड़ा नहीं मिला क्योंकि यह कपड़ा पहनने का है, यह खून बन्द करने का नहीं। इतनी अक्ल नहीं है, विवेक नहीं। आज जड़ की रक्षा के लिए चेतन का खून बहाया जा रहा है। विश्व की सारी संपदा को लेकर भारत में रख दो। भारत में कोई किसी प्रकार से उन्नति नहीं होनी वाली है। भारत ने जड़ सम्पदा से कभी अपना विकास नहीं किया उसकी उन्नति तो अहिंसा के माध्यम से ही हुआ करती है। द्रोपदी के सम्बन्ध में भी एक घटना आती है उन्होंने भी एक बार अपना आँचल फाड़कर बाँध दिया था श्रीकृष्ण को जिससे खून बहना बंद हो गया था। किसका पक्ष लिया, पाण्डवों का पक्ष नहीं लिया। सारी की सारी सभा देखती रही। कौरवों में महान्-महान् व्यक्ति भी रहे लेकिन सत्यभामा जैसे प्लानिंग बना रहे हैं। सबको सभा देखती रही। वह उस द्रोपदी का चीर जब खींचने लग जाते हैं। किसी को हिम्मत नहीं थी और वो कहाँ थे? सत्यनारायण! पता नहीं है लेकिन वह साड़ियाँ तो आती रहती थी। साड़ियों के ढेर लगते चले गये, पाण्डव तो देखते रह गये और वह दुर्योधन व दुःशासन पसीना-पसीना बहाते रह गये और लज्जा से नीचे झुक गये। जिसे दासी कहकर पुकारा उसके चरणों में झुक करके कहते हैं- यह हमारी गलती है। पशु कुछ समय तक देख सकते हैं आप लोगों के अत्याचार और अनाचार। यह

ध्यान रखना, सती के ऊपर प्रहार होता हुआ सत्य एवं समर्थ व्यक्ति भी अगर देखता है तो वह भी सत्य एवं समर्थ का नहीं, असत्य का ही समर्थन कर रहा है।

आप लोग अहिंसा के समर्थक और पुजारी हैं और आपके सामने-सामने गौ-माता के ऊपर प्रहार हो रहे हैं। माता ही नहीं महा माता है। जन्म की माँ तो साल-छह माह ही दूध पिलाती है यह गौ-माता का तो सारी जिन्दगी आप लोग दूध पीते रहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की नस-नस में इस गौ-माता का दूध बहता रहता है। ऐसी गौ-माता को जीवित कटता हुआ देखते हो, कितने शर्म की बात है? कितने पाप की बात है?

जिस देश में कृतघ्नता पलती है उसके पास कितना भी वित्त आ जाये, कुछ काम का नहीं। आप लोगों को कहते-कहते मैं थका नहीं ये आप ध्यान रखना, लेकिन कभी-कभी वाणी का महत्त्व भी कम हो जाता है। क्यों कम हो जाता है? जब कान बहरे हो जाते हैं तो वाणी काम नहीं करती। काम करने के लिये आँख पर्याप्त है और ध्यान रखना कि आँख भी चली जायें और कान भी चले जायें एक मात्र दिल और आस्था पर्याप्त है। वह बिना आँख खोले और बिना बोले भी काम कर सकते हैं। आप लोगों को अब बोलने की आवश्यकता नहीं और देखने की भी कोई आवश्यकता नहीं। एक निष्ठा के साथ उस दिशा में पूरी शक्ति, जितनी शक्ति लगाकर काम करना है, प्रारम्भ कर दीजिये। अहिंसा उसके बिना हम जीवित देख नहीं सकते।

पुराण पोथियों में जो अहिंसा के एक मात्र वर्णन/परिभाषा है, वह वस्तुतः उसका स्वरूप नहीं है। शब्दों का हम स्वरूप देख सकते हैं ग्रन्थों में लेकिन जीवित अवस्था में अहिंसा का दर्शन देखना चाहते हैं तो आप लोगों को चाहिए मांस निर्यात और निर्यात के कारणों पर विचार कर उसे रोकें। एक व्यक्ति ने कहा निर्यात उसका भी किया जा सकता है जो मांस निर्यात कर रहे हैं अर्थात् ऐसे नेताओं का भी निर्यात हो जाना चाहिए तभी कार्य ठीक होगा। लेकिन यह सब व्यंग नहीं एक ढंग हो जाए। वस्तुतः इस समय मुस्कान की बात नहीं इस समय सिद्धान्त की बात है। यह गोष्ठी हंसने के लिए नहीं, व्यंग के लिए नहीं किन्तु एक भीतर के ढंग की। अन्तरंग को आप खोलकर सामने लाकर के रखिए और ऐसे अन्तरंग बनाईये कि निश्चत रूप से सामने वाले का हृदय परिवर्तन हो जाए। भक्ति के द्वारा कुछ समय तक काम होता है फिर बाद में युक्ति और शक्ति काम करती है। युक्ति और शक्ति के काम करते समय भक्ति काम नहीं करती है ऐसी बात नहीं है, वह रूप भी आना आवश्यक है। जिस समय अपनी ही अहिंसा की मौत होते हुए देखते हैं उस समय हम आराध्य को ही खो रहे हैं। यह भारत आराध्य को खोने नहीं देगा अन्यथा आराधना किसकी करेगा यह? ये आराधक/ये भक्त है और भगवान् यदि नहीं होगा/ आराध्य नहीं रहेगा तो भक्ति हमारी अधूरी ही नहीं बल्कि समाप्त हो जायेगी। भगवान् और भक्त के बीच में भक्ति के अलावा दूसरा कोई आ जाता है तो वह भक्त कभी भी सहन नहीं कर सकता। वह पर्दा उसके लिये हानिकारक सिद्ध हो जाता है।

अहिंसा के सामने यदि हिंसा ताण्डव नृत्य करने लग जाती है तो उसको दूर करने के लिये शंखनाद भी आवश्यक होता है और उस समय अर्जुन को कृष्णजी ने उपदेश दिया था। अर्जुन को/योद्धा को कायरता की बात नहीं करना चाहिए और काया की भी बात नहीं करना चाहिए। जो व्यक्ति काया में बैठकर भी कायरता की बात कर रहा है वह काया के भीतर जो आत्म तत्त्व है उसको भूल रहा है। उस आत्मतत्त्व को याद करने की आवश्यकता है और ऐसे अर्जुन को संबोधित करने वाले वो कृष्ण रणांगन में कह देते हैं **''जातस्य मरणं ध्रुवम् ''**, जो जन्म लेता है उसका मरण भी निश्चत है/ध्रुव है।

'ध्रुवं'.........जो जन्म लेता है, उसका मरण भी निश्चत है, ध्रुव है। 'ध्रुवं जन्म मृतस्य च' वह मरण होने के पश्चात् जन्म भी निश्चत होता है। किन्तु जो व्यक्ति पाप का दास बनकर के पाप की उपासना में लगा है उसको मार्ग पर लाने के लिए रणांगन में भी जाना पड़ता है। उसे धनुष बाण के माध्यम से सत्मार्ग दिखाना भी क्षत्रियता है। कोई भी व्यक्ति चाहे गुरु हो या शिष्य हो या माँ हो, पिता हो, भाई हो, बहिन हो जो व्यक्ति गलत लाईन पर चल रहा हो, उसे लाईन तक लाने के लिये उसको यह आवश्यक होता है। यह क्षत्रियों का धर्म माना जाता है। यह बनियों का धर्म नहीं है।

इतना कहना पर्याप्त था, अर्जुन धनुष उठाकर रणांगन में कूद जाता है। जो गुरु द्रोणाचार्य इनको शिक्षा देने वाले हैं, दीक्षा देने वाले हैं और जो सारा का सारा पढ़ाने वाले हैं, उन्हीं गुरु के ऊपर ही शिष्य के तीर कमान चालू हो जाते हैं। आप लोग कमान सम्हाल लो। तीर को कोई सम्हालने की आवश्यकता नहीं। तीर हाथ में नहीं रखा जाता, कमान हाथ में रखा जाता है। तीर को पीछे लेकर उसके ऊपर लगाने की आवश्यकता है।

बीच में एक व्यक्ति ने बहुत अच्छा इशारा किया कि बहुत सारे तीर हैं लेकिन हाथों में कमान नहीं है। इसका अर्थ हमें तो यही समझ में आता है कि आप लोग तीर के काम आ गये हैं लेकिन नेतृत्व के अभाव में आपके पास कमान नहीं रहा। अब आवश्यकता है कि सारे के सारे तीर मिलकर एक नेतृत्व रूपी कमान को वहाँ पर भेज दो और जितने भी व्यक्ति हैं जो हिंसा के समर्थक हैं उन सारे के सारे को अलग निकाल दो। बाण से कोई भी नहीं डरता किन्तु डरता है कमान से। कमान यदि ठीक नहीं रहेगी, टूटी हुई, मुड़ी हुई कमान रहे तो बाण आगे नहीं भेजा जा सकता। इसको हम भेजेंगे भी तो कोई काम करने वाला नहीं है। ऐसे कमान की आवश्यकता है हमें कि जो कमाल करके दिखा सके। चिल्लायेंगे तो कुछ भी नहीं होने वाला।

अहिंसा के नारे को किनारों तक पहुँचना चाहिए। लहर को अवश्य किनारे तक पहुँचाना चाहिए। छोटी-छोटी लहर की आवश्यकता है जो अन्त तक पहुँच जाये और उनको वो जागृति प्रदान कर सके। धन्य हैं वे दिन जिस समय हम सारे के सारे नेतृत्व को सुनकर के देख करके अवश्य कहेंगे कि हे अर्जुन! हम आपके सामने कुछ कहना नहीं चाहते। तुम क्या चाहते हो वह करके दिखाता हूँ।

अब बताना कुछ नहीं, अब तो बता चुके और कर चुके, अब तो समझना आवश्यक है। अभी भी यदि नहीं समझते हो तो हट जाओ वहाँ से। यह कहना आवश्यक है कि लोकतंत्र में राजनीति नहीं चलना चाहिए। राजा हो तो राजनीति चले लेकिन आज प्रत्येक राजनीति चलाना चाहता है। राजा तो होता ही नहीं प्रजातन्त्र में। राजनीति गौण होना चाहिए और प्रजा के हित में ही सारे कार्य सम्पन्न होना चाहिए तभी यह संस्कृति जीवित रह सकती है अन्यथा नहीं रहेगी।

यह देश भोग प्रधान नहीं दया प्रधान है, अब ये ध्यान रखना। यदि प्यार की परीक्षा का समय है। कृष्ण का नहीं कृष्ण की गाय का खून बह रहा है। उन्हें रुक्मणी एवं द्रोपदी के समान आँचल फाड़कर बांधने की जरूरत है। इतने सारे कट रहे हैं फिर भी आप लोगों को अपने ही खून का प्यार है तो वह शाकाहार/ये अहिंसा की उपासना आप लोगों में कहाँ चली गई? समझ में नहीं आता है। संगोष्ठियों का भी प्रभाव पड़ रहा है लेकिन पढ़ाते हुए वह यहीं-यहीं तक रुक रहा है। यह सारी-सारी उत्तेजना, ये सारे-सारे नारे, ये सारी-सारी तालियाँ यहीं तक ही रह रही हैं, वह बाहर तक नहीं जा पा रही हैं। कल भी, परसों भी हमने यही कहा था कि यदि अहिंसा धर्म का संरक्षण करना चाहते हो तो अहिंसा का अलख जगाओ। अब बहुत ज्यादा देर लगाना अच्छा नहीं लग रहा है। अति होने के उपरान्त इति भी हुआ करती है। निश्चत रूप से हिंसा अब अति की ओर चली गई अतः इति निश्चत है, ऐसा समझता हूँ। पत्थर जब पिघल सकता है तो आपका दिल कोई पत्थर तो नहीं। जब बड़े-बड़े क्षत्रियों के दिल भी टूट गये और पिघल गये और पानी-पानी हो गये तो क्या आप उनसे भी बढ़कर हैं क्या? नहीं।

इस धरती पर अहिंसा के उपासक बड़े-बड़े क्षत्रिय भी आँखों से पानी लाये हैं क्योंकि इस पीड़ा को वे अपनी आँखों से देख नहीं सकते थे। छाती के ऊपर तीर की मार को सहन करने वाले/ वे छाती के तीर उस अहिंसा के सामने पानी-पानी हो जाते थे। ऐसे वंश में आज जन्म लिये हुए हैं और आज आपकी वह अहिंसा और वह देश का गौरव समाप्त हो गया। आज आपकी वह अहिंसा और वह देश का गौरव और वंश का एक प्रकार से स्वाभिमान आप में से कहाँ निकल गया? पता नहीं या पैसे के कारण आपकी बुद्धि दिनों-दिन भ्रष्ट ही होती चली जा रही है।

मैं ज्यादा न कह करके समय ज्यादा हो गया है इतना समय ज्यादा लेना नहीं चाहिए था मुझे लेकिन फिर भी ले लिया क्योंकि आपने अन्त में मुझे रखा था इसलिए मैं अन्त में यही कहना चाहता हूँ- आज जिस उत्साह के साथ यहाँ पर कवि लोग आये हैं जो भिन्न-भिन्न लोग मंचों के द्वारा अपनी कविता के पाठ करने वाले भी मांस निर्यात बन्द के बारे में आस्था के साथ बहुत-बहुत दूर-दूर से आये हैं, मैं उनको बहुत ही अच्छे ढंग से आशीर्वाद देता हूँ और वो जहाँ कहीं भी जायें इस बात को पहुँचाएँ और अहिंसा के बिगुल को बजाते हुए इसमें यश और सफलता प्राप्त करते ही जायें, इस प्रकार का मेरा भाव है और आशीर्वाद है। ❑ ❑ ❑

भक्त का उत्सर्ग

भारतीय संस्कृति मिटती सी जा रही है। फिर भी हम लोगों की धारणा है कि सतयुग आयेगा विश्व में शांति आयेगी और यदि हमारा आचरण ठीक नहीं है तो वह सतयुग वह विश्वशांति ''न भूतो न भविष्यति''।

जो व्यक्ति न्याय का पक्ष लेता है वह अन्याय को ही नहीं सारे विश्व को झुका सकता है अपने चरणों में...।

मैं जैन हूँ/मैं हिन्दू हूँ /मैं सिख/ ईसाई और मुस्लिम हूँ। हमारी इस प्रकार की मान्यता समाजरूपी विशाल सागर के अस्तित्व को समाप्त कर देगी।

चिरकाल तक संघर्ष करने के उपरांत भी, अंत में धर्म की ही विजय होती है। क्योंकि! सत्य अमर है, और असत्य की पग-पग पर मृत्यु।

जिस प्रकार बिना खिड़की या दरवाजे के कोई मकान सम्भव नहीं उसी प्रकार समस्त संसार में बिना गुणों के कोई मनुष्य नहीं।

.....गन्ध की आवश्यकता होने पर हम फूल या सुगंधित पदार्थों की गवेषणा करते हैं। प्रकाश की आवश्यकता होने पर सूर्यनारायण अथवा दीपक की प्रतीक्षा करते हैं। शीतलता की आवश्यकता होने पर सघन छायादार वृक्ष अथवा शीतल गंगाजल की प्रतीक्षा करते हैं। जिन-जिन पदार्थों से आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, उन पदार्थों के पास हम चले जाते हैं। पदार्थ ही हमारे लिये संतुष्टिदायक नहीं है किन्तु पदार्थ के अन्दर जो बैठी हुई 'शक्ति' है, वह गुण-धर्म, वह 'प्रकृति' हमारे लिए सन्तुष्टि देने वाली है।

पदार्थ के बिना गंध नहीं रह सकती और गंध के बिना पदार्थ नहीं रह सकता। सूर्य या दीपक के बिना हमें प्रकाश उपलब्ध नहीं हो सकता। नदी के बिना जल और वृक्ष के बिना छाया नहीं मिल सकती, तिल के बिना हमें तेल की उपलब्धि नहीं हो सकती। किन्तु! हम तेल के पास न जाकर तिल के पास जाते हैं। छाया के पास न जाकर छायादार वृक्ष के पास जाते हैं। शीतलता के लिए हम जल के पास चले जाते हैं और जल को अपनाना प्रारम्भ कर देते हैं। जिस समय से हमें यह सब पदार्थ अपने-अपने गुण-धर्मों को देना बन्द कर देंगे, उसी समय से हम इन पदार्थों को भूल जायेंगे। आज अभी एक सज्जन ने कहा है कि हम विश्व हिन्दू परिषद् की तरफ से बोल रहे हैं। ध्यान रहे 'हिन्दू' बाद में आयेगा 'हिंसा का त्याग' पहले आयेगा।

हिंसायां दूष्यति तिरस्कार करोति इति हिन्दू

हिन्दू कोई व्यक्ति है, और उस व्यक्ति को ऊपर उठाने वाली वस्तु, वह गुण, यह प्रकृति है

'अहिंसा'। हम अहिंसा के उपासक हैं। धर्मी के बिना धर्म नहीं रह सकता, इसलिए धर्म की चाह से हम धर्मी की शरण में चले जाते हैं। हम किसी व्यक्ति की पूजा नहीं करना चाहते, किसी क्षेत्र से बंधना नहीं चाहते, किसी एक वस्तु को हम ऊपर नहीं उठाना चाहते। वह वस्तु, वह क्षेत्र, वह व्यक्ति अपने आप ऊपर उठेगा यदि उसके पास व्यक्तित्व है। व्यक्तित्व धर्म है, स्वभाव है, गुण है, और **गुण के अभाव में गुणी, धर्म के अभाव में धर्मी और व्यक्तित्व के अभाव में व्यक्ति कभी भी नहीं पूजा जाता।** यह मात्र भारत देश की ही विशेषता है कि यह किसी भी प्रकार से उस व्यक्ति की पूजा नहीं कर सकता। उस क्षेत्र को नहीं उठाना चाहता, क्षेत्र अपने आप उठेगा यदि क्षेत्र के पास योग्यता है। फूल के पास गंध हो तो फूल अपने आप भगवान् के चरण कमलों में चला आयेगा, यहाँ तक कि रागी के कण्ठ का हार बन जायेगा। लेकिन! जिस समय उस फूल की गंध उड़ जायेगी तो ध्यान रखो! आप उसे पैरों से भी कुचलना पसन्द नहीं करेंगे।

आज यदि भारत टिका है, तो उन सारभूत वस्तुओं के मूल्यांकन से ही टिका है। वस्तुगत धर्म, स्वभाव, गुण है, उसी की वजह से ही है। वस्तुतः हम गुणों को देखकर उसी गुणी को ऊपर उठाने का प्रयास करें। **वह गुणी कोई भी हो सकता है। बस गुण होना चाहिए, फिर जाति से शरीर से, मजहब से अथवा किसी कौम से कोई मतलब नहीं है। राजा या रंक उसके सामने कोई वस्तु नहीं है।** जिसके पास गुण है वह नियम से पूजा जायेगा। एक मात्र अहिंसा धर्म की रक्षा के लिए उसका अनुसरण करने के लिए हमें कटिबद्ध होना है। आज तक हम लोगों ने याद नहीं किया, वह अहिंसा धर्म हमारे दिमाग से उतर गया और इसकी कीर्ति स्तुति हम लोगों ने नहीं गाई। यद्यपि! हमारे पास वह शक्ति उपलब्ध है फिर भी उसका मूल्यांकन आज तक हमने नहीं किया। उसी का परिणाम है कि पाप के भार से धीरे-धीरे यह धरती नीचे की ओर खिसकती जा रही है। आज आसमान में यदि कोई हाथ फैलाये तो आलंबन नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में ना तो हमें ऊपर आधार है और ना ही नीचे। हम बिलकुल निराधार हैं और निराधार होकर व्यक्ति कब तक जी सकता है? संभव ही नहीं! हम किसी एक नामधारी भगवान् को पुकारते हैं, हम किसी एक व्यक्ति की पूजा करना चाहते हैं तो उसके बीच अनेक प्रकार के आवरण और ले आते हैं। किन्तु! उस आवरणातीत सभी कलंकों से रहित भगवान् और उस धर्म की पहिचान हमारी आँखों के द्वारा नहीं हो पाती। जिस दिन धर्म की सही-सही पहिचान हमारे द्वारा हो जायेगी, तो फिर ध्यान रखना! उसी दिन से भक्त और भगवान् के बीच की दूरी समाप्त हो जायेगी। असीम संसार-सागर भी स्वल्प दिखने लगेगा और हमारे अन्दर का कालुष्य भाव क्रमशः समाप्त होता जायेगा।

गुलाब के फूल में यदि उसी प्रकार की गंध फूट रही हो, तो उसे हम पहिचान लेते हैं। और यदि कागज का फूल लाकर सामने रख दिया जाये तो आँखें तृप्त हो जायेंगी पर नासा कह देती है

भैया! यह गुलाब का फूल नहीं है क्योंकि! मैं उपस्थित होकर भी उसकी गंध का पान नहीं कर पा रही हूँ। इससे स्पष्ट होता है ज्ञाता को, ज्ञानी को, भोक्ता को, ज्ञात होता है कि वस्तुतः यहाँ पर मायाचार है। यहाँ पर कुछ अभिनय नाटक-सा चल रहा है, जिससे मूल तत्त्व के अभाव में वस्तु फीकी-सी लग रही है और **वस्तुतः भौतिक सामग्री का फीकी लगना ही, सुख शान्ति के रसास्वादन का प्रथम कदम है,** पर पदार्थ से हटाकर निज की ओर आना है। हमें सुख शान्ति चाहिए, विश्व में शान्ति हम लाना चाहते हैं तो बन्धुओं! उसका अधिकरण उसकी आधारशिला कौन-सी वस्तु है? उसे देखना होगा। किसी पेड़ पौधे पर यह सुख शान्ति लटकी हुई नहीं है, जिस पर चढ़कर हम उसे तोड़ लें। किसी नदी नाले में वह धर्म बह नहीं रहा है, जिसको हम अपने घड़ों में समेट सकें और उसका पान कर सकें। वह किसी दुकान में मिलने वाली वस्तु नहीं है। वह वस्तु तब मिल सकती है, जब हम गहराई से सोचें की यह प्राप्तव्य वस्तु किसका गुण धर्म है।

भारतीय संस्कृति और पाश्चात्य संस्कृति, जिसमें पश्चिमी संस्कृति ने पूर्वी संस्कृति के ऊपर एक ऐसा आवरण लाकर रख दिया है कि उसको हम पहचान नहीं पा रहे हैं। गंधहीन पुष्प को हम सूंघते जा रहे हैं और हम सोच रहे हैं कि गंध क्यों नहीं आ रही है? क्या जुकाम तो नहीं हो गया? जिन्होंने इसको बेचा है, दिया है, उनका यही कहना है कि तुम अपनी नासा ठीक कर लो हमारा फूल तो ठीक है। और हम बिलकुल अन्धविश्वासी हैं कि उसमें ऐसे लग गए हैं, नासा की चिकित्सा भी हो गई, आशा है ही नहीं यहाँ पर कि उस मौलिक गंध को पकड़ सके। फिर भी हम भगवान् से प्रार्थना कर रहे हैं कि भगवन्! आपने फूल तो दिया लेकिन! नासा को काट लिया। ध्यान रखना बन्धुओ! भगवान् हमारी नासा को काटने वाले नहीं हैं।

हमारे पास नासा है जानने की क्षमता है लेकिन! जिसे ज्ञेय बनाया है वह फूल है ही नहीं। फूल में गंध नहीं है, फिर भी हम उसी के चारों ओर मंडरा रहे हैं यह पूर्वी सभ्यता नहीं है। ज्ञान का महत्त्व है-ज्ञेय का नहीं; दर्शन का महत्त्व है दृश्य का नहीं। भोग का नहीं भोक्ता का मूल्यांकन करना प्रारंभ कर दें आप। वह भोक्ता पुरुष ज्ञानी है, संवेदक है उसके पास देखने की शक्ति है। आँखें हों तो दृश्य समाहित हो सकता है लेकिन! दृश्यों के ढेर भी लगा दिये जायें और यदि वहाँ पर दृष्टि नहीं है तो आप सृष्टि का निर्माण भले ही करते चले जाइये, तृप्ति तीन काल में होने वाली नहीं है। बाह्य पदार्थों में सुख नहीं है वह हमारे अन्दर ही भरा हुआ है। हम बाह्य पदार्थों की ओर न जाकर अपने आत्म तत्त्व की ओर आयें, धर्म यही सिखाता है। धर्म के माध्यम से ही हमारे जीवन में निखार आ सकता है धर्म के माध्यम से ही हमारी सारी की सारी योजनाएँ सफल होने वाली हैं। चाहे वे लंबी-चौड़ी क्यों ना हों बहुत जल्दी हमारे अनुरूप ढल सकती हैं पूर्ण हो सकती हैं। केवल एक शर्त है, हमारी दृष्टि भीतर की ओर हो। ध्यान रखना! गुण प्रत्येक प्राणी के पास हुआ करते हैं। गुणों की गवेषणा हमारे पास होनी चाहिए।

मैं आप से पूछना चाहता हूँ कि आपके नगर में हजारों घर होंगे? आपने कभी ऐसा दृश्य देखा है क्या कि उन घरों में महाप्रासादों में कहीं भी एक न एक दरवाजा अथवा खिड़की ना हो। आपने देखा होगा, चार दीवालें मिलेंगी, भले ही घासफूस की हों; लेकिन उस महाप्रासाद में भी दरवाजा मिलेगा और उस कुटिया में भी। **जिस प्रकार समग्र विश्व में बिना खिड़की या दरवाजे के कोई मकान सम्भव नहीं उसी प्रकार समस्त संसार में बिना गुणों के कोई मनुष्य नहीं।** यह बात अलग है कि गुणों में हीनाधिकता पाई जाती है। बस! देखने की आवश्यकता है। गुणों की गवेषणा करने वाली दृष्टि अपने आप गुणों को पकड़ लेगी। लेकिन हम ब्रह्मा को भी दोषी सिद्ध कर देते हैं, कि गुलाब का फूल तो बनाया लेकिन काँटों के बीच में बना दिया, इतनी गलती तो हो गई है। हाँ..... आपकी नाक में ही पैदा कर देते? आपकी नाक में भी गुलाब का पौधा लग जाये, फिर भी आपको ज्ञान नहीं होगा। चूँकि आपकी नासा, आपकी ज्ञान की धारा बाहर ही भाग रही है भीतरी गवेषणा करने की शक्ति उसके पास नहीं है। हम ज्ञेयों के ऊपर मँडरा रहे हैं, ज्ञान के ऊपर हमारा कोई लक्ष्य नहीं। जो धर्म की गवेषणा करता है, जो धर्म की खोज करता है वह व्यक्ति गुणों को ढूँढ लेता है, गुणों की पहचान किये बगैर हम तीन काल में धर्मात्माओं को नहीं देख सकते **धर्म के अभाव में धर्मी और धर्मी के अभाव में धर्म तीनकाल में मिलने वाला नहीं है। दोनों का संबंध अभिन्न है दोनों का जीवन एक है।**

यदि स्वर्ग से भी रत्नों की वर्षा हो जाय, तो भी आप लोगों को तृप्ति नहीं मिलने वाली क्योंकि आप लोगों की दृष्टि गुणों की ओर नहीं उन मणि-मालाओं की ओर है। किन्तु उसका उपभोक्ता रागी है, द्वेषी है, कषायी है, विषयी है, लोभी है, दूसरों के सुख को देखकर जलने वाला व्यक्ति तीन काल में तृप्ति, सुख-शान्ति का अनुभव नहीं कर सकता।

पड़ोस की दुकान में अग्नि लगी हो और उसकी लपट आपकी दुकान तक ना आये यह तीन काल में भी सम्भव नहीं है। ऐसी ही विषय-कषाय की लपटें हैं, जो स्वयं को एवं दूसरे को भी सुख-शान्ति का अनुभव नहीं करने देती। देश-विदेश में ही नहीं सारे विश्व में जलन प्रारम्भ हो चुकी है। क्यों? तो इस प्रश्न का एक ही उत्तर है, गुणों का अभाव। जिस प्रकार भवन या कुटिया में एक न एक दरवाजा अवश्य होता है, उसी प्रकार चाहे चेतन हो या अचेतन, कोई भी वस्तु हो उसमें गुण अवश्य मिलेंगे। गुणों को देखने की आवश्यकता है, आप लोग अपनी आँखों के ऊपर जो अज्ञानता का चश्मा लगाये हो, उस चश्मा को उतारें, जिसके द्वारा हमें गुण देखने में नहीं आ रहे हैं। भले ही आप माइक्रोस्कोप लगा लीजिए, लेकिन! इस आधुनिक माइक्रोस्कोप से भी यह महान् कार्य संभव नहीं है। पदार्थ को देखकर मात्र भोग वृत्ति का होना गुणों को नियम से गौण कर देता है। एक मात्र भोग ही उसके सामने आयेगा। उसके सामने वह चैतन्य मूर्ति जो संवेदनशील आत्मा

है, वह तीन काल में आने वाली नहीं है। आज हमें सोचना है कि वह शान्ति कैसे प्राप्त हो? उस शान्ति को देने वाले कौन हैं? तो वह अपने आप ही प्रश्न का उत्तर पा जाता है कि यदि शान्ति कहीं है तो मात्र आत्मा में है। ज्ञान यदि आत्मा का गुण है तो ज्ञान गुण के माध्यम से ही आत्मा, सुख का अनुभव कर सकता है। बाहर में ऐसी कोई वस्तु नहीं जो सुख शान्ति का अनुभव करा दे। वह शान्ति का पान करने वाला व्यक्ति किसी डिबिया में बन्द करके रखने वाली वस्तु नहीं है।

भोग की ओर दौड़ लगाने वाला यह युग धर्म का नाम तो लेता है किन्तु धर्म की भावना नहीं रखता। जब सुख-शान्ति प्राप्त करने का हमने लक्ष्य ही बनाया है तो जिन्होंने सुख-शान्ति प्राप्त की है उनकी हम पहले गवेषणा करें। ताकि! उनके निर्देशन के माध्यम से हम अपने आत्म तत्त्व तक पहुँचने का प्रयास कर सके। ये महान् आत्माएँ ऐसी हैं जिन्होंने आत्मनिर्भर होकर निष्कलंक अवस्था को प्राप्त किया है। जो किसी को किसी भी रूप में लाभ पहुँचाने की दृष्टि नहीं रखते हैं। क्योंकि लाभ हानि तो अपने उपादान के अनुरूप होती हैं। इसलिए ऐसे प्रभु! जो अपने आप में स्थिर हैं उनकी हम गवेषणा करें तभी इन आँखों के द्वारा उन्हें हम देख सकेंगे, उनके वास्तविक स्वरूप को समझ सकेंगे। उनके माध्यम से हमें वह दिशा बोध प्राप्त होगा जो अकथनीय है। जिसके द्वारा हम अपने अन्दर स्थित होकर जान सकेंगे, पहिचान सकेंगे और वह तत्त्व जो अनादिकाल से अननुभूत है, उसे अनुभूत कर सकेंगे।

भगवान् ने हमारे लिए यही आदेश दिया है, कि तुम जो चाहते हो उसका दिशा बोध पहले प्राप्त कर लो। सर्वप्रथम आत्मा क्या है? इसको पहचानो और उस आत्म तत्त्व को प्राप्त करने सत्य का पक्ष, न्याय का पक्ष अनिवार्य है। उस मार्ग को पहचानने की जिज्ञासा आप रखिए! रामनवमी यहाँ पर कुछ दिनों पहले मनाई जा चुकी है, और बीच में आ गए थे हमारे आराध्य प्रभु! महावीर भगवान्, महावीर जयंती के उपलब्ध में आपने उनके पावन आदर्शों को सुना समझा। उसी श्रृंखला में त्रयोदशी के बाद पूर्णिमा के दिन किसका जन्म हुआ था? वो कौन थे? बजरंगबली.....!

वह व्यक्तित्व अनोखा था, जिसका भारतवर्ष में बड़ा महत्त्व है। राम ने भी उसे मंजूर किया था, महावीर ने भी उसे मंजूर किया था, क्योंकि भगवान् महावीर बाद में हुए थे और राम-हनुमान का काल एक ही है। उस समय राम ने उस व्यक्तित्व से क्या लाभ उठाया? उस व्यक्तित्व के पास ऐसी कौन-सी विशेषता थी? उसे आज हमें संक्षेप में समझना है। यद्यपि भगवान् महावीर के उपासक जैन माने जाते हैं राम भगवान् के उपासक ब्राह्मण माने जाते हैं और बजरंगबली के उपासक पहलवान माने जाते हैं। इन लोगों ने हनुमान का रूप क्या माना है सो वे ही जानें। विष्णु की उपासना करने वाले वैष्णव हैं। बुद्ध की उपासना करने वाले बौद्ध हैं। इस प्रकार विश्व हिन्दू परिषद के माध्यम से ज्ञात हो चुका है। लेकिन! यह ध्यान रखना है कि यह बिखरा हुआ अस्तित्व किसी काम

का नहीं है। **मैं जैन हूँ/ मैं हिन्दू हूँ/ मैं सिख/ ईसाई और मुस्लिम हूँ इस प्रकार की मान्यता हमारे समाज रूपी सागर के विशाल अस्तित्व को समाप्त कर देगी।** टुकड़ों-टुकड़ों में बँटकर एक बूँद के रूप में रह जायेगी, जिस बूँद को समाप्त होने में देरी नहीं लगेगी मात्र थोड़ी सी सूर्य की तपन पर्याप्त है।

पथ पर आने के उपरांत जब बहुत सारे पथ फूटते हैं चौराहा आ जाता है, तब प्रायः करके मनुष्य भूल जाता है। पथ एक होगा तो राही तीन काल में नहीं भूलेगा। लेकिन! एक पथ को चुनना पड़ता है और आजू-बाजू को गौण करना अनिवार्य होता है। आँखें प्रायः करके पथ से विचलित होकर अन्य पथ की ओर जाती हैं। राम को होश नहीं है, वे विचलित से घूम रहें हैं सीता का हरण हो चुका है। नदी के पास जाकर पूछते हैं : - हे गंगा! मेरी सीता कहाँ गई है? बता दे! तू इतनी दूर से आ रही है, सरकती-सरकती संभव है तेरे पास आकर उसने स्नान किया हो, पानी पिया हो, संध्या वन्दन किया हो? अरहंत-परमेष्ठी का तेरे तट पर आकर ध्यान किया हो? मुझे बता दे, फिर वे जाकर वृक्ष से पूछते हैं, हे आम्र वृक्ष! तू बता दे, तुम्हारे फल जैसे कोमल-कोमल रसदार उसके गाल थे, वे सूख रहे होंगे, न जाने कैसी स्थिति होगी? तुम्हीं बता दो। इस प्रकार राम, कंकर-पत्थर तक से सीता के बारे में पूछते जा रहे हैं। कितनी दयनीय स्थिति होगी? उस समय किसी ने बताया तक नहीं था। ऐसे विषम वातावरण में एक और घटना घटती है। एक भूले भटके विपत्तिग्रस्त व्यक्ति से दूसरा विपत्तिग्रस्त व्यक्ति मिल जाता है और कहने लगा, हे शरणदाता! प्रजा रक्षक मुझे बता दीजिए मेरी पत्नि कहाँ चली गई? उसे कौन चुरा कर ले गया, मेरे लिए रास्ता बता दो? जब दूसरा रोने लगता है तो एक के रोने में थोड़ी सी कमी आ जाती है और दूसरा हँसने वाला मिल जाता है तो हँसने में भी कमी आ जाती है। दोनों ही बात है भैया! कोई हँस रहा हो, सामने कोई हँसने वाला आ जाता है, तो हँसने वाला रो भी सकता है। क्योंकि कोई उसको क्रिटीसाइज (आलोचना, निंदा) के रूप में हँस दे तो? दो बार आप हँसोगे तो नियम से सामने वाला व्यक्ति सोचेगा कि यह क्यों हँस रहा है? आगे-पीछे देखने लग जाता है, तुम जो हँसी की बात कर रहे हो बताओ तो सही क्यों हँस रहे हो? यह कहते ही गंभीरता आ जाती है। सामने वाला जो व्यक्ति हँस रहा है उसके ऊपर रोष अभिव्यक्त हो जाता है। राम ने आते ही उससे पूछा :-

तुम्हें क्या हो गया है?

मेरी प्यारी पत्नि को भी किसी ने हर लिया! दुखित स्वर में उसने कहा।

अच्छा कोई बात नहीं। राम ने सांत्वना दी।

और उसी समय राम ने सबको कहा कि इसकी पत्नी को जल्दी लाकर के दे दो। यह बहुत

दुखी है, कहीं इसके प्राण ना चले जायें! इसकी पत्नी दिलाना हमारा परम कर्त्तव्य है। **शरणागत दीन दुखी असहाय जीवों की आवश्यकताओं की पूर्ति करना, संकटों से बचाकर उनका पथ प्रशस्त करना यही क्षत्रिय धर्म है।** इस प्रकार किसी व्यक्ति की पूर्ति करा देने पर हमें भी अपनी खोई हुई चीज मिल जायेगी और वह व्यक्ति खुश होकर अपनी मदद भी करेगा। जितने व्यक्तियों की संख्या बढ़ेगी मार्ग उतना ही प्रशस्त होता जायेगा। इस व्यक्ति को जरूर अपनाओ, हमारे जैसा ही इसका दुख है। कुछ समय बाद सभी के प्रयास से सुग्रीव को अपनी पत्नी सुतारा मिल गई। फिर वह खुशी के साथ चला गया, कहाँ चला गया? घर? संभव ही नहीं। अब घर कैसे चला जायेगा पत्नी को लेकर के? जिसने इतना बड़ा उपकार किया है उसके अलावा अब उसका कौन सा घर है? वह वहीं पर साथ रह गया। वहाँ पर उसे, उस अजेय पुरुष के व्यक्तित्व का ज्ञान हुआ, जिसका आज के दिन जन्म हुआ था। न्याय का पक्ष लेने वाला वह व्यक्ति था। कोई भी व्यक्ति क्यों न हो? एक बालक भी उस ओर हो जायेगा जिस ओर न्याय का पक्ष है। न्याय प्रिय व्यक्ति अन्याय का पक्ष नहीं लेता, चाहे अन्याय का पक्ष सागर जितना विशाल क्यों न हो? न्याय किसे कहते हैं :-

नयति सत् पथेन प्राप्तव्यं इति न्यायः

न्याय वह है जो चलने वाले पथिक को गन्तव्य तक पहुँचा देता है। जो इष्ट वस्तु है उसको प्राप्त करा देता है। उसने ज्यों ही सुना त्यों ही वहाँ पर आकर के कहा कि आप चिंता मत करिये! जब तक यह जीवित रहेगा तब तक आपकी सेवा के लिए तत्पर है। लेकिन! इसको एक मात्र सत्य की आवश्यकता है बस, यही अपनी खुराक है। हमारा केवल न्याय का पक्ष है हमें किसी को मारना नहीं है हमें किसी को सताना नहीं है। **यदि हमें कोई सताता है तो उसका विरोध करना हमें आवश्यक होगा।** हम लड़ेंगे, लेकिन किसलिए लड़ेंगे? दूसरे की वस्तु छीनने के लिए नहीं, किन्तु! कोई हमारी वस्तु छीनने के लिए आता है तो उसका प्रतिकार हम अवश्य करेंगे। यह हमारी नीति है, यह हमारा पक्ष है यह हमारा धर्म है और इसी के बल बूते पर हम जियेंगे। जी चुके हैं, जी रहे हैं। विश्व में शांति इसके बिना संभव नहीं है।

लड़ने से कहीं क्रांति हो रही है, कहीं कोई मिट रहा है ऐसा नहीं है। लड़ाई बन्द करने से किसी का जीवन चले ऐसा भी नहीं है। **लड़ाई लड़ें किन्तु! न्याय पूर्वक लड़ें।** आज लड़ाई कौन लड़े? आज रणांगण में कौन कूदता है? आजकल तो छुप-छुप करके रडार के माध्यम से लड़ाई चल रही है। रडार फेल हो जाय तो ये लोग भी फैल हो जायेंगे। आप लोग तो मशीन के द्वारा काम लेते हो। मशीन चलती रहेगी काम चलता रहेगा, मशीन बन्द...आप भी बन्द। एक दिन वह आने वाला है, जब लोगों को उसी द्वापर युग.. उसी सतयुग की ओर दृष्टिपात करना पड़ेगा। वही आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकेगा। अन्यथा संभव नहीं है। क्योंकि आज कुआँ नहीं है नल आ गया। नल भी बन्द

हो जाय तो-दस मंजिल के ऊपर आपकी क्या स्थिति होगी? भगवान् ही मालिक है। इसके उपरान्त भी आप कोशिश कर रहे हैं कि वह नल हमारे घर में ही क्यों? हमारे बाजू में आ जाय, और बगल में ही क्यों? हमारे मुंह में ही टोंटी खुल जाय। यह भी संभव है, खुल भी सकती है लेकिन! उस टोंटी का बटन कहाँ पर लगाओगे और कैसे खोलोगे? प्रमाद बढ़ता चला जा रहा है।

न्याय का पक्ष लेना मेरा जीवन है, अन्याय का पक्ष लेने मैं नहीं जाऊंगा, मैं आपकी इच्छा पूर्ण करने के लिए तैयार हूँ। जब तक मैं हूँ तब तक आपको चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं। वह चला गया सर्वप्रथम वहाँ जहाँ पर रावण का वृत्तांत उसको सुनने में आया था। रावण और हनुमान निकट संबंध को रखने वाले थे। फिर भी हनुमान ने रावण के विपरीत काम करना प्रारम्भ कर दिया। विद्याधरों का अधिपति रावण माना जाता था और यदि रावण के पक्ष की ओर हनुमान हो जाता तो मालामाल हो जाता। आप होते तो माल की ही ओर देखते। लेकिन! हनुमान ने माल की ओर देखा तक नहीं। भीतर बैठा है मालिक, अपने आप ही माल आ जायेगा, माल की कोई आवश्यकता नहीं है। यहाँ मालिक नहीं है, इसलिए माल सप्लाई हो रहा है, बाहर की ओर। भीतर मालिक होना चाहिए। भोक्ता, वह स्वामी, वह प्रभु, वह शक्ति आत्मा की, उसके माध्यम से हम तीन लोकों को हिला सकते हैं। हनुमान ने रावण से कहा कि मैं आपकी ओर नहीं बोलूंगा, मैं सीता से संवाद करना चाहता हूँ। सीता कहाँ पर बैठी है? मुझे वहाँ पर भेज दो। इसके के उपरान्त विभीषण को साथ लेकर हनुमान जाते हैं उस उद्यान में जहाँ पर सीता बैठी थी... ग्यारह दिन की उपवासनी। ग्यारह दिन हो गए थे पति का विछोह हुए। अन्न पान सब कुछ त्याग कर दिया है। आज की सीता तो आप जानते ही हैं! आज रामजी भी कहाँ हैं जो हम सीता की बात कर दें? महिलाओं को देखकर के पति कहता है कि कम से कम सीता जैसा जीवन तो लाओ, और वह पत्नि कहती है कि हाँ...हाँ...ठीक है आप रावण जैसे बन बैठे हो घर में और सीता की बात कर रहे हो! बात दोनों की ठीक है। वह चाहता है कि मेरी पत्नी सीता जैसी बन जाये, और वह चाहती है कि मेरा पति राम बने। पर दोनों का जीवन राम जैसा नहीं और सीता जैसा भी नहीं। आजकल तो उन महापुरुषों के फोटो तक समाप्त हो रहे हैं। कम से कम उन चित्रों को तो देखो जिन चित्रों में वह चरित्र आज भी झलकता है, वह धर्म टपकता है, वह कीर्ति, वह स्वभाव, वह सारा का सारा जीवन तैरकर आँखों के सामने आ जाता है। रामायण की कोई भी एक पंक्ति ले लीजिए अपने आप, वह दण्डक वन.. .वे दशरथ...वे कैकयी... वे राम, भरत, लक्ष्मण, वे हनुमान, वे सीता। जैसे टेलिविजन चल रहा हो, साक्षात् चित्र उतरकर मानस-पटल पर आ जाते हैं। आप पुराणों को पढ़ना प्रारंभ कीजिए और उपन्यासों को लपेटकर रख दीजिए, नहीं तो उपन्यासों के साथ-साथ आपका भी नाश हो जायेगा । भैया! उपन्यास को पढ़कर ना आज तक कोई संन्यासी बना है और न ही बनेगा, हाँ...उपन्यास की शैली में यदि हम उस चरित्र को देखना चाहें तो यह बात संभव है।

उपन्यास की शैली से मेरा विरोध नहीं है। लेकिन! भावना, दृष्टि, हमारा उद्देश्य साफ-सुथरा रहना चाहिए। उन महापुरुषों के कार्य उनके गुणों को हम पहचानने का प्रयास करें। वह ग्यारह दिन का उपवास किये बैठी है। हनुमान जाकर के सर्वप्रथम वन्दना करते हैं और कहते हैं कि मैं राम के पास से आया हूँ। विश्वास नहीं होता, ग्यारह दिन निकल चुके हैं राम का विछोह हुए, बारहवें दिन क्या होगा ज्ञात नहीं? किंतु सीता को विश्वास था। जहाँ पर धर्म है, जहाँ पर न्याय है, जहाँ पर शील व्रत है, जहाँ पर कर्त्तव्य है वहाँ पर सब कुछ पलट सकता है। रात्रि बारह घंटे की होती है लेकिन! प्रभात को देखकर डरती है, सूर्य नारायण के नाम से ही काँपती है, उससे दूर भागना चाहती है। छिन्न-भिन्न हो जाती है।

वह पाप का उदय कब तक चलेगा? भीतर पुण्य जगमगा रहा है। उसके प्रकट होने से पाप का उदय नौ...दो ग्यारह हो गया। सीता हनुमान से प्राप्त मुद्रिका रख लेती है उसके भीतर उसे राम का दर्शन होता है। हनुमान के मुख से सारा वृत्तांत सुन लेती है, और धीरजता की शीतल श्वाँस लेने लगती है। हनुमान कहते हैं कि यहाँ से हम आपको बहुत जल्दी ले जायेंगे, आप चिंता मत करिए! और अब कम से कम अन्नपान ग्रहण करना स्वीकार कर लीजिए। हम सब कुछ करेंगे। देख लीजिए वह हनुमान रावण की ओर नहीं गया और विभीषण को भी अपनी और ले लिया यह सब हनुमान का खेल है। उसने रावण से भी कह दिया कि हम न्याय का पक्ष लेने वाले हैं।

वह विभीषण भी अपने बड़े भैया का पक्ष छोड़ देता है, सेना को छोड़ देता है, वित्त वैभव को छोड़ देता है। अपनी रक्षा का कोई सवाल नहीं उठा उसके मन में। वह सोचता है कि जहाँ पर धर्म है...सत्य है...न्याय का पक्ष है, वहाँ पर रक्षा अपने आप होगी। जंगल में गायें चरती हैं और यदि चरवाहा अंधा है तो वहाँ पर भी पीछे से गोपाल (कृष्ण) आ जाते हैं गायों की रक्षा करने के लिये। प्रत्येक व्यक्ति के पास अपना-अपना पाप-पुण्य है, अपने द्वारा किए हुए कर्म है। कर्मों के अनुरूप ही सारा का सारा संसार चल रहा है किसी के बलबूते पर नहीं। अभी-अभी मैं तेजो-बिन्दु उपनिषद् पढ़ रहा था उसमें लिखा है : -

रक्षको विष्णुरित्यादि ब्रह्म दृष्टेष्ट तु कारणं।
संहारे रुद्र को सर्वं एव मित्थेपि-निश्चनो॥

इस श्लोक में बहुत अच्छी बात कही है। सृष्टि का कर्ता ब्रह्मा है। जब साहित्य का, ग्रन्थों का अवलोकन किया तब ज्ञात हुआ कोई ब्रह्मा, विष्णु सृष्टि का कर्ता नहीं है। कोई रुद्र नहीं है जो उसका संहार करता हो। बंधुओ! ब्रह्म महान् दयालु होता है...वह संरक्षक है। विष्णु कभी इस बारे में हस्तक्षेप नहीं करेंगे और महेश भी इस प्रकार का कार्य नहीं करेंगे। वह महाईश माने जाते हैं, महावीर माने जाते हैं। जो महान् वीर होते हैं वह हिंसक हों यह सम्भव नहीं है। इस प्रकार की

कर्त्तव्य बुद्धि, संरक्षण बुद्धि और विनाशक संहारक बुद्धि को समाप्त करके तीनों को मिथ्या समझो। भीतर बैठा हुआ आत्मा ही अपने अच्छे बुरे परिणामों का कर्ता है। इसलिए वह आत्मा एव ब्रह्मः अस्ति आत्मनः और उसका परिपालन करने वाला होने से वही एक विष्णु है। वहीं अंत में अपने परिणामों को मिटाता है अतः वही एक महान् महेश है। इस प्रकार एक ही आत्मा ब्रह्मा, विष्णु और महेश है।

इस प्रकार तेजोबिन्दु में बहुत कुछ ऐसा लिखा है जो भीतर गहराई में डूबकर लिखा गया है। दूसरे पर कर्तृत्व का आरोप लगाना मिथ्या है। दूसरे को भोक्ता समझना बहुत गलत है। अपने आपके स्वतन्त्र अस्तित्व को समझने के लिए ये वाक्य अमृत जैसे हैं। एक बार इसका गहन अध्ययन होना चाहिए। इसके माध्यम से हमें अपने जीवन में क्या ग्रहण करना-क्या छोड़ना? यह सब ज्ञात हो जायेगा। वस्तुतः संसारी प्राणी दूसरे के जीवन पर जीना चाहता है। अपने जीवन की डोर दूसरे के हाथ सौंपना चाहता है। कभी मालिक तो कभी नौकर बनना चाहता है। किन्तु! अपनी तीनों शक्तियों में जो मौलिक तत्त्व हैं उनको जानने की कोशिश नहीं करता। तो उस समय हनुमान ने कहा कि इसमें कोई संदेह नहीं मैंने न्याय का पक्ष लिया और विभीषण को भी अपनी ओर मिलाया। मैं राम के पास गया हूँ रावण के पास नहीं।

रावण को कोई नहीं चाहता, जबकि उसके पास आधिपत्य बहुत है और वह सार्वभौम माना जाता है। उसके पास सब कुछ है, बटन दबाते ही काम हो जाता है। पर बटन दबाते समय भी माइंड रखना आवश्यक है। बटन को दबाते समय यदि उसका ही बटन दब जाये तो फिर....बड़ा मुश्किल होगा। सब अपने पुण्य-पाप के ऊपर निर्धारित है। यह ध्यान रखना! कोई शक्ति प्राप्त हो जाये लेकिन! उस शक्ति का प्रहार, उस शक्ति का प्रयोग तब तक नहीं हो सकेगा जब तक धरती पर सत्य-अहिंसा है...धर्म है। जब तक अहिंसा है तब तक तीन काल में प्रलय संभव नहीं। धरती पर हिंसात्मक घटनाएँ तभी घटेंगी जब मानव के अन्दर से भावनाएँ बदल जायेंगी।

आणविक शक्ति का आविष्कारक आइंस्टीन महान् वैज्ञानिक माना जाता है। अंत में उसने लिखा है कि इस प्रकार का आविष्कार करके मैंने बहुत बड़ी गलती की है। परन्तु मैंने! ज्ञान की दृष्टि से, शक्ति की परीक्षा के लिए इस प्रकार का प्रयास किया था, मेरी दृष्टि विनाश की नहीं थी। किन्तु! तब तक यह संसार सुख-शान्ति का अनुभव नहीं कर सकेगा जब तक इसके भीतर से क्रोध, मद, मत्सर नहीं जायेगा। जिस दिन मानव का दिल और दिमाग फेल (खराब) हो जायेगा उसी दिन इस शक्ति के द्वारा प्रलय हो जायेगा। जब तक हमारे भीतर का ज्ञान सही-सही देवता की उपासना करता रहेगा तब तक यह दुष्कार्य तीन काल में संभव नहीं है। हमारी इस भौतिक निधि को फिर भी कोई ले जा सकता है। लेकिन हमारी भीतरी निधि, संस्कृति को मिटाने का हकदार इस धरती पर

कोई नहीं है। वह अक्षुण्य बनी रहेगी। यह संस्कृति अभी वर्षों तक टिकने वाली है लेकिन! वह अपने आप नहीं टिक सकती। उसे टिकाने के लिए, स्थायी रूप प्रदान करने के लिए चारित्रनिष्ठ न्याय का पक्ष लेने वाले विभीषण, हनुमान जैसे महान् पुरुषों की जरूरत है।

उन तीनों ने मिलकर रावण को हराया। सीता भी वापस मिल गई। राम लंका को जीतकर आ गए। अब प्रश्न उठता है लंका का राज्य किसको दिया जाये, देख लीजिए न्याय का पक्ष। रावण को तो दिया नहीं जा सकता, तो फिर किसे दिया जाय? अपने नाम से किया जाय, नहीं...विभीषण को दिया गया। यह है...न्याय का पक्ष। इसलिए हनुमान साथ दे रहे हैं। हनुमान को भी दे देते तो वह कहते-नहीं यह न्याय का पक्ष नहीं है और राम भी इस प्रकार की भूल कैसे कर सकते थे? सम्भव ही नहीं था। इतना काम तो हो गया, हमें और आगे बढ़ना है। हनुमान की परीक्षा और है। जो राम के लिए निर्देशन दे रहे थे वे भक्त भले माने जाते थे लेकिन! यह ध्यान रखना ये भक्त नहीं थे। भक्त बनकर देख रहे थे कि भगवान् आगे क्या करते हैं? प्रजा को कैसे चलाते हैं। ऐसा व्यक्तित्व था हनुमान का कि उन्होंने राम को समय-समय पर निर्देशन दिये। भक्ति की ओट में ही ऐसा काम होता गया है। राम का पूरा समय सुख-शान्ति के साथ व्यतीत हो रहा था। लेकिन! बाद में कुछ अपवाद के कारण राम ने अपने सेवक से कहा कि बस! ले जाओ सीता को और वन में छोड़ देना। इतना सुनते ही सब लोग अवाक् रह गये। हनुमान ने निडर होकर कहा-

इसलिए सीता लाकर दी थी हमने? आज आप भूल रहे हैं। प्रभु! जरा अपने दिमाग से काम लो, हम आपके सामने कुछ भी नहीं हैं लेकिन! फिर भी कह सकते हैं भगवान् के साथ यदि भक्त ही वार्ता न करें तो कौन करेगा? हाँ! भगवान् बोलते तो हैं ही नहीं और भक्त ही भगवान् से बोलते है। आप भगवान् होकर के यदि अन्याय करें तो यह शोभा नहीं देता।

हनुमान तुम चुप बैठो! मेरी दूर-दृष्टि देखो! यह कह कर राम चुप हो गये।

हमने समझ लिया है कि आपके पास माइक्रोस्कोप आ गया है। दूर-दृष्टि...अरे! कैसे? वहाँ पर सृष्टि दिख रही है कि आगे क्या होने वाला है? हमने समझ लिया है कि आगे बहुत अन्याय हो जायेगा इस पक्ष का कोई समर्थन करने वाला नहीं है। यदि आप उस समय होते तो क्या करते? क्यों भैया! समर्थन करते। बात ऐसी है कि हमारे अनुकूल काम सौंप दे तो हम समर्थन कर देते हैं और यदि न सौंपे तो विरोध कर देते हैं। **आज का न्याय केवल अर्थ के ऊपर निर्धारित है। अर्थ मिलता है तो परमार्थ को गौण किया जा सकता है और यदि अर्थ नहीं मिलता है तो उसका विरोध भी किया जा सकता है।**

अर्थ की दृष्टि तीन काल में परमार्थ को नहीं देख सकती और परमार्थ को गौण करने से अर्थ की दृष्टि संसार को निर्लज्ज बना सकती है। इसकी सारी की सारी बुद्धि का हरण कर मूर्ख बना

सकती है। केवल अर्थ की दृष्टि भारतीय सभ्यता नहीं है। यहाँ पर मात्र अर्थ का समार्जन संरक्षण नहीं है किन्तु! पुरुषार्थ भी होता है। इस अर्थ में पुरुषार्थ का अर्थ है क्या? अर्थ-पुरुष-अर्थ दो अर्थों के बीच में पुरुष है। जिसका मतलब है कि अर्थ यानी धन, पुरुष (आत्मा) के प्रयोजन के लिए है, आत्मोन्नति में कथंचित् सहायक है। अर्थ जीवन के विकास के लिए कारण है। यदि इस प्रकार का उपयोग नहीं है तो वह अर्थ, अनर्थ का मूल बन जाता है। धन की तीन ही गति हैं दान, भोग और नाश। उसके अलावा चौथी कोई गति नहीं है। अतः भलाई इसी में है कि अर्जित राशि को अपने और दूसरों के हित में लगाएँ और अंत में हनुमान ने राम का डटकर विरोध किया। अन्ततोगत्वा राम की आज्ञा से सीता दंडक वन में छोड़ दी गई। तुम्हारा कोई अपराध नहीं है, तुम्हारा कर्त्तव्य है राजाज्ञा का पालन करना और हम भी राजाज्ञा का पालन कर रहे हैं। रोते हुए कृतांतवक्र से, सीता ने कहा।

हाँ मातेश्वरी, राजा की आज्ञा मैं आज तक मानता आया हूँ लेकिन! अब प्रभु चरणों में यही प्रार्थना करता हूँ कि आगे के लिए कभी राजा की नौकरी न करनी पड़े। बस यही चाहता हूँ। आपके प्रति यह ठीक नहीं हुआ। कृतांतवक्र ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा।

नहीं... नहीं वे मेरे पति देव हैं। उनसे बस यही कह देना कि सीता को छोड़ दिया तो कोई बात नहीं पर धर्म का पथ...न्याय का पक्ष नहीं छोड़ें, वरना! यह संसार गर्त में चला जायेगा। आप राजा हैं, प्रजापालक हैं, समझदार हैं, फिर भी समझदारों से भी कभी-कभी गल्तियाँ हो जाती हैं। चलते समय ठोकर लग सकती है और आप गिर सकते हैं। आप गिर न जायें बस! यही कामना है। तुम निर्भय होकर वापस जाओ, मैं अपने भाग्य के भरोसे ही इस दण्डक वन में रहूंगी। बस! मेरा यह अन्तिम सन्देश उन तक पहुँचा देना। सीता ने कृतांतवक्र को समझाते हुए कहा।

और भारी मन से कृतांतवक्र सीता को वहीं पर छोड़कर अयोध्या वापस चला गया।

कृतांतवक्र ने जाकर सीता का सन्देश राम से कहा। सब की आँखों में आँसू हैं। कोई भी व्यक्ति सुख का अनुभव नहीं कर रहा है। इसलिए अब न्याय का पक्ष और लेना है।

...एक घोड़ा राम के द्वारा छोड़ा गया है। उस घोड़े पर लिखा हुआ है कि जो कोई भी इस घोड़े को पकड़ेगा उसे राम के साथ युद्ध करना होगा। इस शक्तिशाली घोड़े को पकड़ने की सामर्थ्य बड़े-बड़े शूरवीर योद्धा भी नहीं रखते थे। वह घोड़ा भी उसी वन में चला गया है जहाँ पर उस गर्भवती सीता ने एक साथ दो पुत्रों को जन्म दिया था। जिनके लव और कुश नाम रखे गये हैं। वे दोनों बच्चे वहाँ पर आश्रम में पले। सब कुछ साधुवत् चल रहा है किन्तु! अंग-अंग से क्षत्रियता टपक रही है। बालकों ने घोड़े को इस तरह पकड़ लिया जैसे आपके बच्चे छोटे-छोटे कुत्तों को पकड़ लेते हैं। भले ही उन्हें कुछ शिक्षण नहीं मिला था, लेकिन! परम्परा से वह गोत्र, वह जाति..

वह खून कहाँ चला जायगा? कुल के संस्कार जीवित थे, जिन संस्कारों के माध्यम से क्षत्रियता उभर आई और क्षण मात्र में घोड़े के ऊपर बैठ गए। जो घोड़े के साथ चल रहा था उसने कहा-

तुम कौन हो?

ए! हमें क्या पूछते हो, उन राम से कह देना कि घोड़ा हमने पकड़ा है। दोनों कुमारों ने वीरता पूर्वक कहा।

और उस घोड़े को सीता के पास ले गये। सीता कहती है-बेटा! तुमने गलत कर दिया।

क्या गलत कर दिया माँ? लव और कुश ने एक साथ कहा।

बेटा! यह श्री राम का घोड़ा है और इसको तुमने पकड़ा है इसके ऊपर बैठ भी गए। अब राम क्या करेंगे क्या पता? सीता ने आशंका पूर्वक कहा।

कौन है राम? लव ने शीघ्रता से पूछा।

और सीता चुप रह गई, क्या उत्तर दे इनको? कुछ बोली नहीं।

माँ! बता दें उसको भी हम इसी प्रकार पकड़ कर लायेंगे आपके पास। क्या हमने कोई अन्याय किया है, कोई अपराध किया है? नहीं... इसके ऊपर लिखा है कि जो कोई इसे पकड़ेगा उसे राम के साथ युद्ध करना होगा। आप क्यों चिंता करती हैं? वे तो अपने आप ही आ जायेंगे और उनको भी पकड़कर आपके सामने रख देंगे हम। कुश ने क्षत्रियोचित पराक्रम दिखाते हुए कहा।

नहीं...नहीं बेटा। ऐसा मत कहो।

सीता गंभीरता पूर्वक बोलीं।

क्यों क्या बात हो गयी माँ? दोनों ने एक साथ कहा।

अब क्या होगा? सब राज खुल जायेगा। यह सोचकर सीता मूर्छित हो जाती है। मूर्च्छा हटने पर सीता ने मजबूर होकर लव-कुश को सारी कथा वार्ता सुना दी, जिसे सुनकर दोनों का खून खौलने लगा और वे युद्ध के लिए तैयार हो गए। हनुमान को भी यह बात मालूम पड़ गई।

पहले धर्म-युद्ध हुआ करते थे। आज भी लड़ने वालों को युद्ध की सारी नीतियाँ अपनानी चाहिए। युद्ध क्रुद्ध होकर के नहीं किया जाता, बल्कि! धर्म को अपने पास रखकर किया जाता है। रणांगण में यदि हाथ से तलवार छूट जाती थी तो दूसरी तलवार हाथ में देकर के कहते थे कि आ जा! अब लड़। छल पूर्वक नहीं मारा जाता था। यह क्षत्रियता एक प्रकार से आवश्यक कार्य है। जो आक्रमण आवे उस आक्रमण को रोकने की विधि का नाम है युद्ध।

न प्रहारो शोभना गतिः क्षत्रियाणां (क्षत्रियः)।

क्षत्रियों के हाथ में जो कोई भी शस्त्र है वह शरणागत निरपराध व्यक्तियों के ऊपर उठाने के लिए नहीं है। जो अपराध करता है, अन्याय करता है उसको रोकने के लिए है।

''आगत एव प्रहार योग्यो अपराधी''

इस प्रकार अभिज्ञान शाकुन्तलम् में महाकवि कालिदास ने लिखा है कि जो अपराधी है और उसके ऊपर जो शस्त्र नहीं उठाता वह क्षत्रिय नहीं है।

क्षतात् पापात् रक्षति इति क्षत्रियः।

जो क्षत्रिय है, वह पाप से बचाता है, युग को, स्वयं को और दूसरों को और पुण्यमय जीवन बना देता है। आज शस्त्र का प्रशिक्षण किस रूप में दिया जा रहा है? बन्धुओ! भारतीय सभ्यता मिटती सी जा रही है फिर भी हम लोगों की धारणा है कि वह सतयुग आयेगा विश्व में शान्ति आयेगी और यदि हमारा आचरण ठीक नहीं है तो वह सतयुग... वह विश्व में शान्ति ''न भूतो न भविष्यति''।

बात मालूम पड़ते ही हनुमान जी आ गये और इस प्रकार के वातावरण में वे लवकुश का पक्ष लेते हैं, और कह देते हैं कि आज से राम-हनुमान युद्ध प्रारम्भ होगा। श्रीराम के लिए सिर्फ लक्ष्मण काम कर रहे हैं। हनुमान ने कहा कि जहाँ न्याय का पक्ष है वहाँ मैं रहूँगा। राम ने जिन-जिन शस्त्रों को चलाया उन-उन शस्त्रों को हनुमान ने कागज के फूल की भाँति उड़ा दिया। किन्तु! यह ध्यान रखना जब राम शस्त्र छोड़ते हैं तो उस समय हनुमान 'जय श्रीराम' कहकर उसका प्रतिकार करते हैं। राम इधर से बाण छोड़ते हैं। तो हनुमान उसे बीच में ही छिन्न-भिन्न कर देते हैं। यदि उधर से अग्निबाण आता है तो इधर से वे जल बाण छोड़कर उसे ठंडा कर देते हैं। इस प्रकार पाँच-छह दिन तक घनघोर युद्ध हुआ। सब कुछ समाप्त हो गया, अन्त में राम सोचते हैं कि अब क्या करें? अब कुछ नहीं करना है। इन बच्चों के सामने देखो! हारने की नौबत आ गई। आज हनुमान भी हमारे विरुद्ध हैं जो अब तक सब कुछ था। अब अन्तिम अमोघ शस्त्र, चक्र-रत्न ही शेष रह गया है, और उस समय चक्र को राम मुस्कान के साथ छोड़ देते हैं। तो राम का छोड़ा हुआ चक्र, लव-कुश हनुमान सहित तीनों की ऐसे परिक्रमा करता है जैसे आप मुनि महाराज की परिक्रमा करते हैं वन टू थ्री) और चला गया, उस चक्र की कांति फीकी पड़ गई। अपना शौर्य, बल, कौशल कुछ भी नहीं दिखाता। चक्र सोचता है कि मैं राम जैसे अकर्त्तव्यशील पुरुष की ओर जाने वाला नहीं हूँ। कर्त्तव्य का अनुपालन करने वाला हूँ।

धन्य है राम के प्रति हनुमान की भक्ति! और धन्य है लव-कुश! धन्य है वह पतिव्रता सीता! सब कुछ आँखों से देख रही है कि अब क्या होगा? क्या हुआ? हनुमान भी भूल गये, राम के पक्ष

को गौण कर दिया। दुनियाँ राम की ओर है, लेकिन उस चक्र रत्न ने भी आज राजा का महत्त्व कम कर दिया। आज राम की क्षत्रियता धूमिल हो गई लेकिन! वंश वही था इसलिए और उठ गई, द्विगुणित हो गई। राम की क्षत्रियता को उज्ज्वल बनाने वाले दो पुत्र लव-कुश और न्याय का पक्ष लेने वाले वह हनुमान थे और उस समय क्या बताएँ? हमने सोचा कि वस्तुतः यहाँ पर न्याय का पक्ष है। **जो व्यक्ति न्याय का पक्ष लेता है वह अन्याय को ही नहीं सारे विश्व को झुका सकता है अपने चरणों में।** लेकिन! उन चरणों में धर्म निहित है, वे चरण अहर्निश चल रहे हैं। चलते आए हैं। चलते रहेंगे। कभी थकेंगे नहीं, डिगेंगे नहीं। उन चरणों में आकर प्रणिपात करना होगा अन्याय के पक्ष को।

यह संस्कृति आज की नहीं है, किसी व्यक्ति विशेष की भी नहीं है। धर्म चिरकाल तक संघर्ष करता चला जाता है किन्तु अन्त में विजय धर्म की ही होती है। विजय सत्य की ही होती है। सत्य अमर है और असत्य की पग-पग पर मृत्यु। सही सो अपना है, अपना सो सही नहीं। हम अपना सही कहते हैं। सत्य ही अपना है। उस सत्य को देखने के लिए हमें आँखों की आवश्यकता है। उस सत्य को परखने के लिए हमारे पास क्षमता नहीं है। हमारे पास वह ज्ञान कहाँ है? जो इस प्रकार के संघर्ष मय जीवन में भी अडिग रूप से उस उपास्य, सत्य की पहचान कर सके।

सामान्य दीपक जलते और बुझ जाते हैं किन्तु! एक रत्न दीपक होता है। जो बुझता नहीं है हमेशा प्रकाश प्रदान करता है। जो न्याय का पक्ष लेता है वह कभी बुझता नहीं, चाहे झंझावात, प्रलय का भी समय आ जाये, तो भी वह जलता रहता है। किसी प्रकार से वह हताश नहीं होता, सभी की सेवा के लिए वह न्याय के पक्ष की शरण लेता है। वह सोचता है कि अन्याय की शरण लेकर मेरा विकास...मेरी रक्षा तीन काल में संभव नहीं। मुझे उड़ना नहीं है अन्याय के पक्ष को उड़ाना है।

राम और लक्ष्मण की आँखों में (यह दृश्य देखकर) हर्ष के आँसू आये बिना नहीं रहे। वे सोचते हैं कि ये और कोई नहीं हमारी संस्कृति की सन्तान हैं। वे ऐसे पुत्र थे, जो कुल दीपक माने जाते हैं। वे रत्न-दीपक के समान थे, जो बुझने वाले नहीं थे। लेकिन! यह ध्यान रखना रत्न- दीपक को बहुत जोखिम के साथ रखा जाता है। रत्न-दीपक अपने आप में बहुत कीमती होता है, हर प्रकार के लोग उसके प्रकाश में नहीं देख सकते। रत्न दीपक के माध्यम से तत्त्व की गवेषणा की जाती है। रत्न-दीपक आँखों की मौज के लिए नहीं है किन्तु! खोई हुई वस्तु को ढूँढ़ निकालने के लिए है।

राम, सीता को लेकर अयोध्या आ जाते हैं। परीक्षा.... न्याय की परीक्षा हो गई। लेकिन! अभी प्रीवियस हुई है। फाइनल इक्जामिनेशन और बाकी है। सीता को अभी अग्नि-कुण्ड में प्रवेश करना है। **यह संसार सत्य की बहुत परख करता है, भले ही उसके पास क्षमता हो अथवा न हो।** इसको सत्य की पहचान है ही नहीं।

हनुमान रोने लगे...और लक्ष्मण ने आगे बढ़कर राम के मुख पर हाथ रख दिया और कहने लगे।

ऐसी कठिन आज्ञा मत दो, ऐसा अनर्थ मत करो मेरे भ्राता...!

नहीं...नहीं जब राम कहते हैं, सही कहते है, अभी और परीक्षा बाकी है, मुझे विश्वास है कि मेरी सीता निर्दोष है इसमें फेल नहीं होगी। राम ने अपने निर्णय पर अडिग रहते हुए कहा।

यह सब मालूम होते हुए भी, वह परीक्षा ले रहे हैं। इसी का नाम है अज्ञान। केवल विश्व को दिखाना है। वस्तु की शक्ति पूरी-पूरी आँकने वाला व्यक्ति तीन काल में वहाँ पर जीत नहीं सकता क्योंकि उसके लिए संघर्ष करना होगा।

सारी प्रजा को जब मालूम है कि, सीता निर्दोष है तो फिर क्यों परीक्षा ले रहे हो? हनुमान के प्रश्न ने राम को झकझोर दिया।

हनुमान चुप रहो! मेरा निर्णय अटल है। राम ने दृढ़ता के साथ कहा।

तो क्या सीता के अग्नि प्रवेश में मैं ही कारण बन रहा हूँ? इसीलिए सीता दी थी तुम्हें? हनुमान के सशक्त प्रश्न ने राम को निरुत्तर कर दिया।

धन्य है...वह सीता जो अग्नि परीक्षा के लिए तैयार हो जाती है। अग्नि कुण्ड की लपटें....आकाश को छू रही हैं। लक्ष्मण का मुँह उतर गया है, हनुमान रो रहे हैं। प्रजा देखना नहीं चाहती पर राम देख रहे हैं। सीता कहती है :-

पाषाणेषु यथा हेम, दुग्ध मध्ये यथा घृतम्।
तिलमध्ये यथा तैलं, देह मध्ये तथा शिवः॥
काष्ठ मध्ये यथा वह्नि, शक्तिरूपेण तिष्ठति।
अयमात्मा शरीरेषु यो जानाति सः पंडितः॥

(परमानन्द स्तोत्र, श्लोक २३/४)

जिस प्रकार पाषाण में कनक विद्यमान है, दूध में घृत विद्यमान है, काष्ठ में अग्नि विद्यमान है। उसी प्रकार शक्ति रूप से इस देह में शंकर विद्यमान है। हे भगवन्! यदि मैं इस परीक्षा में पास हो गई, तो फिर यह संसार मेरे योग्य नहीं रहेगा। इस संसार का चक्कर छोड़ मैं आपके चरणों में आ जाऊँगी। इस प्रकार का संकल्प लेकर ज्यों ही सीता ने अग्नि कुण्ड में प्रवेश किया, त्यों ही अग्नि कुण्ड, जल का सरोवर बन जाता है। उसके बीचों-बीच सहस्र दल कमल पर सीता विराजमान हो जाती है, और आँख बंद कर **शुद्धोऽहं-बुद्धोऽहं** कहती हैं। सारे के सारे लोग जय-जयकार करते हुए नतमस्तक हो जाते हैं। राम कहते हैं-

परीक्षा हो चुकी है, अब आप घर चलिए। अब घर कहाँ वन में ही रहना ठीक है। मैंने परीक्षा दी और उसमें पास हुई, इससे शील धर्म की लाज बच गई। आज मैं कलंकित नहीं हुई किन्तु! अग्नि में तपने से मेरे शीलव्रत में निखार आया है। अब अग्नि परीक्षा के बाद मुझे घर पर अच्छा नहीं लग रहा है। सीता ने कहा।

राम को अब भी घर अच्छा लग रहा है। सीता को घर अच्छा नहीं लग रहा है और वह कुण्ड से बाहर निकल कर आर्यिका के व्रतों को अंगीकार करती है। केशों का लोन्च कर मात्र एक श्वेत साड़ी रख लेती हैं अपने पास। अर्हन्त प्रभु! शिवशंकर, जो दुनियाँ से निशंक हैं, आरंभ परिग्रहों से दूर हैं, ऐसे उन अर्हन्त प्रभु के ध्यान में लीन हो जाती हैं। राम जाकर वंदना करते हैं कि मातेश्वरी! मेरा जीवन धन्य हो गया, तुमने इस प्रकार की अंतिम परीक्षा और शिक्षा भी दे दी कि मैं तुमसे भी परे हूँ। अब मैं और परीक्षा के लिए नहीं कह रहा जब अग्नि परीक्षा हो गई तो फिर कोई परीक्षा शेष नहीं रही। अग्नि परीक्षा होने के उपरांत स्वर्ण की पूरी-पूरी कीमत मालूम पड़ जाती है। आत्मा पृथक् है, देह पृथक् है, इस बात को आपने चरितार्थ कर दिया। इतना कहकर राम अपने महल की ओर चले गये।

हनुमान ने जाकर राम से कहा कि आज से मैंने आपका पक्ष लेना बन्द कर दिया। आज से मेरा संकल्प है कि मैं इस धरती पर किसी का भी पक्ष नहीं लूँगा। मुझे भी उसी ओर जाना है जिस ओर सीता ने कदम बढ़ाए हैं। और वे भी जाकर वन में परम दिगम्बरी दीक्षा धारण कर लेते हैं। हनुमानजी जीवन भर न्याय का पक्ष लेते रहे परन्तु अंत में कहते हैं कि अब मैं सिर्फ मोक्षमार्ग का ही पक्ष लूँगा। उसी के माध्यम से मुझे मुक्ति का लाभ होने वाला है। वे कामदेव थे जिनको देखने के लिए महिलाएँ तो क्या अप्सरायें तक तरसती थीं। सारी की सारी महिलाएँ हनुमानजी को चाहती थीं लेकिन! वे किसी को नहीं चाहते थे। जिन्होंने आज तक राम का पक्ष लिया था, उस पक्ष को भी छोड़ दिया क्योंकि राम अभी घर में रह रहे हैं। इसलिए हनुमान वन में चले गए। वनवास का-अर्थ वन में जाकर वास करना, भगवान् को भी छोड़ दिया। इतना ही नहीं जीवन में एकत्व को पाने वह अध्यात्म...वह ध्यान की धारा...वह अन्तरंग समाधि, भीतरी योग साधना में वे लीन हो जाते हैं। जहाँ तक मुझे स्मृति है कि हनुमानजी का तीर्थ स्थल वह सिद्धक्षेत्र मांगीतुंगी माना जाता है, जो कि महाराष्ट्र प्रान्त में है। यहाँ पर एक ऐसी प्रतिमा है जिसका मुख दीवाल की तरफ है। कोई दर्शक दर्शन करने चला जाता है तो उसे पीठ का ही दर्शन होता है, मुख का दर्शन नहीं होता। ऐसा क्यों है? तो स्मरण आ रहा है मुझे कि संसारी प्राणी विश्व की ओर देख रहा है। विषय भोगों की ओर देख रहा है, लेकिन! वे अप्रतिम सौंदर्य के धनी किसी को नहीं देख रहे हैं। वे कहते हैं कि आत्मज्ञ बनने के लिए विश्व की ओर से मुख फेरना होगा। समस्त सांसारिक कार्यों से दृष्टि हटाकर उन्होंने अपने अजर-अमर-अविनाशी, आत्म-तत्त्व की ओर दृष्टिपात किया।

विश्व हिंदू परिषद् वालों को यह पाठ स्वीकार कर लेना चाहिए कि वे उन राम के अनुरूप, लक्ष्मण के अनुरूप, हनुमान के अनुरूप अपने जीवन को बनायें। अहिंसा का पालन करें, हिंसा से दूर रहें...वही सत्य है...वही तथ्य है...वही उपास्य है...वही शरण है...वही हमारा जीवन है। कहीं से आप देखना प्रारंभ कीजिए, किसी को भी आप उठा लीजिए, वस्तु आपको अखण्ड, अविनश्वर एक दिखेगी। एक से एक पदार्थ कई हैं, उनमें से उपादेय एक मात्र आत्म-तत्त्व है उसी को अपनाना होगा। हनुमानजी ने अंत में परम सिद्धत्व पद को प्राप्त किया। जैन पुराणों के आधार से मैंने आपके समक्ष कथा का वस्तु स्वरूप रखा। आप लोगों को पसन्द आया हो तो ठीक है, नहीं आयें हो तो हनुमानजी को तो अवश्य पसन्द आया था और मैं समझ गया कि इससे उज्ज्वल चरित्र हनुमानजी का अन्यत्र मिलने वाला नहीं है। हनुमानजी के सामने राम भी नतमस्तक हुए। क्योंकि राम के पहले हनुमान ने मुक्ति का लाभ लिया। राम के भक्त होते हुए भी उन्होंने राम के लिए ऐसे-ऐसे सूत्र दिये जिनसे राम का भी जीवन धन्य हो गया। हम लोगों का ज्ञान, ज्ञेय की ओर जा रहा है, इसलिये दुख का अनुभव कर रहा है। हम ज्ञान का मूल्यांकन करें, इन्हीं शब्दों के साथ आपके समक्ष ज्ञान का निचोड़ प्रस्तुत है-

ज्ञान ही दुख का मूल है, ज्ञान ही भव का कूल।
राग सहित प्रतिकूल है, राग रहित अनुकूल॥
चुन-चुन इसमें उचित को, मत चुन अनुचित भूल।
सब शास्त्रों का सार है, समता बिन सब धूल॥

महावीर भगवान् की जय...

आचार्य गुरुवर ज्ञानसागरजी महाराज की जय...।

❑ ❑ ❑

जयंती से परे

महावीर ने किसी बात पर अपने जीवन को बाँधा नहीं था। महावीर का जीवन तटस्थ नहीं किन्तु आत्मस्थ था, हाँ.... स्वस्थ अवश्य था। वह तटस्थ नहीं था, किन्तु तट के बीच में बहने वाली गंगा थी। तटों को बाँधने वाला महावीर नहीं था। तट उस महावीर को चाहते थे।

महावीर भगवान् उस जन्म को इष्ट बुद्धि से नहीं देखा करते थे। आप लोगों को जो पसंद आ रहा है वह सब महावीर को नापसंद था।

दुनियाँ की ओर मत देखो अपने आप की ओर देखो। महावीर ने कभी भी दुनियाँ की ओर दृष्टिपात नहीं किया, यदि किया है तो दुनियाँ के पास जो गुण हैं, उनको लेने का प्रयास किया। महावीर में अपने आप को देखो, अपने 'मैं' को देखो, महावीर में।

कौन कहाँ से आया है, आया है तो उसे जाना होगा और जाना है तो कहाँ जाना है? हम आने की बात करते हैं और आने की बात महोत्सव के रूप में करते हैं बहुत मुस्कान के साथ, उसे बहुत प्रेम के साथ, लाड़ प्यार के साथ अपनाते हैं। और उसे अपनाते समय उस दफन का और उतार करके उस कफन का हम ध्यान नहीं करते। कोई आज आया है तो जाने को लेकर आया है......महाराज भी आये हैं तो...। ध्यान रखना! इस बात को आप समझ लें, तो महावीर बन जायेंगे.....। पर आपको महावीर नहीं बनना है इसलिये आप इसे याद नहीं करते।

महावीर ने किसी बात पर अपने जीवन को बाँधा नहीं था। महावीर का जीवन तटस्थ नहीं लेकिन स्वस्थ अवश्य था वह तटस्थ नहीं था। किन्तु तट के बीच में बहने वाली गंगा थी। तटों को बाँधने वाला महावीर नहीं था। तट उस महावीर को चाहते थे। एक तथ्य है, एक भावना है, जो जाने के साथ लगा हुआ है। जो व्यक्ति निशा में उस ऊषा का दर्शन करता है और उस ऊषा में निशा को खोजता है, देखता रहता है। आना है उसके साथ जाना भी है यह जानना भी अनिवार्य है। महावीर जानते थे और पहचानते थे कि आना है तो अभी एक बार जाना है। और यह आना सार्थक इसलिये नहीं है, कि आने के साथ जाना लगा हुआ है। महावीर जाने का मार्ग नहीं पूछते थे लेकिन जाने के मार्ग को दृष्टि में रखकर आते थे। मैं महावीर भगवान् का उपासक हूँ। आप भी हैं, लेकिन आप जाने को भूल जाते हैं। आने और जाने में एक जो सहजता है, वह महावीर भगवान् का जीवन था क्योंकि वह एक बुद्ध थे, एक विचारक थे, एक चिन्तक थे, वह एक पहलू के बारे में चिन्तन करते थे। जो हुआ उसके बारे में उनका कोई चिन्तन नहीं चलता था, जो होने वाला है उसके बारे में अवश्य चिन्तन होता था। आप जैसे वृद्धों का हुए के बारे में जो चिन्तन होता है वह अज्ञानता से कुछ ही दिनों में चिन्तायुक्त हो जाता है। या यूँ कहना चाहिये कि उसका जीवन निस्सार मय बन जाता है। अर्थहीन हो जाता है। जिसमें कुछ पाने की, कुछ होने की, गन्ध नहीं है जैसा कि फूल (Fool), तो Fool नहीं, Full फुल होना चाहिए। फूल को 'क्या बोलते हैं अंग्रेजी में? फूल (Fool) का अर्थ मूर्ख होता है, और फुल (Full) का अर्थ भरा हुआ, जीवन भरा हुआ हो। हमारा एक पहलू निकल गया, दूसरा जो आने वाला पहलू है, उसके द्वारा ही हम अपने जीवन को भर सकते हैं। जो निकल गया वह खाली हुआ लेकिन भरेगा तो वह आने वाले के द्वारा ही। लेकिन यह ध्यान रखें.....आना जब तक जाने के साथ सम्बन्ध को नहीं रखेगा तब तक वह परिपूर्ण नहीं बन सकता यह वस्तु का परिणमन है। जो कि त्रैकालिक सत्य है, यथार्थ है।

महावीर कभी मंगल गीत से, स्वागत से प्रभावित नहीं हुए, क्योंकि वह समझते थे कि.....

''जिन्दगी एक काँच का प्याला है, जो हाथ से छूट गया''

क्या मायना? क्या अर्थ निकाला? जिन्दगी कुछ है...हाँ है, क्या है? वह एक काँच का प्याला मात्र, जो हट गया तो क्या रह गया? कभी भी, अभी भी तैयार रहिये, जाने के लिए। आने के लिए आपको बहुत साथ देने वाले हैं लेकिन जाते समय साथ कौन देता है पता है...पता है ? जिसने आप को प्रेम के साथ, लाड़ प्यार के साथ बहुत मैत्री के साथ, अपनाया था। वह आपको दफनाने के लिए और कफन उतारने के लिए वहाँ तक जाता है। ध्यान रखिए...संसार की रीति, संसार का स्वार्थ, संसार का स्वभाव, संसार का परिणमन, सिर्फआने वाले का साथ देता है, जाने वाले के साथ कोई नहीं जाता। आने के लिए तैयार हैं। महाराज...खुरई में आने की बात करो, जाने की नहीं। तो भइया, ...आने की बात तो हो गई। अब रही कौन सी, बता दीजिये? आने को तो आ गए, उसी समय लग जाता है भीतर...क्या पता महाराज कब जाते हैं? जाने के लिए तो मन नहीं है आपका, लेकिन जब आने का पता नहीं था। उसी प्रकार सीधी साधी बात है। जब कई बार नारियल चढ़ाये गये, फिर भी कोई पता नहीं था। जब आ गए तब विश्वास हुआ। तो उसी प्रकार जाने का भी कोई भरोसा नहीं रखना चाहिए कि कब जाते हैं? और इसमें जब आप गूढ़ता से सोचेंगे तो महावीर का जीवन क्या था? और ऐसा क्यों था? यह सब रहस्य खुल जायेगा।

एक लेख पढ़ा था, जो कि बहुत मार्मिक था। उसमें पूरा पूरा अध्यात्म भरा हुआ था यदि आप लेना चाहें तो, नहीं तो नहीं....क्या था?

एक लाड़ली प्यारी लड़की थी अपने माता पिता की एक ही थी। लाड़ प्यार के साथ पाली पोसी थी। तन उसका सुन्दरता की मूर्ति था सब कुछ था कमी कुछ भी नहीं थी और वह युवती हो गई। जीवन जवानी की ओर बढ़ रहा है। माता पिता ने सोचा कि इसके लिए योग्य वर की आवश्यकता है। किसी प्रकार बहुत मेहनत परिश्रम के उपरान्त उसके अनुरूप उनको वर मिला। सब चले वहाँ.... शादी में लीन थे। वह अवसर, वह तिथि, वह मंगल बेला आई....फेरे पड़ रहे हैं। वह मेंहदी भरा हाथ, ओठों पर लगी हुई लाली, वह भाल पर लगा हुआ कुमकुम का तिलक शोभित हो रहा था। सारी की सारी तैयारी थी वह मंगल बेला बहुत ही आनन्ददायक लग रही थी किन्तु क्या था? सात फेरे और सात तत्त्व हुआ करते हैं, जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। ज्यों ही सातवाँ फेरा पड़ा त्यों ही वर मुक्त हो गया! आपको अच्छा नहीं लग रहा है। जब सुनने में अच्छा नहीं लग रहा है, यदि ऐसा घट जाये तो? यह घटना घटी हुई है इसलिए बता रहा हूँ। सातवाँ फेरा ज्यों ही पूरा हुआ कि वह दूल्हा वहीं पर गिर गया। सारे के सारे लोग हाहाकार मचाने लगे कि क्या हो गया? और उसी समय किसी ने रिकार्ड लगा दिया।

राजा राणा छत्रपति, हाँथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी बार॥

किसी ने कहा अरे! भाई यह क्यों लगा रहे हो? वह बोला सही लगा रहा हूँ। जब जा ही रहा है अपनी-अपनी बार, उसकी बारी आ गई, उसका समय आ गया, उसकी बेला आ गई। वह बन्धन....बन्धन नहीं था वह बन्धन के उपरान्त मुक्ति थी। कौन कहाँ तक निभा सकेगा कौन उस मंगल बेला को अन्त तक निभा सकेगा? संभव नहीं। समय समय पर गुजरना। कोई भी द्रव्य, कोई भी वस्तु, कोई भी पदार्थ कोई भी परिणति, कोई भी घड़ी! वह टिकी हुई नहीं रह सकती। गंगा बहती रहती है। टिक जायें तो तालाब हो जाये और वह गंगा नहीं मानी जा सकती, वहाँ कोई भी स्नान नहीं करेगा। कोई भी वस्तु रुक जाये तो वह वस्तु नहीं मानी जाती। यदि महावीर रुक जायें तो वह महावीर, महावीर नहीं हैं। महावीर तो सतत बढ़ते जा रहे हैं इसलिए उनका नाम रखा वर्द्धमान, आपने नहीं रखा....वह अपने आप में वर्द्धमान थे प्रत्येक वस्तु वर्द्धमान है, आगे बढ़ती रहती है, पीछे मुड़कर देखने का सवाल ही नहीं उठता। पीछे मुड़कर देखने वाला अज्ञानी माना जाता है। जिसे पीछे का हिस्सा अच्छा लगता है उसको भविष्य में जो घटना घटने वाली है, उसका संवेदन सम्भव नहीं, क्योंकि वर्तमान खो जाता है। महावीर खो जाने वाले नहीं थे। वे मौजी थे, वे खोजी थे, किन्तु! वे पीछे मुड़कर देखने वाले नहीं थे। कितना भी आप चिल्लाओ उन्हें बुलाओ वह लौटकर आने वाले नहीं हैं। उनका समय आगे के लिए है पीछे के लिए नहीं। उनका समय मुड़न शील नहीं बढ़न शील है, अतीत में था और आगे भी रहेगा। यह त्रैकालिक सत्य है। आप वस्तु तत्त्व को समझने की चेष्टा करो। वहाँ पर उस मंगल बेला में इस प्रकार की घटना घटती है तो वहाँ पर जो वृद्ध होगा, जो ज्ञानी होगा वह विचार अवश्य करेगा कि घटना घट गई तो घट गई, हो गया तो हो गया। अभाव सो अभाव। अब वह भाव में परिणत होगा ही नहीं। घटी हुई घटना के बारे में किसी का कोई बस नहीं चल सकता। जो मुड़ गया सो मुड़ गया....चला गया....सो चला गया। वह अतीत .... कभी भी भविष्य नहीं बनेगा। उसमें अब कुछ होने की गुंजाइश नहीं। आप कुछ चाहते हैं! क्या चाहते हो? जो कुछ हो रहा, उसको जानना चाहो, तो बहुत अच्छा है। चाहेंगे तो उसे पकड़ने का प्रयास अवश्य करेंगे, उसको स्थिर बनाने की चेष्टा करेंगे। जो **न भूतो, न भविष्यति।** जो ज्ञानी थे, अपने आप चिंतन की धारा में बहने लगे, प्रभावित होने लगे। अब उनके सामने वह पण्डाल, वह मंगलबेला नहीं रही। वह जानते थे कि यह एक दिन होने वाला है। हाथ में जो मेंहदी लगी है, अब उस मेंहदी की महक नहीं आ रही है और हाथ में जो कंगन चूड़ियाँ पहनाई गई हैं, अब वह चूड़ियाँ बेड़ियाँ लगने लगी....पर नव वधू उन्हें तोड़ने का प्रयास कर रही है। अब मृत्यु तो हो चुकी, पति का अवसान हो चुका है। उस गन्ध का, उन ओठों की मुस्कान का अवसान हो चुका है। वह गहरे चिन्तन में डूब गई और अपने अस्तित्व के बारे में सोचने लगी। कितने दिन लगे थे इस मुहूर्त को निकालने में और यह शरीर कितने लाड़ प्यार के साथ पला था, पोसा गया था, कितने व्यक्तियों की मोहक वस्तु बनी थी।

उसी वस्तु को आज में इन्हीं आँखों से देख रही हूँ। वह सोच रही है, फिर क्या सोचना? माता पिता सारे के सारे रुदन में लगे हुए हैं लेकिन वह रुदन नहीं कर रही है। भीतर एक भाव....एक तरंग उठ रही है वह भीतर महावीर के दृश्य को देख रही है। महावीर आया था कहाँ चला गया? महावीर जयन्ती कितने बार मनाई गई किंतु मनाई क्यों जा रही है? क्या आप उसी बालक के रूप में मना रहे हैं, क्या आप उस ही पहलू के बारे में सोच रहे हैं, आप क्या आज के जीवन के बारे में ही सोच रहे हैं? क्या आपके पास मृत्यु के बारे में सोचने की बुद्धि नहीं है, इतना ही ज्ञान है, वस्तु इतनी ही है। सहयोग के साथ वियोग लगा हुआ है, आने के साथ जाना लगा रहता बल्कि वह कनेक्टेड रहता है उस कनेक्टेड स्थिति को हम देख नहीं पाते हैं। वह देख रही है, धीरे-धीरे कंगनों को तोड़ रही है और वह जो भाल पर गुलाबी लाल-लाल तिलक लगा था उसको निकाल दिया, अब वह मात्र कलंक के रूप में था, वह घड़ी मात्र कलंक के रूप में थी। वह जो भाल था, निष्कलंक था उसके भीतर लाल लाल रंग था और वह सोचती है राग का जो समय था वह अब चला गया, अब विराग का समय आ गया। अब सुहाग का समय नहीं .... अब सुहाग तो भाग गया। भाग्य जग गया क्योंकि .... अब आज जो बन्धन था, उसी समय बन्धन के साथ-साथ मुक्ति भी मिल गई, उन्हें पर्याय से मुक्ति मिल गई और मुझे अब साक्षात मुक्ति मिलने वाली है। मुझे इस मोह से मुक्ति मिल सकती है, यदि पांडाल वाले चाहें तो....?

तो कौन क्या कर सकता है? ऐसी भी घटना घट सकती है। यहाँ नहीं घटी .... आज नहीं घटी। लेकिन ऐसी कोई प्राचीन पर्याय नहीं, जो घटी न हो। सब कुछ घटी है लेकिन इसके साथ-साथ हमारी बुद्धि भी घटी है, हम कुछ सोच नहीं पा रहे हैं। उपाय के साथ अपाय को-भी सोचना यह विद्वान का कार्य है। यदि सुख है तो उसके पीछे दुख भी है, अन्धकार है तो ज्योति भी है। हम केवल ज्योति के बारे में विचार करें, नहीं....अन्धकार भी आ जाये तो उसमें भी देखने की शक्ति आनी चाहिए।

महावीर भगवान् का जीवन कहता है कि भैया! **अंधकार में जो देखा जा सकता है, वह प्रकाश में सम्भव नहीं। प्रकाश में सुविधा मिल सकती है पर विश्वास नहीं।** अविश्वसनीय स्थान में आप अकेले हों, सो नहीं सकेंगे। भले-ही आप १० दिन के निन्द्रालू क्यों न हो। और जहाँ पर यह विश्वास हो जाता है कि यहाँ पर सब प्रकार की सुविधा है आराम है। जहां पर किसी भी प्रकार का डर न हो वहीं पर आपको नींद आ जायेगी। अजगर की नींद ले जाओगे आप....यह क्यों? और वह क्यों? महावीर भगवान् के प्रकाश के माध्यम से आप अपने जीवन को प्रकाशित करना चाहते हैं 'न भूतो, न भविष्यति'। एक बल्ब जल गया तो दूसरा जल जाये यह कोई नियम नहीं....कनेक्शन पहले आवश्यक है। आपके पास कनेक्शन नहीं, यदि है तो केवल वायर है, पर

उसमें करेन्ट नहीं, यदि करेन्ट भी है तो आपको बटन दबाना नहीं आता और यदि बटन दबाना भी सिखादें तो आप कहते हैं कि महाराज हमारा मन नहीं होता। अब स्थिति आप लोगों की यह है, क्या करें? सब कुछ फिटिंग तो हो चुकी है लेकिन आपकी इच्छा नहीं है। भगवान् महावीर के उपासक मात्र कहने भर के लिये हो। आपने कभी सोचा है कि जीवन के साथ मृत्यु, दुख के साथ सुख आने के साथ जाना, ऊषा के साथ निशा, यह सब कुछ एक जुड़न है। जीवन भी एक जुड़न को लेकर चल रहा है। प्रत्येक पदार्थ का परिणमन जुड़न के साथ है, एक के साथ चल नहीं सकता वह धीरे धीरे। वर चला गया लेकिन वह वधू घबराती नहीं है। मेंहदी में से अब गन्ध नहीं आ रही है, उस तिलक में से अब सौभाग्य नहीं झलक रहा है, मंगल-सूत्र टूट गया है, बंधा ही नहीं टूट गया.... कैसी विचित्रता कैसा अद्‌भुत परिणमन! फिर भी किसी का ध्येय नहीं होगा चिन्तन करने का कि वह संयोग उतना ही था। नहीं...नहीं कोई बात नहीं, वह इतना ही था लेकिन अभी जीवन तो बहुत है, इसीलिए आप लोग क्या सोचते हैं? क्या क्या विचार करते हैं? बहुत कुछ विचार कर जाते हैं। वह हो या न हो, लेकिन मन तो चिन्तन कर ही जाता है भइया यह तो ठीक नहीं है ऐसा कैसे हो गया? हो गया कोई बात नहीं, ऐसा तो होता ही रहना है, यह तो संसार की रीति है। इतना सुकुमार जीवन है ऐसा थोड़े ही होता है। ऐसा नहीं सोचना चाहिये, अभी बहुत दिन हैं बेटा। आप लोग ऐसा कहकर ऐसी घटनाओं से प्राप्त वैराग्य के क्षणों को यूँ ही...लापरवाही के साथ टाल देते हैं।

मालूम है आपको। नेमिनाथ भगवान् के बारे में क्या किस्सा निकला था? आप लोग ताज्जुब करेंगे नेमिनाथ भगवान् की शादी कब हुई थी? हुई से मतलब आधी जो कुछ भी हुई थी? हाँ....कब गये थे? आप लोगों के यहाँ शादी के जो मुहूर्त निकलते हैं वह श्रावण में नहीं निकलते। समझ में आ गया मुझे श्रावण में क्यों नहीं निकलते। जबकि नेमिनाथ के जमाने में श्रावण में शादी होती थी और नेमिनाथ भगवान् की बारात जूनागढ़ लेकर गये थे। आप लोगों ने सोचा, बहुत अच्छे चिन्तक हो आप! जब नेमिनाथ भगवान् जैसे पुण्यशाली के जीवन में विवाह सम्बन्ध छूट सकता है और इतना पुण्य अपना तो है ही नहीं, इसलिए श्रावण में शादी बन्द करो। धन्य हो भगवान्! आप लोग सोचते हैं, लेकिन राग के बारे में, विराग के बारे में नहीं सोचा करते। उस तिलक को देखते हो लेकिन तिलक के अभाव में वह भाल देखो तो सही, कितना विशाल लगता है। अब वह राग नहीं विराग आ गया। अब सुहाग तो भाग गया, लेकिन भाग्य जाग गया। वह मन ही मन सोच रही है कि नीचे पैरों में पहने हुए नूपुर और सारी की सारी रंग बिरंगी दुनिया से सम्बन्ध समाप्त करो। अपने ही हाथों से दूर करके वह पांडाल में कह देती है कि अब आपका और मेरा कोई संबंध नहीं है। आज से मैं अपने अस्तित्त्व को बस त्रिलोकीनाथ प्रभु महावीर के चरणों में अर्पित करती हूँ। और वैराग्य से ओत-प्रोत वह शरण-हीन कन्या भगवान् महावीर की उपासिका बन जाती है। महावीर कह देते

हैं कि बेटा अब तुझे शीघ्र ही संसार से छुटकारा मिल जायेगा क्योंकि तुम्हारे पास तत्त्व चिन्तन की दृष्टि है, वस्तु को पकड़ने की दृष्टि है, तुम जानती हो कि वस्तु का परिणमन कैसा होता है। तुम जानती हो कि कौन आया था और कौन गया, किधर से आया था और किधर गया। वह आया भी नहीं है गया भी नहीं है, जिया भी नहीं है, मरा भी नहीं है, केवल एक आवरण था जो इधर का उधर हट गया। वह तो मृत्युंजयी हमेशा बना रहता है क्योंकि आत्मा की मृत्यु नहीं है।

कृष्ण, अर्जुन के लिए सम्बोधित कर रहे हैं। यह कारिका गीता में आती हैं, कृष्ण क्या कहते हैं, देखो –

जातस्य मरणं ध्रुवं, ध्रुवं जन्म मृतस्य च-
तस्मात् हे! मध्यम पाण्डवः मा शोचनीय।

अर्जुन तू क्या पागल बन गया? जिसने जन्म लिया है उसे मृत्यु की गोद में जाना होगा, जिसने मृत्यु पाई है उसे जन्म के झूले में झूलना होगा। यह संसार की रीति है।...यहाँ पर डरने की कोई आवश्यकता नहीं...। जो आता है वह जायेगा, जो जाता है वह आयेगा, आना जाना बना रहता है। हे अर्जुन! इस रहस्य को जान करके कर्त्तव्य पथ से च्युत नहीं होना। कोई भाई नहीं है, कोई बहिन नहीं, कोई गुरु नहीं, कोई शिष्य नहीं। कर्त्तव्यपालन ही तुम्हारा धर्म है। अर्जुन कहता है कि प्रभो! यदि गुरु भी गलत काम कर रहे हैं तो भी उनके ऊपर धनुष तीर चलाना कैसे संभव है? कृष्ण कहते हैं- अर्जुन तू बिल्कुल भयभीत हो गया...। द्रोणाचार्य इस समय द्रोणाचार्य नहीं है वह गुरु नहीं है क्योंकि वे पक्षपात कर रहे हैं। और यदि तू मोहाक्रान्त होकर, बहाना बनाकर, रणांगन से डरकर भागना चाहता है तो तुझे कदापि उस परम बोधि-ज्ञान का मार्ग नहीं मिलेगा क्योंकि, कहावत है-

जो कम्मे शूराः सो धम्मे शूराः।

जो कर्म में शूर है वह धर्म में शूर है। जो कर्म में शूर नहीं है वह धर्म में शूर कैसे हो सकता है? जो घर में ठीक ठीक काम नहीं कर रहा है तो क्या संन्यासी होने की क्षमता उसके पास है?

तू कर्त्तव्य पथ से च्युत हो रहा है। तेरे लिए इस रणांगण में संबोधन की आवश्यकता है और कृष्ण जी भी सम्बोधित कर रहे हैं। मरना और जीना तो लगा हुआ है यह समझने की बात है। यदि आत्मा को पाना चाहते हो तो अर्जुन! मेरी बात मान ले। इसको गुरु गुरु न मान.... भाई भाई न मान....माता माता, पिता पिता न मान....क्योंकि ये मोही हैं, ये स्वार्थी हैं....ये क्या चाहते हैं? ये आत्मा को नहीं चाहते, धर्म को नहीं चाहते, वस्तु तत्त्व को नहीं चाहते, ये तो धर्म को अपने अनुरूप बनाना चाहते हैं। ये तो कर्त्तव्य को भी अपने अनुसार चलाना चाहते हैं, ये आत्मा को संसार में रुलाना चाहते हैं।

जो चले वही कर्त्तव्य....जो कहे वही कथन....जो दिखे वही दृश्य हो ....ऐसा नहीं होता, किन्तु वस्तु का दृश्य अपने आप में रहता है। हम अलग प्रकार से उसे देखने की चेष्टा करें। हमारे पास वह ज्योति आ जाये, हमारे पास वह चेष्टा आ जाय जिसके द्वारा हम ज्यों का त्यों उस वस्तु के दृश्य को देख सकें।

वस्तु को आप देखना चाहते हो, जीवन को यदि परखना चाहते हो, यदि कोई रहस्य है....उसे उद्‌घाटित करना चाहते हो तो किसी भी एक बात पर अड़ करके नहीं रहो। जन्म की आप जय जय कार करने वाले मृत्यु के सामने जाकर देखेंगे तो आपके घुटने टिक जायेंगे। जो हमेशा मरण के साथ जीता रहता है और मरण को जीने का एक प्रकार से दृश्य दिखाता है कि जीवन यह होता है।

जो व्यक्ति मरण से डरता जायेगा वह व्यक्ति तीन काल में भी जी नहीं सकता। यह मरण ही हमारे लिए प्रकाश प्रदान करने वाला है और यह भव हमें भव-भव तक भटकाने वाला है। आप जन्म की पूजा नहीं करिये, जन्म संसार का प्रतीक है।

यह ध्यान रखना कि हम साधना के बलबूते मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर सकते हैं और इस अविनश्वर पद को प्राप्त करने वाली वह वस्तु हमारे पास ही है लेकिन हम उसे देख नहीं पा रहे हैं। उसको देखने की आप चेष्टा करिए। वह मंगल ग्रह जहाँ पर कार्य हो रहा था वहाँ से वह साध्वी के वेश में आती है। बिल्कुल पतिव्रता स्त्री के रूप में सफेद वस्त्र के साथ, हाथ खाली है और रची हुई मेंहदी भाग जाती है। सब कुछ शृंगार निकल गया बल्कि अब वस्तुतः आत्मा का शृंगार प्रारम्भ हो गया।

महावीर क्या इस जन्म में अटकना चाहेंगे, महावीर क्या आप लोगों के इन गीतों को सुनना चाहेंगे? यदि यह पसंद होता तो वे यहीं रह जाते। आप लोगों का यह आरती उतारना, आकर्षक चेष्टायें करना, तुम्हारा मोह, प्रेम, प्यार उनको बिल्कुल पसंद नहीं था। सभी नापसंद था। भले ही आप लोग इनके होकर कहें कि महावीर हमें बहुत पसंद करते थे किन्तु यदि महावीर बोलना प्रारंभ कर दें तो इस सभा में कोई भी पसंद नहीं आयेगा उनको, क्योंकि सब लोग जन्म को चाहने वाले हैं मृत्यु से सभी लोग डरकर भागने वाले हैं। मात्र भागने से मृत्यु नहीं छूटेगी। फिर भी हिरन के समान, खरगोश के समान आप भाग रहे हैं। कहाँ तक भागोगे? मृत्यु की गोद में तो आपको जाना ही होगा। रोते हुए मृत्यु की गोद में जाओगे तो वीर के उपासक नहीं कहलाओगे। यदि उसका साहस करके स्वागत करते हो तो फिर वास्तव में आप महावीर के पथ के पथिक कहलाओगे । आल्वेज वेलकम कहते हैं तो आल्वेज वेल गो भी हो जावेगा। आल्वेज वेलकम ही लिखते हैं आप। हम किसी बॉर्डर पर चले जाते हैं तो यू. पी. आ रही है एम. पी. छूट रही है, गुजरात आ रहा है राजस्थान

छूट रहा है, महाराष्ट्र आ रहा है। वहाँ पर आप एक ही बोर्ड से दो काम निकालते हैं। क्या कहते हैं? वेलकम, वेल गो कोई नहीं कहता। हमने कहा पुनः पधारिए की अपेक्षा अच्छे पधारे क्यों नहीं कहते? अच्छे पधारे कहें तो बहुत अच्छा लगेगा कोई नहीं कहता। महावीर कहते हैं आपने आइए पहलू तो जान लिया अब जाइये को जाने। जायेंगे तो हम अकेले रह जायेंगे, अकेले हो जायेंगे। महावीर भी अकेले थे। आइये-आइये जब तक कहते रहेंगे तब तक यह झगड़ा चलता ही रहेगा। अकेला होना चाहते हैं आप फिर भी भीड़ को लेकर के जाना चाहते हो। दो की भीड़ में भी सम्भव नहीं है, वह रास्ता बहुत संकीर्ण होता है। वहाँ से एक ही व्यक्ति पास हो सकता है। आजकल तो पुल बन रहे हैं। इधर से कोई आ जाये, उधर से भी कोई आ जाये और फिर एक्सीडेन्ट हो जायें तो नीचे आ जायें। सोचने की भी इतनी फुर्सत नहीं है कि संकरा पुल है और हम निकल जाते हैं। यह सोचो और विचार करो कि वह एकत्व वह अकेलापन महावीर चाहते थे। मुझे कुछ नहीं चाहिए जो है वह पर्याप्त है। जो घट रहा है वही मेरे लिए दृश्य है, वही सब कुछ है। उसके लिए ही मैं हूँ उसके लिए और कुछ नहीं। जो होगा वह सामने अवश्य आयेगा क्योंकि वह हमारा गुण धर्म है स्वभाव है।

हमारे पास जो कुछ आता है वह जाता है उसमें हर्ष विषादादि न करें। आने जाने को एक साम्य दृष्टि से देखें, इस रहस्य को देखने के लिए आँखें चाहिए और ऐसी आँखें चाहिए जिसके ऊपर किसी प्रकार के चश्मा की आवश्यकता नहीं हो, कोई काँच की आवश्यकता नहीं हो केवल रियल होना चाहिए। उस पाण्डाल में जहाँ विवाह हो रहा है, सातवाँ फेरा समाप्त भी हो गया, बन्धन भी हुआ और मुक्ति भी मिल गई। शादी भी हुई और बरबादी भी, वहीं पर एक साथ जीवन का आदि और वहीं पर अन्त। बिल्कुल एक समय में आदि और अन्त दोनों की अनुभूति। यह रहस्यमय जीवन हमें समझ में नहीं आ रहा है। महावीर का आना, आना नहीं था और महावीर का जाना, जाना भी नहीं था। आना और जाना एक साथ होता है और उसी में उनको वह सुगन्धी आती है वह ज्योति मिलती है उस अनुभूति का उस ज्योति का लाभ हमें किसी प्रकार से आज तक नहीं हुआ। उसके लिए आप यदि चाहें तो आज से सोचें कि हम किस दृष्टि से जी रहे हैं और किस चिन्ता में डूबे हुए हैं और हमारी यह चिंता कब हटेगी? हमें वह ज्ञान कब प्राप्त होगा जिसमें आना और जाना सहज रूप से घटित हो रहा है? किसी प्रकार हर्ष नहीं, किसी प्रकार का विषाद नहीं, इस प्रकार का साहस वहाँ के राजा को नहीं था। इस प्रकार का साहस हर कोई व्यक्ति नहीं कर सकता, यह महान व्यक्ति का कार्य है। यह तो मात्र साधु महाराजा का कार्य है।

भगवान् महावीर ने उस जन्म को कभी इष्ट बुद्धि से नहीं देखा करते थे, जहाँ पर देवों ने आकर पंचाश्चर्य व्यक्त किए, सुगंध वृष्टि कर दी, फूलों की वृष्टि हुई, मंद-मंद पवन बहाई और अनेक प्रकार के मंगल गीत हुए पर यह सब पसंद नहीं आया। आप लोगों को जो भी पसंद आ रहा

है वह सब महावीर को नापसंद था। कौन-सी वह दृष्टि है, आप लोगों को प्राप्त हो तो बताओ बन्धुओ यह जीवन-जीवन नहीं। जिंदगी आखिर क्या है? ''काँच का एक प्याला है जो हाथ से छूट गया'' वह कभी इसी समय हाथ से छूट सकता है, छूटेगा, तो कुछ के नहीं और ध्यान रखना। जिसको आप प्यार के साथ ओठों से लगाकर के दूध पी रहे थे नीचे गिरते ही आप उस पर पैर रखना भी पसंद नहीं करेंगे और पड़ भी जायगा तो आपके पैर लहूलुहान हो जायेंगे। जीवन का अर्थ समझे बिना उसका कुछ भी मूल्य नहीं है जो कुछ भी है उसको हम भविष्य में ढालने का प्रयास करें। भविष्य की कीमत हो सकती है अतीत की जो घड़ियाँ हैं वह सब फैल है, उनका कोई मूल्य नहीं है। मूल्यहीन पदार्थों के बारे में सोचना एक प्रकार से बुद्धि का अपव्यय है। उसके बारे में सोचो मत यही एक मात्र परिणमन है।

महावीर बहाव को सोचने वाले थे, स्वभाव को सोचने वाले थे। हम इस बहाव में बहते चले जाते हैं, लेकिन इस बहाव के स्वभाव को नहीं सोच पाते, मात्र हमारी एक यही कमी है। भगवान् महावीर की इस ज्योति के माध्यम से हमें बस-यही ज्ञान प्राप्त हो जाय.....हे भगवान्! हमें भी वह कैसे प्राप्त हो, तो कहते है-

दिल के आईने में है तस्वीरे यार,
जरा गर्दन झुकाके देख ले ....।

दुनियाँ की ओर मत देखो। अपने आपकी ओर देखो। महावीर ने कभी दुनिया की ओर दृष्टिपात नहीं किया। उनको क्या आवश्यकता थी, दुनियाँ से बढ़कर भी उनके पास गुण थे, स्वयं में बहुत सारा भंडार भरा हुआ था, दूसरे से लेने की आवश्यकता नहीं....। जो कुछ भी अपने भीतर है उसमें उतर करके अपने आपको देखा, निहारा, सुना और कहा, बाहर कुछ भी नहीं है। बाहर तो अनंत काल से देखता आया हूँ। इस जीवन में तो कम से कम शुरूआत, सूत्रपात हो जाये कि मैं अपने आपको निहारूँ, अपने आपको जानूँ, पहचानूँ। 'क्या मैं कम हूँ ?' मैं कौन हूँ, क्या मैं छोटा हूँ? क्या मैं बड़ा हूँ? किसी रूप में देखूँ तो सही मैं कौन हूँ। यह एक मात्र गहराता चला जाय और ऐसी ध्वनि-प्रतिध्वनि निकलती जाय, भीतर ही भीतर। भले आप कान बंद कर दोगे फिर भी वह भीतर ही भीतर प्रतिध्वनित होती चली जायेगी। ''**हमारे सामने केवल मैं ही रह जाय तो उसमें से अनेक महावीर फूट सकते हैं, अनेक राम अवतार ले सकते हैं, अनेक पाण्डव उसी मैं की गहराई में से जन्म ले सकते हैं। उसी मैं की गहराई में महावीर बैठा हुआ है उसी मैं की गहराई में आप देखो।** महावीर का कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर महावीरत्व छुपा हुआ है। वह अनंत काल से यात्रा करता आया है, अनंतकाल तक यात्रा करता जायेगा, लेकिन वह धार कभी भी सूखेगी नहीं। राजस्थान में भी चले जाओ, अरब कंट्रीज....में भी चले जाओ फिर भी वह धारा सूखेगी नही।

वह धारा, धारावाहित बहती चली जायेगी। अक्षुण्ण यात्रा आत्मा की मेरे साथ चल रही है, डुबकी लगाने की आवश्यकता है। महावीर कहते है 'मैं' को पहचानो, तू को भूल जाओ। पहचानो कि मैं कौन हूँ? महावीर को पूछो मत, तुम ऐसा कह दो कि मैं कौन हूँ, अपने आप ही मालूम पड़ जायगा केवल देखने के लिये जाओ, दर्पण को कभी आपने पूछा है क्या कि तुम कौन हो? दर्पण कहता है कि मैं को देखो, अपने आपको देखो, अपने को देखो भले ही मुझमें देखो लेकिन अपने को देखो। मुझमें देखने के लिये आओगे लेकिन यह ध्यान रखना कि-मेरा दर्शन तुम्हें कभी हो नहीं सकता। मुझमें देखोगे पर अपने आपको देखोगे इसी का नाम दर्पण है।

दर्पण अपने आपको नहीं दिखाता लेकिन दर्पण में जो कोई भी देखने को चला जाता है उसके मुख को दिखाता है। लेकिन यह देखना दर्पण के बिना संभव नहीं है।

गुण वश प्रभु तुम हम सम-
पर पृथक हम भिन्न तम-
दर्पण में कब दर्पण-
करता निजपन अर्पण।

दर्पण में अर्पण करने चले जायेंगे तो अपना दर्शन हो जायगा। महावीर भगवान् में देखो, लेकिन अपने आपको देखो, अपने को देखो महावीर में, महावीर लुप्त हो जायेंगे और अपने आपका दर्शन हो जायेगा, महावीर सामने आ जायेंगे। गुणों की अपेक्षा से महावीर और हम एक हैं, देखने की आवश्यकता है। वह कौन-सी ज्योति है जो हमें आज तक उपलब्ध नहीं हुई है? हे भगवान्! हमें ऐसी बुद्धि, ऐसा उपयोग, ऐसा उत्साह दे दो ऐसी आँखें दे दो, ताकि हम अपने आपको देख सकें। महावीर को देखने से हमें कोई लाभ होने वाला नहीं और नहीं देखने से महावीर को कुछ हानि होने वाली नहीं है। किन्तु यदि हम महावीर में अपने आपको देख लेते हैं तो हमें बहुत लाभ होता है। हमारी चेष्टा आज तक ये नहीं हुई है। राम में हम अपने आत्म राम को देख सकते हैं। प्रत्येक वस्तु प्रत्येक द्रव्य में हम अपने स्वभाव गुण धर्म को देख सकते हैं लेकिन हम उसी को देखते रह जाते हैं और अपने आपको भूल जाते हैं, यह हमारी कमी है। महावीर भगवान् ने इस कमी को निकाली, इसलिये आज की तिथि पर २५०० वर्ष पूर्व जन्म लेकर उन्होंने जन्म से मृत्यु की ओर अपनी जीवन यात्रा प्रारम्भ की और वह यात्रा मृत्युजयी बनकर अनंत में लीन हो गई।

नदी पहाड़ की चोटी से निकलती है, निकलते-निकलते बहुत से कंदरों, मरुभूमियों चट्टानों की गर्तो को वह पार करती है। नर्मदा की उस नदी को देख लो। वह पहाड़ को फोड़कर चली गई है, वह संगमरमर से कभी प्रभावित नहीं हुई है, संगमरमर को भी चीरती हुई चली गई और कहाँ पर

जाकर मिली है, कहाँ पर? भैया ओंकारेश्वर में जाकर शांत हो गई। अपने आपको वहाँ तक ले जा करके रुकी उसी प्रकार आप भी यात्रा करो, लेकिन वहीं पर जाकर के रुकिये ताकि बार-बार की यात्रा बंद हो जाये, संसार परिभ्रमण रूप यह जनम-मरण की वेदना छूट जाये। आत्मा को शरीर धारण करना पड़ रहा है यही एक मात्र दुख है और एक मात्र यदि सुख है तो शरीर से छूटना ही है। जिस प्रकार वह अग्नि वहाँ पर जाकर फँस गई, अपने आपकी पिटाई करवा रही है। कौन करवा रहा है, अग्नि की पिटाई कौन कर रहा? कौन यह व्यवहार उस बेचारी अग्नि के साथ कर रहा है, लोहार कर रहा है, लेकिन कब तक? जब तक उस अग्नि की संगति लोहे से है। तो लोहे की संगति से अग्नि की पिटाई हुई और अग्नि की संगति करके लोहा मुलायम बन जाता है, चाहे वह कितना भी कड़ा क्यों ना हो? वह स्वयं कड़े (हाथ में पहने वाला कड़ा) के रूप में परिवर्तित हो जाता है। अग्नि की संगति लोहे के लिये अच्छी हो गई लेकिन लोहे की संगति से अग्नि की पिटाई हो रही है। इसी प्रकार इस आत्मा ने शरीर में ऐसे आकर के आवास बना लिया है, जिसकी वजह से आत्मा की पिटाई हो रही है। जड़ की क्या पिटाई? पिटाई तो चेतन की हुआ करती है। पिटाई होने पर भी आत्मा घटी नहीं, मिटी नहीं और बढ़ी भी नहीं लेकिन पिटी अवश्य है और पिटती जा रही है, दृष्टि नहीं है। देखो स्वार्थ परायणता से संसार कहता है कि उसको तो वेदना हो रही है उसको तो भूख लगी है, उसको तो कष्ट हो रहा है। उसकी ओर ना देख कर के इधर मिठाई बाँट रहे है, यह पर्याय दृष्टि नहीं तो क्या है? मेरा जन्म नहीं हो सकता मेरा मरण भी नहीं हो सकता।

.......जीना और मरना एक प्रकार से शरीर की चेंजिंग है, मात्र परिवर्तन हैं और यह परिवर्तन अनंतकाल से होता आया है, अनंतकाल तक होता चला जायेगा, लेकिन मुझे तो उस रहस्य को समझना है। इस रहस्य को नहीं समझने का कारण है कि सुख-दुख की अनुभूति हो रही है, मैं ज्यादा क्या कहूँ ? आपका समय पूर्ण हो चुका है। आपको आना था यहाँ, आए, अब आपको यहाँ से जाना है (चूँकि जगह आपकी नहीं है)। सब लोगों ने निर्णय किया है कि हमारा काम है और हम बैठ जाये तो कोई आ नहीं सकता और बिठाते-बिठाते जब जगह नहीं मिली तो पीछे खड़े हो गए, जैसे चुनावी भाषण में खड़े होते हैं। अब खड़े हुए हैं। आप लोग यहाँ बैठे हुए हो, रास्ता निकलने को नहीं है...। इसलिए आप आए हैं, यह आना और जाना तो बहुत क्षणिक है, लेकिन कभी आपने उसे जाने को याद किया है?

जन्म जयंती के दिन भी आपको मृत्यु जयंती मनाना चाहिए, मृत्यु के समय जो घटना घटती है उसके बारे में भी कभी-कभी चिंतन करना चाहिये। विद्वान्, संत, ज्ञानी ऐसी घटनाओं में विषाद का अनुभव नहीं करते किंतु मृत्यु के समय में भी वह तटस्थ होकर के सोचने लग जाते हैं।

जीवन यदि मिला है तो नियम से मिट्टी में मिलने वाला है, उससे पहले इसको कंचन-मय स्वर्णमय बना लें, यह हमारी होशियारी मानी जायेगी। ऐसा कार्य यदि एक बार हो जाये, तो हम महावीर भगवान् के समान बन जायें। हमने एक दृष्टांत आपको दिया, विवाह सम्बन्धी। ऐसी कई घटनाएं घट जाती है मालूम नहीं पड़ता। हम भूल जाते हैं क्योंकि उनसे दुख होता है और दुख होता है तो उसको भूलने की चेष्टा करते हैं और जिससे सुख मिलता है उसको याद करते हैं, यदि याद नहीं आता तो थोड़ा सिर खुजा लेते हैं, ताकि याद आ जाये किसी भी प्रकार से। यदि आप अनंत सुख को अपने आपमें अवगाहित करना चाहते हो तो उसे पाने के लिए वह चेष्टा क्यों नहीं करते, जो चेष्टा महावीर भगवान् ने की थी? जिस से उन्हें यह लाभ मिला कि उनका जीवन था वह अंतिम था उनकी मृत्यु भी अन्तिम थी, माता पिता जो कुछ भी थे वह अन्तिम माने जायेंगे, सब कुछ लास्ट। इसके उपरान्त उन्हें इससे कोई मतलब नहीं....वह जीवन हमारे लिए मंगलदायी है, प्रेरणास्पद है। वह घड़ी आने से पहले हम अपने आपको जागृत कर ले, हम अपने आपको ऊपर उठाने की चेष्टा करले। जैसे स्टेशन पर आप लोग गाड़ी आने से पहले अपने पेटी, बैग, बिस्तर इत्यादि जो कुछ भी सामान है उसको तैयार करके खड़े हो जाते हैं। उस आने वाली गाड़ी की ओर दृष्टिपात करते हैं, क्योंकि गाड़ी नियम से आने वाली है, उससे पहले हम स्टेशन पर न सोयें, लेकिन मजे की बात यह है कि आप इतने निश्चिन्त हो कि स्टेशन के ऊपर भी रेल चली आए तब भी आप सोते रहते हैं।

महावीर भगवान् ने कहा कि चिंता मत करो जो कुछ होता है वह होता रहता है। अरे भैया! होता तो रहता है, बाद में स्टेशन पर ही आपका जीवन रह जायेगा, गाड़ी तो पार हो जायेगी। महावीर भगवान् जैसी अनेक गाड़ियाँ निकल चुकी हैं, पर आप लोग अभी यहीं पर ही बैठे हो, समझ में नहीं आ रहा है। बाहर निकलिये, स्टेशन पर खड़े हो जाइये, खाना पीना जो कुछ भी है.... सब ...सब कुछ....भले ही खड़े-खड़े खालो, लेकिन दृष्टि मात्र गाड़ी की ही ओर रहे अन्यत्र नहीं। उसी प्रकार मृत्यु की भी गाड़ी आने वाली है उससे पहले अपने आप को सचेत करते हो तो आप का जीवन स्वर्ण के समान निखर जायेगा। अन्यथा कई बार जन्में हैं, कई बार मृत्यु की गोद में चले गये हैं, कई बार कब्रिस्तान बने हैं और कई बार जन्म स्थान बने हैं और ये सब बनते बनते कितने स्थान खाली हुए हैं, यह सब भगवान् जानते हैं जो महावीर बन कर ऊपर गए हैं, नीचे वालों की दशा जानते हैं। इसलिए यहाँ उन्हें बोलना पसंद नहीं आया, रहना भी पसंद नहीं आया, बातचीत करना तक पसंद नहीं आया, क्योंकि वह हम लोगों की आदत भी जानते हैं। हम ऐसे हैं जैसे ठर्रा मूंग रहता हैं ना, और वह ठर्रा मूंग कभी सीझता नहीं हैं, कभी भीगता नहीं, उसके द्वारा कभी भी दाल नहीं बन सकती, क्या होगा? उसको बोए तो कभी वह धान पैदा नहीं कर सकता। ऐसे ही आप लोगों का जीवन भीगता नहीं, वर्षा होने के उपरांत तो भीगना चाहिए। महावीर जैसे तीर्थंकर, राम जैसे

पुरुषोत्तम पुरुष आए और उन्होंने धर्मामृत की वर्षा भी की, लेकिन आज तक आप गीले नहीं हुए।

आप कहते हैं कि महाराजजी! भींग तो गए थे, लेकिन फिर सूख गए हैं। और ऐसा सुखा लिया आप लोगों ने, ऊपर ऊपर भींग गए होंगे भीतर से भिगाव नहीं आया था और भीतरी भिगाव ही एक प्रकार से भिगाव माना जाता है। एक से एक महान पुरुषों का संयोग आपको अपने जीवन में मिला फिर भी आप लोगों के जीवन में परिवर्तन न आये तो कौन से जीवन के माध्यम से आपमें परिवर्तन आने वाला है? साथ-साथ इस भूमि पर महावीर की यात्रा का स्पर्श हुआ, यहीं पर अनेक महान संतों ने विचरण किया, अपनी पदरज के माध्यम से हम लोगों को पवित्र बनाया लेकिन फिर भी हम लोगों के अन्दर वह पवित्रता आज तक नहीं आई। तो हमने पहले कहा था ध्यान रखना कि करंट बिना वह बल्ब वह ध्वनि कुछ भी हो वह हमें उपलब्ध नहीं होने वाली।

केवल इधर-उधर लाईट फिटिंग करवाने से कोई मतलब सिद्ध नहीं होने वाला है। करंट को प्रवाहित होने दो। महावीर भगवान् ने करंट को प्रवाहित किया था लेकिन हमने अपनी उस लाइन में उसको जगह नहीं दी। करंट यदि आ भी जाये तो भी हमने बटन नहीं दबाया, बटन दबाने के लिए हम कोशिश भी करें तो आप लोग कहते हैं कि महाराज इसमें बहुत तकलीफ होती है। दाम तो हमें देना पड़ेगा। आप देख लो, दाम नहीं देना चाहेंगे तो तीनकाल में वह माल मिलने वाला नहीं है जो भीतर घुसा हुआ है, अन्दर बैठा हुआ है। बन्धुओ! महावीर भगवान् की जयन्ती से हम अपने को अजर अमर बनाने का निष्कषायी बनाने का प्रयास करें तभी यह महावीर जयंती मनाना सार्थक है।

वैसे तो आत्मा का न जन्म होता है और न मृत्यु केवल ऊपर का शरीर मात्र बदलता जाता है। जैसे पुराना वस्त्र जब जीर्ण शीर्ण होकर फटने लग जाता है तब उसे आप लोग चेंज कर देते हैं, वैसे ही जब तक यह आत्मा संसार से मुक्त नहीं होती तब तक यह नई नई पर्यायें, शरीर के रूप धरता चला जा रहा है। इसी प्रकार की यात्रा अनादिकाल से चली आ रही है। यही एक बंधन है, यदि इसके ऊपर उठना चाहते हैं तो महावीर भगवान् के आदर्शमयी जीवन को जानो, पहचानो और उसी के अनुरूप बनने की चेष्टा करो। अंत में चार पंक्तियाँ कहकर मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ -

नीर निधि से धीर हो, वीर बने गंभीर।
पूर्ण तैरकर पा लिया भव सागर का तीर॥
अधीर हूँ मुझे धीर दो सहन करूँ सब पीर।
चीर-चीर कर चिर लखूँ अन्तर की तस्वीर॥

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय॥ आचार्य गुरुवर ज्ञानसागर महाराज की जय॥

❑ ❑ ❑

मर हम....मरहम बनें

....मान का अर्थ है असावधान, लेकिन ज्ञान का अर्थ सावधान नहीं है, बल्कि ज्ञान की स्थिरता, ज्ञान की अप्रमत्त दशा का नाम सावधान है।

... हमें अपने खोये हुए स्वभावभूत तरल अस्तित्त्व को प्राप्त करना है। क्योंकि उस स्वभाव का सहारा लेकर हम स्वयं पार हो सकते हैं। जो भी प्राणी स्वभाव में रमण करने वाली उन महान आत्माओं का सहारा लेंगे वह भी द्रवीभूत होकर अनंत संसार से पार हो सकते है।

....हमारे पास क्या है? केवल छोड़ने के लिए राग-द्वेष, विषय कषायों के अलावा और कुछ भी तो नहीं है। आपको हम किन वस्तुओं को दिखा कर के खुश कर सकते है? भगवन्! आप हमारी वस्तुओं से खुश नहीं होंगे.... लेकिन उन वस्तुओं के विमोचन से अवश्य खुश होंगे।

वर्षों तक धन का उपार्जन किया गया है। कीमती-कीमती वस्तुओं का संकलन किया गया है। अब संकलन के प्रति उपेक्षा का भाव उमड़ आया है। जितनी संपदा है उसकी लेकर वह अपने देश की ओर लौट रहा है। अभी तक विदेश की यात्रा की थी, अब स्वदेश की ओर जाना है, बीच में अपार जलराशि से युक्त समुद्र पड़ता है। सारी की सारी संपदा जलपोत में भर दी गई और जलपोत चल पड़ा। सभी यात्री निश्चिन्त है, कोई भी चिन्ता नहीं है, क्योंकि अब जीवन में निर्धन होने का कोई सवाल नहीं उठेगा वह आ रहा है देश की ओर। जहाज चलाने वाले जहाज चला रहे हैं और सेठ जी आनन्द के साथ बैठे हैं।

तभी एक घटना घट जाती है। समुद्र में तूफान बहुत तेजी के साथ आता है। इतनी तेजी के साथ आता है कि जहाज को बीच में ही रोकने की आवश्यकता पड़ जाती है। जहाज को तुरन्त रोक दिया गया, सारी की सारी संपत्ति जहाज में भरी हुई है, जहाज का जो चालक था वह कहता है कि चिन्ता की कोई बात नहीं है। तूफान आया है चला जायेगा, और तूफान कुछ ही देर में चला गया, यात्रा पुनः चालू हो गई। कुछ ही समय बीता होगा कि एक और सूचना पुनः मिल जाती है। जहाज को जल्दी-जल्दी यहाँ से हटा लीजिए....क्या मतलब? मतलब यह है कि पाँच मिनट के उपरांत जहाज हट जाना चाहिए। मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि आप क्या कहना चाहते है? सब कुछ अभी समझ में आ जायेगा मेरे कहने से आप जहाज को हटा लीजिए, उत्तर देने में और गड़बड़ हो जायगा। किस तरफ हटाऊँ ? तब वह कहता है कि ठहरों देखता हूँ, अभी इस ओर हटा दीजिए। पाँच मिनट के बाद इस ओर भी हटा दीजिए। हटाने के उपरान्त वह फिर कहता है कि थोड़ा और सरकाइए। इतना तो हटा दिया, हटा तो दिया लेकिन! थोड़ा सरकाना और आवश्यक है। कितना

सरकाए? सिर्फ पचास कदम फिर और कहता है कि अब पच्चीस कदम और सरकाओ सरकाने के उपरान्त भी वह पहाड़ जब बिल्कुल पास आ गया तब ज्ञात हुआ। कैसा था वह पहाड़? सफेद ऐरावत हाथी के समान । इतना बड़ा पहाड़ और वह हटा क्यों नहीं? क्या कोई द्वीप है? या कोई स्थान बचा है या नीचे पाताल से कोई विद्याधर विद्या के माध्यम से ऊपर उठा रहा है या ऊपर से किसी ने कुछ फेंका है? क्या हो रहा था सब समझ में आ गया। वह यदि आकर टकरा जाता तो जहाज के कितने टुकड़े होते पता तक नहीं चलता-

''तिल-तिल करें देह के खण्ड'' यह तो कम से कम हो ही जाता लेकिन। जहाज के कितने टुकड़े होते, खस-खस के दाने जैसे छोटे-छोटे हो जाते, तिल के बराबर हो जाते। पता तक नहीं पड़ता क्या था, क्या नहीं था? पूछने पर ज्ञात हुआ कि यह पहाड़ है। तैरने वाले पहाड़ अलग होते है और गढ़े हुए पहाड़ अलग होते है। गढ़े हुए पहाड़ इतने खतरनाक नहीं होते जितने की तैरने वाले। और यह पहाड़ कैसे तैरते रहते है। क्या किसी ने इन्हें प्रशिक्षण दिया? जब हम तैरना सीखे थे छोटे में, तो डरते-डरते सीखे थे। २०-२५ किलो ग्राम भी वजन नहीं था शरीर का और वह कितना बड़ा जलाशय, कितना वजनदार फिर भी वह डूबता नहीं, लेकिन तैरने वालों को भी डुबोना चाहता है। यह सब किसका परिणाम है, इसमें क्या रहस्य छुपा हुआ है? तो फिर मालूम चला जो तैरने के लिए सहायता प्रदान करता है, जिसको पीकर प्राणी सुख शांति का अनुभव करता है। जो जीवन प्रदान करने में कारण है, वही जब अकड़ जाता है, उसे जब गुस्सा चढ़ जाता है, उसमें जब विकृति आ जाती है, जब 'वह विभाव परिणमन कर जाता है, तब वही जल, जीवन प्रदान न करके मरण की ओर ले जाता है। खुद तो डूबता नहीं किन्तु दूसरों को डुबो देता है।

वह क्या है? बंधुओ! तो वह जलीय तत्त्व की विकृति है, जो जल बहता था, बहना ही जिसका जीवन स्वभाव था और तरल होने के कारण जो भी तैरना चाहे उसमें गिर कर तैर सकता है, तैरने वाले की मदद कर सकता है, नाव की तरह-

भाव शुभाशुभ रहित शुद्ध भावन संवर भावे।
डाँट लगत यह नाव पड़ी मझधार पार जावे॥

(बारह भावना मंगतरायकृत)

बारह भावना में आप लोग बोलते हैं न, यदि निर्जरा तत्त्व जिसके पास है और आस्रव तत्त्व नहीं है संवर तत्त्व आ गया है तो वह नाव अब कभी डुबेगी नहीं। नाव की शोभा पानी के अन्दर है किन्तु यदि नाव के अन्दर पानी आ जाये तो उसकी शोभा नहीं। नाव के अन्दर पानी नहीं होना चाहिए और पानी के अन्दर नाव होना ही चाहिए, तभी तो पार हो सकता है। पानी इतना खतरनाक नहीं है और जहाज में तो पानी नहीं आया था फिर इतना खतरा क्यों हुआ? नाव में पानी तो नहीं

आया था यह बिल्कुल ठीक है, लेकिन पानी के परिणमन कई प्रकार के हुआ करते है और जल का ऐसा घनीभूत परिणमन हो गया कि खतरनाक साबित हो गया। बड़े-बड़े जहाजों को डुबोता ही नहीं बल्कि चूर-चूर कर देता है। रत्नाकर का माल रत्नाकर में ही जाना चाहिए, एक पाई भी किसी को नहीं मिलेगी, खाली हाथ लौटना पड़ेगा। इसको बोलते हैं बर्फीला पहाड़, 'हिमखण्ड', सफेद फक्क रहता है कालेपन का एक दाग भी नहीं। आज तक हमने दागदार कई पदार्थों को देखा लेकिन बेदाग-दार यदि कोई पदार्थ है तो वह हिमखण्ड ही है। जिधर से भी आप देखिए चेहरा उभरा हुआ ही मिलेगा, देखने में बहुत सुन्दर लगता है छूने में अच्छा शीतल लगता है लेकिन यदि आकर के टकरा जाये तो फिर देखो.....! जल की विकृति इस प्रकार हानिकारक हो सकती है।

आत्मा का भी ऐसा ही स्वभाव है, वह जल के समान तरल मृदु और तैराक है। किन्तु जब वह राग-द्वेष के वशीभूत होकर के अपने आपके स्वभाव को भूल जाता है, तब वह ऐसा घनीभूत (कठिन) पदार्थ बन जाता है कि वह खुद भी टक्कर खा जाता हैं और दूसरों को भी टक्कर दे देता है और जब वह इस चक्कर में आ जायगा तो फिर कहना ही क्या? उसका माथा फूट जायेगा घूम जायेगा शेष कुछ भी बचने वाला नहीं है, नामोनिशान तक नहीं बचेगा। इतना खतरनाक वैभाविक परिणमन होता है जल का। संसारी प्राणी सूक्ष्मत्व गुण को खो चुका हैं और सरल स्वभाव को खो चुका है। मृदुपने को खो चुका है। ऐसी स्थिति में वह खुद भी बाधित होता है दूसरों से और दूसरों को भी बाधित करता है। यह घनापन इसके (जल के) पास क्यों आया? और पहाड़ बनकर एक स्थान पर रहता तो फिर भी ठीक था, संकेत वगैरह से कार्नर मोड़ा ले लें। लेकिन जब पहाड़ ही कार्नर लेने लग जाये तो फिर बचें कैसे हम? कब ले ले, कैसे ले ले पता तक नहीं पड़ता और दूसरी बात यह है कि वह पहाड़ कैसे आते है, पानी के अग्र-भाग पर थोड़े दिखते रहते हैं। लेकिन नीचे कहाँ तक विस्तार रहता है पता तक नहीं पड़ता।

अब हमें सोचना है, कि ज्ञान जब कठोर हो जाता है तब स्वयं को और दूसरों को खतरा पैदा कर देता है, मानी प्राणी के समान किसी के समान किसी के सामने झुकता नहीं है। मान का एक अर्थ ज्ञान भी है और मान का अर्थ कषाय भी है। जिसका ज्ञान बढ़ता चला जाता है उसको बोलते है वर्धमान, लेकिन गत-मान, वो मान से रहित है और वर्धमान है। ओर हम अर्धमान भी नहीं है हमारी स्थिति बहुत गड़बड़ है। हम मान चाहते हैं, कौन-सा मान चाहते हैं। और वह भी ज्ञान वाला नहीं कषाय वाला मान चाहते हैं। यह मान ज्ञान की एक विकृति है, ज्ञान के ऊपर ही कषाय का प्रभाव पड़ता चला जा रहा है। और उसका परिणाम यह निकल रहा है कि ज्ञान अपने जानने रूप काम (स्वभाव) को छोड़कर मान/सम्मान के चक्कर में फँसता चला जा रहा है। संसार के माध्यम से उसे कभी मान मिलने वाला नहीं है, संसार के द्वारा उस मान का कभी सम्मान होने वाला नहीं

है। अज्ञानी क्या जानता है मान/सम्मान करना, मान-सम्मान करना तो ज्ञानी का काम है। और अज्ञानी जो है वह अज्ञानी के द्वारा स्वागत चाहता है, ज्ञानी तो कभी भी उस अज्ञानी का स्वागत करेंगे नहीं, किंतु जो अज्ञानी होगा वह बहकाव में आ जायेगा और कर लेगा। बड़ा विचित्र है, इसकी भूख को अब कैसे मिटाए? बात मान-सम्मान करने की है, मान मिलता जाता है और अपमान हो जाता है क्योंकि जो अन्दर बैठा हुआ मान (ज्ञान) है, वह इस प्रकार का खेल-खेल जाता है। इस क्षणभंगुर मान के पीछे संसार दौड़ रहा है जिसका कोई अस्तित्त्व नहीं उसके पीछे दौड़ रहा है। किन्तु जहाँ पर अनंत मान (ज्ञान) स्वागत के लिए खड़ा है उसके पीछे तो वह भागता नहीं है। उसके पास तो जाता नहीं है। उसको देखने का प्रयास ही नहीं करता।

यहाँ पर यदि कोई एक व्यक्ति भी निरभिमानी होकर अपने आत्म स्वरूप का चिंतन करने लग जाता है तो सिद्ध परमेष्ठियों जैसा सुख-वैभव आनंद दिखने लगता (उन जैसा संवेदन प्रारम्भ हो जाता) है। उस आत्मा के अन्दर अनंतसिद्धों जैसा झलकन प्रारम्भ हो जाता है कि मैं भी इसी रूप में जाकर के मिलूंगा। उसी कम्पनी, उसी टीम (पार्टी) में जाकर के मिलूंगा। जो तीन लोक में मानियों (ज्ञानियों) की सबसे बड़ी टीम है। वहाँ पर बड़े छोटे का सवाल नहीं किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है। ऐसा अनुपम अस्तित्व इसकी (अहंकारी।/मानी) दृष्टि में नहीं आता। इसी मान की वजह से ही उस हिमखण्ड का पूरा का पूरा रूप देखने में नहीं आ रहा है।

संसारी प्राणी नश्वर वस्तुओं के पीछे अपने स्वभाव को भूल रहा है और यद्वा-तद्वा प्रवृत्ति कर रहा है। तब एक ने देखा इधर बैठे बैठे (क्योंकि जहाज पर बहुत सारे सदस्य रहते ही है) कहा कि यह थोड़ा भी टकरा जाता तो वर्षों की कमाई....! और कमाई तो फिर भी ठीक है क्योंकि और कमा लेंगे लेकिन कमाने वाले का अस्तित्व भी पता नहीं पड़ेगा। ऐसा अद्‌भुत परिणमन ऐसी विषम स्थिति सोचकर के वह सबको कहता है-

कितना! कठिन-तम पाषाण जीवन रहा हमारा
कितने पथिक-जन ठोकर खा गए इससे
रुक गये/ गिर गये/फिर गये कितने?
फिर!
कितने! पग लहु-लुहान हो गये
कितने? गहरे-घावदार बन गये
समुचित उपचार कहाँ हुआ उनका ?
होता भी कैसे? पापी-पाषाण से

उपचार का विचार-भर उभरा इसमें आज!
यह भी सुभगता का संकेत है
इसके आगे पग बढ़ना संभव नहीं
हे! प्रभो! यही प्रार्थना है, पतित-पापी की
कि
इस जीवन में नहीं सही
अगली पर्याय में तो ....!
मर...हम....मरहम बनें....!

हे प्रभु यह प्रार्थना स्वीकार हो, कितना कठोरतम जीवन है हमारा क्षणभंगुर मान-सम्मान के लिए हमने अपने आपके जीवन को इतना कठोर बना दिया और यह एक जीवन में नहीं...दो जीवन में नहीं...बार-बार कई जीवन में! धिक्कार है संसार के मान के लिए। आज तक एक बार भी तो मान नहीं मिला और मिला हुआ जो स्वभावभूत ज्ञान मान है वह भी चौपट होता चला गया। निगोदिया जीवों में अक्षर के अनन्तवें भाग भी उस मान की (ज्ञान की) परणति हो जाती है। लेकिन जैसे-जैसे कषाय की कमी होती है तब हल्का होकर ऊपर उठता जाता है।....तो यह संसारी जीव निगोद तल से ऊपर उठता-उठता यहाँ तक आया है जैसा कि यह बर्फ का पाषाणखण्ड समुद्र में से तैरता-तैरता उठता-उठता यहाँ तक आया है और अब उस हिमखण्ड को ऊपर उठने में सहायक जल नहीं अब आकाश मण्डल है....केवल विकास। पतन से विकास होता-होता आया है। मनुष्य जीवन में आने के उपरान्त भी वह सारी की सारी पर्याय उस हिमखण्ड की भांति नीचे-नीचे दबा रखी है। ऊपर देखता हुआ मान-सम्मान के लिए आ रहा है। मुझे वह मान-सम्मान देता है तो ठीक है, नहीं तो ऐसा टक्कर मारूँगा.... ऐसा टक्कर मारूँगा कि कुछ मत पूछो। क्योंकि मुझे उस जहाज को पाताल भेजना है। और स्वयं भी इस पर्याय हिमखण्ड की पर्याय को समाप्त कर जल में घुल मिलकर एकमेक होकर रहना है, उसी में घुल मिल जाना है। **और अपने खोए हुए स्वभावभूत तरल अस्तित्व को प्राप्त करना है क्योंकि उस स्वभाव का सहारा लेकर हम स्वयं पार हो सकते है और जो कोई भी सहारा लेना वह भी द्रवीभूत होकर अनंत संसार से पार हो सकते हैं।** यह तो हिमखण्ड ने सोचा, लेकिन आपने क्या सोचा? कितना कठिनतम है पाषाण जीवन तुम्हारा कितने पथिक ठोकर खा गए इससे, कितने गिरे, कितने रुके, कितने फिर गए पथ से, विपरीत दिशा में, कितने पग लहुलुहान हो गए और कितने गहरे हो गए घावदार वे पग, उपचार हुआ नहीं, न स्वयं का और न दूसरों का। उपचार करने के भाव आए आज तक? अब कुछ-कुछ भाव उभर रहे हैं,

मृदुतामय सहानुभूति का सूत्रपात हो रहा है। यह भी सौभाग्य की बात है। फिर भी हे! भगवन्! एक बार तो अर्जी (प्रार्थना) मंजूर करो, इस जीवन में नहीं सही अगली पर्याय में तो मर-हम, मरहम बने।

(श्रोता समुदाय में शांत संवेदनामय वातावरण)

अब कम से कम अपने को मरहम बनना है, पारस मल्हम। एक पारस मल्हम है न, पैरों में यदि कोई छाले आए, चोट लगे और कुछ भी हो तो पारस मल्हम लगाते हैं। यह मल्हम शायद नीमच से निकलता है। लाल-लाल रहती है यह मल्हम, इसकी डिबिया भी बहुत ही बढ़िया रहती है। एडवरटाइजमेन्ट (विज्ञापन) तो कहना ही क्या, उस मल्हम का उपयोग दुनिया भर की चोटों को दूर करने में किया जा रहा है। लेकिन हम कषायों के माध्यम से कितने व्यक्तियों के पैरों में, कितने व्यक्तियों के मुलायम हृदयों में चोट पहुँचा देते है। कितना कष्ट कितनी वेदना...वो दिल ही जानते होंगे। वह दिल कहते हैं कि आपकी मरहम भी नहीं चाहिए हमें, किन्तु कम से कम मेरे ऊपर लट्ठमार न करे तो बहुत अच्छा होगा।

कैसा जीवन बना है हमारा। इतना कठोर हिमखण्ड के समान। और यह मत समझो, जो कहने वाला है और आगे कहेगा यह खुद भी उसी ग्रुप (पार्टी) का है इस प्रकार की हमारी स्थिति को देखकर के आचार्य महाराज कहते हैं कि अरे! संसारी प्राणी तू मान के पीछे क्यों पड़ा हुआ है? क्यों इतना कठोर अहंकारी बना हुआ है, पानी के स्वभाव को तो देखो कितना तरल है मुलायम हैं एवं सभी के लिए हितकारी है और वह सेठ उस हिमखण्ड को संबोधित करते हुए कहता है-

हे मानी प्राणी

जरा देख ले

इस पानी को

और

हो जा पानी.... पानी.... [मूकमाटी से..]

लेकिन यह सब आज तो कथन तक ही सीमित रह गया है। हम मृदुता की बात करते हैं, हम ऋजुता की बात करते हैं, हम निरभिमानिता की बात करते हैं लेकिन बीच-बीच में वह टोकता रहता है कि देखो मुझे ज्यादा नीचे पीछे हटा दिया गया तो हम हड़ताल कर देंगे और ऐसे-ऐसे वो हड़ताल कर जाते हैं कि सामने वाले व्यक्ति का जीवन बहुत ही ऊँचा उठ गया हो तो भी पुनः वह एक बार और नीचे आ जाता है। उस उत्साह की बात, कुछ विशुद्धि के साथ परिणामों में उज्ज्वला पाकर के ऊपर पहुँच भी जाते हैं। लेकिन वह ऊपर की पहुँच जो है लहरों के साथ गई है और लहरों के ऊपर

जिस समय नाव पहुँचती है उस समय ऐसा लगता है नाव तैर नहीं रही नाव उठ रहीं है। लेकिन नाव में उठने की क्षमता अपने आप नहीं आई। किन्तु लहरों के माध्यम से आई है, उसी प्रकार कर्म भी कभी-कभी उपशमित जैसा मंद/क्षीण जैसा हो जाता है। मान जब कुछ दबने जैसा हो जाता है तो ऐसे लगने लगता है कि हम तो बिल्कुल निरमिभानी हो गए, वर्धमान के पास पहुँच ही रहे है। लेकिन ज्योंही वह लहर नीचे आ जाती है तो लगने लगता है हम तो जमीन पर ही खड़े हैं।

वे आसमान में हैं क्योंकि वे वर्धमान हैं, नीचे रहने का उनका काम नहीं है और उनके स्वागत के लिए हमें यहीं पर खड़ा रहना होगा। कभी भी आकर हम उनका स्वागत मान/सम्मान नहीं कर सकते। पहले से प्रतीक्षा करना पड़ेगी/हमें उन्हें यूं ही (ऊपर की ओर गर्दन मोड़कर इशारा) देखना पड़ता है और गर्दन के पास इतनी क्षमता कहाँ है कि उनको यूं ही देखते रह जाए। बार-बार मन में विचार उठता रहता है कि ऐसा कौन-सा अपराध इस संसारी प्राणी ने किया है और क्षण-क्षण / पल-पल करता जा रहा है। अपने स्वभाव को भूलकर विभाव परिणमन से परिणत हो रहा है। एक बार तो.....इस जीवन में नहीं सही, लेकिन.... मर.. हम....बस मरहम बनें....!

ऐसे मुलायम बन जाये ताकि कठोरता हमारे पास आए ही नहीं। लेकिन बात ऐसी है कि जिह्वा/रसना कह रही है उसके पास न आँख है, न दाँत है, न हड्डी है और कुछ भी नहीं है, यह मुड़ती रहती है बार-बार। रसना बहुत ही मुलायम मृदु है, लेकिन शब्द ऐसे निकालती है कि अच्छे-अच्छों के दाँत टूट जाए। रसना के ऊपर वह हलुआ खिसक जाता है इतनी मुलायम होती है वह, रसना के ऊपर आज तक किसी ने ठोकर नहीं खाई किन्तु रसना के माध्यम से (वचनों के द्वारा) ऐसे-ऐसे व्यक्ति ठोकर खा जाते हैं कि फिर जीवन पर्यंत उस मुंदी चोट का अनुभव करते रहते हैं। उस चोट के दर्द को सहन करते रहते हैं। ऐसी इसके पास शक्ति है यह शक्ति कहाँ से आ गई? यह सब भावों की परणति है, अन्दर बैठी हुई उस आत्मा की विकारी परणति है।

मान को अपने को जीतना है। वह मान प्रतिपल बंध को प्राप्त हो रहा है और होता रहेगा नवमें गुणस्थान तक। थोड़ी-सी स्थिरता बिगड़ जायेगी तो ऐसी-ऐसी मान की कठोर चट्टानें सामने आ जायेगी कि उनसे गुजरना दूभर हो जायगा। भगवान् महावीर जिन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो चुका है, समवसरण की रचना हो चुकी है, चारों ओर दुंदुभि बज रही हैं, पंचाश्चर्य हो रहे हैं, सब कुछ हो रहा है। असंख्यात देव तिर्यञ्च सभी आ रहे हैं समवसरण में आत्म कल्याण करने। किंतु प्रभु मौन है कोई जान नहीं पा रहा है किसकी कमी है यहाँ पर? सब चिन्ताग्रस्त थे। इन्द्र को यह बात अवधिज्ञान के माध्यम से ज्ञात हुई कि एक ऐसे शिष्य की कमी है जो कि उनकी उस दिव्य वाणी को सुन सके, समझ सके। वह कौन है शिष्य? इन्द्र समझ गया इन्द्रभूति होना चाहिए, किंतु इन्द्रभूति की गर्दन में साईटिका हो चुकी है. इसलिए वह मुड़ती ही नहीं। वह ऐसी बैल के सींग के समान जबरदस्त है कि

मेरे सामने कोई है ही नहीं। नो (No) कोई नहीं, आइ एम ओनली (I am Only) केवल मैं ही हूँ। वह भी है...... ऊं हूँ, दूसरा संभव ही नहीं। हो कैसे सकता है? मेरे सामने...नहीं। पीछे संभव है, नीचे संभव है आजू-बाजू संभव है लेकिन सामने....ऊं हूँ। अब इन दोनों का मेल कैसे हो, कौन मुड़े? वह भी (महावीर) ऊपर अड़ गए कि हम नीचे नहीं उतरेंगे और यह (इन्द्रभूति) कहते हम नहीं जायेंगे किसी के पास।

वा भैय्या.... वा, वो भी मान का तमाशा और यह भी मान का तमाशा। वो भी (इन्द्रभूति) मानी है, और यह भी (महावीर) मानी (ज्ञानी) है। दुनियाँ कह रहीं है कि भैय्या एक तो मानलो। इन्द्र समस्या में उलझा हुआ है कि किसके पास जाए। वर्धमान कुछ कह नहीं सकते और यह इन्द्रभूति महावीर के पास जा नहीं सकते। कुछ न कुछ तो उपाय करना ही होगा, ऐसा विचारकर इन्द्र ने माया की शरण में जाना ही उचित समझा। और इन्द्र ने अपना रूप बदलकर वृद्ध ब्राह्मण का भेष बनाकर इन्द्रभूति के सामने विनम्रता पूर्वक एक प्रश्न रख दिया। और कहा कि इसका अर्थ क्या है? समझाओ! इन्द्रभूति पूछने लगा तुम कहाँ से आए हो? यह प्रश्न किसने दिया? वह (वृद्ध ब्राह्मण) कहने लगा कि हम तो वहाँ से (महावीर के पास से) आए हैं। अर्थ हमें समझ में नहीं आया है, आपके अलावा यहाँ पर इतना ज्ञानी कौन हैं? इसलिए यह प्रश्न मैंने आपके सामने रख दिया। आपके गुरु कौन हैं? महाराज वो वहाँ पर हैं। जल्दी बताओ कहाँ पर हैं? उन्हीं को तो देखना हैं। अपने को क्या करना हैं, प्रश्न तो ऐसे यद्वा तद्वा उठते ही रहते हैं, आपको जो कठिनाई आ रही है, उसको वही पर चलकर हल करेंगे और आपके गुरु से भी वही पर मुलाकात हो जायेगी। आजकल तो बहुत सारे गुरु बन रहे हैं, ये नये नये कहाँ से आ गये गुरु...होगा कोई इन्द्रजालियाँ, ऊपर चढ़कर सिंहासन पर और तमाशा दिखा रहा है। बैठ गया भोली भाली जनता को ठगने का अच्छा तरीका अपना रक्खा है। चलो तुम मेरे साथ अभी पाँच मिनट में ठीक कर दूँगा तुम्हारे गुरु को और ज्योंहि समवसरण के पास जाकर मानस्तम्भ को देखता है त्योंहि पानी-पानी हो जाता है। भीतरी ज्ञान जो मान रूपी रथ पर आरूढ़ था वह नीचे उतर गया। ऐसा उतर गया....ऐसा उतर गया कि 'बस तर ही गया'

आप अकेला अवतरे मरे अकेला होय।
यूँ कबहूं इस जीव को साथी सगा न कोय॥

(भूधरदासकृत बारह भावना)

इस जीव को अकेला ही जन्म लेना पड़ता है और अकेले ही मरण करना पड़ता है। इस संसार मैं अपनी आत्मा के अलावा सगा-सच्चा साथी इस जीव का कोई नहीं है। वह इंद्रभूति भगवान् महावीर का दर्शन करता हुआ कहता है कि अभी तक कितना कठिनतम पाषाण जीवन रहा

हमारा...; किन्तु अब पाषाण खण्ड, पाषाण खण्ड ही नहीं रहा, अब तो इसमें बहुत कुछ रौनक आ गई, पाषाण भी बहुत मुलायम होते हैं। अरे भैय्या पाषाण को भी यदि किसी अच्छी वस्तु का पुट मिल जाये तो उसमें भी निखार आ जाता है। एक से बढ़कर एक पहलू पाषाण में निकाले जाते हैं। मूंगा,नीलम, कोहिनूर आदिक क्या हैं? पाषाण ही तो हैं। मात्र पाषाण खण्ड के ऊपर ही नहीं कठोर से कठोरतम, मानी से मानी जीवों में भी कई पहलू (सुन्दरता का निखार) निकाले जा सकते हैं। उन पहलुओं में भी दर्पण के समान अपने मुख को देख सकते हैं। लेकिन कठोरता को हटाकर उसमें मुलायमपना, सुन्दरता लाने की विधि अलग है। बड़ा परिश्रम करना पड़ता है उसे कीमती बनाने में।

मान में परिणत हुआ ज्ञान वहाँ जाकर के नतमस्तक हुआ और जो मैंने पहले कहा था कि ज्ञानावरण पाँच कर्म होते हैं, आठ नहीं होते, मिथ्यात्व के कारण ही तीनों मति, श्रुत, अवधि ज्ञानों में विपरीतता आती है, अतः ज्ञानावरण कर्म के मूल भेद पाँच ही है आठ नहीं जो ज्ञान उनका (इन्द्रभूति का) उल्टा था वह पलट गया, सही-सही समीचीन हो गया। यह दृश्य सब देखते रह गए और वह इन्द्रभूमि चन्द ही मिनटों में दीक्षित होकर भगवान् का प्रथम शिष्य बन गया। क्या महावीर ने बनाया? यदि महावीर ने बनाया होता तो ६६ दिन रुकते नहीं पहले ही बना लेते। लेकिन महावीर को बनाना नहीं था इंद्रभूति को बनना था। जब उसकी आँखें खुले तब काम बने। आप आँख बंद करके बैठो और कहो कि सूर्य का उदय हुआ कि नहीं कुछ दिखता तो नहीं। ....तो भैय्या क्या आँख के भीतर ही आ जाये सूर्य? (श्रोता समुदाय में हँसी), बन्धुओ! जरा सोचो तो वह कैसे आयेगा? आपको जागृत होकर उठना पड़ेगा, उस उपादेय तत्त्व की प्राप्ति हेतु पहले से प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। वस्तु तत्त्व की इतनी ही मर्यादा है वह अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं कर सकता-एक बार एक मुहावरा पढ़ा था, **'तिल की ओट में पहाड़'** क्या मतलब हुआ इसका? तिल तो इतना छोटा है और पहाड़ इतना बड़ा। तिल की ओट में पहाड़ यह कुछ समझ में नहीं आया।

पहाड़ की ओट में तिल कहते तो फिर भी ठीक था। लेकिन यह कैसे? मुहावरा बनाते समय उसका ज्ञान विपरीत तो नहीं हो गया था। लेकिन यह बात सही है कि तिल की ओट में ही पहाड़ होता है। हम यदि आँखों के सामने जहाँ पर काली-काली गोलक बनी रहती है एक छोटा-सा तिल रख लें तो सामने वाला सारा का सारा पहाड़ समाप्त हो जाता है। मधुवन जैसा विशाल पहाड़, पार्श्वनाथ हिल जो कि लगभग आठ हजार फीट वाला है, वह भी नहीं दिखेगा। मतलब यह हुआ कि हम आँखें खोले तो दिखे वस्तु तत्त्व।

वस्तु तत्त्व बहुत बड़ा है, विशाल है लेकिन हम सब गड़बड़ कर देते हैं कषायों के वशीभूत होकर। केवलज्ञान होने में कोई देर नहीं लगती यदि कषायों से दूर हटकर हम अपने उपयोग को अपनी आत्मा में लगाए तो खटाक से केवलज्ञान हो सकता है। कषायों को तो रखें हम अपने पास

और निष्कषाय की बात करें। यह बात शोभा नहीं देती। दिनों-दिन ऐसा होता जा रहा है ऐसी धारणा बनती जा रही है। अब बोलने-लिखने का कार्य बिल्कुल कम होना चाहिए। कुछ ऐसी दुकानें होती हैं जहाँ पर दुकानदार बहुत बोलते हैं कुछ दुकानें ऐसी होती हैं जहाँ बोलने के लिए कुछ होता ही नहीं।

विदेशों में दुकानों में सारी की सारी वस्तुएं रखी रहती हैं उन पर मूल्य लिखा रहता है। ग्राहक दुकान पर आता है और बिना बातचीत किए पैसा रखता और वस्तु लेकर चला जाता है। यह विदेशी पद्धति है। इसी प्रकार अब हमें करना है, ज्यादा बोलने से कीमत बढ़ने वाली तो है नहीं। ज्यादा कीमत बता करके नीचे आने से वस्तु तत्त्व का मूल्य और कम हो जाता है किन्तु इस प्रकार की आप लोगों को आदत ही पड़ चुकी है।

दुकान पर ग्राहक के आते ही दुकानदार समझ जाता है कि ग्राहक किस प्रकार का है और ग्राहक भी दुकानदार को समझता है। अब-देखिये आप-ग्राहक दुकानदार से कहता है एक धोती का जोड़ा निकाल दो इस-इस (कोई भी नाम) डिजायन की, अच्छी क्वालिटी वाली। ग्राहक पूछता है, सेठ जी इसके दाम कितने हैं? आजकल तो क्या बतायें बाजार का हाल, सबमें दसगुणा होता जा रहा है। जिस प्रकार वस्तुतत्त्व में दस गुणी वृद्धि और दस गुणी हानि हुआ करती है, उसी प्रकार बाजार के भाव दस-दस गुणें, सौ-सौ गुणें, हजार-हजार गुणें, बढ़ते जा रहे हैं। इसलिए भैय्या सही-सही मैं कह देता हूँ कि सौ रुपए जोड़ा कीमत है। ग्राहक कहता है क्या कहा सौ रुपए जोड़ा? कहीं सोकर के तो नहीं आ रहे हो। जल्दी में सौ रुपए जोड़ा कहने लगे, जैसे घर का ही काम हो चाहे जितना मूल्य रखते जाओ। घर का ही काम समझ रक्खा है व्यापारियों ने, ऐसा झुंझलाते हुए उस ग्राहक ने कहा।

पुनः वह कहता है कि सेठ जी यदि आपके धोती के जोड़े की कीमत १०० रुपए बढ़ गयी तो हमारे दाम की भी कीमत नहीं बढ़ी होगी क्या? ध्यान रखो १०० रुपए कीमत कह रहें हो कहीं नींद तो नहीं लगी है, सपने में तो नहीं कह रहे हो? हम तो १० देते हैं, एक ही तो शून्य कम हुआ है, देना हो तो दे दो नहीं तो कोई दूसरी दुकान तलाशते हैं। दुकानदार भी ग्राहक की जेब में हरे-हरे नोटों का बंडल देखता है तो ललचा जाता है। ग्राहक जब दुकान से उठकर चलने लगता है तो फिर सेठ जी कहते है....ये ना पचास दे दो, पचास रुपये! एकदम इतने कम, क्या भाव उतर गया बाजार का? माल तो वो ही है। अरे भैय्या आप समझते तो है नहीं....भाव नहीं उतरा। ...अभी-अभी फोन आया है कि पचास रुपये में दे सकते हो किन्तु पचास से कम नहीं करना। ग्राहक कहता है .. ऐसा करो मैं दस मिनट और बैठ जाता हूँ ताकि दूसरा फोन और आ जाये तो अच्छा रहेगा (श्रोता समुदाय में हँसी) ज्यादा से ज्यादा हम बारह रुपये देते हैं, कोई बात नहीं २५ कर लो, नहीं-नहीं। साढ़े बारह

भी नहीं। पन्द्रह कर लो चलो कोई बात नहीं। चौदह कहने लग जाते हैं, कोई बात नहीं भैय्या १३ दे दो, लो ले जाओ, अच्छी बात है कहता हुआ ग्राहक १३ रुपये में खरीद लेता है (व्यापारियों में विशेष हँसी)। इसका मतलब क्या हुआ? तो ऐसा करने से वस्तुतत्त्व का मूल्य घट जाता है। १०० रुपये में कह करके १३ रुपये में बेचने की अपेक्षा, पहले ही १३ रुपये कह दो और ग्राहक को सचेत कर दो कि इसमें एक पैसे का भी फेरबदल नहीं होगा। कृपा कर आप मेरी दुकान पर पाँच मिनट से ज्यादा न बैठे, खरीदना हो तो ठीक-नहीं तो ठीक। भाव एक ही रहेगा ध्यान रखना।

इस प्रकार करने से न तो नौकरों की आवश्यकता न समय व्यर्थ खर्च होगा, न ग्राहकों से विसंवाद और न ही इनकमटेक्स ऑफिसर का डर। वह इनकमटेक्स वाला ऑफिसर आयेगा कहेगा कम से कम चाय तो पिला दो, क्यों चाय पिला दो! सीधे नाक की सीध में चले जाओ वहाँ पर होटल है (श्रोता समुदाय में हँसी) लेकिन ऐसा वही व्यक्ति कह सकता है जो ईमानदारी के साथ व्यापार करता है। जो व्यक्ति सौ के दो सौ लेता है उस व्यक्ति के लिये ही चाय पिलाने की आवश्यकता पड़ेगी चाय पीने का मैं विधान नहीं कर रहा, वह तो छोड़नी ही चाहिये किन्तु आप लोगों की आदत बता रहा हूँ वही ऑफिसरों के आगे पीछे घूमा करता है। यहाँ पर तो सारा का सारा विषय कषायों का ही बाजार है।

जैसे वस्तुतत्त्व का एक ही भाव हुआ करता है वैसे ही आप भी अपनी वस्तु का एक ही भाव रखिये। ज्ञान को आप ज्ञान के रूप में ही आँकिए। ज्ञान के द्वारा खोटा काम करना गलत है। उपयोग का उपयोग करिए आप। किन्तु आप लोगों की यह विशेषता है कि आप लोग उपयोग (ज्ञान-दर्शन) का दुरुपयोग करते हैं। इसी में सुख शांति का अनुभव करते हैं। संसारी प्राणी का यह रिकार्ड है कि आज तक यह उपयोग का दुरुपयोग ही करता आया है। किन्तु जिसने अपने अस्तित्व की सही-सही पहचान कर ली, वह फिर तीन काल में भी उपयोग का दुरुपयोग नहीं कर सकता।

नित्यावस्थितान्यरूपाणि

द्रव्य नित्य है अवस्थित है उसके गुण नित्य हैं अवस्थित हैं। जितने गुण थे, उतने ही हैं, और आगामी काल में भी रहेंगे। उनमें किसी प्रकार का घटन-बढ़न, फेरबदल सम्भव नहीं। जब यह लक्षण बाँध दिया गया तो उसका दुरुपयोग करना, वस्तुतत्त्व को मनचाहा परिणमाने का प्रयास करना अहंकार का एक रूप है और यही तो कषाय है। वस्तुतत्त्व की सही-सही परख और उसका सदुपयोग करने वाला ही ज्ञानी होता है। इससे हटकर पक्षपात के वशीभूत होकर विषय कषायों की पुष्टि के लिए जो वस्तुतत्त्व का विवेचन-व्याख्यान होता है वह समीचीन नहीं माना जाता, असमीचीन रहता है, महान अज्ञानता मानी जाती है।

हमें मान करना है, लेकिन किसके ऊपर? मान करो तो ऐसा करो कि दूसरे की तरफ देखो ही नहीं....है कोई ऐसा मान करने वाला इस सभा में? आप दूसरे के द्वारा वाह-वाह चाहते हैं लेकिन किसी दूसरे का सम्मान करना नहीं चाहते.... तो अर्थ यह हुआ कि न ही इसको मान मिलेगा और न ही केवलज्ञान मिलेगा। यदि केवलज्ञान चाहते हैं तो दूसरे को भूल जाओ, दूसरे को भूलना ही तो एक प्रकार से उसको नहीं मानना है। एक का तिरस्कार करना और एक को आवश्यक नहीं समझना इसमें बहुत अन्तर है। यदि दूसरों से आदर, सत्कार, नमस्कार चाहते हो तो दूसरों का तिरस्कार मत करिए। यदि ज्ञान स्थिर हो जाये, उपयोग का परिणमन सहज स्वरूप जैसा होने लगे तो केवलज्ञान प्राप्त होने में देरी नहीं, एक सेकेंड भी नहीं लगेगा और वह अक्षय अनन्त अविनाशी केवलज्ञान खटाक से उत्पन्न हो जायगा।

ज्ञान यदि पदार्थों की ओर जा रहा है, पदार्थों से प्रभावित हो रहा है तो गलत काम कर रहा है। ज्ञान जब पदार्थों की और नहीं जायेगा तो जितने पदार्थ है वे सारे के सारे ज्ञान में झलक आएंगे। इसी का नाम है केवलज्ञान। पदार्थों का ज्ञान झलक आना खतरनाक नहीं है, किन्तु सही खतरा तो उद्यमशील ज्ञान में है जो कि विश्व को जानने में लगा हुआ है। जो विश्व को जानने का प्रयास करेगा वह कभी भी सर्वज्ञ बन नहीं सकता किन्तु जो स्वयं को जानने का प्रयास करेगा वह स्वयं को तो जान ही जायेगा, साथ-साथ सर्वज्ञ (केवलज्ञानी) भी बन जायेगा। लेकिन इतना माध्यस्थ होना, इतना अपनी वस्तु को महत्त्व देना खेल नहीं है। बहुत बड़ा काम है, बहुत अधिक पुरुषार्थ की जरूरत है। बल्कि यह कहना चाहिए कि यही एक शेष काम बचा है करने योग्य। बाकी सब काम अनन्तों बार कर चुके, लेकिन प्रयोजनभूत तत्त्व की उपलब्धि आज तक नहीं हुई। अब या तो आप दुनिया को समता की दृष्टि से देखिए ही नहीं। कोई भी बड़ा छोटा नहीं है सब एक समान है यदि इस प्रकार समता आ जाती है आपके जीवन में....तो आपकी यह बलिहारी है। यदि विश्व को देखकर पर पदार्थों को देखकर समता नहीं आती है तो क्यों किसी की ओर जाते हो? अपने आप में बैठे रहिए न, क्या बात हो गई।

दो व्यक्ति थे, एक सेठ साहूकार था दूसरा गरीब। अमीर ने गरीब को दबाने का प्रयास किया तो गरीब कहता है हाथ जोड़कर भैय्या! सेठ जी आप अपने घर में होंगे, हम अपनी कुटिया में सेठ। जब हम आपके घर पर कुछ माँगने आए तो अपना सेठपना दिखाना। यह तो गवर्नमेंट का रोड है ध्यान रखना। यह सब अभिमान अपने घर में करिए। मान करना सबसे ज्यादा प्रिय काम है संसारी प्राणी का। एक स्थान पर ऑग्ल कवि ने लिखा है उसका भाव में आप लोगों को बता रहा हूँ, कि यह व्यक्ति अपना जन्म स्थान छोड़ सकता है, अपने परिवार को छोड़ सकता है, अपनी मित्र मंडली को छोड़ सकता है, अपनी संपत्ति आदि सब कुछ छोड़ सकता है। विषय-कषाय, ऐश-आराम सब

कुछ छोड़ सकता है, शरीर के प्रति निरीह भी हो सकता है। लेकिन इसके उपरान्त एक खतरनाक घाटी और आती है उस साधक के जीवन में, उस घाटी में प्रायः करके ब्रेक डाऊन हो जाती है (ब्रेक फेल हो जाती है) वह घाटी क्या है?

''Going behind reputation is the last weakness of saint.''

ख्याति-पूजा के पीछे भागना यह साधक की अंतिम कमजोरी है। इस कमजोरी के उपरान्त शेष कोई कमजोरी है ही नहीं। साधक लोग सबसे ज्यादा इसी घाटी में फेल हो जाते हैं। सब घाटियों को पार करने के उपरान्त इस महाघाटी को भी सावधानी पूर्वक पार करना ही साधक का सच्चा पुरुषार्थ माना जाता है। एक बार यदि इस घाटी में पैर फिसल जाता है तो पुनः उठना बहुत मुश्किल है। अतः समय रहते हुए सचेत हो जाओ बन्धुओ! और इस घाटी से मुख मोड़कर अपनी ओर आ जाओ। साधक आत्माओं की साधना तो अलग ही प्रकार की रहती है। कैसी रहती है –

निंदा करें स्तुति करें तलवार मारें,
या आरती मणिमयी सहसा उतारें।
साधु तथापि मन में समभाव धारें,
बैरी सहोदर जिन्हें इकसार सारे॥ निजानुभवशतक/७४

यह साम्य पारिणाम। कोई निंदा करे, कोई स्तुति करे, कोई आरती उतारे, कोई मारे कुछ भी हो श्मशान हो, भवन हो या वन हो, कोई मतलब नहीं। जिसको हमने छोड़ा है, पर जान करके, पर मान करके फिर यदि उसकी ओर हमारी दृष्टि जाती है तो उस दृष्टि में अभी वीतरागता की ओर कसर है। यदि यह कसर, यह कमी दृष्टि से नहीं निकली तो समझो कुछ निकला ही नहीं। सही तो दृष्टि में ही कचरा है। जब दृष्टि विलोम हो जाती है, तो वह वस्तुस्थिति की सही-सही पहचान न कर उसे अयथार्थ रूप से (कुछ का कुछ) ग्रहण करने लगती है। जब एक बार धारणा बन गई तो वह गुम क्यों हो गई? कमजोर धारणा हमेशा खतरनाक मानी जाती है। **सही तो दृष्टि की ही दृढ़ता होती है और दृष्टि की दृढ़ता से ही आचरण में दृढ़ता आती है।** यह एकांत भी नहीं है क्योंकि यदि दृष्टि में चंचलता है तो वह नियम से जल्दी-जल्दी चल नहीं सकता। उसके चलने में हमेशा अस्थिरता ही रहेगी।

गाड़ी की तेजगति प्रदान करते समय दृष्टि की निस्पंदता परम अनिवार्य है। इसलिए चश्मा वगैरह (या और कोई वस्तु) लगा लेते हैं जिससे पलक वगैरह भी न झपकाना पड़े। ८० किलोमीटर की रफ्तार से गाड़ी जा रही है किन्तु असावधानी पूर्वक एक पलक भी झपक जाये तो एकाध दो फर्लांग गाड़ी यूं ही चली जाती है और एक्सीडेंट हो जाता है। सावधानी पूर्वक दृढ़तापूर्वक रहकर

जीवन की गति में रफ्तार देना बहुत कठिन है। जब वस्तुतत्त्व ही इतनी तेज रफ्तार से घूम रहा है और यदि हम पलक मारकर प्रमादी बन कर दूसरों की तरफ देखने लगें तो कितने पीछे रह जायेगें? ज्ञात भी नहीं रहेगा कि हम किस बिन्दु पर खड़े थे। आप लोग दुकान में मापतौल करते हैं तो कैसे करते हैं, एक....एक एक दो, दो....दो दो तीन, ऐसा क्यों करते हैं? इसलिए करते हैं कि कहीं भूल न हो जाए। लेकिन आप लोग चालाकी क्या करते हैं? यदि सामने वाला थोड़ा इधर.....उधर देख रहा है तो गिनती करते हैं। एक....एक एक दो, दो.....दो चार (श्रोता समुदाय में हंसी) यह भी हो सकता है आप वस्तुतत्त्व को देखना चाहते हों। ज्ञान कहीं अन्य लोगों (पदार्थों) की ओर चला जायेगा तो क्या होगा? बंधुओ! मुनाफा होगा.....नहीं, मुनाफा नहीं होगा।

इसी प्रकार ज्ञान को हम यदि क्रोध की ओर, मान की ओर, माया की ओर, लोभ की ओर ले जायेंगे तो हानि ही हानि होगी, ज्ञान को तो अपनी आत्मा में ही केन्द्रित करना चाहिए। आत्मा की ओर आते ही ज्ञान का उपयोग केवलज्ञान प्राप्त कराता है, मान से रहित अनन्त मान (ज्ञान) प्राप्त कराता है। सावधान रहने की बड़ी जरूरत है, मानी व्यक्ति कभी सावधान हो नहीं सकता, मान का अर्थ तो है असावधान, लेकिन यह नहीं समझना चाहिए कि ज्ञान का अर्थ भी सावधान नहीं है। ज्ञान की स्थिरता ज्ञान की अप्रमत्त दशा का नाम है सावधान। एक शब्द अवधान भी है, अवधान का अर्थ ज्ञान की धारणा ज्ञान की सामर्थ्य। ज्ञान की एक प्रकार से जाग्रति। मात्र ज्ञान तो सोया हुआ ही रहता है और निगोदिया जीव भी कितना सोया हुआ रहता है? बहुत सोया हुआ रहता है। बहुत सो गया (सोता तो नहीं) उसके पास अवधान शक्ति नहीं है। यदि आप ज्ञान को जागृत रखोगे तो आपके ज्ञान की मात्रा का अवधान बढ़ता चला जायेगा और जितने-जितने आपके ज्ञान के अवधान की मात्रा बढ़ती चली जायेगी, उतने-उतने आप केवलज्ञान के निकट पहुँचते जाओगे।

एक बार एक लेख पढ़ा था, कोई पचास अवधानी होता है कोई शतावधानी होता है। इसका मतलब क्या? मतलब यह है कि ज्ञान की स्थिरता मालूम पड़ती है। और ज्ञान की स्थिरता यह बात कह रही है कि इसके अवधान अर्थात् धारण करने की इतनी क्षमता है। जब तेज रफ्तार से गाड़ी जाती है उस समय उस पटरी में हलचल मच जाती है। आप लोगों की भी ज्ञान की ऐसी ही पटरी है कि दो किलोमीटर गाड़ी चलती नहीं और फैल हो जाती है। आजकल तो चार सौ-चार सौ किलोमीटर की रफ्तार से गाड़ी चलती है। पटरी कितनी मजबूत होगी, आजू-बाजू के स्थान कितने मजबूत होंगे। विश्वास के साथ इतना सारा माल भरकर सेठ-साहूकार बैठ जाते हैं यात्रा करते हैं। कितना विश्वास! कितनी धारणा!! कितनी मजबूती!!! लेकिन आप लोगों के अवधान क्या बतायें हम? एक अवधान भी सही-सही नहीं और शतावधान की बात करते हैं। जरा विचार तो करो! हमारा ज्ञान शतावधान कैसे बनेगा? इधर-उधर की चंचलता रहती है।

मान की वजह से ही ज्ञान का मूल्य कम होता जा रहा है। मान की वजह से ही हमारा ध्रूव (लक्ष्य) बिल्कुल खिसकता चला जा रहा है, मान की वजह से ही हमारा पतन हो रहा है एवं हम दूसरों की दृष्टि में कठोर बने हुए हैं। यदि आप मृदुता रूप मार्दव धर्म का आनन्द (अनुभव) चाहते हो तो मान का अवसान अनिवार्य है। इसी विषय से संबंधित एक कविता दे रहा हूँ जिसमें भाव यह है कि भगवान् के पास पहुँचने में, अपनी आत्मा के पास पहुंचने में क्या करना आवश्यक होता है तो-

प्रभु के
विभु त्रिभुवन के
निकट जाना चाहते हो तुम....!
उस मन्दिर में जाने
टिकट पाना चाहते हो तुम....!
वहाँ जाना बहुत विकट है
मानापमान का
अवसान! अनिवार्य है
सर्व प्रथम....!
जिस मन्दिर का
चूल शिखर
गगन चूम रहा है
और प्रवेश द्वार
धरती सूँघ रहा है
वहाँ जाना बहुत विकट है। (डूबो मत, लगाओ डुबकी)

शायद समझ में नहीं आया होगा आप लोगों को इसका अर्थ। देखो कितने बड़े-बड़े मन्दिर बने हुए हैं जिनके शिखर देखने से ऐसा लगता है जैसे आकाश छूने को लालायित हो। इसी पपौरा क्षेत्र के मन्दिरों को देख लीजिए कितनी विशाल शिखरें हैं। आप कितने ही ऊँचे हो लेकिन देखते समय टोपी हो तो टोपी गिर जाये, साफा हो तो साफा गिर जाये और यदि साफा को बाँधनें का प्रयास करोगे तो आप स्वयं गिर जाओगे (श्रोता समुदाय में हँसी) इतना विशाल इतना बड़ा शिखर है मन्दिर का।

इस प्रकार का आकर्षण देखकर हर कोई व्यक्ति कहता है कि चलो भगवान् के पास जल्दी-जल्दी चलो तो वहाँ पर कहते हैं, खड़े हो जाओ और सावधान होकर सामने देख लो क्या बना हुआ है? ''प्रवेश द्वार जो कि धरती सूंघ रहा है। वह कहता है तुम सेठ साहूकार हो तो अपने घर के, यहाँ पर तो झुकना ही पड़ेगा। मंदिर निर्माण कराने वालों ने दरवाजे छोटे-छोटे बनाए क्योंकि उनका कहना है कि हम दरवाजा तो बड़ा बनाना चाहते थे किंतु पैसे कम पड़ गए, हमने सारा का सारा पैसा, शिखर बनाने में लगा दिया और हम बड़ा बनाना भी नहीं चाहते किंतु बड़ों को झुकाने का प्रशिक्षण अवश्य देते हैं इस प्रकार के मन्दिर और छोटे-छोटे प्रवेश-द्वार बनाकर। ताकि उनकी थोड़ी रीड़ मुड़ जाये/झुक जाए। जो काम अस्पताल में नहीं होता, वह मन्दिर में प्रवेश करते समय हो जाता है। आप झुककर के आइए, अपने अहंकार को गलाइये, भगवान् के सामने नत मस्तक हो जाइए फिर अपने आप में लीन हो जाइए। फिर वहाँ से वापस लौटने की इच्छा नहीं होगी। इस प्रकार के लक्ष्य को रखकर ही छोटे-छोटे दरवाजे बनाए जाते थे।

लेकिन आज की बात क्या बतायें, जमाना इनलार्जमेंट (विस्तार) का है। लेकिन हमारा तो कहना है कि यदि और कोई सार्टहैंड हो तो उसी का प्रयोग करो ताकि ये लोग झुककर ही नहीं बैठकर के प्रवेश करें उस पवित्र मन्दिर के अन्दर जिसका शिखर गगन चूम रहा है और उन्हें प्रवेश द्वार के छोटा बनाने का रहस्य भी ज्ञात हो जाए। मान को समाप्त करने का यह बहुत आसान तरीका है। अन्यत्र स्थानों पर हमने बहुत सारे मन्दिर देखे लेकिन एक साथ सामूहिक रूप से समतल भूमि पर इतने सारे विशाल शिखरों वाले मन्दिर इस क्षेत्र की ही देन है। लेकिन इस क्षेत्र के आसपास रहने वाले व्यक्ति कहें... हमारी देन है तो नहीं, ऐसा मत कहिए, इनसे सीख लीजिए। इन मन्दिरों पर क्या किसी का नाम लिखा है कि उन्होंने (किसी व्यक्ति का नाम) बनवाया था। एक-एक शिखर के जीर्णोद्धार के लिए आज हजारों रुपये भी लगा दिए जाये तो भी यह मजबूती नहीं आ सकती। अभी भी कुछ मन्दिर ऐसे हैं जिनके जीर्णोद्धार की कोई आवश्यकता नहीं। इतना महान् कार्य कराने के उपरान्त, इतनी सम्पत्ति खर्च करने के उपरान्त भी किसी के मन में नाम लिखवाने की भावना तक नहीं हुई।

नाम यह मान का प्रतीक है, मान को घटाने के लिए अन्यत्र कोई स्थान नहीं था। इसलिए भगवान् के पास आकर के उनकी पूजा, स्तुति, गुणगान करके घटा रहे हैं और जहाँ तक नाम की बात है सो हमारा नाम आतमराम है। उसे लिखना है तो लिखिए, लेकिन वहाँ पर आतमराम का भी इतना महत्त्व नहीं है, क्योंकि परमात्मा बैठे हुए हैं। अतः बंधुओ आज तक नाम, काम, पर्यायबुद्धि के वशीभूत होकर जो बहिरात्मा बने हुए हैं उसे छोड़कर अन्तर आत्मा बनना चाहिए। दौलतराम जी अपने छहढाला में क्या कहते हैं ?-

बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर आतम हूजे।
परमातम को ध्याय निरन्तर, जो नित आनंद पूजे॥ (छहढाला ३/६)

कैसे हैं हमारे परमात्मा? अपनी आत्मा के आनन्द में लीन हो चुके हैं। अतः बंधुओं! हमेशा परमात्मा का ध्यान किया करो और अन्तरात्मा बनकर बहिरात्मा को तिलांजलि दे दो। यह नाम उस बहिरात्मा की ओर ले जाने वाला है। नाम का अवसान ही आत्मा और परमात्मा से मेल कराने में कारण है। मन्दिर में प्रवेश करते ही घर, परिवार, धन, संपत्ति सब कुछ समाप्त हो जाता है, बाहर क्या हो रहा है? पता तक नहीं पड़ता और अन्दर भगवान् और भक्त के अलावा कुछ रहता ही नहीं। ऐसे-ऐसे मंदिर हैं जहाँ पर बैठकर के घंटों-घंटों सामायिक की जा सकती है ध्यान लगाया जा सकता है ऐसा करने के उपरान्त भी दिल नहीं भरता। किन्तु जो व्यक्ति पेट भर खाकर के भीतर जायेगा तो वह बैठ नहीं सकता ध्यान नहीं लगा सकता, क्योंकि वहाँ पर एयरकंडीशन्ड (वातानुकूलित) व्यवस्था के मंदिर हैं। गर्मी के दिनों में लू नहीं लगती और सर्दी के दिनों में ठंडी नहीं लगती। ऐसे वातानुकूलित हैं ऐसे वातानुकूलित हैं कि बस भगवान् से ही बात होती हो। केवल इन्ट्रेस्ट (रुचि)चाहिए। भीतर जाने के उपरान्त घंटों-घंटों मान का अवसान हो सकता है। भगवान् का दर्शन मात्र होने से भक्त अपने आपको धन्य मानने लगता है। वह कहता है कि भगवन् आप तो धन्य हो ही आपका जीवन तो महान है ही किन्तु आज में भी धन्य हो गया, कृतकृत्य हो गया, यह दोनों नेत्र सफल हो गए आपके दर्शन पाकर।

प्रभु का जीवन कितना मुलायम है कितना नाजुक है, बिल्कुल शुद्ध सौ टंच सोने के समान और हमारा जीवन कितना पाषाण जैसा कठोर है। भगवान् के प्रति हम क्या कर सकते हैं, हमारे पास है ही क्या? केवल छोड़ने के लिए राग-द्वेष, विषय कषायों के अलावा और कुछ भी तो नहीं है। हम किन वस्तुओं को दिखाकर के खुश कर सकते हैं? और हमारी वस्तुओं को देखकर के खुश होने वाले नहीं हैं भगवान्! लेकिन उन वस्तुओं के विमोचन से अवश्य खुश होते हैं भगवान। लेकिन हम आपके समान कषायों को छोड़ने के लिए समर्थ नहीं हैं। आप तो बहुत ही बलवान हैं! कषायों को छोड़ना ही सही मायने में छोड़ना है, त्याग है।

इन्द्रभूति ने ज्योंही देख लिया, बस उपदेश की कोई आवश्यकता नहीं। पहले प्रभु का दर्शन किया मानस्तम्भ का दर्शन हुआ, इसके पहले इन्द्रभूति ने उपदेश नहीं सुना और बिना उपदेश के ही सारी की सारी बात उन्होंने सुन ली, जो भगवान् महावीर कहना चाहते थे। वह (इन्द्रभूति) बिना बोले ही समझ गए-क्योंकि उनका मान गल गया था और मार्दवता, मुलायमपना आ गई थी। जो मान था उसका प्रमान (ज्ञान) के रूप में आविर्मान होने लगा। वह तो पहले से ही सब कुछ जानते थे उन्हें अब सुनने की कोई आवश्यकता नहीं थी। जो ज्ञान उल्टा हो गया था वह सुलट गया, सम्यग्ज्ञान में परिणत हो गया।

गदगद कण्ठ से वह कह रहा था, भगवन्! अभी तक मैं अज्ञान दशा में था भारी भूल कर रहा था, आज आपको देखने से मेरी आँखें खुली हैं, आपके चरणों में मेरा निश्चत ही भला हो जायेगा, क्योंकि आत्मकल्याण का सही तो यही मार्ग है। ऐसा विचार कर अपने जीवन को समर्पित कर देता है। फिर बाद में दिव्यध्वनि खिरी है। पहले शिक्षा नहीं, पहले दीक्षा। दीक्षा का अर्थ है संकल्पित होना अर्थात् कषायों का विमोचन। इस प्रकार संयमित होने के उपरान्त केवलज्ञान प्राप्त करने में देरी नहीं लगती, मात्र एक अन्तर्मुहूर्त ही पर्याप्त है।

गौतम स्वामी भगवान् महावीर के प्रथम शिष्य बन गए, गणधर की उपाधि से विभूषित हो गए और ''डायरेक्ट डिसायपल ऑफ वर्द्धमाना'' और दिव्यध्वनि खिरना प्रारंभ हो गई। अन्त में एक विशेष बात और कहूँगा। वह यह है कि **शिष्य और शीशी को डाँट लगाना अनिवार्य होता है**। यदि शिष्य और शीशी को डाँट नहीं लगाते तो काम समाप्त हो जायेगा, अन्दर भरी हुई औषध गिर जायेगी। किन्तु यदि आप डाँट लगाते है तो जो काम आप चाहते हैं, उससे सौ गुना और हो जाता है। इसका मतलब क्या हुआ? तो मतलब यह हुआ कि रोग निवृत्ति के लिए आप वैद्यजी या डाक्टर साहब से दवाई लाए थे, ध्यान न रहने के कारण आप शीशी का ढक्कन लगाना भूल गए और किसी का हाथ लगने से वह लुढ़क गयी तो सारी की सारी दवाई मिट्टी में मिल गयी, खराब हो गई। और हमारा जो उद्देश्य था वह अधूरा रह गया। मात्र खाली शीशी हमारे पास बची रहेगी जिसकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं थी। किन्तु....नहीं! हम इस प्रकार सावधानी पूर्वक मजबूती के साथ डाँट लगाए कि शीशी लुढ़क भी जाये तो भी अन्दर का माल (औषधि) ज्यों की त्यों सुरक्षित बना रहे। अर्थ यह हुआ कि दवाई से भी अधिक महत्त्व डाँट (ढक्कन) का है।

इसी प्रकार शिष्य में, गुरु महाराज, भगवान् बहुत माल भर देते हैं। लेकिन ऊपर से यदि डाँट नहीं लगाते हैं तो गड़बड़ हो जाता है। अतः डाँट लगाना आवश्यक है। लेकिन होशियारी की बात है। कहीं डाँट लगाते समय जरा भी चूक गए तो डाँट ही अन्दर चली जाती है (श्रोताओं में हँसी।) फिर निकालना बहुत मुश्किल हो जाता है। आप फिर दवाई निकालना चाहेंगे तो शीशी का कण्ठ छोटा होने के कारण बार-बार वह गले में फँस जाती है तो बाहर का बाहर और भीतर का भीतर ही रह जाता है।

एक बार अपने जीवन में एक घटना घटी थी, बिल्कुल भीतर डाँट चली गई थी, मैं बार-बार सुई के द्वारा थोड़ा ऊपर खिसकता था जिसके कारण उसके छिलके तो आने लगे छोटे-छोटे, लेकिन वह डाँट नहीं निकल रही थी। बहुत परिश्रम करने के उपरान्त डाँट निकाल पाए तो मैंने सोचा भैय्या! बड़ा कठिन काम है डाँट लगाने का। अब पुनः उसको कैसे लगाए? तो डाँट के ऊपर थोड़ा

सा कागज चिपका दिया दो तीन राउंड फिर धीरे से दबा दिया। किन्तु ऐसा नहीं दबाते कि डाँट और अंगूठा दोनों ही अन्दर चले जाये (श्रोता समुदाय में हँसी)

अत: बंधुओ समय आपका हो रहा है, मैं बस यही कहना चाहूँगा कि यदि शिष्य और शिशु या शीशी के द्वारा काम लेना चाहते हो, अनादिकाल से प्रवाह रूप से आई हुई परम्परा को चलाना चाहते हो तो ऐसे डाँट लगाओ कि वह बार-बार कहें कि और एक बार डाँट लगा दो और अपना और दूसरों का सभी का हित हो सके। हमें अपने अन्दर बैठे हुए जो क्रोध, मान, माया, लोभ रूपी शत्रु हैं उन्हें समाप्त करना है उन्हें अपनी आत्मा की सीमा से अनन्त काल के लिए बाहर भगाना है। यदि हम ऐसा करेंगे तब कहीं जाकर हमारी आत्मा सिद्धों के समान शुद्ध बन सकती है पवित्र बन सकती है और उस परम 'मार्दव धर्म' की शरण में जाकर ही यह आत्मा अनंत सुख का भाजन बन सकती है.... ।

गुरु और प्रभु श्रेष्ठ हैं

भारतीय साहित्य में लिखा मिलता है कि **''रेवा तटे तपः कुर्यात्''** इस पद की ओर मेरा ध्यान गया तथा अमरकंटक का ख्याल आ गया। यहाँ से निकली हुई नर्मदा नदी ही जैन ग्रन्थों में रेवा के नाम से आई है। जिसे कहीं-कहीं पर 'मैकल निम्न' भी कहा गया है, आम्रकूट पर्वत का भी उल्लेख आता है जैन ग्रन्थों में। इस नदी के तट पर मुनियों ने ध्यान लगाकर मुक्ति प्राप्त की है। इंदौर के पास ओंकारेश्वर और सिद्धवर कूट की संगम स्थली प्रसिद्ध है। अभी-अभी हम बिहार करते हुए आ रहे हैं। यहाँ का सुहाना शांत वातावरण और प्राकृतिक छटा देखकर सारी थकान दूर हो गई। आप सभी जानते हैं कि ठंड काफी पड़ रही है किन्तु अब इस **जनवरी की ठंड में स्व में ध्यान लगाकर तपस्या का सही आनंद लिया जायगा**। आसपास अंचल के लोगों का उत्साह और यहाँ के साधकों की सौहार्दमयी भावनाओं को देखकर ऐसा लगता है कि जैसे हम अपने ही स्थान पर आ गये हो। अभी-अभी एक साधक आद्यवक्ता ने कहा कि संसार में दो बातें श्रेष्ठ हैं, एक विद्या और दूसरी सागर, किन्तु जिनके पास दोनों हो उनका कहना ही क्या? सुनकर मैंने भी विचार किया और मेरी दृष्टि में इससे भी श्रेष्ठ दो बातें हैं इस दुनिया में-एक गुरु और दूसरे प्रभु। गुरु सामने है और प्रभु है अदृश्य। गुरु हमारे लिये अदृश्य प्रभु तक पहुँचाने के लिए मार्गदर्शाते हैं। आज संघ का आगमन ही हुआ है, समय कम है। इस सर्वोदय तीर्थ पर आकर हम यही भावना करते हैं कि सभी का कल्याण हो सभी का जीवन मंगलमय बनें।

'महावीर भगवान् की जय!'

गुरुवर आचार्य श्रीज्ञानसागरजी महाराज की जय!

❑ ❑ ❑

एकत्व भावना ही आनंद की जनक

धीरे-धीरे फैलती हुई यह बात 'भरत चक्रवर्ती' के कानों तक पहुँच गई कि चक्रवर्ती इतने बड़े वैभव संपत्ति रंगमहलों में रहकर कैसे धर्मध्यान कर पाता होगा। भगवान् की भक्ति करने की तो उसे फुर्सत ही नहीं मिलती होगी। सारी बात को सुन-समझकर चक्री ने उनमें से एक मुखिया को बुलाया और कहा कि तुम्हें हमारे महल में अन्दर घूमने जाना है और ध्यान रखना! कहाँ-कहाँ पर क्या-क्या है पूरा देखकर के आना है। जो आज्ञा कहकर वह जाने लगा-चक्रवर्ती बोला, इस तेल से भरे कटोरे को भी साथ में ले जाओ किन्तु इतना ख्याल रखना कि एक बूँद तेल भी न गिर पाये इसका अन्यथा ये तलवारधारी भी आपके साथ जा रहे हैं। शीघ्र ही पूरा महल घूमकर मेरे पास वापस आओ। चक्रवर्ती की शर्त और साथ में चलती तलवार देखकर उसके होश ही उड़ गये।

महलों में पूरा घूमकर वह वापस आ गया, पूछा! क्यों? क्या-क्या देखकर आये हो, कुछ बताओ। कटोरा नीचे रखते हुए उसने कहा राजन्! घूमा तो पूरा महल, पर देखा कुछ भी नहीं। हर समय तेल से भरे कटोरे पर ही ध्यान केन्द्रित रहा कि कहीं एकाध बूँद गिरी तो साथ में मौत ही चल रही है। राजन्! क्षमा करें मुझे सारी बात समझ में आ गई। बंधुओं! यह छोटी-सी कथा ही नहीं किन्तु एक ज्ञानी के जीवन की कथा है। जिसने इस संसार में मौत की अनिवार्यता समझ ली है फिर वह संसार की क्षणभंगुरता में रचता-पचता नहीं है। उसे सदा ही अपने कर्त्तव्य का ध्यान बना रहता है। यह उदाहरण भरत चक्रवर्ती के सम्बन्ध में दिया जाता है, भले ही उसका जीवन विरक्त नहीं था किन्तु तत्त्व ज्ञान से उनके जीवन में उदासीनता तो रही होगी। हमें भी जीवन मिला है, मन-वचन-काय की शक्तियाँ मिली है, इसका उपयोग हम कैसे करें, इतना ज्ञान होना जरूरी है। इनके उपयोग व दुरुपयोग पर ही हमारा जीवन पुण्य-पापमय बनता है। **वचन-काय को तो फिर भी नियंत्रित किया जा सकता है किन्तु मन की दशा बड़ी विचित्र है, इसे सम्हालना बहुत ही कठिन है। कठिन जरूर है पर असम्भव नहीं। अभ्यास और वैराग्य के बल पर इसे कंट्रोल में रखा जा सकता है।**

सारे धर्म त्याग पर ही टिके हुए हैं, राग की नींव पर कोई भी धर्म टिक नहीं सकता। हम इस रहस्य को समझे और राग की भूमिका से ऊपर उठने का प्रयास करें। मेरे तेरे पन का भाव और पर पदार्थों में ऐक्य बुद्धि ही आकुलता/अशांति की जनक है, संसार में दुख की कारण है। **एकत्व भावना सुख की मूल है, यही एक भावना ऐसी है जो विश्व में और आत्मा में शांति ला सकती है।** यह धर्म की ही बात नहीं किन्तु बाहरी व्यवहार जगत् में भी इसका बहुत महत्त्व है।

इस बाहरी एकता में भी विचारों की एकता अपने आपमें बहुत कुछ महत्त्व रखती है। यदि हमारे विचारों में एकता है तो हजारों व्यक्ति भी एक ही हैं, सुखी है। **विचारों की विविधता द्वन्द और वैमनस्यता की जनक है, दुख संघर्ष की मूल है**। जितने भी मत-मतान्तर बने हैं इस धरती पर वे सारे वैचारिक मतभेद के कारण ही बने हैं, किन्तु **सारे मत-मतान्तरों में समन्वय और समाधान देना जैन दर्शन की मुख्य विशेषता है।**

यह संसार बहुत बड़ा है, यहाँ पर सब कुछ है लेकिन हमें क्या करना है, और कैसे रहना है? यदि इतना याद रख लिया जाय तो अपना कल्याण हो सकता है। चक्रवर्ती का जीवन एक आदर्श श्रावक का जीवन था; जो सब कुछ करते हुए भी अपने धर्म-कर्त्तव्य को नहीं भूलता था। नवनिधियाँ, चौदहरत्न, ९६ हजार रानियाँ, अपार वैभव, सब कुछ रहते हुए भी भगवान् की भक्ति और विषयों में उदासीनता, बहुत दुर्लभ है इस तरह का जीवन पाना। चक्रवर्ती के सामने है ही क्या, आप लोगों के पास, फिर भी उसी में उलझे हुए हो। राम और रावण का इतिहास सभी जानते हैं दोनों में अन्तर इतना ही था कि रावण पर वस्तु पर भी दृष्टि रखता था जबकि राम अपनी वस्तु की सुरक्षा। रावण की यही

दृष्टि अशांति और संघर्ष का कारण बनी। समय आपका हो रहा है, हमें यही समझना है कि अपनी वस्तु क्या है और उसकी सुरक्षा हम कैसे करें ? जड़ पदार्थों के बीच रहकर भी हम चेतन आत्मतत्त्व को न भूलें। **हमारे पास विचारों में एकता और विशाल दृष्टिकोण हो तो आज भी वह राम राज्य आ सकता है,** फिर बाहरी अन्तर कोई ज्यादा महत्त्व नहीं रखेगा।

'महावीर भगवान् की जय!'

❑ ❑ ❑

लाघव बनकर ही राघव बनना संभव

धरती स्वर्ग से महान् है। स्वर्ग के देवगण भी माटी के इस जगत् में आने के लिये लालायित रहते हैं। माटी की महिमा महान् है तथा इसकी तुलना में स्वर्ण तुच्छ है। स्वर्ण मुकुट में माटी का तिलक लगाने से स्वर्ण की आभा में वृद्धि हो जाती है मिट्टी में एक ही बीज वपन करने से अनेक फल प्राप्त होते हैं जबकि स्वर्ण में यह गुण नहीं है। **'धरती' शब्द को विलोम करने से 'तीरध' शब्द बनता है। अर्थात् धरती ही तीर पर धरने। पहुँचाने वाली है यानी धरती में ही यह शक्ति है जो संसार के किनारे पहुँचा सकती है मोक्ष का मार्ग धरती से ही है स्वर्ग से नहीं**। परीक्षार्थी मुक्ति की परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाता है तो उसे मोक्ष मिल जाता है किन्तु पूरक आने पर स्वर्ग की प्राप्ति होती है। इस तरह यह कहा जा सकता है कि स्वर्ग की प्राप्ति अधर में लटकने के समान है।

सन्मार्ग की राह में त्रुटिहीन यात्रा से अंतिम लक्ष्य, मोक्ष पहुँच सकते हैं, किन्तु साधन में यदि कुछ त्रुटि हो तो यात्री स्वर्ग तक ही यात्रा कर पाता है, उसे मार्ग का विराम कह सकते हैं। जो विराम करे वह मोक्ष से वंचित रह जाता है। देवराज इन्द्र भी नर-नारायण की वंदना करते हैं। मैथिलीशरण गुप्तजी ने एक जगह लिखा है -

नारायण-नारायण धन्य है नर साधना।
इन्द्रपद ने की है जिसकी शुभ आराधना॥

धरती पर स्वर्ग लाने की कल्पना नहीं होना चाहिए क्योंकि धरती स्वर्ग से श्रेष्ठ है। हमारे संग्रह किये गये भण्डार में स्वर्ण नहीं किन्तु सुवर्ण होना चाहिए। उत्तम वर्ण। आचरण ही प्रभु को पा सकता है। आज पश्चिमी देशों में प्रभु की अपेक्षा मशीनों का ज्यादा महत्त्व है तथा कहा जा सकता है कि उत्पादन बढ़ रहा है जबकि यथार्थ में उत्पादन नहीं उत्पात बढ़ रहा है/असंतोष बढ़ रहा है। सोने के संसार में रहने वाले देवताओं की प्रबल इच्छा/धरती के जग में आने की होती है क्योंकि स्वर्ग अर्थात् सोना जड़ है। जबकि धरती जीव/जागृत है। इसीलिए **धरती के पूतों को चाहिए कि वे मिट्टी को माथे पर लगाये, स्वर्ण को नहीं।**

परमात्मा बनने की शक्ति प्रत्येक आत्मा में है जीवन-मरण की पहेली का ज्ञान होते ही प्रभु का स्मरण होता है। प्रभु का स्मरण करने वाले भक्त का जीवन धन्य हो जाता है। प्रत्येक आत्मा भगवान् आदिनाथ भगवान् महावीर या प्रभु राम बन सकती है। लघुत्व से गुरुत्व की यात्रा ही रघुपति राघव बनाती है, यह ज्ञान प्रभु भक्ति में लीन होने पर ही होता है। हमें यह भी जान लेना आवश्यक होता है कि आप जो भक्ति/उपासना कर रहे हैं, वह सही दिशा में है अथवा नहीं। यह निश्चित है कि भक्ति से मुक्ति मिलती है किन्तु उपासना सही हो तब। हमारी आकांक्षा युक्त भक्ति तथा बिना विवेक की माँग कैसे अभिशाप बन जाती है, इस बात को समझने के लिये आपके सामने एक उदाहरण रख रहा हूँ। एक गृहस्थ व्यक्ति लम्बी अवधि से भक्ति कर रहा था किन्तु उसे अपेक्षित फल नहीं मिल रहा था। वह भक्त भगवान् के पास पहुँचा तथा अपनी व्यथा व्यक्त की। भगवान् ने उसे एक वर माँगने की आज्ञा दी उसने वरदान माँगा कि वह जिसे स्पर्श करे वह स्वर्ण बन जाये। वरदान रूप आशीर्वाद के पश्चात् भक्त का सब कुछ स्पर्श करने से स्वर्ण बन जाता है। यहाँ तक कि घर, सामान, पत्नी आदि भी। दुख से कातर हो वह प्रभु से पुनः पूर्वस्थिति में आने की अनुनय करता है, किसी भी तरह से वह उस दुख से मुक्ति पा लेता है एवं संतोषी बन जाता है। इस प्रकार यह जानना जरूरी है कि लोभ-अविवेक और आवश्यकता से अधिक बुद्धि भी हानिकारक होती है। प्रत्येक मनुष्य को अपने विवेक के अनुसार ही राह बनाना चाहिए। भक्ति का लक्ष्य भी सही रखना चाहिए। तभी सही फल मिलता है। अन्यथा वह इसी भक्त की तरह पछताने पर मजबूर हो जाता है।

मंत्र जाप की परिगणना के लिये हमें माला की आवश्यकता होती है। जाप की परिगणना के लिये सहायक चाहिए जबकि पैसे गिनने के लिये किसी सहायक की आपको आवश्यकता नहीं होती बल्कि अंगुलियाँ त्वरित गति से नोट की परिगणना करती है। इसी प्रकार आपके पास रुपये-पैसे आते हैं तो निद्रा दूर रहती है किन्तु जैसे ही प्रभु को स्मरण करने के लिये माला हाथ में आती है निद्रा देवी आ जाती है। पर निन्दा करते समय मनुष्य बढ़ चढ़कर वार्ता करता है; किन्तु स्वयं कि आलोचना सहन नहीं कर सकता। स्पष्ट है कि आपको प्रभु की नहीं, नोटों की चाहत ज्यादा है। इसीलिए प्रभु तो मिलते नहीं तथा नोट ही अंगुलियों की कसरत कराते रहते हैं। इसी प्रकार करते-करते यह जीवन निरर्थक ही बीत जाता है। **बन्धुओं, हमारी अनाकांक्ष भक्ति का ही यह परिणाम है कि युग निर्मल है तथा भगवान् और भक्त के बीच यह सम्बन्ध टिका हुआ है**। हमें अपने इस जीवन में माटी के मार्ग की कीमत जानकर मोक्ष प्राप्ति का लक्ष्य बनाना चाहिए, स्वर्णमय स्वर्ग का नहीं।

❑ ❑ ❑

घट को अमृत-घट बनाओ

सरिता के गहरे स्थल पर जल ठहरा हुआ सा लगता है, किन्तु यह भ्रांति है वस्तुतः प्रवाह, ठहरा हुआ नहीं है। इसी प्रकार मानव जीवन का प्रवाह भी सदा गतिमान रहता है उसमें ठहराव का आभास भ्रांति मात्र है। **नगर-नगर, डगर-डगर चलकर पवित्र पूर्वजों ने सन्मार्ग बनाया था, उनके चरण चिह्नों का अनुसरण कर यात्री को सार्थक यात्रा करना श्रेयस्कर है**। वर्षों की साधना के पश्चात् अतीत में पूर्वजों ने रास्ता बनाया था। भविष्य की चिंता समाप्त करने के लिये अतीत का ज्ञान पर्याप्त है। हमें अतीत ज्ञात है किन्तु भविष्य अज्ञात है।

नदी बहती जाती है किन्तु उसके तट पर बने घाट ज्यों के त्यों रहते हैं। ये घाट सरिता के समीप होकर भी प्यासे हैं क्योंकि घाट स्थिर है, यह स्थिरता ही इसकी अतृप्तता का कारण है। इसी तरह ठहरा हुआ मनुष्य भी प्यासा रहता है, घाट पर आकर भी प्यासा। प्यास बुझाने के लिये प्राणी घट-घट की यात्रा करता है। किन्तु अन्तर्घट की बात नहीं करता। **''प्राण जाय पर प्रण न जाई, रघुकुल रीति सदा चली आई''**। इस तरह का प्रण अन्तर्घटना से मिलता है। जिसके घट में ऐसे घटक का निर्माण हुआ वह अमृत घट बन गया। नहीं तो घाट पर बैठा फिर भी प्यासा। नर्मदा कहे जब प्यास नहीं बुझा सकता तो घाट पर आया क्यों?

घाट नर्मदा की रक्षा के लिए नहीं बनाया गया। अरे, वह तो भूले भटके राही की प्यास बुझाने के लिये बनाया गया है। किन्तु प्यास बुझे तो कैसे? वह तो घाट पर आकर खड़ा है, घट भरने के लिये। नर्मदा भरी है, भरी रहेगी। फिर भी घाट पर जाकर घट नहीं भरे तो, नर्मदा क्या करें? एक बार झुक जा, अपना घट भर ले तो यह घट अमृत घट बन जायेगा प्यास बुझ जायेगी। **अपनी यात्रा पर बढ़ो। रुको नहीं, रुकना जीवन का उद्देश्य नहीं और आप रुक सकते भी नहीं। चलना तो है ही, संकल्प पूर्वक चलो जीवन प्रशस्त होगा। मोक्ष मिलेगा**। रास्ता भी गायब हो जाता है जहाँ मंजिल आ जाती है। मोड़ पर अथवा चौराहे पर रास्ता गायब नहीं होता। जिसने मार्ग पहचान लिया वह अविरल बढ़ता ही रहता है। आवश्यकता है केवल मार्ग देखने की, और उसे देखने के लिये कोई अलग से प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं। आँख खुलते ही मार्ग दिखने लगता है।

बंधुओं! यहाँ पर घाट भी है और प्याऊ भी लगा है किन्तु पीने की तो सोचो। पनघट पर आकर प्यासे हो। पनघट देखकर भीतर का घट बाध्य करता है। पनघट के आसपास हरियाली रहती है तथा ज्ञात होता है कि यहाँ पानी मिलेगा। **भगवान् को हम एक प्रकार से नदी का प्रवाह मान सकते हैं। घाट को शास्त्र के रूप में तथा भूले भटके यात्री के लिये गुरु प्याऊ के समान है**। नदी का प्रवाह तो बोलेगा नहीं, शास्त्र रूपी घाट भी नहीं बोलता, किन्तु प्याऊ के रूप में बैठे हुये गुरु जीवंत है वह दिग्भ्रमित राही की प्यास बुझाने वाले हैं इसीलिये वे गोविंद से भी श्रेष्ठ हैं।

भारतीय संस्कृति में चरणों का महत्त्व है मस्तक का नहीं। यह मस्तक चरणों में झुकाने के लिये है। तथा आस्था की विद्यमानता हृदय में है। मस्तिष्क में शंकायें, आशंकायें, जिज्ञासायें रहती हैं तथा हृदय में चरण के लिये आस्था। **हृदय साफ रहने पर विज्ञान की तो क्या ''केवल ज्ञान'' की भी प्राप्ति हो सकती है**। राग-द्वेष रहित गुरु के द्वारा ज्ञान प्राप्त कर प्यास बुझाओ। ऐसी आत्मा संसार को भी तृप्त करा सकती है। किन्तु भौतिकता से नहीं। भौतिक प्यास बुझाने से स्थायी तृप्ति नहीं मिलती है। घाट इसीलिये प्यासा है आज तक क्योंकि वह प्रवाह को अपने अन्दर नहीं आने देता, अडिग है स्थिर है झुकता नहीं। नर्मदा का प्रवाह आगे बढ़ जाता है, घाट प्यासा रह जाता है। इन सबमें महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि इस सबके पहले हमारे अन्दर प्यास बुझाने की रुचि/भावना होनी चाहिए। यदि अन्दर प्यास न हो तो वो पानी पीना उसी तरह हानिकारक हो जाता है जिस प्रकार बिना भूख के किया गया भोजन, इससे रोग की वृद्धि ही होती है। वस्तुतः हमें इन सब बातों का ज्ञान होना चाहिए। यह ज्ञान कहीं बाहर से नहीं आता, यह तो आत्मा का स्वभाव है। जिसकी पहिचान/अनुभूति इन हरे भरे जंगलों में आराधना कर रहे संतों से हो जाती है। **संत के सान्निध्य में सूखे वृक्ष भी हरे भरे हो जाते हैं, ठीक वैसे ही जैसे पनघट के समीप हरियाली विद्यमान रहती है**।

संकल्प और साधना का बहुत महत्त्व है बन्धुओं! यह बात हम सभ्यता से दूर कहे जाने वाले आदिवासियों से सीख सकते हैं। वह जंगलों में रहते हैं। जंगली जानवरों, हिंसक पशु, सिंह आदि के साथ उनका मेल-मिलाप रहता है। उनके पास तरह-तरह की साधनायें रहती हैं, मंत्र-तंत्र की शक्ति रहती है। जिनके बल पर वह उन हिंसक पशुओं को भी नियंत्रित करते हैं। साधना के बल पर उनकी मनोकामनायें पूर्ण होती हैं। और उनकी दृढ़ता तो देखिये कि वह सभ्य समाज द्वारा प्रदत्त प्रबंधों का भी प्रयोग नहीं करना चाहते। यह सब साधना की ओर लक्ष्य रखने से होता है।

अंत में आप सभी से यही कहना चाहूँगा कि अन्तर्घट की यात्रा पूर्ण होते ही, घट अमृत से भर जाता है। इससे अनन्तकालीन रोग भी चला जाता है तथा स्व-पर कल्याण होता है। इसी में जीवन की सार्थकता है। जिस प्रकार सरिता का अंतिम लक्ष्य सागर है उसी प्रकार जीव का अंतिम लक्ष्य मोक्ष है आवश्यकता है केवल उस ओर बढ़ने की।

❑ ❑ ❑

पुरुषार्थ के बिना आत्मा का कल्याण नहीं

भ्रमित पथिक के लिये महान् जीवों का इतिहास 'मार्ग सूचक' प्रतीक की भांति है। **अतीत पर दृष्टिपात करने से सही रास्ता मिलता है। सही रास्ते पर की गयी यात्रा से मोक्ष की प्राप्ति होती है**। किन्तु संसारी प्राणी की आँखों पर अज्ञानता की पट्टी बंधी हुई है। जिससे यह मनुष्य कोल्हू के बैल की भांति यात्रा तो करता है पर मंजिल की प्राप्ति नहीं हो पाती।

यात्रा आरम्भ करने के पश्चात् रुकना ठीक नहीं, नर्मदा नदी की तरह। नर्मदा का स्रोत अमरकंटक में है। आगे बढ़ने पर अनेक बाधाओं का सामना नर्मदा को करना पड़ा। फिर भी बीच में आये बाधक पहाड़ों को काटते हुए वह बढ़ती ही गई मंजिल की ओर। **पहाड़ को काटा, धार बना दी पत्थरों में धारा ने। इससे सिद्ध होता है कि पुरुषार्थ किये बिना आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता**। बाधा आने पर नर्मदा, अमरकंटक वापस नहीं आयी। खंभात की खाड़ी तक यात्रा कर सागर में जा मिली। यात्रा पूर्ण होते ही निर्वाण प्राप्त हो गया। मध्य में रुकना नर्मदा ने नहीं स्वीकारा। बाधाएँ रोक नहीं पायी, धारा को। वापस भी नहीं कर पायी तभी तो सागर मिला। भगवान् 'आदिनाथ' की दीर्घकालीन यात्रा भी इसी तरह पूरी हुई।

आज विज्ञान का युग है हमने उद्यम किया नहीं, सफलता कैसे मिले? उद्यम करने पर ही सफलता मिलती है। नदी की परिक्रमा करने वालों को ज्ञात होता है कि मुक्ति कैसे मिलती है। आदि, मध्य, अंत की यात्रा परिक्रमा है। कितना परिश्रम करने के पश्चात् सफलता प्राप्त होती है। लक्ष्य को पाने के लिये संकल्पित नर्मदा बीच में रुकी नहीं सामने पहाड़ आये, चट्टानें आयीं कई तरह की बाधायें आई किन्तु उसने सभी बाधाओं से कहा हटो, नहीं तो कटो, अब यह धारा रुकेगी नहीं। आदिनाथ भगवान् से लेकर भगवान् महावीर तक धारा की यह परम्परा चली आ रही है। हम पुरुषार्थी बनें, प्रयास करें किन्तु यह भी ज्ञात रहे कि सही दिशा में किया गया प्रयास ही प्रयास है। गलत मार्ग पर चलना आभास मात्र है। आये गये भटकन जारी है कोल्हू के बैल की तरह। आँखों पर अज्ञानता की पट्टी बांधे यात्रा जारी है। पट्टी खुलते ही देखा वहीं के वहीं खड़े हैं दिन भर चलकर भी। तेली, तेल निकाल लेता है तथा कोल्हू का बैल रोता है कि करम फूट गये। अरे रास्ता तय करने के पूर्व यह तय कर लो कि जाना किस ओर है? दिशा का पता नहीं, यात्रा आरम्भ कर दी कोल्हू के बैल की तरह। क्या करें, आँख पर तो पट्टी बंधी है अज्ञानता की। पथ का ज्ञान कर लो, परम पद प्राप्त कर चुके महापुरुषों से। उद्गम अलग, तट अलग, अंत समर्पण है। **लम्बी यात्रा के पश्चात् नर्मदा नदी सागर के सामने अपना समर्पण कर देती है अब नर्मदा, नर्मदा नहीं रही वह सागर में समा गई, यही उसका अपने आराध्य/गन्तव्य के प्रति समर्पण है**।

इस समर्पण में हमारा अहंकार बाधक बनता है लोक जीवन में यह कई-कई रूपों में प्रकट होता रहता है। कोई काम किया तथा नाम अंकित कर दिया। अगले जन्म में पड़ोस में जन्म लिया तथा उस नाम को मिटा दिया। ज्ञात नहीं है स्वयं का नाम स्वयं मिटा दिया। आप अपने लिये ही खतरा बन जाते हैं। ठीक उसी प्रकार जैसे एक हाथ में आप दीया लिये हैं तथा हवा के झोंके से बचाने के लिये दूसरे हाथ की ओटकर लेते हैं फिर भी कभी-कभी अपने श्वांसों से दीया बुझ जाता है। बाहरी बाधा से तो दीया की रक्षा कर ली किन्तु स्वयं की श्वांस ने बुझा दिया। आपने ही जलाया, आपने ही बुझा दिया। यह भी क्या जीवन है?

क्या करना है? किस ओर से प्रारम्भ करना है यह महापुरुषों की यात्रा से ज्ञात हो जाता है। 'आदिनाथ भगवान्' निर्वाण के बारे में सोच रहे हैं। हम भी भगवान् बन सकते हैं हम से तात्पर्य समान गुणधर्म से हैं। एक भाव होने पर ही हम हैं। अपने भावों में 'हम' नहीं 'तुम' हो जाता है। **जो धारा चट्टानों से कट जाती है वह अनेक हो जाती है किन्तु जो चट्टानों को काट देती है वह एक रहती है**। साधना के क्षेत्र में हमेशा मैदान मिले ऐसा नहीं है। ऊबड़-खाबड़ रास्ते, दरिया, रेतिला, भूमि सभी मिलती है। फिर जैसा रास्ता मिला वैसा ही बहना धारा का स्वभाव है, किन्तु उसे बहना है। नर्मदा का जल मीठा है इसीलिये कि ठहरा नहीं है, बहता है, हल्का भी है, हल्का होने से जीवन मधुर होता है तथा भीतरी रूप झलकता है अर्थात् प्रकट होता है।

गंगा आकाश से भले ही उतरी मानी जाती है किन्तु उसका प्रवाह धरती पर ही है। स्वर्ग में नहीं, गंगा जल पृथ्वी पर है। धरती पर ही तीर्थ है स्वर्ग में तीर्थ नहीं। गंगा की यात्रा पूर्ण होते ही समुद्र से मिल जाती है। जीवन, धारा के समान प्रवाहमय है। बहना रुक जायेगा तो पानी सड़ जायेगा। नहीं तो बहते पानी में सड़ा पानी भी मिलने पर वह भी स्वच्छ हो जाता है। इसलिये रुकना हमारा धर्म नहीं। 'रमता जोगी बहता पानी' तभी स्वच्छ है, रुके हुये भी रुके नहीं। यहाँ-वहाँ कितना रुकना है। रुकने के लिये तो मोह ही सबसे बड़ी बाधा है। किन्तु अब मोह नहीं है तो रुकने का प्रश्न ही नहीं। रुकने का अर्थ है आकर्षण। किसका आकर्षण? स्वयं का? जड़ का ? चेतन का?

फल की प्राप्ति का आधार स्वयं के विचार हैं। शुद्ध अवस्था के अनुभव के बिना शांति मिलने वाली नहीं है। शास्त्र के माध्यम से इसका ज्ञान मिलता है। पूर्व में जो कहा गया वही पुराण है। आज हमारा पुराण से संबंध छूटता जा रहा है। धन से संबंध स्थापित होता जा रहा है। मूल्यों में कमी आ रही है। राष्ट्र की मुद्रा का मूल्य कम होने से राष्ट्र का सिर झुक जाता है। किन्तु मूल्य बढ़ने से विश्व में नाम होगा। **कृषि प्रधान देश होते हुए भी गेहूँ बाहर से आ रहा है। यह इस देश की स्थिति है। इससे बड़ी विडम्बना और क्या होगी इस देश की**।

महापुरुषों द्वारा दिया हुआ यह दीया बुझने को है, इसे बचालो। वह बुझ रहा है स्वयं की दीर्घ श्वांस से। बिजली दीया का विकल्प नहीं। बिजली तो चंचला है, चपला है, क्षण आयु की है। विज्ञान स्वाभाविक ज्ञान से दूर है। दीपक को देखने से स्वभाव का ज्ञान होता है। दीया की लौ ऊर्ध्वगामी होती है, किन्तु विद्युत की रोशनी ऊर्ध्वगामी नहीं है। ऊर्ध्वगामी लौ नहीं तो लौ (लगन) नहीं। यह ध्यान रखों! पुरुषार्थ के अभाव में लक्ष्य पूर्ण नहीं हो सकता। लक्ष्यहीन अपने आपको हम कहाँ कैसे ले जा रहे यह ज्ञात ही नहीं। **दूसरों को चलाना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं जितना स्वयं को सही दिशा में चलाना**। आदिनाथ और महावीर भगवान् के इतिहास से ज्ञात होता है कि हमें किस ओर जाना है। उन्हीं प्रतीक संकेतों को जानकर यदि हम सम्यक् पुरुषार्थ करते हैं तो भगवान् के समान हमारा भी कल्याण सुनिश्चित है। ❑ ❑ ❑

मोक्षमार्ग, वायुपथ की तरह दिखता नहीं

वायुयान निकलने के बाद जैसे आकाश में मार्ग का कोई चिह्न दिखायी नहीं देता, फिर भी वायु मार्ग है, वायुपथ है। इसी तरह मोक्ष का भी मार्ग है। भव्य जीवों ने इस मार्ग से यात्रा की है, किन्तु वायु मार्ग की तरह वह दिखता नहीं है। वायुयान को सही दिशा का ज्ञान दिशासूचक यंत्र से होता है क्योंकि वायुमार्ग का चिह्न तो दिखता नहीं इसी प्रकार-**अदृश्य मोक्षमार्ग की दिशा का ज्ञान दिशासूचक यंत्र रूपी गुरु से होता है**। दिशा सूचक यंत्र का काम है दिशा का बोध कराना। किस दिशा में जाना है यह निर्णय यात्री पर निर्भर है, गुरु द्वारा बतायी गई सही दिशा पर चलेंगे तो यात्रा सफल होगी अन्यथा- मोक्षमार्ग के प्रथम यात्री भगवान् ऋषभनाथ थे; जिन्होंने विश्व को न केवल राह दिखायी वरन् उस पर यात्रा भी की। यात्रा कठिन थी। राजप्रासाद को त्याग कर कंकड़, पत्थर पर नग्न पद यात्रा की। कोई यदि पूछता है कि कहाँ जा रहे हो, तो उत्तर देने का भी समय नहीं था। एकदम मौन निरन्तर यात्रा जारी रही।

युग के आदि में रास्ता नहीं था, आस्था भी नहीं भोग विलास रूपी अंधकार व्याप्त था। आदिनाथ भगवान् ने यात्रा आरंभ की तथा बताया कि भोग से भरपूर जीवन ठीक नहीं। उन्होंने पहले उपदेश धर्मोपदेश नहीं दिया पहले यात्रा की। कोई साथ चले उन्होंने इसकी भी आवश्यकता नहीं समझी। मखमल बिछे राजदरबार को त्यागकर कंकड़, कंटक के पथ पर युग के आदि में आदिनाथ के पैर पड़े। भगवान् से पहले गुरु चलते हैं। गुरु पथ पहले बनाते हैं फिर बताते हैं। गति, पश्चात् प्रगति, फिर उन्नति। उन्नति का अर्थ है ऊपर चढ़ना। ऊपर चढ़े बिना उन्नति ही नहीं। वायुमार्ग शून्य आकाश में चिह्न रहित है। मोक्षमार्ग पर चलने के लिये चिह्न नहीं देखना, चलो तो मार्ग क्या मोक्ष भी मिलेगा। मार्ग महत्त्वपूर्ण है मंजिल नहीं। मोक्ष मार्ग पर चलना सरल नहीं भावों का खेल है। **इस युग में सर्वप्रथम मार्ग बनाया तथा बताया आदिनाथ प्रभु ने किन्तु उनसे पहले मोक्ष पाया 'अनंतवीर्य' तथा 'बाहुबली' ने। मोक्ष प्राप्ति में भगवान् आदिनाथ पीछे हैं किन्तु मुक्ति का मार्ग खोलने वाले वह प्रथम भव्य जीव है**। केवलज्ञान भी सर्वप्रथम उन्हें ही प्राप्त हुआ। भगवान् आदिनाथ आविष्कारक हैं, उनके द्वारा निशान पाकर अनंतवीर्य तथा बाहुबली ने पहले यात्रा पूरी कर ली, यह बात पृथक् है।

बंधुओं! हमें साधना पथ पर बढ़ना चाहिए। यह पार्थिव जीवन भी क्या जीवन है। जीना तो जीने के समान है। जीने का तात्पर्य सीढ़ी जो चढ़ने के लिये है अन्यथा जी....ना। जीवन वही जो जीना चढ़ गये। हम भी आज के इस पवित्र प्रसंग पर अपने जीवन को समझे और प्रभु के पथ पर बढ़ने का प्रयत्न करें। हमें भी एक दिन वही पद मिलेगा, जो आदिनाथ भगवान् ने प्राप्त किया है।

'आदिनाथ भगवान् की जय'

❑ ❑ ❑

सार-सार को गहि रहे

अभी-अभी आद्य वक्ता ने कहा कि "**सार-सार को गहि रहे, थोथा देइ उड़ाय**" यह पंक्ति मुझे बहुत अच्छी लगी किन्तु कहना जितना सरल है, ग्रहण करना उतना ही कठिन । सार को गहने की सीख सूपा से सीखो। सूपा में सार बचता है तथा असार बाहर हो जाता है किन्तु आज तो चलनी का युग है जिसमें सार नीचे गिर जाता है तथा असार ऊपर बचा रहता है। भूसा तथा कचरा मिश्रित धान से सार रूपी धान को पृथक् करने की क्रिया सूप से होती है, किन्तु यह स्वतः नहीं होती। सार से असार अलग करने के लिए सूप को फटकार देना होता है तथा इस क्रिया के लिए दृष्टि सजग रखकर यह आवश्यक है कि उचित फटकार दी जाये अन्यथा सार-असार पृथकीकरण संभव नहीं। सार-सार को गहने की उक्ति के दर्शन सूप से किए जा सकते हैं, ऐसे ही जीवन में सार-सार को गहते हुए असार को उड़ा देने से ही मुक्ति मिलती है। इसके लिए सजगता की, जागृति की, आवश्यकता है किन्तु हमने आज तक यही नहीं किया। फटकार भी दिया तो दूसरे को नुकसान पहुँचाने के लिए तथा लाड़-प्यार भी दिया तो ऐसा दिया कि वह सब कुछ भूलकर उठ ही न सके। फटकार की आवश्यकता इसलिए कि जागृति आये तथा प्यार ऐसा न हो कि विकास अवरुद्ध हो जाए। दोनों को चाहिए मगर होश के साथ। आपके पास जोश है, रोष है, दोष है, कोष है पर होश नहीं है।

सूपा को होश से फटकारो तभी वजनदार धान बचेगी, नहीं तो वो असार के साथ बाहर चली जायेगी। कैरम खेलने वाला जानता है कि गोट में कितना कट मारा जाये कि गोट तो पाकेट में चली जाये साथ ही अपनी अन्य गोट का मार्ग भी प्रशस्त करे। कट मारने के लिए आवश्यकता के अनुरूप ही तर्जनी को इशारा दिया जाता है। **होश के साथ कट मारने पर ही मार्ग प्रशस्त होता है तथा गोट पाकेट में जाती है। हम असफल इसलिए हुए हैं कि हमने आज तक होश के साथ कट नहीं मारा।**

गुरुओं ने हमें ज्ञान दिया किन्तु चक्षु तथा कर्ण तो कार्य ही नहीं कर रहे हमारे इसीलिये हम आत्मिक सुख से वंचित हैं। वातावरण धूमिल हो रहा तथा धूल कणों के कारण स्वयं को ही नहीं पहचान पा रहे। आइना देख लो स्वयं को जान लो, किन्तु स्मरण रहे कि आइना भले ही छोटा हो किन्तु हो साफ-सुथरा। धूमिल होगा तो देख ही नहीं सकते। दर्पण स्वभाव से साफ-सुथरा है किन्तु स्वयं के हाथों के स्पर्श से धूमिल हो जाता है तथा उसमें ऐसे तत्त्व चिपक जाते हैं, जिससे न तो आइना साफ दिखता है न स्वयं देखने वाला साफ दिखता है। आदिकाल में आदिनाथ अंत में महावीर तथा बीच में राम, हनुमान रूपी आइने में हमने स्वयं को नहीं देखा। आइना चाहिए, किन्तु कैसा? सबको ऐनक लगाते देख अज्ञानी ने भी ऐनक लगा लिया, पढ़ने में बहुत साफ दिखता है, किसी ने बताया कि केवल फ्रेम है इसमें काँच नहीं लगा। कैसे कहते हैं आप? ऐनक लगाया साफ दिखने लगा है। काँच से सुविधा मिलती है किन्तु वह तो पढ़ा-लिखा था ही नहीं और ज्ञात ही नहीं क्योंकि दृष्टि ही नहीं केवल

फ्रेम लगाकर भ्रमित है वह, कि साफ दिख रहा है। दृष्टि हो तो ज्ञात हो कि काँच तो लगा ही नहीं था, फिर सुविधा कैसी? वह काँच क्या दिखायेगा जब तक आँख ही न हो। केवल भ्रम है, अतः कह सकते हैं कि अंधत्व अभिशाप है।

जानने का प्रयास ही जागृति है, जागृति है तो जगत् है। जब जागृति नहीं, होश ही नहीं, कि क्या मूल्यवान है? क्या सार है? क्या असार है? फिर कैसे गहे सार-सार? सार का ज्ञान बहुत गूढ़ है इसकी बातें तो अनेक विद्वान् करते हैं किन्तु गहते नहीं। गहने के लिए दृष्टि चाहिए, समझ भी। यथा ''तुम कैसे पागल हो'' वाक्य है दूसरी तरह देखे तो ''तुम कैसे पाग लहो'' पाग का अर्थ रास्ता सार तथा व्यंजन भी होता है। **सार को चाहते हो पाग को चाहते हो तो दृष्टि साफ करो, तभी ''पाग लहो'' अन्यथा पागल हो**। अनेक जीव पाग लहते हुए, रास्ता प्राप्त कर चले गए किन्तु हम पागल बैठे हैं। जहाँ चाह है वहाँ राह है। **इच्छाशक्ति दृढ़ हो तो रास्ता भी है तथा मंजिल भी**। राह नहीं तो राहत भी नहीं। अकाल पड़ता है तो राहत की माँग की जाती है, अकाल से निपटने की राह तलाशी जाती है। राह मिली, राहत मिली। सुबह उठकर क्या-क्या करना है संकल्प ले लिया, किन्तु काम क्या कर रहे हो मात्र संकल्प तथा विकल्प। चलना किस दिशा में है, कौन-सी राह चलना है, जिसमें राहत मिले इतना विचार ही नहीं। सही राह की परवाह नहीं। न परवाह, न राह, जोश नहीं, होश नहीं, कोष है मात्र? कितना मूल्य है? यह भी होश नहीं। बैंक में कैशियर के पास कोष है, किन्तु वह उसका मालिक नहीं, किन्तु कोष है। जिस दिन अपने आपको मालिक समझा नौकरी गयी। ऐसा ही हम अनन्त ज्ञान के भंडार हैं, सूर्य पुंज है, चंद्रकांति है समझ लिया। क्यों समझा? क्योंकि सब कहते है, कौन कहता है? दूसरे कहते हैं। स्वयं क्या कहते हो?

सब कहते हैं आग के लिए हवा करो, किन्तु होश नहीं हवा की आवश्यकता आग को उदीप्त करने के लिए है। सुलगाते समय तो हवा न आए इसके लिए ओट की जाती है। (स्मरण रहे सुलगाते समय हवा की तो आग कभी सुलगेगी नहीं) किन्तु हवा से अग्नि उदीप्त की जाती है, ऐसी ही हवा गुरु की वाणी है ज्ञान उदीप्ति के लिए। बुद्धि का उद्घाटन नहीं प्रयोग पुरुषार्थ नहीं तो फिर पागल हो न कि पाग लहो। अस्सी की उमर होने को आयी होश नहीं आया। जिंदगी ढलान पर है। समय कम है क्योंकि दिन ढलने को है। सूप पर ऐसी फटकार दो कि धान बची रहे भूसा उड़ जाये, असार उड़ा दो। चलनी में सार नहीं रहता वह तो नीचे गिर जाता है। चलनी के स्वभाव के श्रोताओं सावधान रहो, नहीं तो सार गिर जायेगा असार रह जायेगा। तात्पर्य यह है कि आत्मा को मत फटकायें। पाप को बुरे भावों को फटकायें। स्वभाव से प्यार करो। **क्रोध, मान, माया, मोह, ईर्ष्या आदि आत्मा का स्वभाव नहीं है, इन्हें फटकारों। यही नींव हैं, पृष्ठभूमि है, साधना है**। शून्यमय जीवन को देखकर गुरुओं को करुणा आ जाती है, जैसे कि बच्चे में जब तक चलने-फिरने के लक्षण न दिखें, माता-पिता सोचते हैं

कि चलेगा कि नहीं, सुनने के लक्षण नहीं दिखे तो सोचते हैं बहरा तो नहीं तथा जब तक बोले नहीं तो सोचते हैं कि गूंगा तो नहीं तथा देखने के लक्षण नहीं दिखने पर सोचते हैं कि अंधा तो नहीं- व्याकुल हो जाते हैं, ऐसे ही गुरु करुणा से भर जाते हैं। गुरु सोचते हैं कि यह अपना हित चाहता है कि नहीं, ठीक उस बालक की तरह। वात्सल्य उमड़ आता है, माता-पिता के समान गुरु चिंतित हो जाते हैं। स्व हित के बिना विश्व हित संभव नहीं। कैसे करेंगे विश्व हित? होश के लिए स्वयं को उद्घाटित करना होता है, वरना बिना काँच का चश्मा लगा है, भले कहें बहुत अच्छा दिखता है। ऐसी स्थिति में युग-युग बीत जायेंगे पर परिवर्तन नहीं होने वाला। इसीलिए आइना साफ हो, भले ही वह छोटा हो। याद रखो, अंधा दर्पण नहीं देख सकता जब तक प्रकाश का अवलोकन न हो ।

"मैं हूँ, मैं हूँ" बार-बार यह कहने वाला व्यक्ति अस्थिर है क्योंकि यदि हो तो कहने की आवश्यकता क्या है। कहीं न कहीं कोई कमी जरूर है। बंधुओं! हमें चालनी के समान नहीं बनना। सूप जैसा बनकर फटकारो किन्तु होश के साथ। रोष उस पर करो जो दुख देता है। क्रोध को जान लो उस पर रोष करो क्योंकि वह दुख देता है। **अंधकार कितना ही घना क्यों न हो उसे एक छोटे से दीपक का प्रकाश भी दूर कर देता है। अज्ञानता का अंधकार कभी टिक नहीं सकता ज्ञान दीप के सम्मुख**। क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह रूपी चोर नहीं आ सकते यदि होश है ज्ञान दीप है अपने पास तो। एक बार भीतरी भावों को पहचान लो रास्ता अपने आप दिखने लगेगा। स्वरूप का बोध होते ही हमें राहत मिलती है। **हम भी भगवान् बन सकते हैं बस शक्ति के उद्घाटन की आवश्यकता है**। चाहते हुए भी अभी तक यह शक्ति क्यों नहीं उद्घाटित हुई इस पर ध्यान देना जरूरी है। परखने वाले को परखो और पर को खो दो। **अपने आप में तत्पर हो जाओ इसी में सार है। "ब्रह्म में लीन" कहना आसान है पर होना नहीं किन्तु होने में आनंद है कहने में नहीं**।

'महावीर भगवान् की जय!'

❑ ❑ ❑

वर्तमान में जीने वाला सुखी

कल कभी आता नहीं, कल की आशा व्यर्थ है। जीवन एक यात्रा है तथा यह लोक कर्मभूमि है। भोगों में रच-पच कर प्राणी लगातार हानि उठा रहा है तथा अनुचित अध्यवसाय का फल प्राप्त कर रहा है। आत्मा का स्वभाव जानना है तथा सुव्यवस्थित जानना ही विज्ञान है।

भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में जानने के भिन्न-भिन्न रूप हैं। जानना मूल स्वभाव है। आत्मा के क्षेत्र में जानने को स्वाध्याय कहा जाता है। **सही दिशा में ज्ञान की तरफ बढ़ने से, सही अध्यवसाय होता है। विफलता हाथ लगने से मनुष्य निराश हो जाता है जबकि विश्वास से ओत-प्रोत चींटी भी पर्वत पर चढ़ जाती है**। ऊँची दीवार पर चढ़ने का यत्न करते हुए वह बार-बार गिरती है फिर भी

प्रयास कर अंत में सफल हो जाती है। चींटी अपनी शक्ति उद्‌घाटित कर चढ़ने का तब तक प्रयास करती है जब तक सफलता न मिल जाये, यही है चरैवेति-चरैवेति। जब विश्वास नहीं तो प्रयास नहीं, प्रयास नहीं तो सफलता भी नहीं, विफलता है तो निराशा है। प्रमुख है विश्वास जो सफलता की नींव है।

प्रत्येक मनुष्य की अपनी यात्रा है। सबकी यात्रा पृथक्-पृथक् है। जीवन निकल गया, अनन्त काल से निकल रहा है। मनुष्य के रूप में जन्मे। यह जन्म बहुत बड़ी राशि के रूप में प्राप्त हुआ है किन्तु जब जा रहे है तो क्या हाथ में है? राशि लेकर आये तथा कर्ज लेकर गए यही क्रम जारी है। हानि ही हानि। एक छोटा-सा दृष्टांत है कि एक गाँव से तीन व्यक्ति निकले बराबर राशि लेकर। तीनों ने व्यापार कर धन कमाने के लिए अलग-अलग रास्ते पकड़े इस वायदे के साथ कि पाँच वर्ष के अंतराल के पश्चात् इसी स्थान पर पुनः मिलेंगे। पाँच वर्ष व्यतीत हो गए तीनों अध्यवसाय पुरुषार्थ प्रयास कर वहीं मिले। दो ने एक से पूछा, भैया! क्या लाये? क्या बतायें? हानि हो गई, जो लाये थे वह भी डूब गया। दूसरे ने बताया कि न कुछ कमाया न खोया जितनी राशि ले गए थे उतनी ही है। तीसरे ने बताया भैया! मुझे तो बहुत लाभ हुआ इतना कमाया कि रखने को स्थान नहीं। आज हमारा अध्यवसाय प्रथम व्यक्ति की भांति है जो लाया वह भी गँवा दिया। कमाने वाला जानता है कि कितनी शक्ति से कमाया जाये इतना कमा सकते हो कि रखने को जगह न रहे। ज्ञान के मार्ग पर अध्यवसाय कर कई गुना कमाई करने वाले ने पूर्ण व्यवसाय कर लिया। गँवाने वाले का आवागमन क्रम जारी है। राशि बनी तो मनुष्य का जन्म लिया कर्ज में डूब गए, फल भोगा तीन गतियों के रूप में। आप देखिये! एक भिक्षुक भी अध्यवसाय कर रहा है। सुबह से शाम तक देखा कि झोली भरी कि नहीं। भर गई तो ठीक है अन्यथा वह गली, ग्राम तक बदल देता है कि यहाँ लाभ नहीं है। इतना ज्ञान तो वह रखता ही है कि जिस गली, ग्राम में लाभ नहीं उसे छोड़ दो, किन्तु मनुष्य देख रहा है कि उसके अध्यवसाय में हानि है, कर्ज में डूबता जा रहा है किन्तु व्यवसाय वही करेंगे आरंभ, सारंभ, भोग। भोग के योग्य सामग्री का बार-बार भोगना है उपभोग। भोग और उपभोग से कर्मभूमि को भी इस इंसान ने भोगभूमि बना डाला। बंधुओं! वह अध्यवसाय करो जिससे आत्मा का विकास हो, कल्याण हो। स्वभाव में ग्रहण करने की क्षमता है। बच्चे अध्ययन करते हैं परीक्षा के समय विद्यार्थी यह अनुभव कर लेता है कि उसे सफलता नहीं मिलेगी तब वह सफल छात्र की नकल करता है सफलता के लिए। परीक्षा में पास होना है। अकल तो है नहीं तो सफल की नकल कैसे? यदि सही दिशाबोध नहीं है। सही दिशाबोध होना आवश्यक है, बार-बार प्रशिक्षण के पश्चात् भी आत्मबोध नहीं क्योंकि आशा अधिक है आस्था कम। आस्था अधिक रखो आशा कम क्योंकि यह आत्मा का क्षेत्र है, आत्मा का अध्यवसाय। **आत्मज्ञान महत्त्वपूर्ण बोध है। दुनियाँ का बोध किया किन्तु आत्मा का नहीं तो वह बोध नहीं बोझ है। इससे आत्मिक शांति मिलने वाली नहीं।**

वर्ष में एक आज है तथा ३६४ दिन कल, किन्तु मात्रा अधिक होने पर भी कल का कोई अस्तित्त्व नहीं कल कभी आता नहीं। व्यापारी दुकान पर लिखता है- 'आज नगद कल उधार'। क्योंकि वह जानता है कि कल कभी होता ही नहीं। व्यापार के क्षेत्र में तो आज का महत्त्व है, कल का नहीं। अज्ञान दशा में सोया हुआ आज ही कल का श्रोत है। हमें कल की चिंता है जो कि किसी ने देखा नहीं। आज की चिंता नहीं। वर्तमान में जो सुख का अनुभव नहीं कर सकते वह कल के सुख के लिए चिंतित है। जो कल विश्वास किया था उसका लाभ लिया आज। अतः शांति का अनुभव हो रहा है। कल की चिंता मृग मरीचिका है, झूठे जल की प्रतीति के पीछे भागना मात्र। चिंता तो आज की भी नहीं होना चाहिए। विश्वास है तो दिन भी आयेगा, दिनकर भी। वह आवश्यकता की पूर्ति करेगा। काम करें, कर्त्तव्य निभायें। एक-एक पल कीमती है, एक-एक पल विकास होना चाहिए। कल की क्या? आज का समय भी सही निकलेगा यह नहीं बताया जा सकता। घड़ी देखी, जब तक समय बताया घड़ी के कांटे आगे सरक गए। आज की निर्भरता कल पर नहीं है वरन् अज्ञान दशा में सोये आज पर कल निर्भर है। **सुख वही है जो बाहर से नहीं, आत्मा में उत्पन्न हो। वास्तव में आत्मबोध का नाम ही सुख है।**

दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णा वश धनवान।
कहीं न सुख संसार में, सब जग देखो छान॥

तृष्णा के वशीभूत होकर धनाढ्य व्यक्ति भी दुखी है। मृग की भांति मरीचिका के पीछे दौड़ रहा है। हमने धन की लिप्सा में अपना मौलिक जीवन खो दिया। **पदार्थ के विकास में नहीं परमार्थ के विकास में सुख छिपा है, यह विश्वास रखो! आस्था रखो**। इसी आस्था और विश्वास के सहारे हम अपने पुरुषार्थ को सही करें तो निश्चित ही हमें सुख मिलेगा। जो आज तक नहीं मिला।

'महावीर भगवान् की जय!'

❑ ❑ ❑

जीवन कैसे मधुर हो

क्षारमय होना ही प्रलय है। सागर क्षारमय है, जगत् क्षारमय हो जाये तो प्रलय है, किन्तु इसी क्षार के उचित अनुपात से मधुरता भी आती है। उचित अनुपात ही धर्म है। धर्म है, तो जीवन है, जीवन को क्षारमय नहीं अनुपातिक बनाकर आप दुनिया के किसी भी कोने में जायें धर्मात्मा कहलायेंगे। आटा में नमक उचित मात्रा में मिलाने पर ही मधुर स्वाद आता है। नमक कम रहे तो फीका लगता है, अधिक हो तो खारा हो जाये। दोनों ही दशा मधुरता की नहीं है, ऐसे ही जीवन में मधुरता लाने के लिए क्षार का उचित अनुपात रखना चाहिए ''आटे में नमक के बराबर''। नमक का कोई व्यंजन नहीं बनता वरन् व्यंजन स्वादिष्ट रखने के लिए उचित मात्रा में नमक मिलाया जाता है। नमक का व्यंजन क्षारसागर होगा किन्तु क्षारसागर नहीं क्षीरसागर से जीवन सुखमय होगा। पाक शास्त्र की इस गहराई का मनुष्य

जीवन से गहरा संबंध हैं। खारा जीवन खीरमय नहीं हो सकता किन्तु खारे की एक डली खीर में मधुरता घोल देती है। यही अनुपात तो धर्म है। अज्ञान, मोह, कषाय से जीवन क्षारमय हो जाता है। **अपना जीवन ऐसा हो कि सबको मधुरता दे स्वयं भी मधुर रहे। स्व-पर को माधुर्यमय कर दे।**

स्वादिष्ट खाना खिलाते हुए क्षार शब्द के उपयोग से खाने का स्वाद बिगड़ जाता है तथा मधुर शब्दों के उपयोग से रूखा-सूखा भोजन भी स्वादिष्ट लगता है। धर्म की बात अनेक विद्वान् करते हैं, आवश्यकता है धार्मिक वातावरण बनाने की तथा यह वातावरण तब ही संभव है जब अनुपात उचित हो। धर्म के अनेक रूप हैं कर्त्तव्य भी धर्म का ही एक रूप है किन्तु उचित काल पर उचित स्थान पर उचित धर्म से ही परिणाम अनुकूल मिलते हैं। जिस प्रकार घर में आये मेहमानों को सुस्वादु व्यंजन उपलब्ध करायें किन्तु समयानुकूल बात न करें तो मेहमान अपमान का अनुभव करेगा, कहेगा कि आदमी खाना तो खिला रहा है किन्तु प्रेम व्यवहार के दो शब्द भी नहीं बोलता। इसके विपरीत भूखे मेहमानों को भोजन न देकर केवल मीठी मीठी बातें करें तो भी मेहमान को क्रोध आयेगा, क्योंकि भोजन नहीं करा रहा। अकेले बातों से पेट भरने वाला नहीं, भले ही उसे मोती का हार पहना दो। **भूखे को स्वागत में हार की नहीं, आहार की जरूरत होती है बंधुओं!**

भूखे भजन न होय गोपाला,
ले लो अपनी कंठी माला।

तात्पर्य यह है कि देश, काल के अनुरूप व्यवहार करें तथा अनुपात उचित रखें, तभी परिणाम अनुकूल निकलेगा। अन्यथा जो काल पर न आये वही अकाल है। काल पर वर्षा नहीं तो अकाल पड़ गया। फसल नहीं, अनाज नहीं, भूख नहीं मिटी, भुखमरी छा गयी। भोजन समय पर न मिलना भी अकाल है। इस परिस्थिति में भूखे के पास अनाज पहुँचाना भी धर्म है, राहत है। देश, काल, द्रव्य, भाव के अनुरूप ही चलना चाहिए। समय पर भोजन नहीं मिलने से भूख मर जाती है, मंदाग्नि हो जाती है। वैभव की आवश्यकता नहीं, भारत में संभव की आवश्यकता है। शंकर की आराधना करना है वैभव की नहीं, भव की भी नहीं। धर्म को पकड़ना आसान नहीं है, ज्ञान के साथ स्थान का भी ध्यान रखना चाहिए। नमकीन स्वादिष्ट होता है नमक नहीं। नमक को खाओ तो भी काम नहीं चलता, नमक के बिना भी कोई महत्त्व नहीं है। केवल अनुपात का महत्त्व है।

इसी प्रकार व्यवहार ऐसा करो कि दूसरे के जीवन में भी मधुरता की लहर उत्पन्न हो। रूखा-सूखा भोजन भी स्वादिष्ट हो सकता है, इसके लिये वैभवशाली के यहाँ जाने की आवश्यकता नहीं है। मछली जल में रहती है तथा उसके जीवन के लिये आवश्यक वायु उसे जल में ही उपलब्ध हो जाती है, उसे हवा की सुविधा के लिये हवा में लाओगे तो उसका जीवन संकटमय हो जायेगा। उसके लिये हवा वहीं उपलब्ध है। इसी प्रकार खुली हवा में रहने वाले प्राणी को जल में हवा नहीं प्राप्त हो सकती।

जल में ले जाने पर हवा के प्राणी का जीवन संकटग्रस्त हो जायेगा। इसकी अज्ञानता से कल्याण का प्रयास भी अनुकूल परिणाम नहीं दे सकता। मछली का जीवन जल में ही सुरक्षित है। हवा की उपलब्धता के लिये हवा में लाने से उसके प्राण ही संकट में आ जायेंगे।

नमक का विधि अनुसार उपयोग ही मधुरता उत्पन्न करता है। यहीं मधुरता धर्म है, यही जीवन है। नमक अधिक होने से क्षारमय हो जायेगा। क्षारमय होना ही प्रलय है क्योंकि क्षारमय जगत् तभी होगा जब क्षारयुक्त सागर के जल से धरती जलमग्न हो जायेगी। सागर के गुणधर्म से उत्पन्न नमक का उचित मात्रा में, अनुपात में प्रयोग करने से स्वाद में वृद्धि होती है और यह प्रयोग की समझ ही धर्म है। क्षारयुक्त जीवन को उचित अनुपात से मधुर बना देना ही धर्म है। इसी धर्म के अपनाने से हमारा जीवन सुखमय होगा। अन्त में हमें इतना ही ख्याल रखना है कि हमारे अभाव में किसी का जीवन नीरस न बने और सद्भाव से खारापन न आये, वरन् यही प्रयास हमें धार्मिक सिद्ध करेगा। सबका जीवन उन्नत धार्मिक और सहयोगात्मक बने इसी मंगल भावना के साथ....

'अहिंसा परमो धर्म की जय!'

❑ ❑ ❑

चलने के लिये उभय पक्ष का समन्वय जरूरी

जीवन के अंतरंग तथा बहिरंग, पक्षों के परस्पर समन्वय तथा संतुलन से ही सफलता मिलती है। अंतरंग भावों के बाद ही बाह्य पक्षीय भाषा की परिभाषा बनाई जा सकती है। आंतरिक पक्ष ही बाह्य पक्ष का श्रोत है, जन्मदाता है। उत्तम परिणाम की प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि आंतरिक पक्ष पर ध्यान दें। मंजिल पर पहुँचने के लिये उपयुक्त स्थान का टिकट लेना ही पर्याप्त नहीं है, वरन् उपयुक्त गाड़ी में बैठना भी आवश्यक है। दोनों की उपयुक्तता से ही मंजिल की प्राप्ति होती है। जीवन का संचालन आंतरिक तथा बाह्य पक्षों पर आधारित है। किन्तु अंतरंग पक्ष पर दृष्टि नहीं पड़ती तथा बाह्य पक्ष दिखाई देता है, इसीलिये मानव सहज ही दिखने वाले बाह्य पक्ष को ही प्रधान मान लेता है। वस्तुतः बाह्य पक्ष का श्रोत भीतरी पक्ष है। वायुयान बाहरी पक्ष है तथा अंदर बैठा चालक भीतरी पक्ष। दिशा सूचक यंत्र के माध्यम से दिशा निर्धारित कर, चालक सही संचालन कर वायुयान को मंजिल तक ले जाता है, किन्तु भीतरी पक्ष के रूप में विद्यमान चालक के सही न होने पर वायुयान मंजिल नहीं पा सकता। बालक जिसे भाषा का ज्ञान नहीं है, संकेतों से अपने भावों को प्रदर्शित कर माँग की पूर्ति करता है। भावों के प्रदर्शन को भाषा से मजबूती मिलती है किन्तु भाषा गौण है भाव प्रधान। जैसे भाव उत्पन्न होंगे वैसे ही भाषा प्रकटित होगी। प्यार की भावना से अबोध बालक को गाल पर काटने पर बालक की मुख मुद्रा हास्यमय हो जाती है किन्तु गुस्से में च्यूँटी काटने पर बालक की आँखें अश्रुमय हो जाती है। क्यों होता है ऐसा? इसीलिये कि जैसे भाव उत्पन्न होंगे वैसा ही परिणाम प्राप्त होगा। जैसा

भाव वैसी भाषा तथा यही परिणाम का आधार है। धर्म, विवेक आंतरिक भाव है; भाषा, चाल, रूप बाहरी पक्ष हैं। भीतर भावों में परिवर्तन आने पर बाह्य स्वयमेव बदल जाता है।

प्रकृति के भूषण को दूषित कर प्रदूषण मनुष्यों के द्वारा ही फैलाया जा रहा है। प्रकृति के नियमों का उल्लंघन पशुओं द्वारा नहीं होता। विचारों में उत्कर्ष पशुओं में भी होता है क्योंकि प्रकृति की परीक्षा में जानवर शत-प्रतिशत अंक लेकर उत्तीर्ण है जबकि मनुष्य अनुत्तीर्ण। माना यह जाता है कि वैचारिक क्षेत्र में मनुष्य प्रौढ़ होता है। किन्तु पशु कभी भी अपनी कार्य सीमा का उल्लंघन नहीं करते।

जब तक दंड का भय न हो मनुष्य के उद्दंड होने की संभावना बनी रहती है। इसीलिये चालाक कहा जाता है। गिरने के भय से ही चाल सही रहती है नहीं तो गिरकर दंडित होना पड़ता है। चलते समय आंतरिक भाव से जान लेते हैं कि नीचे देखकर चलना है, ऐसे ही चलने में तल्लीन है तथा बाहर आवाज सुनकर पलट कर देखते ही पैर डगमगा जाते हैं, ठोकर लगती है, गिरने का दंड भी भोगना पड़ता है। यदि अंदर के भावों के अनुरूप सावधानी बरती होती तो ठोकर भी नहीं लगती, न ही गिरने का दंड भोगना पड़ता। प्यार करने के लिये आवश्यक है कि दूसरा पक्ष भी विद्यमान हो तभी आप प्यार कर सकते हैं। अन्यथा कोई दीवाल से प्यार नहीं करता सामने वाला पक्ष हो तब ही प्यार संभव है। एक पक्ष से कोई काम नहीं हो सकता। सामने वाले पक्ष के साथ-साथ देश, काल का भी महत्त्व है। श्री कृष्ण की पटरानी 'रुक्मिणी' का पुत्र 'प्रद्युम्न' जन्म के बाद ही चला जाता है, बहुत तलाश की नहीं मिला, रुक्मिणी उदास हो जाती है पुत्र के वियोग में। सोलह वर्ष पश्चात् प्रद्युम्न अचानक वापस आता है युवा होकर। चारों तरफप्रसन्नता छा जाती है। माँ बेटे को देखते ही उदास हो जाती है। माँ! मैं आ गया हूँ, ठीक है, माँ प्रत्युत्तर में कहती है, फिर उदास क्यों? पूछने पर कहती है बेटा! जब तू गया था बालक था, आया तो जवान होकर, तो क्या हुआ? तुझे प्यार कर जो आनंद प्राप्त होता उससे वंचित हूँ, यह सोचकर उदास हूँ। माँ को आनंदित करने के लिये प्रद्युम्न को पुनः बालक का रूप धारण करना पड़ता है। तात्पर्य यह है कि प्यार करने के लिये केवल दूसरे पक्ष की ही आवश्यकता नहीं, वरन् यह भी आवश्यक है कि देश काल के अनुरूप सुपात्र हो।

भरी सभा में खो जाना आश्चर्य जनक लगता है किन्तु खो सकते हैं। भीतरी पक्ष सोचते-सोचते तल्लीन हो जाते हैं तथा खो जाते हैं। भरी सभा में डूब जाते हैं विचारों में, बाह्य पक्ष के रूप में तो बैठा हूँ, किन्तु फिर भी कहते हैं कि वह खो गया, कब? जब विचारों में लीन हो तब। अंदर की दशा देखकर ही कह देते हैं- वह खो गया। प्रधानता भीतरी पक्ष की है। बाहरी पक्ष से विचारों को जोड़ते ही समस्याएँ आ जाती है किन्तु भीतरी पक्ष में तल्लीन होते ही समस्याएँ समाप्त। समस्या बाह्य पक्ष के साथ है। भीतरी जगत् समस्या विहीन है। उत्तर तब ही दिया जाता है जब प्रश्न पूछने वाला हो। सुंदर वस्त्र धारण कर बाजार भ्रमण के लिए जाते है आप यदि बाजार बंद हो कोई न मिले तो आप वापस

आकर सोचेंगे कि व्यर्थ ही सुंदर वस्त्र धारण किये जब कोई देखने वाला ही नहीं। दूसरा पक्ष न हो तो सुंदर वस्त्रों का धारण करना भी व्यर्थ है।

अपने दुख का स्मरण होते ही हमें उसकी अनुभूति हो जाती है। कोई पूछ ले तो दुखी हो जाते हैं क्षण भर पूर्व दुखी नहीं थे स्मरण आते ही दुख की अनुभूति। कैसा परिवर्तन? एकाएक दुखी हो गये। स्मरण हुआ, विचार आया, भाव उत्पन्न हुए तो दुखी, नहीं तो कंटकों में भी अमरकंटक की बहार का अनुभव कर सकते हैं। जैसे भाव होंगे वैसी अनुभूति होगी। **दुख की सामग्री में भी सुख की अनुभूति दुख के प्रभाव को समाप्त कर देती है अन्यथा परम सुख की सामग्री सन्मुख होने पर भी अभाव की अनुभूति दुख का ही अनुभव कराती है**। हम सुख के मार्ग को प्रशस्त कर सकते हैं विपरीत धारणा को समाधान बनाकर दुखी व्यक्ति के प्रति हम सहानुभूति प्रकट करते हैं -कहते है चिंता मत करो मेरा वरदहस्त है। इतना सुनते ही उसे दुख से छुटकारा मिल जाता है। सहानुभूति व्यक्त करने वाले का क्या खर्च हुआ? कुछ नहीं, किन्तु इतना भी नहीं कर सकते। भावों का खेल है, सब कुछ आपका है। अभय दान देकर भय दूर करो। बचना-बचाना हमारे हाथ में नहीं, किन्तु भाव उत्पन्न करते ही अनुभव करना-कराना हाथ में है। आज तो भावों का भी व्यापार हो रहा है। विश्व कल्याण कर सकते हैं, किन्तु भावों का प्रदर्शन तो शर्त के साथ होता है। तुम मेरे लिये क्या कर सकते हो? एक ही प्रश्न उठ रहा है सब तरफ। भाषा के प्रयोग से भावों को प्रकट करते हुए हाथ का संकेत भी करना होता है। केवल भाषा उतना काम नहीं करती, संकेतों की भी आवश्यकता होती है। चलते समय पैर के साथ-साथ हाथ भी चलते हैं किन्तु चलना तो पैर से ही होता है। व्यवस्थित चलने के लिये हाथ भी चलाना होता है। दोनों पक्ष समन्वय से चले तभी चलना सरल है। चलते समय भाव पक्ष को सावधान रखना होता है अन्यथा पैर काँटो पर पड़ जाता है। भावों में शैथिल्य का परिणाम कष्ट देता ही है। भावपक्ष की विकृति का परिणाम चुभन है। अपने भावों में कोमलता की दृष्टि रखें थोड़े संयम के साथ। न तो बिलकुल ढीले रहने से काम चलने वाला है, न ही बिलकुल चुस्त-दुरुस्त रहकर। उचित अनुपात तथा देश काल को ध्यान में रखकर इतनी सुविधा से चलें कि गिरें नहीं।

बंधुओ! सावधान रहकर अनुपात का उचित प्रयोग आवश्यक है चाहे धार्मिक क्षेत्र हो या लौकिक अथवा पारलौकिक परिणामों की विशुद्धि ही धर्म है, नहीं तो बाम्बे का टिकट लेकर दिल्ली की गाड़ी में बैठने से बाम्बे नहीं आयेगा, टिकट भले ही बाम्बे की हो। मंजिल का आनंद तो दिशासूचक से देखकर सही दिशा में यात्रा करने से ही प्राप्त होगा। इस तरह यदि हम अपने आप ही सावधान हैं तो ठीक, अन्यथा समाधान भी नहीं मिलने वाला।

दान देने के लिये दान लेने वाले की भी आवश्यकता है तथा दान देना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं जितना महत्त्वपूर्ण है सुपात्र त्यागी दान पाने वाला। **'पात्र के बिना दान नहीं दान के बिना पात्र नहीं'**

दोनों के गठबंधन से ही सार्थक होता है दान। हम कौन हैं? हमारे कर्त्तव्य क्या हैं? यह जान लेने पर हमें उद्देश्य की पूर्ति करने में सरलता हो जाती है। आज जितनी सुविधा बढ़ती जा रही है मनुष्य के सामने उतनी ही दुविधायें बढ़ती जा रही हैं। आज आविष्कार आवश्यकता की पूर्ति के लिये नहीं, किन्तु आवश्यकता के कारक (करने वाले) हो रहे हैं। भारत वर्ष विकासशील राष्ट्र है विकसित नहीं क्योंकि यहाँ पर अब पहाड़ा भी पहाड़ सा हो रहा है। यदि केलकुलेटर न हो तो हम गणना भी नहीं कर सकते, स्मृति क्षीण होती जा रही है। क्या यही विकास है?

यात्रा की सफलता के लिये आवश्यक है कि यंत्र भी ठीक हो तथा चालक भी स्वतंत्र हो। गाड़ी अच्छी हो तभी यात्रा सफल होगी। दोनों पक्षों का समन्वय सफलता का आधार है। जिस गाड़ी में हार्न छोड़कर सब कुछ बजता हो और ब्रेक छोड़कर सब कुछ लगता हो, उससे यात्रा कैसे सफल होगी? अंदर से चालक के रूप में ठीक से संचालन हो तभी यात्रा ठीक रहेगी। ''अपने विचारों को देखें सम्हालें परिमार्जित करें तभी जीवन में निखार आयेगा''। अंत में इतना ही कहना चाहूँगा कि अंतरंग और बहिरंग पक्ष के समन्वय से ही हमारा कल्याण संभव है।

'महावीर भगवान् की जय!'

❑ ❑ ❑

मंजिल की तलाश में यात्रा जारी

अनंत काल से मानव की यात्रा जारी है किन्तु मंजिल नहीं मिल रही। जिस यात्रा से मंजिल न मिले वह भटकन है तथा आज भटके मनुष्यों का बहुमत है। सब भटके हुए है इसलिये यह ज्ञात नहीं हो पा रहा कि मंजिल विहीन यात्रा जारी है। भटकन समाप्त होने के लिये आवश्यक है, यात्रा तो हो किन्तु सही दिशा में सरिता की उस बूँद के समान जो अनंत सागररूपी मंजिल प्राप्त कर लेती है। ऐसी यात्रा से भटकने पर विराम लगता है तथा प्राप्ति होती है मोक्ष की। ऐसा कोई पशु नहीं सुना जो चलते-चलते रास्ते में भटक गया हो और कोई ऐसी नदी नहीं सुनी जो मंजिल तक न पहुँच कर बीच में ही सूख गई हो किन्तु मनुष्य हमेशा भटकता रहा है। प्राणी समुदाय में सर्वाधिक भटका प्राणी मनुष्य है। नदी उद्‌गम से यात्रा प्रारंभ कर सागर में जा मिलती है बीच में रुकती नहीं है। पक्षी भी अपनी मंजिल को प्राप्त करने के लिये उड़ान भरता है किन्तु मनुष्य भटक जाता है। हमारी प्रत्येक क्रिया उन्नति की प्रतीक नहीं है। बोलते समय हम कितने ही निरर्थक शब्दों का प्रयोग करते हैं, प्रत्येक सोच सार्थक नहीं होती तथा प्रत्येक कदम सही दिशा में नहीं उठता। कितना सोचना है, बोलना है, चलना है, यह यदि उचित अनुपात में नहीं होता तो समझ लो भटकन है। **जो क्रियायें मंजिल की तरफ नहीं ले जाती वह भटकन की कारक हैं।**

सागर तक पहुँचना नदी का लक्ष्य है। यदि कोई नदी स्वयं नहीं जा पाती तो अन्य नदियों से मिलकर सागर प्राप्त कर लेती है। जन्म से कोई नदी बड़ी नहीं होती, बीच में अनेक नदियाँ मिलती जाती है जो बड़ा रूप धारण कर लेती है और वह मिल-मिलकर सारा जल जा मिलता है अपनी मंजिल सागर से। **सरिता की एक-एक बूँद का लक्ष्य रहता है समुद्र**।

बूँद-बूँद के मिलन से, जल में गति आ जाय।
सरिता बन सागर मिले, सागर बूँद समाय॥

बूँद, बूँद से मिलती है तो जल में गति आ जाती है। एक बूँद दूसरी बूँद को स्पंदित कर यात्रा करती है। जब आँत स्पंदित होती है तभी भोजन की यात्रा पूर्ण होती है, बीच में रुक जाये तो परिणाम भयंकर हो जाता है। भोजन की यात्रा पूर्ण होने पर ही निकले, इससे जीवन चलता है। भोजन की यात्रा पूरी होने पर ही परिणाम अनुकूल निकलता है। जल में गति तब आती है जबकि एक बूँद दूसरे को धक्का दे और तभी वह परस्पर मिलकर सागर का रूप धारण कर विराट हो जाती है। **बूँद-बूँद से सागर है तथा बूँद-बूँद में सागर है**।

मनुष्य यदि कर्त्तव्यनिष्ठ हो तो सही दिशा में उठे हुए एक कदम से वह महात्मा बन जाता है। आवश्यकता है सही दिशा की। यह अपने आप ज्ञात नहीं होती निर्देशन से ज्ञात होती है किन्तु निर्देशक तो अनंतकाल से निर्देश दे रहा है। फिर भी सही दिशा में कदम नहीं। इसलिये कि बहुमत तो भटकने वालों का है। वह सही दिशा का अनुभव ही नहीं करता वरन् भटकन को ही सही दिशा मान लेता है। माँ बच्चों को, फिर वे बच्चे अपने बच्चों को वर्षों से उपदेश देते आ रहे हैं कि कैसे खायें, कैसे पियें, कैसे चलें, कितना खायें, यह भी बताते हैं कि पेट में थोड़ी जगह बची रहें। जगह नहीं रहेगी तो स्पंदन ही रुक जायेगा किन्तु आज तो मनुष्य मशीन हो गया है। उसके पास सोचने का समय ही नहीं। निर्देशक तो ठीक निर्देश दे रहा है किन्तु हम ही गलत कर रहें हैं। बंधुओं! गलत क्रिया से थकान तो आती है पर मंजिल नहीं आती। मनुष्य का रूप ऐसा हो गया कि महान् बनना था पर विकराल होता जा रहा है। कमियों के संबंध में एक दिन उपदेश देते हैं, सुधार कराते हैं किन्तु दूसरे दिन दस कमियाँ दूसरे प्रकार की आ जाती है। उनके लिये पुनः उपदेश दो। एक उपदेश से ही सार्थक क्रिया की जाये तो कल के उपदेश की आवश्यकता ही नहीं रहेगी।

वर्तमान के आधार पर भविष्य का रूप निर्माण होता है। जिस संपत्ति का संग्रह कर हम भविष्य की सुरक्षा करते हैं वह भविष्य की सुरक्षा करने वाली नहीं। संसार की संपत्ति के संग्रह कर्ता 'सिकंदर' का भी भविष्य खाली हाथ, सिकंदर की अर्थी से उसके दोनों खाली हाथ बाहर थे। हमें अपने पुण्य पर विश्वास कम है, आशा है अधिक इसीलिये सम्पत्ति का संग्रह ज्यादा है। अभी की श्वांस का विश्वास नहीं फिर कल की आशा क्यों? **आस्था कम आशा अधिक रख कर जीना ही**

भविष्य की चिन्ता का कारण है। ध्यान रखो! विश्वास अधिक और आशा कम होने पर भविष्य निश्चित होगा। नेतृत्व की भूख आज मनुष्य का स्वभाव बन गई है। वास्तव में स्वामित्व की भावना ही नेतृत्व है और यही भटकन की जनक है। निरन्तर बढ़ती हुई इसी स्वामित्व भावना की वजह से यहाँ प्राणी भिन्न-भिन्न पदार्थों पर अधिकार स्थापित करना चाहता है किन्तु यह पंक्तियाँ भूल जाता है कि-

दुनियाँ में सैकड़ों आये चले गये।
सब अपनी करामात दिखा के चले गये॥

इस भटकन के रहस्य को समझकर इससे बचने का प्रयास करो; मंजिल जरूर प्राप्त होगी।

'अहिंसा परमो धर्म की जय!'

❑ ❑ ❑

ऊपर उठने के लिये हल्का होना अनिवार्य

अशुद्धि का अंत कर जिन्होंने परम पद प्राप्त कर लिया है, हम उन्हीं सिद्ध परमेष्ठी की आराधना करने के लिये यहाँ पर एकत्रित हुए हैं। इस आत्मा में विद्यमान अशुद्धि की आदि नहीं किन्तु अन्त अवश्य है। दो छोर हैं एक आदि और एक अन्त किन्तु हमारी यात्रा का प्रवाह इन दो छोरों से परे अनादि अनन्त हैं। तराजू के पलड़ो की तरह भारीपन/बोझ नीचे आता है तथा हल्की वस्तु ऊपर उठती है। यदि हम अपने जीवन को दोषरहित, पाप के भार से रिक्त करेंगे तो वह ऊपर उठ जायेगा। सिद्धत्व की प्राप्ति के लिये जीवन को खाली करना सर्वप्रथम आवश्यक है। हमारे अन्दर विद्यमान इस संभावना के संरक्षण की भावना सद्भावना पर ही निर्भर है।

आप सभी अनेकान्त के उपासकों को ७ दिन तक इस एकांत स्थान पर आकर धर्मध्यान करने का अवसर प्राप्त हो रहा है। यह बहुत बड़े पुण्योदय/सौभाग्य की बात है। इस शांत शीतल निराकुल स्थान के बारे में क्या कहूँ "यहाँ ध्यान लगाने की आवश्यकता नहीं, ध्यान स्वयं ही लग जाता है।" आनंद और सुख तुम्हें सब कुछ मिल जायेगा आवश्यकता है केवल सोये हुए आत्म भगवान् को जगाने की। यही जैन दर्शन का उद्देश्य और उसकी विशेषता है। जैनधर्म का मूल अहिंसा और अपरिग्रह है किन्तु हम हैं कि आवश्यकता से भी अधिक वस्तुओं के संग्रह में लगे हुए हैं। एक-एक कौर भोजन करने वाला यह 'कवलाहारी' इंसान मनोंमन संग्रह की उत्सुकता रखता है। यही संग्रहवृत्ति उसके पतन का कारण बनती है। हम पंच परमेष्ठी की आराधना भक्ति कर अपने जीवन को उन्नत बनाने का प्रयास करें।

'महावीर भगवान् की जय!'

❑ ❑ ❑

सामान्य हो जाना ही समाजवाद है

मानव जाति एक है। जब तक मानव जाति में ''विशेष'' मानव का विशेषण विद्यमान है समाजवाद नहीं आ सकता। **विशेष को भी सामान्य बना देना ही समाजवाद है**। जब तक स्थिति 'सामान्य' नहीं हो जाती विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता होती है तथा जैसे ही स्थिति सामान्य होती है शांति मिल जाती है।

कर्फ्यू वहाँ लगाया जाता है जहाँ स्थिति असामान्य होती है। ऐसी असामान्य स्थिति में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है किन्तु स्थिति के सामान्य होते ही सब कुछ ठीक हो जाता है। ऐसे ही मानव जाति में सामान्य से हटकर विशेष होते ही विभाजन हो जाता है जिससे समाज में असमानता व्याप्त हो जाती है। असमानता त्यागकर सामान्य हो जाना ही समाजवाद है। मनुष्य आँख खोलते ही माँग करने लगता है इसका आरंभ ही भूख से होता है। विशेषता की भूख लगते ही स्थिति असामान्य हो जाती है। प्रत्येक प्राणी को सत्य को अस्तित्व के रूप में स्वीकार करना चाहिए। विशेषता मान का प्रतिफल है। अगर दृष्टि में संकीर्णता हो तो मान की उत्पत्ति होती है। सामान्य वातावरण नहीं होने पर धर्म की छूट भी उल्टी के रूप में बाहर आ जायेगी। यह बात सत्य है कि हम सामान्य रूप धारण करके ही एकाकार हो सकते हैं तथा विशेषता विभाजन भेद रेखा को भी समाप्त कर सकते हैं। पंगत में खाना परोसते समय दृष्टि तथा व्यवहार समान रहता है। **खाना परसने वाले की दृष्टि में पंगत में बैठे सभी मनुष्य समान रहते हैं किन्तु जब बाजार में वस्तु खरीदने जायें तो तुलना ही तुलना। तुला पर तुलना, सस्ते महंगे में तुलना। मनुष्य की दृष्टि परोसने वाले के समान समानता की होनी चाहिये न कि दुकानदार ग्राहक के समान तुलना की**।

संसार का प्रत्येक मनुष्य मूल्यवान वस्तु की इच्छा रखता है। तथा उसे पाने सदैव तत्पर रहता है। इस संबंध में प्रत्येक की अपनी दृष्टि है तथा प्रत्येक का अपना-अपना दृष्टिकोण। बहुमूल्य वस्तु की प्राप्ति की इच्छा केवल मानवों में ही नहीं, देवों में भी होती है। देव भी पंचेन्द्रिय के दास बन जाते हैं। होड़ लग जाती है प्राप्ति के लिये किन्तु यहाँ पर भोग्य नहीं भोक्ता महत्त्वपूर्ण है। भोक्ता चेतन है भोग्य अचेतन। देव भी जो महान् तथा विशेष माना जाता है, महादेव के सम्मुख नतमस्तक हो जाता है। देव का दास देखता है कि मेरा स्वामी भी महास्वामी का दास है। तीन लोक के नाथ वही महादेव है जिन्हें इन्द्र देव भी पूजते हैं। 'षट्खण्डाधिपति भरत चक्रवर्ती' भी 'आदिनाथ भगवान्' के चरणों में भक्ति से झुककर सामान्य हो जाता है। अरे चक्रवर्ती तो क्या इन्द्र भी सोचता है कि वह भी इंद्रियों का दास है। बंधुओं! **क्षणभंगुर दृश्य है यह सब। यहाँ सब कुछ समाप्त हो जाता है। सूर्य भी बारह घंटे पश्चात् अस्त हो जाता है**। राजा, महाराजा, इंद्र आदि क्षणभंगुर चमकीले पदार्थ सब शांत हो जाते हैं। कल जहाँ बहार थी, वैभव था, हरियाली छायी थी, वह सब समाप्त हो जाता है। पतझड़ आ जाते और पतझड़ की जगह पुनः बसंत बहार छा जाती है।

बालक गोद में दूध पीता आया था जवान होते ही विषयों में लीन हो जाता है।

सूरज चाँद छिपे निकले, ऋतु फिर-फिर कर आये।
प्यारी आयु ऐसी बीते, पता नहीं पाते॥

कालचक्र घूमता ही रहता है, आया-गया, आ रहा है, जा रहा है ऐसा ही सब चलता जा रहा है। रात्रि का रूप, दिन का स्वप्न, दीर्घकालीन स्वप्न, अल्पकालीन स्वप्न। देवों की दीर्घकालीन आयु भी कब बीत जाती है पता ही नहीं चलता, किन्तु दुख की घड़ी काटे नहीं कटती। काल-महाकाल बन जाता है। यह सब मोह की परणति है, सर्वस्व त्याग कर स्वयं में खोते ही यह सब बंध टूट जाते हैं।

रूप में परिवर्तन होता है किन्तु वह अरूप नहीं होता। पीला रूप देखते ही काला छोड़ देते हैं। 'पीले स्वर्ण' की रक्षा 'काले लोहे' के ताले से की जाती है स्वर्ण की रक्षा के लिये स्वर्ण का ताला नहीं लगाया जाता। स्वर्ण विशेष है। जिस दिन स्वर्ण की रक्षा के लिये स्वर्ण का ही ताला होगा सब समान हो जायेगा तब रक्षा की आवश्यकता ही नहीं। इन्द्रलोक में ताला नहीं लगता क्योंकि वहाँ चोरी नहीं होती। कोई किसी का स्वामी नहीं, दास नहीं, सब समान हैं। स्वामी तो आपके भीतर विद्यमान है। ऊँच-नीच में कषाय है, कषाय समाप्त होते ही दृष्टि समान हो जाती है। महादेव के सामने भक्तों की दृष्टि में समानता आ जाती है। समानता आते ही सब प्राप्त हो जाता है। भगवान् चिन्मयाकार हैं, आप अपनी दृष्टि अगल-बगल में न दौड़ायें। प्रभु से आप अपनी तुलना कर जान लो कि क्या अंतर है? अंतर अंतर्घट से ज्ञात हो जाता है। दृष्टि में समानता आ जाना ही वास्तविक ज्ञान है वही भगवान् है। भिन्न-भिन्न पदार्थों को देखकर ऊँच-नीच की जो दृष्टि बनती है उसमें भगवान् को देखते ही बदल जाती है।

विषय, विषयातीत होने पर महत्त्वपूर्ण हो जाता। विषयातीत को खोजने के लिए स्मरण करते ही प्रभु दिखाई देते हैं। अभी अष्टानिका पर्व है। सौधर्म इन्द्र नंदीश्वरद्वीप जाकर सपरिवार भगवान् की पूजा-अर्चना अवश्य करता हैं, किन्तु **मनुष्य देवों से भी श्रेष्ठ है क्योंकि मानव ही महात्मा तथा महामानव बनने का गुण रखता है। 'मान मिटते ही मानव महात्मा बन जाता है'**। महामानव के चरणों में देव-मनुष्य सभी नमन करते हैं। सिद्धत्व की आराधना करते हुए चक्रवर्ती भी सब कुछ त्यागकर सामान्य प्राणी बनना चाहता है। प्रभु जैसा बनना चाहता है। सिद्ध परमेष्ठी के पास जाने का प्रयास करो, और यह विशेषता से नहीं एकाकार सामान्य रूप धारण करने से ही संभव है। असामान्य अशांति है, कोलाहल है। सर्वोदय में देवों का आगमन हो चुका है किन्तु आप लोग देवों से प्रभावित न होकर महादेव देवाधिदेव की आराधना करें। इसी में आपका कल्याण है।

'महावीर भगवान् की जय!'

❑ ❑ ❑

धर्म सनातन होता है

गंध रहित फूल मूल्यहीन होता है वह धूल में मिल जाता है। धर्म एक सुगंध है। धर्ममय जीवन से प्रस्फुटित सुगंध अनेक नासिकाओं को संतृप्त करती है। धर्म सनातन होता है, अभेक्ष्य। किन्तु आज वह सनातन कम, तनातन अधिक है। कुशल भ्रमर गंध की गवेषणा कर ही लेता है। वह गंध विहीन फूल के निकट जाकर भी संतृप्त नहीं हो सकता। गंध विहीन गुलाब को रखने से स्वयं भी अतृप्त रहते हैं क्योंकि वह तो कृत्रिम था। **धर्म सुगंध के समान है इसलिये वह आसपास के क्षेत्र को सुवासित कर देता है। धर्म का अनुभव होते ही ताजगी आ जाती है**। फिर एक ताजगी, एकता जगी। हम गंध विहीन पुष्प से भ्रमित हो जाते हैं भ्रमर के समान। **श्रमणों के पास आने के लिये श्रम तो करना पड़ता है किन्तु भ्रम दूर हो जाता है**। धर्म को आधार नहीं मिलता तो वह पलायन कर देता है। गंध एक धर्म है, योग्यता शक्ति है। फूल का मूल्य गंध पर आधारित होता है। गंध रहित फूल कोई नहीं खरीदता। अहिंसा धर्म अपनाते ही राग कम होता जाता है तथा जीवन में खुशबू आने लगती है।

व्यक्ति में विद्यमान गुण धर्मों के माध्यम से ही उसके धार्मिक होने की पहचान होती है, जिस प्रकार अग्नि में तपा-तपाकर ही स्वर्ण की पहचान होती है। पीलापन पीतल में भी होता है और स्वर्ण में भी किन्तु स्वर्ण बहुमूल्य है। पीतल का मूल्य कम है। पीतल अपेक्षाकृत भारी है उसमें कड़ापन नहीं स्वर्ण मृदु है इसलिये कड़ा नहीं बनता उसका किन्तु कड़ा पीतल का बनता है। स्वर्ण का कड़ा भी सौ टंच सोने का नहीं बनता यदि बना तो कड़ा नहीं रहेगा। वह धर्मात्मा की पहचान वेश पर आधारित नहीं है नाही देश पर। धर्म सनातन होता है अभेद्य होता है, इस सनातन धर्म में अभेद्य आम तत्त्व पर ही दृष्टिपात करें। आज तो तनातन है। होना टनाटन चाहिये था सौ टंच खरा। इस सनातन आत्म धर्म पर तनातन का बट्टा लगने से धर्म गायब हो रहा है। **जिस युग में बुरा भी बूरा (मीठा) सा लग जाये वही सतयुग है तथा जिस युग में खरा भी अखरता है वह कलयुग है**। आज तो बात भी अखर जाती है, खरी बात तो और भी अखर जाती है। आप कहने लगते हैं कि उसने मुझे खरी-खरी बातें कहीं अखर गयी। वस्तु का दोष नहीं होता, दोष है तनातन का।

जिस प्रकार नर्मदा अमरकंटक से पश्चिम की ओर जाती है। पर वह किसी एक स्थान से नहीं बंधती, बहती रहती है, उसे सभी जन अपना मानते हैं यह बात पृथक् है, इसी तरह धर्मात्मा किसी देश का नहीं वह तो देशवासियों से जुड़ता है। धूप-वर्षा में चलता रहता है। रुकता नहीं वरन् रुकी गाड़ी भी चला देता है। सनातन धर्म हीरा कहलाता है किन्तु मुख से नहीं कहता। परख जौहरी करता है। सनातन अनन्त से आया है, सत् है। आत्मा सत्त भी है चित्त भी। सतचित मिट नहीं सकता यह त्रैकालिक सत्य है। **हमारे पास सतचित है पर आनंद नहीं है। आनंद की अनुभूति स्वयं के विश्वास पर निर्भर है। यदि यह अनुभूति हो जाये तो फिर सच्चिदानंद अमर है**। विश्वास के

अभाव में कांटे की चुभन है। इस चुभन का कारण तनातन है। चित्त कुपित हो गया पित्त बढ़ जाता है। वात बढ़ा, सन्निपात हो गया, फिर सन्निपात ग्रसित को आठ-आठ आदमी पकड़े तो भी वश में नहीं आता तथा मूर्च्छित करने पर भी वश में नहीं रहता। सन्निपात समाप्त होते ही सनातन रूप सतचित आनंद की लहर आ जाती है। यह आनंद भी अलग-अलग तरह से लिया जाता है। मनुष्य को अपनी प्रशंसा सुनने में ही आनंद आता है, दूसरे की हो तो मुँह फेर लें। क्यों आनंदित हुए? मन को अच्छा लगा इसलिए। आप श्रोत है आनंद के। हम सन्निपात के रोगी हैं तथा वैद्य है वृषभादिक महावीर भगवान् पर्यंत तीर्थंकर भगवान् राम। यदि हमारा अपना ही तनातन दूर नहीं हुआ तो सन्निपात नहीं मिटेगा, भले ही कोई वैद्य हो। किन्तु यह मिट सकता है जबकि आस्था हो, विश्वास हो, रोगी को तब। रोगी को चिकित्सक पर विश्वास नहीं होगा तो न तो वह इलाज कराएगा न ही औषधि असरकारक होगी। विश्वास सबसे महत्त्वपूर्ण चीज है। सन्निपात का रोगी बकता है, रोता है-लातें मारता है। चिकित्सक रोगी के लात मारने से निष्प्रभावी रहता है। पित्त शांत हो, गुस्सा शांत हो तो आनंद की अनुभूति हो जाती है। हम भी भगवान् बन सकते हैं तनातन छोड़ कर। पित्त हो तो रसगुल्ला भी कड़वा लगता है। मान को चढ़ाओ भगवान् के चरणों में, इसके बिना आनंद की अनुभूति नहीं। संतों के पास आनंद है। अतः संत बनो, संयमी बनो। संतोषी व्यक्ति पुष्ट हो जाता है थोड़े से भोजन से भी किन्तु जिह्वा असंतोषी है। पेट कहता है इंड (समाप्त) लेकिन जिह्वा कहे एंड (और), और अधिक कौर खाया तो परिणाम भयंकर। बंधुओं! यह लोभ, तृष्णा नागिन के समान है जो हमारी आत्मा को डसती है। यह नागिन तो एक बार ही डसती है किन्तु तृष्णा की नागिन भव-भव में डसती है। संत का सान्निध्य पाकर तृष्णा का विष शीघ्र ही उतरने लगता है।

संत पुरुष से राग भी, शीघ्र मिटाता पाप।
उष्ण नीर भी आग को, क्या न बुझाता आप॥

गर्म जल भी आग को बुझा देता है क्योंकि आग बुझाना उसका गुण धर्म है ऐसे ही संत से किया गया अनुराग भी पाप कर्मों का नाश करता है। **गर्म होने पर भी जल अपना स्वाभाविक गुण धर्म नहीं छोड़ता किन्तु मनुष्य गर्म होकर क्यों अपना स्वभाव छोड़ देता है**। यह सब विश्वास की कमी और वास्तविकता की पहचान के अभाव में हो रहा है। राम और महावीर के आदर्श को सामने रखकर अपने आतमराम को पहचानें और उसे ही पाने का प्रयास करें।

'महावीर भगवान् की जय!'

❑ ❑ ❑

दूध आत्मा व घी परमात्मा है।

पाषाणेसु यथा हेम, दुग्धमध्ये यथाघृतम्।
तिलमध्ये यथा तैलं देहमध्ये तथा शिवः॥
काष्ठमध्ये यथा वह्नि शक्ति रूपेण तिष्ठति।
अयमात्मा शरीरेषु यो जानाति स पण्डितः॥

दूध में घृत विद्यमान है, किन्तु उसे प्राप्त करने के लिये एक निश्चित क्रिया की जाती है। घृत बनाने के लिये मथना तथा तपाना आवश्यक है। जिस प्रकार पाषाण में स्वर्ण, तिल में तेल, काष्ठ में अग्नि तथा दुग्ध में घृत स्वभाव से विद्यमान है उसी प्रकार प्रत्येक आत्मा में परमात्मा की विद्यमानता स्वभाव से ही है कहीं बाहर से नहीं आई ।

विज्ञान के इस युग में भी सुगंधित घृत की प्राप्ति के लिये प्राचीन पद्धति ही अपनायी जाती है। निश्चित प्रक्रिया से स्वर्ण, तेल, घृत निकालने के पश्चात् शेष पदार्थ मूल्यहीन रह जाता है। तेल निकाला तिल गायब, घृत निकाला दूध गायब। अनन्त काल से प्रभु भीतर सोया है उसे साधना के बल पर एक बार जगा लें तो इस देह के बंधन से मुक्त हो सकते हैं। धर्मानुरागी बंधुओं! प्राप्त हुए इस शरीर से क्यों मोह करते हो इस काया की अमरता नहीं है। शरीर के मिलने तथा बिछुड़ने की यह क्रिया अनादि काल से जारी है तथा अनन्तकाल तक जारी रहेगी। गले का हार स्वर्ण आभूषण होता है, पाषाण नहीं। पाषाण से हम स्वर्ण को निकाल लेते हैं किन्तु कैसी विवशता है कि हम परमात्मा की प्राप्ति का यत्न नहीं करते, शरीर का मोह नहीं छूट पाता। देखिए! काष्ठ में अग्नि रूप शक्ति है पर वह दिखती नहीं, शक्ति का उद्घाटन होते ही लकड़ी जलकर राख हो जाती है। काष्ठ जलने के पूर्व भी अग्नि नहीं दिखती और जलने के बाद भी अग्नि नहीं दिखती इसी तरह इस देह में विद्यमान आत्मा का स्वभाव है।

दूध में जामन डालने के साथ ही क्रिया आरम्भ हो जाती है। दूध की भारी मात्रा को जमाने के लिये चम्मच भर जामन ही पर्याप्त होता है। जामन डालते ही दूध का स्वरूप परिवर्तित होने लगता है तथा उसके कण एकत्र हो जाते हैं निश्चित अवधि के पश्चात् दूध का रूप दही में बदल जाता है। अब इसमें दूध का कोई गुण नहीं है। स्पर्श, स्वाद, गंध सब अलग। फिर क्रिया आरम्भ होती है मथने की, इस क्रिया के पश्चात् मथे पदार्थ से अलग करते हैं नवनीत, नवनीत निकल गया छाँछ रह जाता है मूल्यहीन। जैसे कि आत्मा निकलते ही शरीर व्यर्थ हो जाता है। फिर नवनीत को तपाकर घृत की प्राप्ति होती है। बस इसी तरह की पद्धति, इसी तरह का मार्ग मोक्ष का भी है। तपाने से कमियाँ (विकृति) जलकर पृथक हो जाती हैं घृत पृथक हो जाता है, इस बचे हुए शेष पदार्थ को मरी कहते हैं। घृत निकल गया मरी नीचे रह गई, अब वह मात्र शुद्ध घृत है जो कभी अब दूध नहीं बन सकता। इसे इस तरह भी समझ सकते हैं कि **अर्हंत भगवान् नवनीत के समान हैं सिद्ध भगवान् घी के समान है तथा हम**

सभी दूध के समान हैं। इसमें धर्म संस्कारों की जामन डाल कर जमाओ और फिर वैराग्य की मथानी से स्वयं का मंथन करो। सब कुछ आपके सम्मुख है, आवश्यकता है मात्र ज्ञान के उद्घाटन की। दूध और घी में बहुत अन्तर है उसके गुण धर्म पृथक्-पृथक् है। देख लीजिये इस अंतर को आप। दूध में छवि नहीं दिखती किन्तु तपाकर प्राप्त घृत में आपकी छवि दिखती है तथा तल के दर्शन भी हो जाते हैं। घी में हम भी दिखे और नीचे क्या है यह भी दिखे क्योंकि घृत स्वपर प्रकाशक है। आरती घृत से होती है क्योंकि वह शुद्ध है, दूध से आरती सम्भव नहीं। भगवान् भी घृत की आरती से ही प्रसन्न होते हैं, दूध में घृत की बाती भी डाल दो तो कुछ क्षण पश्चात् वह भी बुझ जायेगी जबकि दूध में घृत भी विद्यमान है किन्तु गुण धर्म घी का नहीं है। वह इसलिए कि तपकर शुद्ध होकर ही घृत का रूप रंग गुण प्राप्त होता है।

घृत के ऊपर मनों-मन टनों-टन दूध की मात्रा डालने पर भी घृत ऊपर आ जाता है। दूध के ऊपर आसन होता है घी का। ऐसा ही आत्मा परमात्मा का संबंध होता है। **दूध रूपी आत्मा से घृत परमात्मा का आसन सदैव ऊपर होता है**। चाहे मात्रा में दूध कितना भी क्यों न हो। घी दूध में था, अलग हुआ, ऊपर जा बैठा उच्चासन पर, ऐसे ही ऊपर उठने के लिये परीक्षा से गुजरना होता है। घी ने भी अग्निपरीक्षा देकर उच्चासन पाया है। मूल्य की दृष्टि से भी घृत मूल्यवान है। लेकिन भैया! यह घी सबको पचता नहीं क्योंकि हमारा लीवर कमजोर है। दूध में घृत मिलाकर भी फेंटो तब भी दूध घृत एक नहीं हो सकता। बंधुओ! सिद्ध परमेष्ठीरूपी घृत की महिमा गाते-गाते जिह्वा नहीं थकती किन्तु इस बनने की प्रक्रिया में सबसे बड़ी बाधा है मोह की। दूध का मोह नहीं छूट रहा। इस मोहभाव को छोड़कर यदि हम अभ्यास करना शुरू कर दें तो हमें उपलब्धि हो सकती है। दूध से घी की प्राप्ति में मंथन, तपन के साथ निश्चित समय की भी आवश्यकता है। इंतजार करना होता है।

सर्वोदय क्षेत्र में आकर आप लोगों ने इन आठ दिनों में पूजन किया है। भक्ति आराधना की है। अब वापस जाने की बेला में एक-एक मथानी आपको मंथन हेतु जरूर ले जाना चाहिये यदि आप घृत रूपी मुक्ति को चाहते हो तो। आप सभी ने दान दिया है, धन का सदुपयोग किया है किन्तु यह संसारी प्राणी सब कुछ करते हुए भी हिसाब-किताब लगाता है यह इसकी कमजोरी है। मैंने इतना दान दिया, यह काम करवाया, इतना खर्च किया। मैं आप लोगों से पूछना चाहता हूँ कि आपकी दुकान पर जब इनकमटेक्स अधिकारी आते हैं। तब आप सोच-विचार, हिसाब-किताब करते हैं क्या कि कितना दिया? नहीं करते क्योंकि वहाँ तो बचना है और बहुत सारा माल जो दबा रखा है उसे बचाना है। बिना किसी को बताये आप दे देते हैं। इसी तरह की उदारता यदि धर्म के क्षेत्र में भी आ जाये तो फिर कहना ही क्या।

इस बात को आप गम्भीरता पूर्वक सोचें और जीवन में उतारने का प्रयास करें। एक बार यह

आत्मा घृत के समान परमात्मा पद को प्राप्त कर ले तो फिर लौटकर इस संसार में आना ही नहीं पड़ेगा। वह परम पद, शुद्ध पद, हम सबको प्राप्त हो इसी भावना के साथ।

'महावीर भगवान् की जय'

❑ ❑ ❑

दृश्य नहीं दृष्टा को पहचानो

किसी भी कार्य की शुरूआत और सानंद सम्पन्नता के लिये विशेष पुण्य-भावनाओं की आवश्यकता होती है, धन की नहीं। आँखें सभी के पास हैं जो देखने का काम करती हैं किन्तु बीच में कुछ ऐसी खराबी आ जाती है जिसकी वजह से साफ-साफ दिखाई नहीं देता। नेत्र चिकित्सा भी इसीलिए की जाती है कि हम एक दूसरे को पहचान सकें। कुछ लोग ऐसे भी हैं जिन्हें आँखों में मोतियाबिंद आदि कोई रोग नहीं है फिर भी उन्हें किसी की पहिचान नहीं हो पाती। पता नहीं उनकी दृष्टि में कौन सा रोग है। इसे तो दृष्टि दोष (विकृति) ही कहा जा सकता है। इन आँखों से जब हम इन्सान की भी पहचान नहीं कर पा रहे तब फिर भगवान् की पहचान कैसे होगी। यहाँ पर हमें यह बात भी याद रखनी चाहिये कि सिर्फ दिखाई देने वाला दृश्य हमारा प्राप्तव्य नहीं है किन्तु देखने वाला दृश्य प्राप्तव्य है। अपने यहाँ कहा जाता है कि उस दृष्टा आत्मतत्त्व की रक्षा गुप्ति के बिना संभव नहीं उसे एकाग्रता सावधानी की बड़ी जरूरत होती है। इसी प्रकार मैं सोचता हूँ कि इस नेत्र चिकित्सा शिविर में गुप्ता जी ने जिस तत्परता और एकाग्रता से अपने सभी सहयोगी डॉक्टरों के माध्यम से चिकित्सा की है वह सराहनीय है। आयोजक और कार्यकर्ता सभी प्रशंसा के पात्र हैं। यह सब समर्पण भाव के बिना सम्भव नहीं। इसमें विशेष रहस्य की बात तो यह है कि आँखों में ज्योति पहले से ही विद्यमान थी फिर भी परदा आवरण हटाकर मरीजों को जो गुप्ता जी ने ज्योति प्रदान की है उनकी इस योग्यता का विकास जीवन में होता रहे और वे स्वयं एक दिन अपनी भटकती हुई आत्मा की ज्योति प्राप्त करें। जनहित के कार्य में सर्वोदय का अभी यह मंगलाचरण मात्र है। पथ में हम रुकें नहीं किन्तु ज्योतिपुंज को आदर्श बनाकर अथक बिना रुके लक्ष्य की ओर बढ़ते रहें।

❑ ❑ ❑

दर्पण सा संन्यास

पुनरावृत्ति हानिकारक है तथा मंजिल प्राप्ति में बाधक। मनुष्य का जीवन यदि वृत्त सम हो जाय तो पूर्णता की प्राप्ति तथा पुनरावृत्ति से मुक्ति मिल सकती है। भव्य जीवों ने पूर्णता प्राप्त कर ली, वे वृत्त हो गये। ऐसे वृत्तों के वृतांत जीवन में उतारते ही हमारी यात्रा पूर्ण हो सकती है और हम उस सुख को प्राप्त कर सकते हैं जिसे भगवान् ने प्राप्त किया है। संसारी प्राणी सुख की गवेषणा में रत रहता है

किन्तु उसे सुख मिलता नहीं। लक्ष्य तक पहुँच ही नहीं पाता वह। सारा का सारा संसार समस्याओं का संस्थान हो गया है क्योंकि हम यहाँ पर कर तो बहुत रहे हैं पर प्राप्त कुछ भी नहीं हो पा रहा। **सन्त जन इस समस्यायुक्त संसार में भी समाधान निकालकर पूर्णता प्राप्त कर लेते हैं यह उनकी विशेषता है।**

सबकी अपनी-अपनी वृत्ति है, प्रवृत्ति है, किन्तु दुनियाँ उनसे सीखती है जो वृत्ति को स्वभाव के अनुरूप बना लेते हैं। वृत्ति को वृत्त-आकार का बनाते ही जीवन पूर्ण हो जाता है। **वृत्त पूर्णता का प्रतीक है क्योंकि यह पूरे ३६० अंश का होता है। इसी तरह भगवान् स्वयं परिपूर्ण हैं अतः उनका वृतांत जीवन में उतारना हमारे लिये परिपूर्ण बना देता है।** इस जीवन में ३६० अंश के अभाव में दुख अशांति के कोण बन रहे हैं और जब तक ये कोण बनते रहेंगे ३६० अंश का वृत्त नहीं बन सकता। भिन्न-भिन्न कोणों से बनी यह पराधीन यात्रा ठीक नहीं है। इससे यह स्पष्ट है कि वृत्त के विषय की जानकारी का अभाव है तथा यह वृत्ति ही भटकाने में कारण है। एक बार रोग के होने पर औषधि दी जाती है तो रोग ठीक हो जाता है किन्तु रोग की आवृत्ति बारम्बार होने से पुनरावृत्ति होती है जिसका निदान चिकित्सक के लिये असंभव हो जाता है तथा रोगी की स्थिति बिगड़ जाती है। ऐसे ही जीवन की पुनरावृत्ति होने से हम लक्ष्य से दूर होते जाते हैं। इस पुनरावृत्ति से एक बार छुटकारा मिलते ही इस जीव को मुक्ति मिल जाती है।

काल की परिधि में यह सारा का सारा विश्व ही एक सप्ताह में बँध गया। समयचक्र अपनी गति से घूम रहा है, रवि काल का प्रतीक है जिसमें रविवार भी आ जाता है। वस्तुतः वह नहीं आता हम ही उसके पास जाते हैं। पुनरावृत्ति हमारी हो रही है, दिन-रात के इस प्रवाह में आयु बीत रही है। स्वभाव को भूलकर यह मनुष्य वृत्ति, आवृत्ति और पुनरावृत्ति में फंसा हुआ है इसलिये अब हमें वृत्ति को नहीं वृत्त को देखना है। इसी से सम्बन्धित एक विशेष बात और समझनी है कि पुस्तक प्रकाशन के समय पुनः-पुनः प्रकाशित करने पर उसमें प्रथमावृत्ति, द्वितीयावृत्ति आदि डाला जाता है किन्तु मनुष्य यदि एक ही काम को दो-चार बार करे तो उसे आवृत्ति न कहकर पुनरावृत्ति कहा जाता है। यह मनुष्य की दुहराई गई प्रवृत्ति के लिये एक संज्ञा विशेष है। स्वभाव, विभाव का विलोम है। **चलना स्वभाव है और घूमना विभाव**। वृत्त के वृतांत को देखकर अपनी वृत्ति सुधारें, वृत्त को धारे। भगवान् ऋषभदेव, भगवान् महावीर आदि का जीवन वृत्ताकार होने से पूर्ण हो गया। इन महापुरुषों के वृत्तांतों को पढ़कर अपने जीवन में उतारने से उनके वृत्तांतों का प्रयोग अपने जीवन में लाने से पुनरावृत्ति से छुटकारा मिल जाता है। पटरी विद्यमान हो तो गाड़ी की गति सहज हो जाती है किन्तु पटरी के अभाव में गति असंभव तथा गति के अभाव में मंजिल की प्राप्ति भी असंभव हो जाती है। आपने देखा होगा, दिया तले अन्धेरा होता है किन्तु दिवाकर तले नहीं, इसका कारण है कि दिवाकर पूर्ण है-वृत्त है। **इस वृत्ताकार सूर्य पर भी जब राहू की छवि पड़ती है तो कोण बन जाता है तथा ग्रहण लग जाता है। कोणमय जीवन ग्रहण लगने के समान है, मोह रूपी ग्रहण जीवन को लगा है इसलिये जीवन कोण हो गया है।**

जीवन का इतिहास आदर्श प्रस्तुत करने वाला होना चाहिए। बुराई देखें अपनी और अच्छाई देखें सबकी, आदर्श प्रस्तुत करने की यही अच्छी विधा है। स्वाभाविक स्थिति है-धर्म की। इस केन्द्र पर स्थिर होने से वृत्त बनाना सहज है किन्तु अस्थिरता के कारण हम केन्द्र से हिल जाते हैं, अतः वृत्त नहीं बन पाता। पाँच पापों की पुनरावृत्ति अनवरत जारी है। यहाँ तक कि अरहंत परमेष्ठी भी वृत्ताकार नहीं हैं, केवल सिद्ध परमेष्ठी ही वृत्तपने को प्राप्त हैं। सिद्ध परमेष्ठी का जीवन पूर्ण हो चुका है, अभी अरहंत परमेष्ठी भी अधूरे हैं, उन्हें भी पूर्ण वृत्ताकार होना है। अपने जीवन को सुधारो बंधुओं! सुधारो क्या अब तो सु-धारो अर्थात् अच्छे ढंग से धारो, धारण करो, किन्तु क्या बतायें आपको, मुझे कविता की पंक्तियाँ याद आ गईं -

इस युग में भी सतयुग सा सुधार तो हुआ है,
पर लगता है, उधार हुआ है।
अन्यथा कभी का हुआ होता उद्धार।

राहु के सामने आते ही जैसे रवि को ग्रहण लग जाता है ठीक वैसे ही हमारा जीवन पर पदार्थ से प्रभावित हो रहा है और पर पदार्थों को प्रभावित कर रहा है। मैं तो यही समझता हूँ कि **यह मनुष्य का ही प्रभाव है कि ढाईद्वीप में रहने वाले सूर्य को ग्रहण लग जाता है। ढाई द्वीप से बाहर रहने वाले सूर्य में ग्रहण नहीं लगता क्योंकि वहाँ मनुष्य ही नहीं है।** हमारा ज्ञान कमजोर है इसलिये पर पदार्थ से कभी प्रभावित होता है और कभी प्रभावित करता है। जबकि भगवान् का ज्ञान दर्पण की भाँति सब कुछ झलका तो देता है पर प्रभावित नहीं होता। यही हमारे और भगवान् के ज्ञान में अन्तर है। दर्पण के समान जीवन का हो जाना ही वृत्त का दर्शन है। यही भाव इस दोहे में दर्शाया गया है -

सब कुछ लखते पर नहीं प्रभु में हास विलास ।
दर्पण रोया कब हँसा? कैसा यह संन्यास? ॥

हर्ष विषाद करते हैं किन्तु दर्पण हास परिहास नहीं करता। दर्पण की भाँति जीवन का हो जाना ही संन्यास है। संसारी प्राणी पूरा नहीं है फिर भी अपने को पूरा मान रहा है यह उसका मोह है, भ्रम है। इस मोह के विध्वंस के लिये स्वयं पर दृष्टिपात करें तथा आत्मकेन्द्र से हिले नहीं। जो जन शांति चाहते हैं वे स्थिरता धारें, वृत्ति धारें, वृत्त को आदर्श बनायें। वायुयान चालक का ध्यान दिशासूचक यंत्र पर होता है। यात्री कौन-कौन हैं? वे कैसे बैठें हैं? चालक यह नहीं देखता। थोड़ी भी चूक होने पर चालक तत्काल सम्हलता है और यान को भी सम्हालता है। जो स्वयं सम्हलता है और औरों को भी सम्हाल लेता है वही साधक की तरह अपना जीवन वृत्तमय बना लेता है। हम सभी का जीवन समस्याओं से परे/परिपूर्ण आनंददायी हो बस इसी भावना के साथ।

❑ ❑ ❑

टेढ़ापन, तेरापन नहीं है

मानव का मूल स्वभाव सीधापन है, किंतु बाह्य प्रभाव से अथवा स्वार्थ के वशीभूत, स्वभाव में टेढ़ापन आ जाता है। प्रत्येक प्राणी का स्वभाव के अनुरूप आचरण होता है, किन्तु मनुष्य ही वह प्राणी है जो मूल स्वभाव सीधेपन को छोड़कर टेढ़ेपन की क्रिया करता है।

सीधापन अपना है टेढ़ापन नहीं। मनुष्य अवसर आने पर अपना उल्लू सीधा करता है किंतु स्वभाव के मूल रूप के अनुसार आचरण नहीं रखता। **अपनापन त्याग कर टेढ़ेपन की किया से ही मनुष्यों में भटकन है**। भटका पथिक मंजिल नहीं पा सकता। बंदरों को चना बहुत प्रिय होता है। यह उदाहरण आपको ज्ञात होगा-बंदरों का एक दल भोजन की तलाश में एक घर के निकट पहुँचा। घर के अंदर का हालचाल जानने के लिये एक साहसी चपल बंदर घर के अंदर चला गया, शेष बंदर प्रतीक्षा करते रहे। अंदर गये बंदर ने एक घड़े के अंदर देखा उसमें कुछ है। बंदर ने हाथ घड़े में डाला। सीधा हाथ आसानी से घड़े में चला गया किंतु जैसे ही उसने हाथ बाहर निकालने का यत्न किया हाथ बाहर नहीं आया बंदर चिल्लाने लगा तथा साथियों से कहा कि मेरा हाथ घड़े ने पकड़ लिया है। बंदर की आवाज सुनकर एक वृद्ध बंदर घर के अंदर आया तथा देखते ही सारी स्थिति उसकी समझ में आ गयी। उसने कहा घड़े ने नहीं पकड़ा है, पकड़ा तो तुमने है। मुट्ठी में जिसे पकड़ रखा है उसे छोड़ दो। छोड़ते ही हाथ सीधा होकर बाहर आ गया। बंधुओं! पकड़ा तो बंदर ने था किंतु चिल्ला रहा था कि घड़े ने पकड़ लिया। जब तक बंदर ने घड़े में रखी हुई वस्तु पकड़ी थी हाथ टेढ़ा था, छोड़ते ही हाथ सीधा हुआ तथा मुक्त हो गया। **ऐसे ही स्वार्थवश प्रवृत्ति में आया हुआ टेढ़ापन मुक्ति में बाधक है किन्तु सीधापन मुक्ति में साधक है**।

बाल्यकाल में मानव मूल स्वभाव के अनुरूप आचरण करता है किंतु बाह्य प्रभाव से टेढ़ापन आ जाता है। बच्चे को पिता जी ने प्रशिक्षित किया ''बेटा देखो अमुक व्यक्ति पूछने आये तो कहना कि पिता जी घर पर नहीं हैं।'' पूछने पर बच्चे ने ज्यों का त्यों कह दिया कि '' पिताजी ने कहा है कि कह दो पिताजी घर पर नहीं हैं।'' बाल्यावस्था में मूल रूप विद्यमान रहता है। बाह्य प्रशिक्षण से टेढ़ापन आ जाता है और मनुष्य का आचरण मूल स्वभाव के विपरीत हो जाता है। चने की पकड़ छूटते ही हमारा हाथ हमारे साथ, नहीं तो हमारा हाथ भी हमारा नहीं। ऐसा लग रहा था कि घड़े ने पकड़ रखा है। क्या घड़े ने पकड़ा था? या स्वयं ने घड़े को पकड़ा था।

मनुष्य स्वभाव से पृथक हो रहा है तथा यही पृथकता दृष्टि में चाल में गर्दन में, वचन में टेढ़ापन लाती है। चाल में टेढ़ापन आते ही दोषयुक्त हो जाती है। यह टेढ़ापन विकृति उत्पन्न करता हैं तथा भटकन में कारण है। **टेढ़ापन तेरापन नहीं, सीधापन अपनापन है**। व्यापार में भी जब बिक्री कम हो तो ग्राहक के रूप में नाती की उम्र के बालक भी देख दुकानदार प्रसन्न हो जाता है तथा अतिमान देते

हुए दद्दा शब्द का भी संबोधन देता है, वहीं अधिक बिक्री पर दुकानदार सीधे मुँह बात नहीं करता तथा दद्दा के दद्दा का भी अपमान कर देता है। दोनों स्थिति टेढ़ेपन की है।

इसी सीधेपन को पाने के लिये संत आराम का जीवन छोड़ साधना के लिये जंगलों में जाते हैं। सीधेपन के लिये तप करते हैं साधना करते हैं। बंधुओं! ध्यान रखो सिर पर भार बहुत हो तो टेढ़ापन आ जाता है। जीवन में विकारों का बोझ है, इस बोझ को कम करने से ही सीधापन आयेगा तथा मुक्ति मिलेगी। इस तरह टेढ़ापन दूर कर कर्त्तव्य करने से हम भी सिद्ध परमेष्ठी के समान सीधे हो सकते हैं उसी सीधेपन की प्राप्ति के लिये हमें प्रयास करते रहना चाहिए।

'महावीर भगवान् की जय!'

❑ ❑ ❑

करुणामय व्यक्तित्व दुर्लभ है

भगवान् महावीर स्वामी का जीवन राग-द्वेष कामादिक विकारी भावों के जीतने का जीवन है। तप-त्याग साधना का जीवन है। अध्यात्म और आचरण का जीवन है। ऐसे जीवन को आदर्श बनाने से हमारी उन्नति ही उन्नति होगी अवनति से अनंतकाल के लिये छुटकारा मिल जायेगा। धन्य है महावीर भगवान् का जीवन जो आज भी हमारे लिये उन्नति की ओर प्रेरित कर रहा है। आज धन्यता का पाना दुर्लभ है धन का पाना नहीं। धन सहज प्राप्त हो जाता है किन्तु धन्यता का पाना अत्यधिक दुर्लभ है। सुलभता में सुख नहीं मिलता किन्तु दुर्लभता में सुख है आनंद है। **दुर्योधन दु:शासन प्रिय नहीं है किन्तु महावीर का व्यक्तित्व अच्छा लगता है। शिष्टता की पहिचान के लिये दुष्टता का भी ज्ञान होना चाहिए।** दुख का अनुभव ही सुख की पहिचान कराने में कारण बनता है। जो दुख सहकर भी दूसरों को सुख प्रदान करते हैं वही इस धरती पर प्रशंसा के पात्र हैं। सूर्य को राहु से ग्रहण लगता है फिर भी सूर्य उजाला देना बन्द नहीं करता इसीलिये तो वह 'सूर्य नारायण' कहलाता है। हम रविवार को आराम करते हैं अवकाश मनाते हैं किन्तु रवि कभी भी रविवार नहीं मनाता, यदि रवि ही रविवार मनाने लगे तो हम लोगों का क्या होगा? वह सदैव सब जगह सभी को प्रकाशित करता है इसीलिये उसका जीवन प्रशंसनीय है, आदर्श है।

हमें भगवान् महावीर के संदेश के अनुरूप ही अपना आचरण बनाना चाहिए। महावीरत्व की प्राप्ति अकेले देखने पढ़ने से नहीं किन्तु उन्हें जीने से होगी। यदि यह मनुष्य एक अंश भी महावीर को जी ले तो उसका जीवन धन्य हो जाये। ध्यान रखो बंधुओं! 'वर्द्धमान' वर्तमान तक इसलिये प्रसिद्ध हैं क्योंकि उनके पास सद्गुण थे। भगवान् महावीर अतीत की नहीं किन्तु प्रतीत की घटना है अत: उन्हें आत्मसात करने से ही हमारी इस संसार की यात्रा पर विराम लगेगा। अन्यथा अनंतकाल से जारी यह यात्रा अनंत काल तक जारी रहेगी। ''चरैवेति चरैवेति'' का स्मरण मात्र ही पर्याप्त नहीं है उसे जीवन में साकार भी करना होगा।

देख सामने चल अरे दीख रहे अवधूत।
पीछे मुड़कर देखता उसको दिखता भूत॥

अभी-अभी इसी देश में गाँधी जी ने महावीर का 'अहिंसा-सिद्धान्त' अपनाया था किन्तु उनके अनुयायी आज गाँधी जी के नाम की दुहाई देते हैं शाब्दिक सम्मान भी व्यक्त करते हैं पर क्या-क्या कर रहे हैं यह कभी विचार किया है आपने? बूचड़खानों की संख्या में निरन्तर वृद्धि क्या गाँधी और उनकी अहिंसा के प्रति सम्मान है। **धन के लिये पशु-धन, गोधन की हत्या कहाँ तक उचित है? दूध की नदियाँ जिस देश में बहतीं थीं उस देश में पशुओं के खून की नदियाँ बह रही हैं क्या यही विकास है?** महावीर और महात्मा गाँधी के इस देश में यदि खून का यह तांडव न रुक सका तो उनकी जयंती महोत्सव मनाने का हमें कोई अधिकार नहीं है। पशु-वध बंद करने का दायित्व प्रत्येक नागरिक का है केवल सरकार का ही नहीं। प्रजातंत्रात्मक देश में नागरिक शक्तिशाली होते हैं क्योंकि वह प्रजा होने के साथ-साथ स्वयं सरकार भी हैं। विदेशी धन के लिये पशु-धन की हत्या अनुचित है। नागरिकों की सुविधाओं के लिये सरकार को विदेशी मुद्रा लेने की आवश्यकता पड़ती है अत: पशु-वध से प्राप्त विदेशी मुद्रा के बराबर की राशि राजकीय कोष में जमा कर पशु-वध तत्काल प्रतिबंधित करने के लिये समाज को दृढ़ संकल्प ले लेना चाहिए। यह लज्जा की बात है कि महात्मा गाँधी के आदर्शों को पूजने वाले उनके नाम की आड़ में गोधन की हत्या करते हैं। महावीर के समय में तो धर्म के नाम पर कुछ प्राणियों की ही बलि दी जाती थी लेकिन आज तो धन की प्राप्ति के लिये बूचड़खानों के माध्यम से अनगिनत पशुओं की बलि दी जा रही है। फिर भी हम हैं कि भगवान् महावीर स्वामी, भगवान् राम और महात्मा गाँधी की जयंतियाँ मनाते चले जा रहे हैं। क्या हो गया है मानवता को? कहाँ खो गई है मनुजता? कहाँ गई करुणा? पाषाण हृदय हो गया है क्या? विश्व को ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' का पाठ पढ़ाने वाले गुरु कहलाने वाले भारतीयों की संवेदनायें क्या समाप्त हो गयी हैं। भारतीय संस्कृति तो यह नहीं है, नहीं है यह भारतीय धर्म और दर्शन। हमने अपने स्वार्थ के कारण महान् विभूतियों के संदेश विक्षत कर दिये हैं। साधु-सन्तों के इस देश ने विश्व को ज्ञान सूत्र दिये किन्तु उनका पालन आज यहीं पर नहीं हो रहा इससे बड़ी विडम्बना और क्या होगी इस देश की तथा देशवासियों की। **जीव हत्या के इस अन्धकार में विकास के प्रकाश की आशा व्यर्थ है**। इस तरह सुख-सुविधाओं के लिये चेतन धन का संहार समूची मानवता के लिये कलंक है अभिशाप है।

अहिंसा रूपी तेल के अभाव में दीपक से प्रकाश मिलना असंभव है केवल दम घुटने वाला धुआँ ही मिलेगा। ऐसी स्थिति में यदि गाँधी जी जीवित होते तो आँख, मुँह, कान बंद करने के लिये दो हाथ नहीं ईश्वर से छह हाथ माँगते क्योंकि विगत ५० वर्ष में हिंसा में वृद्धि ही हुई है। अपने समय की विषम परिस्थितियाँ और धर्म के नाम पर हो रही हिंसा से कातर हो सुख का बहाव

बहाने के लिये भगवान् महावीर स्वामी ने राज्य वैभव का त्याग किया। क्योंकि राजा के राज्य की सीमा निर्धारित होती है तथा उसका दायित्व सीमान्तर्गत प्रजा की भलाई तक होता है किन्तु **महावीर भगवान् को तो सारे विश्व के प्राणियों का कल्याण करना था। भारत ही नहीं विश्व को अशांति से छुटकारा दिलाने के लिये आप राजा नहीं 'महाराजा' हुए। आप सत्य पर आसीन हुए सत्ता पर नहीं।** विघ्न बाधाओं के आने पर भी आप रुके नहीं ध्येय की ओर बढ़ते ही गये। विघ्नों के आने पर सज्जन कभी अपना कार्य नहीं छोड़ते। राहु के राह में आने पर भी सूर्य प्रकाश देता ही रहता है। बंधुओ! दुनिया उन्हें ही याद रखती है जो संकल्प पूर्वक अपने पथ पर बढ़ते रहते हैं। भगवान् महावीर स्वामी न हुए होते तो आज आत्मा की आवाज सुनने वाले भी कोई नहीं होते। जिस प्रकार **अंधकार में एक क्षण के लिये कौंधी बिजली भी अगला पग रखने के लिये प्रकाश दे जाती है उसी प्रकार ज्ञान के क्षेत्र में भी बिजली की एक चमक बोध के लिये पर्याप्त है दिशा निर्देशन मिल जाता है किन्तु यह संभव तब ही है जब कि संकल्प हो आस्था हो।** आज के युग को 'गाँधी जी' भी पर्याप्त प्रकाश हैं कोई चले तो। गाँधी-विचार नहीं गाँधी को जीना आवश्यक है उन्होंने एक जगह कहा है – **''गाय धरती पर दया की कविता है।''** (Cow is a Poem of Pity on the Earth)

बड़े खेद की बात है आज संस्कृति पर कुठाराघात हो रहा है और हम हैं कि चुपचाप बैठे सब देखते जा रहे हैं –

भूखे परिसर देख के भोजन करते आप ।
फिर भी खुद को समझते दया मूर्ति निष्पाप॥

अभी भी दिन शेष हैं, प्रकाश शेष है, मस्तिष्क काम कर रहा है, पश्चाताप के घूँट पीकर महावीर, राम और हनुमान की जयंती मनाना सार्थक कर सकते हो– अहिंसा के प्रयास से, हिंसा के प्रतिबंध से। क्या करूँ! शब्द कुछ कड़े हो सकते है, पर शल्य चिकित्सा के लिये पीड़ा सहन करना ही पड़ती है। निरोग होने के लिये कड़वी औषधि का सेवन करना ही पड़ता है।

उसी कड़वी औषधि सेवन के अनुरूप यदि वाक्यों में कुछ कड़वापन हो तो हिंसा की महामारी रोकने के लिये इसका सेवन करना ही होगा। पूर्व प्रधान मंत्री लाल बहादुर शास्त्री जी के संकल्प को याद करिये, उन्होंने देश में व्याप्त अन्न की समस्या के समाधान के लिये सप्ताह में एक दिन एकाशन व्रत रखने का आह्वान किया था। यह एक तरह से हमारे लिये बहुत बड़ी शिक्षा थी कि हम अपने देश में आई हुई समस्याओं का समाधान त्याग के माध्यम से स्वाश्रित होकर कर सकते हैं। राष्ट्र पर आपत्ति आने पर धन न्यौछावर करने की परम्परा भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है और इस कार्य को करने में जैन समाज का बहुत बड़ा योगदान रहा है। धर्म, सौरभमय है, वातावरण में अहिंसा की सुरभि चतुर्दिक फैलाने के लिये धन अर्पित करने की परम्परा का हमें निर्वाह करना है। और फिर प्राणिमात्र के

प्रति सद्भावना रूप इस अहिंसा धर्म से यह धरती ऐसी हरी-भरी समृद्ध हो जायेगी कि मनुष्य स्वर्ग के देवों से भी कहेगा कि ''यदि सुख चाहते हो तो इस धरती पर आकर देखो।''

अन्त में मैं आप सबसे यही कहना चाहूँगा कि हमें इस दयामय धर्म और अहिंसा की रक्षा के लिये वे सारे प्रयास और संकल्प करना चाहिये जिससे शासन को भी एक बार सोचने के लिये मजबूर होना पड़े। हम हाथ उठाकर संकल्प करें कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये हम तन, मन, धन से कभी पीछे नहीं हटेंगे। इसी में हमारे जीवन की धन्यता है और तीर्थंकर महापुरुषों की जयंतियाँ मनाना हमारा सार्थक है।

यही प्रार्थना वीर से अनुनय से कर जोर।
हरी-भरी दिखती रहे धरती चारों ओर॥
'भगवान् महावीर स्वामी की जय!'

❑ ❑ ❑

त्याग और अहिंसा ही हमारा आदर्श

भारतीय संस्कृति की सुरभि से संसार की सारी दिशायें सुरभित हुई हैं। जिस गन्ध से ग्रन्थों की रचना हुई जिसने आचरण को छुआ ऐसे गन्ध के कोश तीर्थंकर उनके पश्चात् केवली और बड़े-बड़े आचार्य हुए हैं। जिन्होंने मानव समाज को हमेशा दिशा निर्देश दिये हैं। अहिंसा प्रेम-करुणा भारतीय संस्कृति की मुख्य विशेषता रही है। काल का प्रभाव कहें या कहें मानव मन की विकृति, कि आज हिंसा का तांडव उसे कलुषित कर रहा है। पशु-पक्षियों की अस्थि, मल, रुधिर से निर्मित वस्तुओं तथा औषधियों के सेवन से अनजाने ही हम हिंसा में सहभागी बन रहे हैं।

नया जमाना, नया विचार आ गया है। पुराने आदर्श, पुरानी अनुभूतियाँ भुलाई जा रही हैं। अनुभव के आधार पर लिखा गया पुराना साहित्य आदर्श है, सुसंस्कृत है। प्राचीन समय से ही त्याग और करुणा का बहुत बड़ा महत्त्व बतलाया गया है। छोटे से छोटे त्याग का भी कितना बड़ा फल होता है इस बात को बतलाने कौये का मांस खाने का त्याग करने वाले एक भील की कथा आती है। उसने अपनी परिस्थिति के अनुसार बहुत बड़ा त्याग किया था। **बंधुओ? त्याग कोई छोटा बड़ा नहीं होता अपनी सामर्थ्य के अनुसार किया गया त्याग हमेशा बड़ा ही होता है।** समय बीता और उसे रोग हो गया। वैद्यों ने रोग निवृत्ति के लिये उसे कौये का मांस खाने के लिये कहा किन्तु दृढ़ प्रतिज्ञ वह भील न माना। असाध्य रोग से उसकी मृत्यु हो गई किन्तु उसने अपना संकल्प अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ी फलस्वरूप वह स्वर्ग में देव पर्याय को प्राप्त हुआ। उसका जीवन त्याग का आदर्श बना। यह उदाहरण तो उसका था जो भील असभ्य जंगलों में रहते हैं किन्तु हम तो सभ्य समझदार है फिर भी किस बहाव में बहते जा रहे हैं।

एक पुराना जमाना वह था और एक जमाना यह है। आज अपनी सुख-सुविधाओं के लिये क्या-क्या क्रूरता नहीं बरती जा रही। पशु-पक्षियों का रक्त तक प्रासुक कर दवाईयाँ बन रही हैं, सौन्दर्य प्रसाधन की सामग्री तैयार हो रही हैं मादकतापूर्ण पेय तथा खाद्य पदार्थ बनाये जाते हैं यह सब पशुओं की हत्या कर प्राप्त किया जाता है। हैदराबाद के पास अलकबीर नाम का कत्लखाना खोला गया है। **मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि कत्लखाने के नाम में उस कबीर को भी जोड़ दिया गया जिसका हिन्दी साहित्य आज भी दया करुणा प्रेम की प्रेरणा देता है।** जिस कबीर के साहित्य पर आज शोध हो रहे हैं उस कबीर की करुणा भरी आवाज भी सुन लेनी चाहिए। उनके दोहों को देखिये-

तिलभर मछरी खाय के कोटि गऊ दे दान।
कासी करवट लै मरै तो भी नरक निदान॥
बकरी पाती खात है ताकी काढ़ी खाल।
जो बकरी को खात है ताको कौन हवाल॥

ये तो रही मात्र कबीर की बात किन्तु **किसी भी धर्म में किसी भी धर्मगुरु या धर्मग्रन्थ ने मनुष्य के लिये मांसाहार का विधान नहीं किया। हमेशा-हमेशा सभी ने दया, प्रेम, सेवा और सदाचार आदि का ही उपदेश दिया है।** परन्तु आज यह सब स्वप्न सा होता जा रहा है। एक-एक कत्लगाह में आज एक-एक दिन में हजारों पशु मारे जा रहे हैं। क्या हो गया इस मानव को? क्या करुणा बिल्कुल समाप्त हो गई है। दुनिया को दया का पाठ पढ़ाने वाला भारत कैसे इस क्रूरता का अनुकरण करता जा रहा है। आज पुनः महात्मा गाँधी जैसे व्यक्तियों की आवश्यकता है जिन्होंने अहिंसा के आधार पर ब्रिटिश हुकूमत से देश को आजाद कराया। मनुष्य तो आजाद हो गया किन्तु इन मूक दीन-हीन पशुओं की स्वतंत्रता छिन रही है। ध्यान रखो बंधुओ! **पशु-पक्षी कभी भी भार नहीं हो सकते भारत में। भार तो वह होता है जो प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करता है। जानवर कभी भी प्रकृति के नियमों का उल्लंघन नहीं करते।** देखिये! शाकाहारी पशु भूखा रहने पर भी मांस का भक्षण नहीं करता। किन्तु मनुष्य को प्रकृति ने तो शाकाहारी बनाया तथा विकृति ने मांसाहारी बना दिया।

बूचड़खानों तक पशु पहुँच ही न सकें तो पशु हिंसा स्वयमेव रुक जायेगी। इसे सफल बनाने के लिये जिला, संभाग तथा राज्य की सीमाओं पर प्रतिबन्ध भी लगाये जा सकते हैं, किन्तु ध्यान यह भी रहे कि उन पशुओं के लिये पर्याप्त प्रबंध भी किये जाने चाहिए। जिस तरह अनाथ मनुष्यों के जीवन-यापन के लिये अनाथालय बनाये जाते हैं उसी प्रकार इन अनाथ निराश्रित पशुओं के संरक्षण के लिये स्थान बनाये जाने चाहिए। मनुष्य का स्वार्थ तो देखो, जब तक पशु काम आते रहते हैं, गाय-भैंस दूध देती रहतीं हैं तब तक उनका पालन-पोषण, इसके बाद उन्हें ऐसे ही छोड़ दिया जाता है, बेचारे भूखे प्यासे घूमते रहते हैं। वृद्ध होने पर क्या कभी अपने माता-पिता को ऐसे ही छोड़ा जाता है। यही कर्त्तव्य

बोलता है क्या हमारा? नहीं, अब संरक्षण के इस कार्य में कमर कसकर जुटने की आवश्यकता है लेकिन चमड़े के बेल्ट से कमर नहीं कसना (हँसी)। **हमारा खान-पान, बोल-चाल, बस वेश-भूषा भी शाकाहारी अहिंसक होने का परिचय देती है। तभी तो खादी की चादर में लिपटे गाँधी जी महात्मा कहलाने लगे।** पर विरोधाभास तो देखिये इस भारत में कि पशुओं को मारकर उनका मांस यहाँ से निर्यात किया जाता है तथा वहाँ (विदेशों में) तैयार की गई खाद यहाँ मंगाई जाती है। हिंसा किस-किस दिशा से, कैसे हमारे जीवन में घुसती जा रही है और इस पर रोकथाम कैसे लगेगी यह सब जानकारियाँ और प्रयास दिन ढलने के पूर्व ही कर लेना जरूरी है। अन्यथा मुट्ठी बाँधकर हम आये और हाथ पसारकर हमें चले जाना है। सिर पर पाप की गठरी लादकर जाना ठीक नहीं होगा। समय रहते हम जाग जायें तथा अहिंसा एवं धर्म संस्कृति की रक्षा में जुट जायें तभी हमारा मानव जीवन सार्थक है।

'अहिंसा परमो धर्म की जय!'

❑ ❑ ❑

सन्मति मिले समर्थ

कल्पवृक्ष से अर्थ क्या कामधेनु भी व्यर्थ।
चिन्तामणि को भूल जा सन्मति मिले समर्थ॥

अनन्तकाल से यह आत्मा अज्ञान दशा में सोई हुई आ रही है। यह जागे इसका उदय हो इसलिये इस सर्वोदय तीर्थ पर समय-समय पर कार्यक्रम आयोजित किये गये। संसारी प्राणी सांसारिक लिप्साओं की पूर्ति के लिये बहुत सारी चिन्तायें/कामनायें करता है पर सन्मति/सद्बुद्धि पाने की कामना नहीं करता। एक बार यह मिल जाये तो फिर किसी की आवश्यकता नहीं। आज तक इसे पर का ही परिचय प्राप्त हुआ है स्व का नहीं, अब हमें पर की बात नहीं करना, भले ही पर के निमित्त से करें पर अपनी ही बात करना है किन्तु विचित्रता तो यह है कि आज अपनी भी बात की जा रही है तो पर को सुनाने के लिए इसीलिए कहा जा सकता है कि हमें सन्मति मिली ही नहीं। हमारी ये मान्यतायें मात्र हैं कि हम इनके बन्धु हैं ये हमारे बन्धु हैं, हितकारी हैं, पर जो इस मानने और दिखाई देने वाले बन्धनों को तोड़ देते हैं या तोड़ने की शिक्षा देते हैं वही वास्तव में महान् हैं, उपकारी हैं।

सान्निध्य संगति से संस्कारों में अवश्य ही परिवर्तन आता है। गलत संगति पाकर लोहा जंग खा जाता है किन्तु उसी लोहे की बनी तलवार म्यान में सुरक्षित रखी रहती है। देखा होगा आपने-सभी के घरों में रोटी पकाने के लिये लोहे का तवा रहता है सोने-चाँदी का नहीं, चाहे अमीर का घर हो या गरीब का, तवा तो लोहे का ही रहेगा। इस तवे में कभी भी जंग नहीं लगती क्योंकि वह तप रहा है, हमेशा उसका उपयोग हो रहा है किन्तु संसार के दलदल में फंसा यह जीव आज तक जंग खाता ही आ रहा है। इसका कारण एक ही है कि इसे सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का सान्निध्य नहीं मिला, यदि मिला भी तो

उनके प्रति रुचि/भक्ति नहीं जागी, हम उनके चरणों में नहीं रहे। बड़े पुण्य योग से यह अवसर मिला है, रुचि भक्ति भी हमारे अन्दर जाग गई है ऐसी स्थिति में कल्पवृक्ष कामधेनु और चिन्तामणि रत्न भी व्यर्थ से लगते हैं क्योंकि समर्थ सद्बुद्धि की प्राप्ति हो गई है। किसी तरह की कामना की जरूरत नहीं। अब जरूरत है कि काम (इच्छा) ही न रहे इसलिये दोहे में कहा है कि **''सन्मति मिले समर्थ''**। केवल कर्त्तव्य समझकर ही कर्त्तव्य बोध कराने में लगे रहना चाहिए।

इस प्रसंग में एक बात और कहना चाहूँगा कि जिस तरह भोजन का ज्यादा पकना और कम पकना दोनों वर्ज्य है, स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक है, इस तरह का होने में अग्नि आटा या तवा का दोष नहीं है किन्तु इसमें हमारी असावधानी प्रमाद ही मुख्य कारण है। इसी प्रकार बच्चों का मन और जीवन भी है। अत: समय और योग्यता का ख्याल रखते हुए इन्हें (शिविरार्थियों को) बहुत अच्छे तरीके से शिक्षा संस्कार देना है। **आप सभी जन अपने जीवन में ज्ञान और संयम के संस्कार कायम रखते हुए सच्चे देव शास्त्र गुरु की भक्ति आराधना में लगे रहें इसी में कल्याण है।**

'महावीर भगवान् की जय!'

❑ ❑ ❑

आत्म दृष्टि ही अपना पथ

इस संसार में बहुत सारे कठिन कार्य हैं किन्तु मान को नियंत्रण में रखना सबसे कठिन कार्य है। यह मान कषाय की ही परणति है कि हम अपनी मान्यता दूसरों पर थोपने का प्रयास करते हैं पर दूसरों की मान्यता हम स्वीकार करना नहीं चाहते। हम यह देखते रहते हैं कि हमारी मान्यता का समर्थन कौन-कौन कर रहा है। जिस प्रकार फूल को यदि पानी मिलता रहे तो वह खिला रहता है किन्तु पानी नहीं मिलने पर वह मुरझा जाता है ठीक इसी प्रकार हमारी प्रसन्नता दूसरों पर टिकी हुई है। परन्तु भगवान् कहते हैं कि अपने जीवन को दूसरों से नहीं अपने आपसे ही पुष्ट करो। हमें देखना यह है कि हमारी स्वयं की मान्यता स्वयं के लिये कितने प्रतिशत में है। **स्वयं को स्वयं के रूप में यदि हम स्वयं ही नहीं मानते तो दूसरे कैसे मान सकते हैं यह विशेष रूप से ध्यान देने योग्य बात है।** चुनाव प्रक्रिया देखी होगी आपने जिसमें उम्मीदवार दूसरों का समर्थन दूसरों का वोट लेने की भावना रखता है किन्तु अपनी वोट स्वयं को देने का स्वतन्त्र अधिकार भी रखता है। और वह अपना वोट अपने आपको देता भी है। अब 'जिसका स्वयं का वोट स्वयं को ही न मिले तो वह जीत कैसे सकता है। **जो व्यक्ति अपनी पहचान कर अपने आपको वोट देता है वह तीन लोक का नाथ भगवान् बन जाता है फिर सारी दुनियाँ उसे वोट देने तैयार हो जाती है।** मैं आप से पूछना चाहता हूँ कि आप लोगों का चुनाव चिह्न क्या है? शरीर या आत्मा। सील किस पर लगाई है आज तक। इस जड़ शरीर को वोट देने वाला यह अज्ञानी प्राणी कभी जीत नहीं सकता इस संसार में।

यह मोक्ष मार्ग है ; इसमें स्वयं की दृष्टि पाना जरूरी है। यहाँ दूसरों की दृष्टि से काम नहीं चलेगा। देखने के लिये यदि अपने पास दृष्टि है तो चश्मा फिर भी कथंचित् सहायक हो सकता है पर दूसरों की दृष्टि कदापि नहीं। दूसरे की दृष्टि से दूसरों को देखा जा सकता है, पर अपने लिये अपनी ही दृष्टि, अपनी ही आँख से देखा जाना सम्भव है। यदि साफ-साफ नहीं दिख रहा है तो ऑपरेशन के माध्यम से आँख का पर्दा हटाकर रहस्य का उद्घाटन किया जा सकता है। इस कार्य में हमारा प्रयास/पुरुषार्थ इतना ही मायने रखता है कि पर्दा को हटाओ और अंतर्दृष्टि प्राप्त करो। ऐसी दृष्टि जिसके बल पर हमें अपनी और भगवान् की पहचान होती है।

भगवान् की पहचान का मतलब है कि उनकी पहचान से हम अपनी पहचान करें। जो दृष्टि स्वयं को नहीं देख सकती /पहचान सकती वह पर को भी नहीं देख सकती और जो स्व-पर को नहीं देख सकती वह विश्व को भी नहीं देख सकती और जो विश्व को नहीं देख सकती वह सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकती है, उसकी दृष्टि सम्यक् कैसे हो सकती है। **अपनी दृष्टि को सम्यक् बनाकर वस्तुतत्त्व को पहचानने का प्रयास करो।**

शिविर चल रहा है यहाँ पर, परीक्षा होगी, नम्बर भी मिलेंगे। मैं पूछना चाहता हूँ आप सबसे - कि नम्बर कौन देता है? परीक्षक या हम स्वयं। बात स्पष्ट है हमारे लिखे अनुसार ही नम्बर मिलते हैं अर्थात् जो हम लिखते हैं उसके अनुसार ही कापी जाँचने वाला नम्बर देता है। वास्तव में हमें हमारी योग्यता ही नम्बर दिलाती है। इस परीक्षा को फिर भी नकल से पास किया जा सकता है किन्तु मोक्षमार्ग में नकल का कोई काम नहीं। **दिगम्बर हैं हम कर लो नकल और हो जाओ पास । नहीं, अकल के बिना नकल भी सफल नहीं करा पाती किसी को।** युग के आदि में ४००० राजाओं ने की थी आदिनाथ भगवान् की नकल, पर सब फेल हो गये। यहाँ तो वही पास होता है जो विवेक विश्वास के साथ स्व-पर की पहचान कर आगे बढ़ता है। इस छोटे से जीवन में हमें दुनियादारी की बातें नहीं करना किन्तु उनकी बातें करना है जो "**निजानंद रसलीन**" अपने ही आनंद रस में लीन रहते हैं। प्रति समय उत्पन्न और विनष्ट पर्यायों में भी जो शाश्वत आत्मतत्त्व के अनुभवन में लीन रहते हैं।

तरंग क्रम में चल रही पल-पल प्रति पर्याय।
ध्रुव पदार्थ में पूर्व का व्यय होता फिर आय॥

पदार्थ की सत्ता ध्रुव है, प्रति समय पर्याय का तरंग क्रम चल रहा है पर आत्म-सरोवर ज्यों का त्यों बना हुआ है। एक पर्याय जा रही है दूसरी पर्याय आ रही है। यह आने-जाने का क्रम निरन्तर जारी है। दृष्टि प्राप्त ज्ञानी इसमें उलझता नहीं है किन्तु अज्ञानी जिसे इसका रहस्य ज्ञात नहीं वह उलझ जाता है। इस उलझन से सुलझाने के लिये ही सारे धार्मिक प्रयास हैं। पर हम हैं कि समझ ही नहीं पाते इस रहस्य को। **यह जन्म और मरण की संतति कहाँ से, कब से आ रही है इसके बारे में सोचना?**

विचार करना जरूरी है अन्यथा अन्त में पश्चाताप ही हमारे हाथ लगेगा।

क्या था क्या हूँ क्या बनूँ रे मन अब तो सोच।
वरना मरना वरण कर बार-बार अफसोस॥

बंधुओ! यह सारी बातें आचार्यों ने अपने उपदेश में कहीं हैं। इस वस्तु व्यवस्था को समझने के लिये आचार्य प्रणीत शास्त्रों का स्वाध्याय करना चाहिये। बहुत विरला ही व्यक्ति इस तत्त्व-ज्ञान को प्राप्त कर पाता है। **ये ज्ञान और संयम के संस्कार थोड़े भी पर्याप्त हैं मुक्ति की प्राप्ति के लिये।** बीज के समान योग्य वातावरण पाकर यह एक दिन बहुत बड़े वट वृक्ष के रूप में प्रति-फलित होंगे। अपने को पहचान कर इन संस्कारों को पाने का प्रयास हमेशा करते रहना चाहिये यही मुक्ति का मार्ग है।

'महावीर भगवान् की जय!'

❑ ❑ ❑

बड़प्पन श्रेष्ठ है बड़ा होना नहीं

आज शिक्षण शिविर का समापन है। शिक्षा देने के रूप में शिविर का समापन है किन्तु प्राप्त की गई शिक्षा को जीवन में उतारने की शुरूआत। **भोजन करने के उपरान्त जिस तरह पाचन की क्रिया प्रारंभ होती है उसी तरह प्राप्त किये गये शिक्षा के संस्कारों को अब जीवन में उतारना है।** किये गये भोजन का यदि पाचन न हो तो अजीर्ण हो जाता है, ठीक ऐसा ही शिक्षा के क्षेत्र में भी है यदि उसे आचरण में न ढाला जाये तो अहितकारी हो जाती है। यहाँ पर दो बातें विचारणीय हैं कि किसको संस्कार? और किसका संस्कार? तो आचार्य महाराज कहते हैं कि इस जीव को ज्ञान चारित्र के माध्यम से संस्कारित करना है। प्रश्न यह उठता है कि जब जीव स्वयं ज्ञानवान एवं चारित्र स्वभावी है तब फिर उसे संस्कारित करने की जरूरत क्या है? तो उत्तर दिया गया है कि यद्यपि यह जीव स्वभाव से ज्ञान और चारित्र वाला है किन्तु मिथ्यात्व के प्रभाव से इसका ज्ञान चारित्र विकृत हो गया है इसलिए इसे संस्कारित करने की आवश्यकता है। भगवान् महावीर या उनके उपासकों ने इसका प्रचार-प्रसार उपदेशों के माध्यम से ही नहीं बल्कि प्रचाल (चलकर) भी किया है। इसलिए कहा गया है कि **ज्ञान के बढ़ने के साथ-साथ उसे सम्हालने की शक्ति भी बढ़नी चाहिये अन्यथा वह गतिमान गाड़ी के स्टेरिंग को सम्हालने में असमर्थ ड्रायवर की तरह खतरनाक हो जाता है।**

ज्ञान ही दुख का मूल है ज्ञान ही भव का कूल।
राग सहित प्रतिकूल है राग रहित अनुकूल॥
चुन-चुन इनमें उचित को मत चुन अनुचित भूल।
सब शास्त्रों का सार है समता बिन सब धूल॥

हमारा ज्ञान रागान्वित है; पर पदार्थ की ओर झुक रहा है इसलिए दुख का कारण बना हुआ है

जबकि भगवान् का ज्ञान राग-द्वेष से रहित स्वभाव में स्थिर है और यही कारण है कि प्रभु पर पदार्थ को जानने का उद्यम नहीं करते, पर पदार्थ उनके ज्ञान में झलकते हैं यह पृथक् बात है। वस्तुतः ज्ञान की खुराक ज्ञेय नहीं किन्तु ज्ञान ही है। दुनिया के साथ सम्बन्ध रखने से ही सुख का अनुभव होता है ऐसी हमारी मान्यता है किन्तु वास्तविक सुख तो अपने आप में आने पर ही होता है। देखा होगा आपने - सुबह अपनी छाया बहुत बड़ी दूर-दूर तक फैली रहती है इसी तरह अन्त में शाम को भी छाया का विस्तार रहता है किन्तु मध्याह्न में छाया गायब हो जाती है, लगता है जैसे कि स्वयं में लीन हो गई हो। यह मध्याह्न, मध्यस्थता समत्व की प्रतीक है। बंधुओ! यदि आपका ज्ञान आचरण की आराधना करता है तो आनंददायी स्वयं में लीन हो जाता है। **चरण का साथ देने वाला ज्ञान स्वस्थ आत्मस्थ माना जाता है।** आत्म परिधि से बाहर जाने पर ही ज्ञान परेशान होता है। हमें अन्य को नहीं अपने आप को, अपने आत्म को देखना है यही हमारी संस्कृति है भगवान् को देखना ही नहीं, उनकी भक्ति में लीन होना है। **भक्ति एक ऐसा माध्यम है जिसमें भक्त कौन है और भगवान् कौन यह पहचान नहीं हो पाती। सारी दुनिया खत्म हो जाती है इस भक्ति में।**

इसी भावना को मैंने इस दोहे में दर्शाया है-

भक्त लीन जब ईश में, यूँ कहते ऋषि लोग।
मणि-काँचन का योग न, मणि प्रवाल का योग॥

मणि काँचन का योग तो सभी जानते हैं इसमें नैकट्य है पर अभेद नहीं, किन्तु एक मणि-प्रवाल का योग भी है जिसमें मणि और प्रवाल के आमने-सामने रखे रहने पर यह ज्ञान नहीं हो पाता कि मणि कौन है और प्रवाल कौन है दोनों एक ही रंग में रंग जाते हैं। स्फटिक मणि प्रवालमय हो जाती है। धन्य है वह भक्ति **जिसमें भक्त इतना तन्मय हो जाता है कि मणि-प्रवाल के योग की तरह भेद भी अभेद जैसा दिखने लगता है।** इस भारत में जहाँ भक्ति की परम्परा है तो वहीं नीति न्याय को भी सम्मान मिला है। आज इन्सान का जीवन संघर्षमय बनता जा रहा है इसका एक ही कारण है कि न्याय नीति को छोड़कर मध्यस्थ भूमिका से हट जाना तराजू के पलड़े से भले ही ऊपर नीचे हो किन्तु उसका काँटा यदि केन्द्र को नहीं छोड़ता मध्यस्थ रहता है तो सत्यासत्य का सही निर्णय दे सकता है, अन्यथा नहीं। धर्मकांटा तो धर्मकांटा ही है। हमारा जीवन भी धर्मकाँटे की तरह यदि न्याय से युक्त सधा हुआ है तो हम सत्यासत्य का सुखद निर्णय कर सकते हैं अन्यथा कलह और संघर्ष के अलावा हमारे हाथ कुछ भी लगने वाला नहीं।

लेन-देन में हीनाधिकता करने से प्रामाणिकता खंडित होती है विश्वास उठ जाता है और जीवन संघर्षमय बनता है। भले ही ज्ञान कम हो किन्तु जीवन में इस धर्म की, आचरण की बड़ी मुख्यता है। इस धर्म के प्रभाव से तिर्यंच की निम्न पर्याय में जन्म लेने वाला श्वान भी देव हो जाता है और पाप

अधर्म के वशीभूत होकर उच्च पर्याय में जन्मा देव भी श्वान हो जाता है। और पाप अधर्म के वशीभूत होकर उच्च में जन्मा देव भी श्वान हो जाता है, इस बात को बतलाने के लिये इंग्लिश में शब्द भी बड़े फिट बैठ रहे हैं, देखिये-Dog यदि धर्म करता है तो वह उससे विपरीत अर्थात् God बन जाता है और God भी यदि अधर्म के वश होता है तो उससे विपरीत Dog बन जाता है। धर्म की बात बड़ी रहस्यपूर्ण है बंधुओ। **जिसके जीवन में धर्म है/न्याय है उसकी हमेशा उन्नति होती है, विजय होती है। अधर्म और अन्याय हमेशा हारता ही हारता है।**

उन्नत बनने नत बनो लघु से राघव होय।
कर्ण बिना भी धर्म से विजयी पांडव होय॥

रामायण और महाभारत ऐसे कथानक हैं जिनके माध्यम से संक्षेप में भारत का इतिहास समझ में आ जाता है। इसलिए इस दोहे में कहा गया है कि उन्नति के लिये नति-नम्रता आवश्यक है, रघुवंशी राम बनने की परम्परा यही है और कर्ण के बिना भी पाण्डवों के पास यदि धर्म (धर्मराज) है तो जीत पाण्डवों की होगी। यह प्रसंग महाभारत का है जिसमें कर्ण जो कि पाण्डवों का ही भाई था युद्ध में कौरवों की ओर चला गया था किन्तु इसके बाद भी न्याय परायण धर्मनिष्ठ धर्मराज के रहने से पाण्डव विजयी हुए। ध्यान रखो! अकेले बड़े होने मात्र से काम नहीं बनते किन्तु बड़प्पन से काम बनते हैं, बड़प्पन श्रेष्ठ है बड़ा होना नहीं।

समय आपका हो रहा है, सर्वोदय ज्ञान संस्कार शिक्षण शिविर के इन दस दिनों में यही शिक्षा संस्कार दिये गये हैं कि धर्म और धर्मात्माओं के प्रति भक्ति विश्वास जागे। बिना विशेष सुविधा/प्रबंध के भी यह सफल रहा, बड़ा सराहनीय कार्य है। प्रभु से यही प्रार्थना करते हैं कि सभी का जीवन इसी तरह संस्कारित हो एवं धर्मनिष्ठ बने।

'महावीर भगवान् की जय!'

❑ ❑ ❑

पावर नहीं विलपावर बढ़ाओ

संसारी प्राणी को मुख्य रूप से तीन ऋतुओं के माध्यम से राग-द्वेष, धर्म विषाद होता है। गर्मी में सर्दी और सर्दी में सूर्यनारायण याद आते हैं। जब जो है उस समय उससे राग क्यों नहीं? जाने के बाद अनुराग क्यों? जिस समय जो मौसम है उस समय उसी का आनंद क्यों नहीं लिया जाता। इन ऋतुओं को बार-बार परिवर्तित/समाप्त करने की अपेक्षा समाप्त करने की चाह रखने वाले मोह को ही समाप्त कर देना चाहिए। यह मोह का ही परिणाम है कि मनोनुरूप कार्य होने पर हम प्रशंसा के गीत गाने लगते हैं और मन की न होने पर उसी की अवहेलना/उपेक्षा करने लगते हैं। मानव मन की यह बहुत बड़ी

कमजोरी है। स्वभाव का भान होते ही यह सारी बातें पीछे छूट जाती है। पैसा आ जाये तो खूब उत्साह विलास और चला जाये तो उदास, निराश किन्तु वास्तविकता समझ में आते ही न विलास न निराश बल्कि संन्यास आ जाता है। एक वह व्यक्ति जिसे हम आपके सामने लाकर रख रहे हैं, आप लोगों की अपेक्षा बहुत पीछे था पर कैसे बढ़ गया आगे, इस पर आप सभी को विचार करना है।

चैन नहीं है बिल्कुल, रात बहुत बड़ी है, चारों ओर भोग सामग्री फैली है, सब तरफ गहन मौन छाया है। किसी को उठाना/बुलाना नहीं चाहता है वह/वह चाहता है कि सब लोग ऐसे ही सोते रहे और मैं चुपचाप धीरे से निकल जाऊँ/निकलने के लिये रस्सी नहीं तो क्या? कुछ भी ....। हाँ! will power होना चाहिए। आपके पास में धन, बल, पद का power हो सकता है पर will power नहीं है। हमें आज इस व्यक्ति के माध्यम से power की नहीं will power, self confidence की बात करनी है। यदि हमारी इच्छा शक्ति प्रबल हो तो बिना रस्सी के भी रस्सी का काम हो सकता है। फिर नसैनी की जरूरत नहीं सैनी (मन/इच्छा) भर हो, समझदारी भर हो। जहाँ चाह है वहाँ राह निकल ही आती है और रास्ता खोज लिया गया-साड़ियाँ बाँधकर नीचे उतर गया वह। क्या सोचकर निकले? भवन को छोड़कर वन की ओर क्यों गया? इस भवन में सुख नहीं तो दूसरा भवन, राजभवन भी तैयार किया जा सकता था किन्तु सब कुछ छोड़कर वन की ओर क्यों? बस एक ही बात-आत्म श्रद्धान् self confidence, will power।

काली-काली घटायें देखकर, बिजलियों की चमक और बादलों की गर्जन सुनकर सभी भयभीत हो जाते हैं, घबराते हैं किन्तु वह मयूर दल निर्भीक आनंद के साथ नाचता रहता है क्योंकि उसे इष्ट दिख गया है। कदम आगे बढ़ते गये, कंकर काटे आये पर रुके नहीं। रास्ते में पदचिह्न अंकित होते गये रक्त के निशान से। कष्ट का ज्ञान तो हुआ होगा पर दृढ़ता कैसी अद्भुत, जैसे अपने ही घर की ओर जा रहे हों, शरण्य की ओर जा रहे हों। पहुँच गये उल्लास के साथ, प्रणाम किया और तथास्तु के रूप में मिल गया आशीष। इतना ही सुनने मिला कि-केवल तीन दिन की आयु शेष है, शीघ्र ही अपने कल्याण में लग जा और फिर क्या? एक साथ दैगम्बरी दीक्षा। क्या साहस है, कहीं से आ गया, कैसे आ गया यह साहस। **वन में किसने बुलाया? और भवन को किसने भुलाया? यह सूक्ष्म डोर दिखती ही नहीं फिर भी सम्बन्ध तारतम्य बना रहता है।** रक्त की गन्ध पाकर स्यालनी आ गई बच्चों सहित, खाना शुरू हो गया लेकिन वह निडर निस्पृह खड़े हैं मेरु की तरह अडिग। वही काया जिसे सरसों के दाने चुभते थे, रत्न कम्बल के बाल सह्य नहीं थे, रत्न दीपक के प्रकाश में पालन-पोषण हुआ, कमल पत्र में सुवासित चावलों के एक-एक दाने चुगे जाते थे, और आज अहा...! हा....will power, self confidence वही काया, वही क्षेत्र वही भोग्य सामग्री, पर कहीं से आ गई ये दृष्टि। उनका नाम मालूम है क्या था? वे थे हमारे आदर्श सुकमाल स्वामी।

बंधुओ! भूख है तो खोज हो ही जाती है अनाज की। दृष्टि होने पर गन्तव्य मिल ही जाता है। आत्मज्ञान के अभाव में यह संसारी प्राणी शरीर की सेवा में लगा रहता है किन्तु आत्मज्ञान प्राप्त होते ही कड़े से कड़े प्रबंध और वैभव सब पड़े रहते हैं फिर वह शिव राही शरीर की परवाह नहीं करता। शरीर तो अनेकों बार मिला, मिला और छूटा पर उसको तो देखो जिसे मिला है। शरीर के मिलने पर हर्ष और छूटने पर विषाद क्यों? क्या कभी पुराने वस्त्र बदलते समय हम विषाद करते हैं। गीता में कहा गया है कि यह आत्मा अखेद्य है, अभेद्य है, अक्लेक्ष्य है नित्य ही सनातन है जो पानी में डूब नहीं सकती, अग्नि में जल नहीं सकती, वायु के द्वारा शोषित नहीं हो सकती ऐसी यह आत्मा अविनश्वर है। समयसार में भी कहा गया है कि शरीर के छिद जाने पर, मिट जाने पर भी इस आत्मा का कुछ भी नहीं बिगड़ता है। फिर भी हम हैं कि इस रहस्य को न समझकर शरीर के व्यामोह में फँसे हुए हैं यही अज्ञानता हमारी दुख परतन्त्रता का कारण बनी हुई है।

रणांगन में अर्जुन ने जब देखा कि सामने गुरु द्रोणाचार्य और सारे कुटुम्बीजन खड़े हुए हैं तब धीरे से नीचे गांडिव रख दिया और ज्ञान योग की बात करने लगे। तब कहा गया– हे! अर्जुन, रणांगन में तुम ज्ञानयोग का उपदेश सुनना चाहते हो। मोह की वजह से तुम्हें सिर्फ और सम्बन्ध दिखाई दे रहे हैं, अन्याय नहीं दिख रहा। यदि तुम्हें अन्याय दिखता तो तुम रणांगन के कर्त्तव्य से पीछे नहीं हटते। **रणांगन में सामने वाले की आरती नहीं होती वह तो अराति (शत्रु) होता है।** शिक्षा देने वाले पर कैसे बाण चलाये अर्जुन। अरे यदि सही शिक्षा देने वाला होता तो अन्याय की ओर खड़ा ही क्यों होता। अर्जुन को दृष्टि प्राप्त हुई, मोह भंग हुआ, स्वाभिमान जागा, कर्त्तव्य का भान हुआ और फिर क्या हुआ? सो सभी को ज्ञात है।

यह देश जब परतन्त्र था तो हमें एक नारा दिया गया था कि **''स्वतंत्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है''। यह नारा ही नहीं हमारा सिद्धान्त भी है।** अनादिकाल से यह जीव परतन्त्रता का कष्ट भोग रहा है, यह भूल ही गया कि स्वतन्त्रता पाने का अधिकार हमारा जन्मसिद्ध ही है। इसके अन्दर स्वयं भगवान् बनने की शक्ति है पर वर्तमान में वह खोई हुई है। इसके अन्दर छिपा हुआ परमात्मा अभी सोया हुआ है, इसे जगाने की जरूरत है। जागृति के आते ही हमारे कदम गन्तव्य की ओर बढ़ने लगते हैं। **संकल्पशक्ति का धनी वह वैराग्यवान साधक फिर लक्ष्य की प्राप्ति के लिये सब कुछ सहन करने तैयार हो जाता है सुकमाल स्वामी की तरह।** धन्य है वे सुकमाल स्वामी जिन्होंने अति सुकुमार काया को पाकर भी मोक्षमार्ग में कमाल का काम कर दिया। वह काम किया जिसे युगों-युगों तक याद रखा जायेगा। ये कथायें ही नहीं हैं किन्तु जीवन को जगाने वाले प्रेरक प्रसंग है। इन्हें सुनकर हमारा स्वाभिमान जागृत हो जाता है, will power बढ़ जाता है। **सुकमाल स्वामी ने तो तीन दिन में ही अपना सारा वैभव प्राप्त कर लिया जो अनन्त काल से खोया हुआ था। हम भी उन्हीं की तरह अपने खोये हुए स्वतंत्र वैभव को प्राप्त कर सकते हैं बस जरूरत है आत्म विश्वास की।** उस आनंद वैभव की प्राप्ति हमें भी शीघ्रातिशीघ्र हो इसी भावना के साथ। ❑ ❑ ❑

सिद्ध-चक्र महामण्डल विधान की सम्पन्नता (एक झलक)

पावन भूमि-अमरकंटक में जैन समाज द्वारा आयोजित १००८ श्री सिद्धचक्र महामण्डल विधान एवं विश्वशांति महायज्ञ के आठ दिवसीय आयोजन का समापन धूमधाम से हुआ। आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के सानिध्य में होने वाले इस आयोजन का शुभारम्भ ध्वजारोहण से हुआ। इससे पूर्व घटयात्रा निकाली गयी। जिसमें नर्मदा उद्‌गम से जल लाकर पूजा स्थल की शुद्धि की गयी। पण्डित प्रतिष्ठाचार्य विमलकुमार सौरया टीकमगढ़ के कुशल निर्देशन में सम्पूर्ण विधि-विधान सम्पन्न हुए। विविध धार्मिक कार्यक्रम एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों से पूरा अमरकंटक धर्ममय हो गया। प्रतिदिन विभिन्न मठों एवं आश्रमों से आने वाले संत महात्माओं को देखकर ऐसा लगता था मानों सर्वोदय तीर्थ धार्मिक समन्वय का केन्द्र बन गया हो।

श्रोताओं को आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के प्रवचन प्रेरणा-दायक रहे। कल्याण आश्रम के अधिष्ठाता अमरकंटक के सुप्रसिद्ध संत बाबा कल्याण-दास जी अनेक संतों के साथ पूजा स्थल पर पधारे। अपने उद्‌बोधन में उन्होंने कहा कि, भारत की भूमि न राजाओं की रही है, न प्रशासकों की। यह तो संतों की भूमि है, संतों की दिशा-दृष्टि से ही यह समाज सुरक्षित है। किसी कवि की दो पंक्ति उद्धृत करते हुए उन्होंने कहा-

आग लगी आकाश में, झर-झर झरे अंगार।
संत न होते जगत् में तो जल जाता संसार॥

उन्होंने जैन शब्द की व्याख्या करते हुए कहा कि - **जैन कोई व्यक्ति या समाज नहीं जिन नाम है- संयम का। और जो संयमित और अहिंसक है वह जैनी है।** उन्होंने भगवान् महावीर के अवदानों को उल्लेखित करते हुए कहा कि, जब पशुओं के साथ क्रूर व्यवहार हो रहा था, धर्म के नाम पर बलि चढ़ायी जा रही थी। उस समय भगवान् महावीर का जन्म हुआ। देवी-देवताओं को प्रसन्न करने हेतु बलि आदि कार्य जब-पराकाष्ठा पर थी, तब सब त्याग कर 'महावीर' ने शांति व समता का उपदेश दिया।

जैन संस्कृति से अमरकंटक का सम्बन्ध बताते हुए उन्होंने कहा कि-मैकल पर्वत एवं आमकूट (अमरकंटक का प्राचीन नाम) में जैन मुनियों के विहार एवं तपस्या का उल्लेख ग्रन्थों में मिलता है।

अन्त में उन्होंने 'आचार्य श्री' के प्रति भाव वन्दन के साथ अपना उद्‌बोधन समाप्त किया। उससे पूर्व गुजरात से पधारे 'श्री नारायण मुनि' ने कहा कि बड़ी खुशी की बात है कि, आज सभी धर्म के साधु संत एक मंच पर बैठे हैं। मेरी समझ में धरती पर एक ही धर्म है, वह है मानवता। उन्होंने सत्य, अहिंसा, पवित्रता और दान को धर्म के चार चरण बताये। गीता मंदिर से पधारे 'स्वामी ब्रह्मेद्' जी ने

अपने संक्षिप्त उद्‌बोधन में कहा कि, हमारे देश के तीन तरफ(उत्तर छोड़कर) सागर है, पर वे खारे हैं, लेकिन विद्या का सागर तो मीठा ही मीठा है। इसमें जो गोता लगायेगा वो मोक्ष को जायेगा। उक्त अवसर पर रामकृष्ण परमहंस आश्रम से आये स्वामीजी ने कहा–सबसे पहले हम उन सब का स्वागत करते हैं जिन्होंने सर्वोदय तीर्थ की कल्पना की। उनके प्रयास की जितनी प्रशंसा की जाये कम है।

अन्त में आचार्य श्री विद्यासागर जी ने अपने सारगर्भित वक्तव्य में कहा कि **गुण ही पूज्य है, जाति नहीं। जिस प्रकार गंध रहित पुष्प की कोई कीमत नहीं, गुणहीन मनुष्य का कोई महत्त्व नहीं।** सुगंधित पुष्प पर भ्रमर सहज ही मंडराते हैं। धर्म वह सुवासित वस्तु है जो आसपास के वातावरण को सहज ही सुवासित कर देती है। आचार्य श्री ने कहा कि धर्म की पहचान हम गुणों के आधार पर ही कर सकते हैं। धर्म किसी वेष–परिवेश और देश से बंधा हुआ नहीं है। वह तो आत्मा की निर्मल परिणति है उन्होंने कहा कि धर्म सनातन है। किन्तु **आज उसी धर्म के नाम पर तनातन हो रहा है जबकि होना चाहिये था ''टनाटन'' (१०० टंच खरा)।** अंत में उन्होंने कहा हमारे पास सत् और चित है पर आनन्द का अभाव है। **विषयों का त्याग करने पर ही आनन्द सम्भव है प्रभु का दास बनने पर ही हमारा कल्याण होगा।** इससे एक दिन पूर्व अमरकंटक में श्री तांत्रिक मंदिर के निर्माता स्वामी श्री सुखदेवानन्द जी का प्रवचन हुआ उन्होंने कहा कि आध्यात्मिक आचरण बिना सुख आ ही नहीं सकता। त्याग से ही सत्य और अहिंसा को पूर्ण रूप से पा सकते हैं। धन्य हैं वे लोग जिनके अन्दर व्रत ग्रहण का भाव आ जाता है जिनकी क्रिया में व्रत अवतरित हो जाता है। और धन्य है वे लोग जो स्वयं त्याग की मूर्ति बन जाते हैं।

सिद्धचक्र विधान का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि सभी परम्पराओं में सिद्ध चक्र की पूजा और महत्त्व एक सा है। सिर्फ क्रिया–प्रक्रिया में थोड़ा फर्क है। उन्होंने यज्ञ का अर्थ त्याग बताया । संत जीवन के महत्त्व को बताते हुए उन्होंने कहा कि धन्य है वह जीवन जिसको संत का दर्शन हो जाये और सौभाग्यशाली है वह जीवन जिसे संतों के चरणों की रज मिल जाये। आचार्य श्री की ओर इंगित करते हुए उन्होंने कहा कि आपको भगवान् के प्रति भक्ति हो या न हो किन्तु यह जो जीवित भगवान् बैठे हैं, इनकी भक्ति सौभाग्यशाली को ही मिलती है। अंत में दिगम्बर मुनि के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हुए कहा कि तप और त्याग की जो मूर्ति दिखायी देती है वह सिर्फ दिगम्बर संतों में दिखायी देती है। इससे पहले गुरुद्वारा से आये ''हरदेव सिंग जी ज्ञानी'' ने आचार्य श्री का वन्दन करते हुए कहा कि ऐबों से बचना, सबसे मिलकर रहना एवं भगवान् का स्मरण करना संतों का उपदेश है।

अन्त में आचार्य श्री ने अपने मांगलिक प्रवचन में कहा कि जिस प्रकार बीज से अंकुर फूटता है केन्द्र एक रहता है किन्तु उसकी कई उपशाखायें बन जाती हैं उसी प्रकार धर्म एक है, किन्तु उसकी कई उपशाखाएँ बन जाती है उन्होंने कहा कि **प्रत्येक साधना का लक्ष्य साध्य को पाना है। साधना**

में साध्य नहीं वह तो सिर्फ साध्य को पाने में सहायक है। मंत्र और तंत्र की व्याख्या करते हुए कहा कि तंत्र के आगे यदि 'स्व' लगा दें तो उसी क्षण हम स्वतंत्र हो जायेंगे। स्वतंत्रता की प्राप्ति ही साधना का महामंत्र है। अंत में निर्मलजी, सतना ने आभार व्यक्त करते हुए कहा कि अमरकंटक संतों की भूमि है। यहाँ आने वाले प्रत्येक श्रद्धालू को संत समाज के दर्शन का अच्छा अवसर प्राप्त होगा।

कार्यक्रम के अंतिम दिन प्रातः हवन कर्म के पश्चात् मध्याह्न में विशाल शोभा यात्रा निकाली गयी। शोभा यात्रा के आगे चल रहे ''वर्धमान कला मण्डल, टीकमगढ़'' की मोहक धुनों से सभी के पैर थिरक रहे थे। आचार्य श्री अपने संघ के साथ शोभा यात्रा में सम्मिलित थे। कल्याण सेवा आश्रम के 'मोनी बाबा', बर्फानी आश्रम के 'पुरुषोत्तमदासजी' शोभा यात्रा में आचार्य श्री के साथ-साथ चल रहे थे। नर्मदा मंदिर के सामने वहाँ के पुजारियों ने आचार्य श्री की मंत्रोच्चार सहित भाव पूर्ण वंदना की। विभिन्न धर्मों के सभी लोग आचार्य श्री की आरती उतारते देखे गये।

शोभा यात्रा नर्मदा मंदिर से होते हुए कल्याण आश्रम के आगे तक पहुँची। वहाँ से लौटकर 'सर्वोदय तीर्थ' (पूजास्थल में) आ, विशाल सभा में परिणत हो गयी। उक्त अवसर पर भोपाल से पधारे युवा कवि चन्द्रसेन के मंगलाचरण के साथ ही मौनी बाबा ने अपने मार्मिक उद्बोधन में कहा कि हम यहाँ यह मत देखे कि कौन क्या कर रहा है? बल्कि यह देखें कि संतों का सम्मान बढ़ रहा है कि नहीं? उन्होंने धार्मिक एकता पर बल देते हुए कहा कि-''एक अंगुली दिखाने से उसे बुरा माना जाता है उसे कोई भी तोड़ सकता है किन्तु अंगुलियों का समूह (मुट्ठी) है, उसे उठाने से कोई नहीं तोड़ सकता है। इसी तरह पूरे भारत व भारतवासी की धर्म आराधना और साधना भले ही भिन्न हो किन्तु बाजार में अन्य देशों में हम एक हों। हमारी आवाज एक हो। आचार्यश्री को लक्ष्य कर उन्होंने कहा-आचार्यश्री में सही अर्थों में संतत्त्व है। बर्फानी आश्रम से पधारे 'पुरुषोत्तम दास जी' ने अमरकंटक का महत्त्व बतलाते हुए कहा कि-इस भूमि का काफी महत्त्व है। शास्त्रों में कहा गया है-''रेवा तटे तपः कुर्यात्'' यहाँ संतों का आगमन हो रहा है। यहाँ के जैन बन्धुओं ने कम समय में बहुत काम किया ऐसा ही विकास करना चाहिए। अन्त में अंतिम दिन आचार्यश्री ने सबको आशीर्वाद देते हुए कहा कि यह मांगलिक कार्य आदि से अंत तक मंगलमय तरीके से सम्पन्न हुआ। **आत्म तत्त्व को परमात्म रूप में परिवर्तित कर देना ही धार्मिक कार्य का प्रयोजन है। उन्होंने कहा कि बाहरी विभाजन कोई महत्त्व नहीं रखते। विचारों का विभाजन ही वास्तविक विभाजन है।** हमें सम्प्रदाय और शरीर तत्त्व के भेद भाव से परे प्राणी मात्र के कल्याण की भावना रखनी चाहिए। अन्त में उन्होंने कहा कि आपको जाते समय एक ही उपदेश है कि आप अजीव का सम्मान न करें। जीव मात्र की पहचान एवं उसका सम्मान करें।

'महावीर भगवान् की जय'

❑ ❑ ❑

आत्म साधना का पथ

विचारों की धरती पर आचरण का पालन-पोषण होता है और विचार तथा आचार के माध्यम से ही जीवन यात्रा पूर्ण सुव्यवस्थित होती है। इसके लिए भीतरी जागृति होना आवश्यक है। जीव और अजीव रूप पुद्गल के वास्तविक स्वरूप को समझने तथा जानने का प्रयास करें कि कब? किसे? किस रूप में? कर्म अपने प्रभाव से प्रभावित करता है। कार्य प्रारंभ करने के पूर्व कदम आगे बढ़ा या नहीं यह सोच-विचार आवश्यक है। आत्म साधना के द्वारा पंचेन्द्रिय की विषय वस्तु के स्वरूप को यथावत् समझना ही भेद-विज्ञान को समझ पाना है। इसके अभाव में भटकन हो जाती है। भेद विज्ञान के अभाव में ज्ञान को ध्यान में परिवर्तित करने की अपेक्षा अज्ञान में परिणत होने में देर नहीं लगती, अपितु वह सहज परिवर्तित हो जाता है। किन्तु भेद विज्ञान के माध्यम से ज्ञान को एकाग्र कर ध्यान में परिणत बद्धकर्मों को भस्म-सात किया जाता है।

स्वदोष मूलं स्व समाधि तेजस।
निनाय यो निर्दय भस्म सात् क्रियाम्॥ स्वयंभू-स्तोत्र (४)

अनुकूलता या प्रतिकूलतायें वस्तु सापेक्ष नहीं, अपितु स्व-सापेक्ष हैं। बंधन और मुक्ति परस्पर सापेक्ष है। बंध की प्रक्रिया अनादिकालीन है, उससे मुक्ति तभी संभव है, जब बद्ध कर्मों की उपेक्षा और मुक्ति प्राप्ति की अपेक्षा रखकर साधना में विकास किया जावे। आत्म कल्याण के लिये वैराग्य की वृद्धि हेतु बारह भावनाओं के चिंतन द्वारा आत्मा और शरीर को भेद विज्ञान द्वारा पृथक् देखने वालों को मुक्ति स्वयमेव प्राप्त हो जाती है। इस प्रक्रिया में आकांक्षा नहीं अनाकांक्षा भाव धारण करें। विषयों के प्रति द्वेष भाव नहीं रखना बल्कि उनके प्रति मुँह मात्र फेरना है। सूर्य किरणों को उष्णता के कारण, उसके प्रति द्वेष करने से नहीं छोड़ देगा। किन्तु उसकी ओर से मुँह फेर लेने से उष्णता से बचा जा सकता है। भेद विज्ञान की कमी के कारण वस्तु में अनुकूलता या प्रतिकूलता महसूस होती है। किन्तु भेद विज्ञान होने पर प्रतिकूलता में भी अनुकूलता लाई जाती है।

कोअहं कीदृग गुणः कक्त्व, किं प्राप्य किं निमित्तकः।
इत्यूह प्रत्ययं नो चेद दण्डित स्थाने हि मतिर्भवेत्॥

मैं कौन हूँ? मेरा स्वभाव क्या है? मैं कहाँ से आया हूँ? तथा मुझे क्या प्राप्त करना है? मेरा कर्त्तव्य क्या है? इनका सदा विचार-चिंतन करना चाहिए। ऐसा नहीं सोचने पर हित चाहते हुए भी मन अहितकर कार्यों का संपादन करने लगता है। मन इन्द्रियों का नियंता है, अतएव इन्द्रियाँ उसी के अनुरूप ही कार्य करती हैं। अच्छे-बुरे का निर्णय इन्द्रियाँ नहीं बल्कि मन करता है। विचार करने पर यही ज्ञात होता कि प्रशंसा रूपी खुराक भी इन्द्रियों की नहीं अपितु मन की है। इसी मन के कारण

जितनी सुविधा होती है उतनी दुविधा भी होती है। मन तात्कालिक सुख का भले ही अनुभव करता पर उससे चेतना को सदा दुख ही उठाना होता है। इसी के कारण दृष्टि स्व से हटकर पर की ओर चली जाती और परिग्रह वृत्ति के कारण सामग्री संचय का कार्य प्रारंभ कर लेती है। वस्तु तत्त्व यथार्थ समझ में आने पर ही संसार के विषय भोगों की चकाचौंध उसे प्रभावित नहीं कर पाती और वे सब सरस होते हुए भी नीरस ही प्रतीत होते हैं। पंचेन्द्रिय का लोभ या आकर्षण इतना प्रभावी होता है कि उसके प्रभाव से महान् व्यक्तित्व का धारक भी विषय-सागर में निमग्न हो जाता है।

यह ऐसी उलझन है कि जिससे अच्छे-अच्छे व्यक्ति भी चपेट में आ जाते है। इन्द्रिय विषयों की ऐसी पकड़ होती है कि व्यक्ति उसी के वेदन में दत्त चित्त रहते हैं। इसके बिना बाह्य साधन/निमित्त कार्य करने में सक्षम नहीं होते। आदिम तीर्थंकर भगवान् आदिनाथ भी ८३ लाख पूर्व वर्ष तक गृहस्थ जीवन के भोगोपभोग/राग-रंग में फँसे रहे। एक लाख पूर्व वर्ष की आयु अवशेष रह जाने पर इन्द्र को चिंता हुई और उसने राज दरबार में नृत्य करने हेतु नीलांजना नामक अप्सरा को प्रेषित किया। दरबारी उसकी नृत्य मुद्रा, भाव भंगिमा से आकर्षित हो रहे थे। पर भीतरी दृष्टि जागृत होने से महाराजा आदिकुमार ने अपने ज्ञान से समझ लिया कि इसकी आयु पूर्ण हो गई है। क्षणिक अंतराल में ही इन्द्र ने वैसी एक और नीलांजना प्रेषित की ''सभी सभासद'' जगवासी नृत्य देखते, पर प्रभु की निरंजना जागृत हो गई तभी प्रभु ने बारह भावना भाय दीक्षा लेने का मन में विचार किया आचार्य समन्तभद्रस्वामी कहते हैं-

लक्ष्मी विभव सर्वस्वं मुमुक्षोश्चक्रं लाञ्छनम्।
साम्राज्यं सार्वभौमं ते जरत्तृणमिवा भवत्॥ स्वयंभू-स्तोत्र ८८

बस 'ये ही इन्डायरेक्ट' संकेत पर्याप्त था। वैसे संकेत की व्यवस्था विशेष संस्कार नहीं होने या छिपे संस्कारों को उद्घाटित करने के लिये होती है। जैसे राख में अंगारे ढके हों तो वे पकाने योग्य ऊष्मा नहीं दे पाते, उन्हें उघाड़ने की आवश्यकता होती है। तभी वे अपनी वास्तविक ऊष्मा दे पाते हैं वैसे ही महाराज ने संकेत समझकर भोगों से उदासीनता प्राप्त कर आत्म कल्याण हेतु जिन दीक्षा अंगीकार की।

राग की भूमिका में बैठने से वैराग्य भावनाओं का प्रभाव नहीं पड़ता। इतना अवश्य है कि जिनका वैराग्य जितना दृढ़ होता उनके लिये वे वैराग्य की दृढ़ता में अवश्य कारण हो जाती है। भेद विज्ञान की दशा में वैरागी को फिर बारह भावनाओं की आवश्यकता नहीं रहती। वह सदा आत्म चिंतन, मनन और ध्यान में ही निमग्न उसे पाने का प्रयास करता है आचार्य कहते हैं कि-

भेदविज्ञानतः सिद्ध, सिद्धा ये किल केचनः।
तस्में भावतः वद्धो, वद्यो ये किल केचनः॥

आगमकारों ने राग की ओर पीठ दिखाकर चलने वालों को भेदविज्ञान का मर्म समझने वाला माना है। भेदविज्ञानी को देखने से भी भेदविज्ञान की प्राप्ति हो सकती है किन्तु मात्र चर्चा करने से नहीं अपितु चर्चा के अनुरूप आचरण करने से ही भेदविज्ञान की प्राप्ति संभव है। अज्ञान का अंधकार हटने पर ही भीतरी चिद्प्रकाश उद्घाटित होता है।

अहिंसा परमो धर्म की जय!

❑ ❑ ❑

स्वयं को देखें

जब तक इंद्रिय संपदा तथा शारीरिक स्वस्थता, मन एवं बुद्धि ठीक-ठाक है तब तक शरीर और कर्मों को आत्मा से पृथक् करने की साधना अच्छी तरह से कर लेनी चाहिए। **पर की ओर नहीं बल्कि स्व की ओर देखने, लक्ष्य करने से ही अपूर्व आनंद की अनुभूति होगी।** यदि भविष्य में और अवधारण करने की इच्छा नहीं है तो राग-द्वेष के चक्कर से ऊपर उठने की उत्कंठा रखकर पर्याय बुद्धि को छोड़ने तथा द्रव्य दृष्टि बनाने से ही कल्याण होना संभव होगा, शरीर को धारण करना एवं उसका जीर्ण-शीर्ण होकर छूट जाना अनादिकाल का क्रम है।

अभी तक अनेकों बार शरीर धारण करने का हमारा पुरातन इतिहास रहा। यही सबसे बड़ी बीमारी है, जो शरीर को आत्मा मानकर एवं उसे ही सुख-शांति का साधन मान अनर्थ की ओर ले जाती है। शरीर को माध्यम बनाकर अपना परिचय पाने का प्रयास नहीं किया, इसलिए आत्मा का परिचय आज तक नहीं हो सका। शरीर और इंद्रियों से आत्मा को जानने का प्रयास हमने आज तक नहीं किया है, पर शरीरातीत दशा को पाने पर ही आत्मा को जाना जा सकता है। और ऐसे लोगों ने ही सुख के भाजन बनकर हमारे सामने आदर्श प्रस्तुत किये हैं।

उस पथिक की क्या परीक्षा,
जिस पथ में शूल न हो।
उस नाविक की क्या परीक्षा,
जो धारा प्रतिकूल न हो॥

आचार्यश्री ने कहा कि इस कलिकाल में प्रतिकूलताओं की तो भरमार है पर उनके बीच में रहते हुए भी, बुद्धि के प्रयोग द्वारा प्रयत्न करने पर उन पर विजय पाई जा सकती है। शरीर को पुष्ट बनाना भी अपने आप में सहज नहीं, शारीरिक क्षमता के साथ आत्म-विश्वास और साहस ही काम करता है। ऐसी दशा में शारीरिक क्षमता भले ही क्षीण होती जाती है पर सल्लेखना पूर्वक समाधिमरण

की तैयारी करने में काय और कषाय को कम करने के कारण स्वरूप बाह्य और आभ्यन्तर सामग्रियों पर नियंत्रण करने रूप सल्लेखना की जाती है। अतः व्रतों का पालन करते हुए पूर्ण उत्साह पूर्वक प्रतिक्षण जागरूक रहकर समाधिमरण की साधना करने वाला अधिकतम ७ या ८ भव अथवा कम से कम २ या ३ भवों में ही मुक्ति का अधिकारी बन जाता है।

इस शताब्दी में युग प्रमुख, समाधि सम्राट्, आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज ने विधिवत् सल्लेखना धारण की थी, आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज ने भी वैसा ही विधिवत् समाधिमरण प्राप्त किया। यह साधना वर्षों पूर्व प्रारंभ होकर अंत में महीनों तक चल सकती है। निर्दोष रीति से ऐसे समाधिमरण की प्राप्ति हेतु बड़े-बड़े महान् संत, आचार्य भी इच्छुक रहते हैं। इस संसार में मोह के कारण ज्ञान चक्षु बंद रहते हैं पर ज्ञानी जन ऐसे होते हैं जो समाधि के समय बाहरी आँखो के साथ भीतरी आँख भी खुली रखते हैं जिससे वह मृत्यु का प्रति समय ही साक्षात्कार करते रहते है।

महावीर भगवान् की जय!

❑ ❑ ❑

सुप्त-चेतना जागृत

भावना के माध्यम से भावों में सुधार आये, यह कोई नियम नहीं है। इसी प्रकार दुनिया के दिग्दर्शन माध्यमों से भाव बिगड़ भी सकते किन्तु बिगड़े ही यह नियम नहीं है। सुधरने तथा बिगड़ने की क्षमता चेतना में है, जो शब्द और अर्थ को सुन/समझकर भाव को महसूस करने पर संभव होता है। अनंतानंत परम आत्माओं के द्वारा भी भाव हठात् समझाया नहीं गया, क्योंकि शब्द और अर्थ को ही बतलाया जा सकता है, भाव को स्वयं ही समझना होता है। आज तक हमारी चेतना सुप्त रही, इसलिये हमें भाव समझ में ही नहीं आया, शब्द और क्षेत्रादि भले ही छूट जावें पर भाव तक यात्रा होना आवश्यक है।

हमारी भाव पक्ष की स्वीकारता शब्द या अर्थ पर नहीं अपितु भीतरी भावों पर ही आधारित है ज्ञान तो सभी के पास है परंतु भावज्ञान सभी को नहीं होता। शब्द कानों तक तथा-अर्थ दिमाग तक पहुँचता है। कान और दिमाग से ऊपर उठने पर आत्मा से भाव का संबंध जुड़ता है। जागृति इस भाव का संवेदन करती है। जबकि सुप्त आत्मा इस भाव-संवेदन से शून्य रह जाती है। हमारे भाव परस्पर समझाने पर भी समझ नहीं आते, किन्तु समझना चाहें तो वैसे शब्द या वातावरण नहीं होने पर भी शब्द के अर्थ में छुपा भाव भी समझ में आ जाता है। परन्तु समझने वाला चाहे तो ही समझ सकता किसी को हठात् प्रभावित नहीं किया जा सकता। जैसे उद्देश्य पूर्ति तक पहुँचने के लिये बीच में संदेश वाहक आवश्यक है। शरीर या क्षेत्र की दूरी दिखती अवश्य है, पर भावों के माध्यम से उसकी पूर्ति होना संभव

है। यान में पेट्रोल हो तथा हवाई पट्टी हो तब यान उड़ सकता है। वैसे ही आपके भाव दूसरे तक पहुँचने के लिये स्थान, शब्द आदि भी सहायक हैं।

चेतन में न भार है, चेतन की न छाँव।
चेतन की फिर हार क्यों, भाव हुआ दुर्भाव॥

चेतन तो अमूर्त रूप-रस-गंध और स्पर्श से रहित भारहीन है उसकी छाया भी नहीं पड़ती। उसके भावपक्ष बिगड़ जाने से ही आज तक उसकी संसार में हार होती चली आ रही है। अर्थात् भाव खरीदा या बेचा नहीं जा सकता। भगवान् के शब्दार्थ तक ही हमारा संबंध रहा, भाव तक नहीं। शब्द और अर्थ कथंचित् अन्य पर आश्रित हो सकते हैं किन्तु भावों पर किसी अन्य का नियंत्रण नहीं होता है। पेट में आकस्मिक वेदना होने से बेटा तड़प-तड़प कर पापड़ के समान सिक रहा है। माँ देख-सुन कर सांत्वना प्रदान कर रही है। मेरे रहते तुम्हें कष्ट नहीं होगा, यह सुनकर उसका विश्वास व श्रद्धा मजबूत होता है, किन्तु पीड़ा की अति के कारण मुख से माँ शब्द भी नहीं निकल पा रहा है। पीड़ा के कारण आँखों से अश्रुधार निकल रही, जिसे देख माता के हृदय में संवेदना होने से उसकी आँखों से भी अश्रुधार बह निकली।

आँखों से पानी आना शब्द पक्ष नहीं, अपितु भावपक्ष का प्रतीक है। इन भावों का प्रभाव किसी पर पड़े ही यह नियम नहीं है, पर भाव का प्रभाव अवश्य पड़ सकता है। हाथ में टार्च लेकर जलाने पर सामने वस्तु प्रकाशित होती है। दूर रहकर भी वस्तु एवं टार्च के बीच प्रकाश है या नहीं, यह देखना है। यह आँखों से नहीं दिखाई पड़ता? स्रोत हाथ में है, वस्तु दूर है, पर बीच में प्रकाश गायब क्यों? वस्तु बीच में नहीं दिख रही इसलिए वह नहीं ऐसा नहीं सोचना चाहिए। वस्तु सूक्ष्म है, सतत् नहीं दिख रही है, वैसे ही शब्द और अर्थ की अपेक्षा भाव सूक्ष्म है। वह दिखे भले ही नहीं पर संवेदन से महसूस तो किया जा सकता है।

कभी अकाम निर्जरा करें, भवनत्रिक में सुर तन धरै।
विषय चाह दावानल दह्यो, मरत विलाप करत दुख सह्यो॥

यह प्राणी पंचेन्द्रिय विषयों के दावानल में आज तक जलता आ रहा और मरते दम तक दुख सहन करते हुए रोता रहा, पर विषयों को नहीं छोड़ा। पक्षी पंख फड़फड़ाता है, उड़ता है, किन्तु बाद में निश्‍चिंतता के साथ पंख फैलाये हुए आकाश में घूमता रहता है। वैसे ही शब्द से अर्थ तथा अर्थ से भाव की यात्रा होने पर शब्द और अर्थ गौण हो जाता है। शब्द और अर्थ के अभाव में भाव नहीं होता, पर आज तक भाव के अभाव में मात्र शब्द की ही यात्रा हुई है। मंजिल या गंतव्य भावपक्ष है, उसके अभाव में यात्रा का कोई प्रयोजन नहीं है। गंतव्य तभी महसूस होता जब मंतव्य सही है। मंतव्य के अभाव में गंतव्य तक यात्रा नहीं हो सकती। अपने मंतव्य के अनुरूप ही पक्षी पंख फड़फड़ाकर गंतव्य को प्राप्त कर लेता है।

एक राजा के दरबार में विशिष्ट संगीतज्ञ के संगीत का प्रदर्शन हो रहा था। संगीत सुनकर सभी दरबारी वाह-वाह कर उठे तथा उसी में डूब कर उन सभी के सिर झूमने लगे। भावपक्ष समझ में आ जाने पर शब्द और अर्थ महत्त्व नहीं रखते। संगीत देशी हो या विदेशी उसमें कोई विशारद हो या न हो परन्तु संगीत सुनकर भीतरी आनंद की अभिव्यक्ति शरीर पर दृष्टिगत होने लगती है। राजदरबार में हिलने-डुलने पर प्रतिबंध तथा राजाज्ञा उल्लंघन होने पर मृत्युदंड की घोषणा हो जाने पर सभी संभलकर बैठे रहे और गर्दन हिलने न पाये, ऐसी चेष्टा करने लगे।

पर संगीत के आनंद में सराबोर कुछ व्यक्ति सहसा ही झूम उठे उन्हें राजाज्ञा उल्लंघन या मौत का डर नहीं था, क्योंकि विद्या या कला को भावपक्ष से जाना जाता है। उसके लिये शब्द और अर्थ पर पाबंदी हो सकती पर भाव तो भाव है। शब्द भले ही समझ में न आवे पर संकेत से भी भाव को पकड़ा जा सकता है। हिरण या सर्प संगीत सुनकर कीलित हो जाते उन्हें मरण या पकड़े जाने का भय नहीं रहता। बाहर की सुध बुध नहीं रहती और भीतरी तन्मयता आ जाती है, वैसे ही आत्मा की अनुभूति के समय मंतव्य के अनुरूप राग से वीतरागता की यात्रा होती है। अंत में माँ जिनवाणी के गुणानुवाद कर माँ का बेटे पर वरद हस्त रहें।

अहिंसा परमो धर्म की जय!

❑ ❑ ❑

उपादान की योग्यता

सूर्य प्रतिदिन निकलता है और अपना प्रकाश फैलाता जाता है। जो सोकर उठ जाता वह प्रकाश पा जाता है तथा जो सोकर नहीं उठता वह उससे वंचित रह जाता है। कुछ लोग घर में बिस्तर में पड़े रहकर भी उठना नहीं चाहते, उनके लिये भी सूर्य के प्रकाश की किरणें छतों की सुराख से गर्मी पहुँचाकर उठा देती हैं अथवा सोते समय जो रजाई से मुख को ढाँककर रखें हों उसकी रजाई को ऊष्मा से तपाकर भीतर पसीना ला जगा देती हैं। सूर्य प्रकाश का लाभ उपयोग करने वाला ही ले पाता, सभी लाभ लें यह भावना अवश्य की जा सकती है।

उक्त विचार जैनाचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के कुण्डलपुर (दमोह) मध्यप्रदेश के उच्च शिक्षा मंत्री श्री मुकेश नायक से साहित्यिक चर्चा के दौरान उस प्रश्न के उत्तर स्वरूप प्रदान किये, जिसमें उन्होंने जानना चाहा कि आज देश में जाति, वर्ग तथा क्षेत्र आदि की समस्याओं के कारण लोगों में बुद्धि, आनंद एवं शक्ति संचार के अवरुद्ध द्वार कैसे खुले?

व्यक्ति के अंदर सोयी शक्ति उद्घाटित हो सके और वह पतित दशा से ऊपर उठकर, पावन बन सके यह मूल उद्देश्य इस रचना का है। जब तक मिट्टी के कण बिखरे रहते वह निर्जीव मानी जाती

है। किसी विशेष कार्य को संपन्न नहीं कर पाती न जल धारण कर सकती। घट का रूप होने पर ही वह जल धारण करने की योग्यता पाती है। संसारी प्राणी की बिखरी शक्ति पतित दशा में खोई-सी रहती है। किन्तु पुरुषार्थ करने से विश्व को भी जानने की क्षमता उसमें उद्घाटित हो जाती है। कणों के रूप में वह मिट्टी जल में घुलकर डूब जाती है जबकि घट के रूप में वह स्वयं भी जल में नहीं डूबती और डूबते को भी पार उतारने में सहायक बन जाती है। ऐसी क्षमता सबमें उद्घाटित हो यही मूल स्वरूप इस रचना का है।

उपादान की योग्यता, घट में ढलती सार।
कुंभकार का हाथ हो, निमित्त का उपकार॥

इसी प्रकार संसारी प्राणी की शक्ति जब तक बिखरी रहती है, पतित दशा में खोई रहती। वह पुरुषार्थ के द्वारा एक रूपता ग्रहण कर आत्म कल्याण करती है और पर के कल्याण में सहायक बनती है।

वीतराग-विज्ञान विराट ज्ञान धारण करने की क्षमता उत्पन्न करता है, जिसकी प्राप्ति हेतु सर्व प्रथम राग-द्वेष, हर्ष-विषाद, विषय-कषायों तथा पाप प्रवृत्तियों को त्याग कर उनसे ऊपर उठना होता है, तभी यह क्षमता उद्घाटित होती है। इसी वीतराग विज्ञान के माध्यम से ही पतित से पावन बनने का पथ प्रशस्त होता है। इस हेतु व्यक्ति को संयत एवं वीतरागी होना आवश्यक है, तभी अलौकिक ज्ञान की प्राप्ति होगी। अन्यत्र इसे **'स्थित प्रज्ञ'** भी कहा गया है। हमारी प्रज्ञा या बुद्धि यहाँ-वहाँ दौड़ती रहती, स्थित नहीं हो पाती। प्रज्ञा जब स्थित हो जाती है तो सही दिशा में प्रयास करती है, जिससे अपूर्व आनंद की उपलब्धि होती है।

ज्ञाता मूल द्रव्य है, ज्ञान उसका गुण है तथा ज्ञेय यानि जानने योग्य पदार्थ। हम ज्ञेय भूत जड़ पदार्थों की ओर देखते हैं किन्तु उसके भीतर जानने योग्य छुपी क्षमता को नहीं देख पाते। मूकमाटी में यह प्रेरणा दी गई है कि हमारी चेतना का विषय मात्र ज्ञान बन सके अथवा अनुभूति मात्र ज्ञान का विषय बन सके। इसके लिये हर्ष-विषादों से ऊपर उठकर तथा संघर्षों के बीच से गुजरते हुए आगे बढ़ने की आवश्यकता है तभी पतित से पावनता प्राप्त की जा सकती है और शुद्ध चेतन बनने का प्रयास किया जा सकता है।

संतों ने सर्वप्रथम संस्कृति को सामने लाने के लिए प्राकृत भाषा को माध्यम चुना था। जीवन के उत्थान में वही शिल्प विधान मुख्य है जो आत्म तत्त्व को स्वभाव की ओर मुड़ने की दिशा प्रदान करे। मूकमाटी में यही दिग्दर्शन कुंभकार के माध्यम से किया गया है। युग के आदि से ही शिल्पकार कुंभकार है जिसने अपने शिल्प को अपव्यय से दूर रखा। वही ऐसा शिल्पी है जिस पर सरकार का कोई टेक्स नहीं है। भारतीय संस्कृति में वही शिल्प अद्वितीय माना जाता है जो बिखराव में जुड़ाव के साथ, खंडित को अखंडित करने वाला हो। यही मूकमाटी का ध्येय है।

आचार्य श्री कहते हैं हम दूसरे पर उपकार करना चाहते हैं किन्तु जिस पर उपकार करना चाह रहे हैं उसमें ऐसी योग्यता भी होनी चाहिए। जैसे मिट्टी की योग्यता कुंभकार के द्वारा उदघाटित होती है। माटी में जो विराट योग्यता है वह अन्यत्र नहीं! उसके विकास एवं उन्नति का श्रेय कुंभकार को जाता है। ऐसे ही प्राणी मात्र को दिशा बोध प्राप्त हो, ताकि वह भी अपना कल्याण कर सके, यही इसका संदेश है।

उगते अंकुर का दिखा, मुख सूरज की ओर।
आत्मबोध हो तुरत ही, मुख संयम की ओर॥

जैसे अंकुर फूटते ही उसका मुख अपने आदर्श, ऊर्जा स्रोत सूरज की ओर होता है वैसे ही अंदर उपादान में वैसी ही शक्ति छुपी है जो विभिन्न बाह्य निमित्तों/साधनों के माध्यम से उद्घाटित हो जाती है। उन्नति एवं विकास के लिए निमित्त की आवश्यकता होती है, जो धरती में पाई जाती है। ''स्वर्गीय भूमि को उत्तम क्षेत्र नहीं माना अपितु पतित से पावन बनने के लिये धरती को ही उत्तम क्षेत्र माना-स्वर्ग को नहीं।''

आचार्य श्री ने बताया कि सजीव पात्रों की अपनी सीमायें होती हैं। किन्तु निर्जीव पात्र को प्राणवान बनाकर उसके माध्यम से उसकी वास्तविक वेदना को अभिव्यक्ति प्रदान की जा सकती है, जो सजीव दशा में व्यक्ति नहीं कर पाता है।

वैसे भूमि सभी को आश्रय प्रदान करती है, इसीलिये उसे धरा, पृथ्वी, जमीन, क्षमा आदि कहा जाता है। जबकि जल को साहित्य में जड़ कहा जाता है। वह जड़ होकर भी धरती का आधार/आश्रय पाकर ज्ञान पा लेता है, अपने आपको उपयोग शील बनाने पर कृतार्थ हो जाता है। सघन मेघों से गिरी हुई बूँदें सागर में गिरकर उसी में विलीन हो, खारी हो जाती हैं, जब तक वे बूँदें धरती का सहारा नहीं लेती वे मुक्ता नहीं बन पातीं। मेघ से गिरा जल नीचे आकर सीप की गोद में जाकर मुक्ता का रूप धारण करता है। इसीलिए धरती की महत्ता है उसके कारण ही जलतत्त्व में पूज्यता/श्रेष्ठता आती है। मूकमाटी में धरती के अंश माटी को इसीलिए मुख्यता प्राप्त हुई हैं।

निज में यति ही नियति है, ध्येय 'पुरुष' पुरुषार्थ।
नियति और पुरुषार्थ का, सुन लो अर्थ यथार्थ॥

मूकमाटी सृजन यात्रा शब्द से अर्थ एवं अर्थ से भाव की ओर नहीं हुई बल्कि भीतर से बाहर की ओर हुई। भाव-संवेदनाओं को शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्ति मिली है।

भारतीय संस्कृति में दृश्य नहीं दृष्टा महत्त्वपूर्ण है। दृश्य को देखकर कई प्रकार के भाव हो सकते हैं जो व्यक्ति की मन:स्थिति या उपयोग पर आधारित हैं। जो दिख जाता है उसमें देखने वाले

के विचार मुख्य हैं। दृश्य को देखकर और भी अनेक प्रकार के भाव हो सकते हैं। वस्तुतः यह दृष्टा को नहीं समझ पाने का परिणाम है। मूकमाटी के एक प्रकरण में यह भाव स्पष्ट किया गया है कि पुरुष यानि आत्मा सब में है यह जो ऊपर दिख रही यही तो प्रकृति है। इस वास्तविकता को नहीं समझ पाने के कारण ही संसार में भटकन हो रही है। अतः उलझन के 'उ' को निकाल 'सु' करना ही सुलझन आत्म कल्याण का मार्ग है।

अहिंसा परमो धर्म की जय!

❑ ❑ ❑

कर्तृत्व से कर्त्तव्य पथ श्रेष्ठ

अहिंसा से बढ़कर कोई धर्म नहीं है जैनदर्शन में ज्ञान और दर्शन को अहिंसा के कारण ही धर्म की संज्ञा प्राप्त है। अहिंसा से ही ज्ञान समीचीन माना जाता है। उसकी स्वीकारता से ही रत्नत्रय की प्राप्ति होती है और इस नश्वर शरीर के माध्यम से वह अविनश्वर दशा प्राप्त की जाती है। जीवन में एक ओर पुरुषार्थ होता है तो दूसरी ओर भाग्य। **बुद्धि पूर्वक किया गया पुरुषार्थ नहीं तथा शरीर को छोड़कर चले जाना मात्र ही मृत्यु नहीं है।** संयोग-वियोग से ऊपर उठकर सोचने से ही जीवन का यथार्थ बोध हो सकता है, संयोग होने पर हर्ष तथा वियोग होने पर आँसू आ जाने मात्र से नहीं।

इस जड़ द्रव्य के दान के साथ कथंचित् आदान का भी भाव आ जाता किन्तु चेतना/भावों का दान भी दान है। चिकित्सा के क्षेत्र में रोगी के प्रति अपनत्व, प्रेम वात्सल्य तथा अभयदान के कारण उसकी बाधा यूँ ही समाप्त हो जाती है, जिसे पैसे से दूर नहीं किया जा सकता। अतः वैद्य या चिकित्सक प्राणों की रक्षा तथा रोग को दूर करने का संकल्प करते हुए इस कार्य हेतु प्रभु स्मरण कर सफलता प्राप्ति हेतु कामना करते हैं।

इसलिये हमें शारीरिक चिकित्सा करने के पूर्व उसे अभयदान देना आवश्यक है। जीवन केवल रोटी, कपड़ा और मकान, आवास आदि से नहीं, उसके लिये तो ऐसे अनेक कारण हैं जिन्हें हम समझ ही नहीं पाते। हृष्ट-पुष्ट देह का धारक भी मरण को प्राप्त हो जाता-जबकि दुबले-पतले शरीर वाला वर्षों निकाल लेता है। मृत्यु आज ही नहीं हुई वह तो पहले भी हुई अतः मृत्यु से बचने के लिये मृत्यु और जीवन के वास्तविक कारणों को समझना अनिवार्य है।

हम ऐसी भावना करें ताकि दूध और पानी की मित्रता के समान सभी का संबंध परस्पर जुड़ सके। जो संकटों में है, उनके दुख दूर हों, ऐसा रचनात्मक प्रयास करना आवश्यक है। जीव को पहचानने के लिये सेवा, परोपकार, प्रेम या वात्सल्य मय भाव ही शाश्वत माध्यम है। जैन धर्मावलम्बियों को आह्वान करते हुए कहा है कि मात्र आत्मा-आत्मा की बात कर लेने से जैन धर्म की प्रभावना पूर्ण

नहीं होगी। संगोष्ठी, शिविरों के माध्यम से अथवा शास्त्र-प्रकाशन करने मात्र से नहीं बल्कि ऐसे रचनात्मक कार्य जो शास्त्र के अनुरूप हैं उन्हें जीवन में उतार कर रुग्ण प्राणियों की सेवा कर स्वयं तप को अंगीकार करें। व्यक्ति त्यागी हो या गृहस्थ वह दया के बारे में अवश्य सोचे तथा अहिंसा धर्म का प्रचार-प्रसार करे। अतः सेवा के, बंद द्वार को खोलकर सम्यग्दर्शन के अंगभूत अनुकंपा गुण को चरितार्थ करे और ऐसा पथ प्रशस्त करें ताकि पतित जीवन भी पावन बन जाये।

सीमा तक तो सहन हो अब तो सीमा पार।
पाप दे रहा दण्ड है, पड़े पुण्य पर मार॥

जीवन में सम्मान आवश्यक तो है, अनिवार्य नहीं। वह अनिवार्य इसलिए नहीं क्योंकि जिसका सम्मान होता है उसके कदम विकास हेतु कथंचित् रुक जाते हैं। जबकि आगे बढ़ना अनिवार्य है, अतः वह पीछे या आजू-बाजू मुड़ सकता। ज्ञान के कारण प्रभावित होकर अभिमान में ढलकर पतन की ओर चला जाता है। ज्ञान का संयत नहीं होने से मान-सम्मान की भूख जागृत होती है, जबकि सफलता की प्राप्ति ही उसकी संतुष्टि है। ज्ञान जब पुष्ट या बलवान होता अनुभव की गहराई में उतरकर स्वयं अपने आप ही पुरस्कृत हो जाता है। वह अपने गुणों के कारण दूसरों से नहीं अपितु अपने कर्त्तव्य से ही गौरवान्वित होता है।

कृति स्वयं ही कर्ता का परिचय देती है। कर्तृत्व एवं कर्त्तव्य में यही भेद है। **कर्म या कार्य करते हुए भी फल की इच्छा न करें, किन्तु कर्मयोगी बनें या नहीं, पर कर्म के फल को देखने की उत्कण्ठा बनी रहती है।** वस्तुतः कार्य करते हुए फल की आकांक्षा नहीं होने पर वह अपनी सुगंध से स्वयं ही परिसर को सुवासित कर देता है। किन्तु आज तो एक्शन का प्रतिफल रिएक्शन में ही हो रहा है और इसी का बाजार गर्म है। **कर्तृत्व अभिमान का तथा कर्त्तव्य सम्मान का प्रतीक है।** राम कर्त्तव्य के तथा रावण कर्तृत्व के प्रतीक थे।

आज चारों ओर मारकाट चल रही है, कहते हैं कि ज्ञान का विकास चहुँमुखी हो रहा है? पर ज्ञान का फल क्या? यह ज्ञात नहीं, हम शासन की बात तो करते पर स्वयं अनुशासित नहीं हो पाते यही कमी है। युग के आदि में भगवान् वृषभनाथ ने सम्पूर्ण प्रजा को योग्यता के अनुरूप अनुशासित किया था परन्तु आज लगता है अनुशासन शब्द बोध में ही रह गया है। आत्मानुशासन तो महावीर के साथ ही चला गया-ऐसा लगता है। वस्तुतः अनुशासित हुए बिना विवेक ही नहीं होता। आज अनुशासन हीनता के कारण व्यक्ति एवं समाज का सामाजिक, शैक्षणिक एवं राजनैतिक पतन होता जा रहा है। आचार्य श्री ने मानव जीवन पर चोट करते हुए कहा कि-

साधना अभिशाप को वरदान बना देती है।
भावना पाषाण को भगवान् बना देती है॥

विवेक के स्तर से नीचे उतर जाने पर।
वासना इंसान को शैतान बना देती है॥

मनुष्य इंसानियत के बिना दुर्गति का पात्र होता और इंसानियत के साथ हो तो स्वयं ही ईश्वर बन सकता है। **ऊधम से नहीं, उद्यम करने से सफलता प्राप्त होती परन्तु आज तो चारों ओर ऊधम ही ऊधम हो रहा है।** सात्विक भावों के कारण उल्लास, संतुष्टि पूर्वक कर्म फल चिंतन करने से स्वास्थ्य में सुधार होता है जो भीतरी भावों में सुधार होने का परिचायक है। लोगों को यहाँ विश्व शांति की बात करने की अपेक्षा पहले स्वयं परिवार को संभालने से मिलकर रहने से विश्व शांति का मार्ग स्वयं ही प्रशस्त हो जाता है। सफलता मिलने पर आनंद की लहर छा जाती, आनंद का अनुभव होता है तब बाहरी एवं भीतरी विकार निकल कर कार्य पूर्ण हो जाता और आत्मा-परमात्मा में परिणत हो जाती है। मानव के कर्त्तव्यों पर चोट कर पशुता की दुहाई दी है-

''ये बखूबी ये कौन-सी बशर है। सारी शक्ल लंगूर की पर दुम की कसर है'' अज्ञातदशा में किए अनर्थों को ज्ञात करके पश्चाताप करने से सुधार संभव है। ज्ञान-ज्ञान मात्र रहे तो ठीक है, अन्यथा वह ज्ञान मान के कारण प्रमाण या पूर्ण ज्ञान नहीं हो पाता और मान-अभिमान के कारण भव-भव में भटकन का कारण हो जाता है। हम धर्म के वास्तविक स्वरूप को नहीं समझ पा रहे उसकी बहुमूल्यता को नहीं आक रहे हैं। कर्त्तव्य को निष्ठा पूर्वक धर्म समझकर करने से समीचीनता प्राप्त होगी। किन्तु बीच में प्रतिष्ठा की बात नहीं करें, तभी सही पथ प्रशस्त होगा। मार्ग में इधर-उधर देखने पर व्यवधान पाकर गति ही बिगड़ सकती, अतः जीवन में 'कहना' ही नहीं 'करना' भी महत्त्वपूर्ण है जिससे सफलता प्राप्त होती है।

महावीर भगवान् की जय!

❑ ❑ ❑

वेश नहीं ध्येय बदलो

वेश और परिवेश बदलने मात्र से मोह-मूर्च्छा, ममत्व या आसक्ति का अभाव नहीं होता। परस्पर विचारों के परिवर्तन से भी परिवर्तन नहीं आता इनमें परिवर्तन तो लक्ष्य को बदलने पर ही संभव है। इसके बिना तन, मन, धन या बर्तन भी बदलने से कुछ नहीं होगा। जीवन का मूल्य नहीं समझने के परिणाम स्वरूप ही मूर्च्छा होती है। अर्थ को पीठ पीछे छोड़ने पर ही परमार्थ होता है। किन्तु आज सिर के ऊपर परमार्थ नहीं अर्थ सवार है और सभी उसके नौकर-गुलाम हैं। जीवन के अमूल्य क्षण यूँ ही बीतते चले जा रहे हैं फिर भी हम अर्थ का संग्रह किए जा रहे हैं।

जीवन कितना व्यतीत हो गया उस ओर दृष्टि नहीं होने से पहले रुपयों को जमीन में गाढ़ा

जाता था। आज तो नोटों का जमाना है अतः उन्हें गड़ाते नहीं बल्कि विदेशों में गुप्त रखने का लक्ष्य हो गया है। विदेशों में धन रखने के चक्कर में भारतीय लोग बहुत अग्रणी (अगुआ) हैं। वह धन कहाँ, कितना, किसके द्वारा रखा है मात्र उसे यह ज्ञात है, अन्य किसी को नहीं। ऐसे धन का लाभ उस व्यक्ति के परिवार-समाज-राज्य या राष्ट्र को भी नहीं मिलता क्योंकि वह काला धन है और उसके अर्जन करने वाले का मुख भी काला होता है।

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तोलो दया न छाड़िये, जबलों घट में प्राण॥

धर्म का अर्थ वस्तु नहीं अपितु भाव है। अच्छे भाव ही धर्म है तथा बुरे भाव ही अधर्म हैं, अतः भावों के ऊपर ही धर्म का प्रासाद टिका होता है। भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए धर्म है। आँखों में आँसू लाना मात्र धर्म नहीं बल्कि जीवन में कुछ न कुछ सुखद घटित होना चाहिये, उसके बिना यह अभिनय मात्र होगा। मूर्च्छा का अभाव उसी के जीवन में होता है जिसने दया को जीवन में उच्च स्थान दिया है। फिर वह भटकता नहीं बल्कि भटकों को लक्ष्य पर लाने में सहायता प्रदान करता है। संतों ने दया को छोड़कर अन्य कोई धर्म नहीं कहा, आदिप्रभु ने भी मुक्त कंठ से दया धर्म की घोषणा की है। सभी धर्म ने दया को स्थान दिया है-

मनुष्य के द्वारा करने योग्य कार्य नहीं करने के कारण नर ही नारकी बनता है तथा कर्त्तव्य पालन करके-'नर से नारायण' बनता है। नारकी बनने का कार्य अतीत में अनंत काल से होता आया है अतः नारकी बनने का कार्य न करें। करने योग्य कार्य एवं कर्त्तव्य पालन के लिए अनेक प्रकार से उचित साधनों को जुटाया जा सकता है। अपराध या गलत कार्य नहीं करना ही हमारी परीक्षा है और सवार्थ यानी स्वयं को परमार्थ की प्राप्ति कहा है। अपने जीवन की रक्षा के लिये अन्य जीवों को समाप्त न करें। ''दीवान अमरचन्द ने सिंह को जलेबी और दूध पिला कर अहिंसा धर्म की रक्षा की। राणा प्रताप जैसे शासकों ने घास की रोटी खाकर अहिंसा धर्म जीवन में चरितार्थ किया था। जीव-रक्षा के माध्यम से ही अहिंसा धर्म का पालन हो सकता है। एक जीवन को समाप्त करके नया जीवन पाना भी हिंसा है। अहिंसा को जीवन में आचरित करने से देव भी उसके चरणों में आकर नत मस्तक होते हैं। मनु का अनुकरण करने से मनुष्य मानव कहलाता है परंतु आज मनुष्य मात्र मनुष्य रह गया और मनु तो बहुत पीछे छूट गया है।

इंसानियत की रोशनी गुम हो गई कहाँ।
सामे है आदमी के मगर आदमी कहाँ॥

हमें अपने पूर्वजों बाप, दादाओं के प्रयासों-प्रयत्नों की ओर भी ध्यान देना चाहिए। हमारे कदम भले कितने ही आगे की ओर हों पर संस्कृति का गौरव बहुमान रखना भी हमारा कर्त्तव्य है।

अन्यथा प्राचीन संस्कृति में विरासत मात्र कागजी शोध का विषय रह जायेगी। शोध केवल पार्थिव जीवन/जड़ पदार्थों के संबंध में होता है। राख में दबी अग्नि के समान मनुष्यत्व को उद्घाटित करें अन्यथा बहुत अधिक समय तक राख से ढकी अग्नि के समान वह अग्नि रूप मनुष्यत्व का गौरव समाप्त या नष्ट हो जायेगा। मूर्च्छा ममत्व के कारण हमारी भीतरी अग्नि प्रायः बुझती जा रही है परंतु पूर्वाचार्यों-संतों ने जो उपदेश दिये हैं। उन्हें धारण कर यदि हमने प्रकाश की एक किरण-एक कणिका मात्र को भी उद्घाटित कर लिया तो संसार बंधन नष्ट करने में हम सक्षम हो सकेंगे।

आज ही आप कृत संकल्पित हों कि जीवन में ऐसा कोई भी कार्य नहीं करेंगे जिससे दूसरे का जीवन धर्म से विमुख होकर समाप्त हो अथवा जिनके कारण स्वयं का जीवन ही अनर्थ की गोद में चला जाये। भले ही जीवन में छोटा-सा कार्य करें पर अन्य प्राणियों का जीवन समाप्त न करें इतना ध्यान रखें। आचार्य श्री ने कहा-

मरहम पट्टी बाँध कर, वृण का कर उपचार।
यदि ऐसा न बन सके, डण्डा तो मत मार॥

भगवान् महावीर स्वामी के सिद्धांतों को जीवन में स्थान देने वाला ही धर्मात्मा पुण्यशाली है। इसी कारण से वह ऐसी साधन-सामग्री जुटाता है जो निश्चय से पर कल्याण में सहायक होती है। वही व्यक्ति आराधना के लिए प्रभु के पास जायेगा और शीघ्र ही प्रभु सम बन जायेगा। अपने जीवन की चिंता नहीं कर सामने वाले के ऊपर दया दृष्टि रख, सहायता कर के उन्नत बनाना ही तो स्वयं की उन्नति है। जिसे आज हम भूल चुके हैं। **धर्म पर के द्वारा नहीं होता, किन्तु उसके लिए पर को माध्यम बनाया जा सकता है।** धर्म का अनुपालन करते हुए पर का कल्याण हो या नहीं पर स्वयं का कल्याण तो होता ही है। अन्याय या अत्याचार करते हुए लाखों-करोड़ों बँटोरकर उसमें से कुछ दे देना दान की कोटि में नहीं आता बल्कि वह तो आदान है। क्योंकि अत्यधिक लोभ आशक्ति के कारण धन को कमाया गया और मान की प्राप्ति के लिये देना यह तो व्यवसाय ही हुआ, दान या त्याग नहीं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आज व्यवसाय आता जा रहा है और धीरे-धीरे बाजार से होता हुआ भगवान् की वेदी तक पहुँचता जा रहा है। यह सब अज्ञानता या धर्म के सही स्वरूप को नहीं समझने का परिणाम है।

''ओ तृष्णा की पहली रेखा अरी विश्व बन की व्याली'' अर्थात् सर्प-नाग के काटने पर उसका प्रतिकार रूप चिकित्सा है किन्तु मोह-मूर्च्छा रूप नागिन ऐसी है जिसके काटने से भव-भव में मृत्यु होती है। नाव तैरते हुए स्वयं को एवं दूसरे बैठने वाले को भी पार लगाने वाली होती है। यदि उसमें अतिभार हो जाये तो यह तैरने की अपेक्षा डूब जावेगी। जो पानी के ऊपर चलती थी उसमें ऊपर से पानी आकर भर जाता और वह सवार को डुबो देती, वैसे ही मोह मूर्च्छा के अतिरेक के कारण पाप का भार बढ़ जाता है अन्याय सिर से ऊपर हो जाता है और न्याय डूबता जाता है। ये अन्याय कभी

डूबता नजर नहीं आता बल्कि जीवन में अन्याय का भार बढ़ जाने से न्याय रूपी नाव ही डूब जाती है। नाव स्वयं के कारण कभी नहीं डूबती, अन्याय नहीं बल्कि न्याय को भूल जाने के कारण उसमें बैठे सवार की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती और मोह-मूर्च्छा के कारण वह पाप में लिप्त हो न्याय को भूल जाता है। जीवन को जानने, सोचने और पहचानने के लिए बुद्धि की आवश्यकता होती है जो मूर्च्छा के कारण कुण्ठित हो जाती है। अत: ऐसे जीवन से क्या मतलब जिससे स्वयं तथा अन्य का जीवन खतरे में पड़ जावे।

पानी बढ़े नाव में घट में बाढ़े दाम।
दोनों हाथ उलीचिये यही सयानो काम॥

मूर्च्छा को स्पष्ट करते हुए भगवान् महावीर ने बताया है कि धर्म को प्राप्त करने के लिए, निष्परिग्रह भाव आवश्यक है जो मूर्च्छा के अभाव रूप होता है। रोग से पीड़ित व्यक्ति जब मूर्च्छित हो जाता है तो स्व-पर को या कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य को नहीं पहचान पाता । ऐसी ही कुछ आदतें निर्मित हो जाने पर उससे सहजता से छूट नहीं पाती, उसी में मूर्च्छा ऐसी है जिसके कारण व्यक्ति मुर्दे के समान हो जाता है। शरीर के साथ आत्मा भी शून्य सी हो जाती है। व्यक्ति धन की लिप्सा के कारण नर बलि चढ़ाने को भी तत्पर हो जाता है। सोना-चाँदी के प्रलोभन के कारण जिस व्यक्ति के मुँह में पानी आ जाता है। उसे ऐसी बली होते हुए देखकर भी आँखों में पानी नहीं आना भी मूर्च्छा का ही परिणाम है। जिसके कारण ये प्राणी नरक निगोद की यात्रा करता है।

अहिंसा परमो धर्म की जय!

❑ ❑ ❑

धर्म का आस्वादन

"वचन की शुचिता एवं शरीर की शुचिता के लिए सभी प्रयास करते हैं। वचनों में शब्दों और अर्थ की शुद्धि के साथ शरीर की शुद्धि कर, पर को प्रभावित/आकर्षित करने का प्रयास होता है। ये दोनों नहीं हों किन्तु मन की शुचिता हो तो वह भी पर्याप्त है। शुचिता के अभाव में हानि की हानि है। शरीर की शुचिता स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद तथा वाचनिक शुचिता पर को स्पष्ट बोध तथा आकर्षण का कारण होती है। मन की शुचिता नहीं कर पाने का दुष्परिणाम हमें आज तक भोगना पड़ रहा है। शौच धर्म, क्रोध, मान, माया लोभ आदि कषायों की प्रकर्षता को भी शुचिता में ढाल देता है, उसे कम या समाप्त कर देता है।"

पूज्य-पाद गुरु पाद में, प्रणाम हो सौभाग्य।
पाप ताप संताप घट, और बढ़े वैराग्य॥

हम बाहर तो दीपावली मनाते, किन्तु भीतर होली खेलते रहते हैं। दीपावली पर्व पर सभी लोग अपने भवन को अन्दर/बाहर से रंगरोगन-वान बनाते हैं। होली पर्व पर नहीं परन्तु जब तक भीतरी क्षेत्र-वातावरण को साफ-सुथरा नहीं बनाया जाता, तब तक वह सारा प्रयास व्यर्थ है। हमारी वर्तमान दशा पूर्व में किए कार्यों के फलों को दर्शाती है। मल भले ही जल के भीतर किया जावे पर वह ऊपर तैरकर आता ही है वैसे ही हम भीतरी भावों/परिणामों को छुपाने का प्रयास भले ही करें, परन्तु वह बाहर प्रकट हो ही जाते हैं हमारे स्वयं के हावों-भावों से। आप प्रतिदिन साबुन से स्नान करके वस्त्र से पोंछ कर शरीर आदि को स्वच्छ बनाते हैं। धार्मिक क्षेत्र में शौच धर्म वह औषधि रसायन है जो इस लोक तथा परलोक दोनों को सुधारने वाला है। धर्म-अर्थ एवं काम तीन में से धर्म पुरुषार्थ गृहस्थों के लिए मुख्य है और जो ग्रहण किया था उसे त्याग करने रूप मोक्ष पुरुषार्थ श्रमणों के लिए है। साधु जीवन में उपकारी उपकरणों के प्रति मोह को त्यागने में ही धर्म का आस्वादन आता है। पर गृहस्थ कर्म को छोड़कर उससे दुगुना पाने के लिए धर्म करता है, परिग्रह के प्रति यही आसक्ति उसकी मानसिक अशुचिता का कारण बनती है।

१० या २५ नहीं बल्कि ६० प्रतिशत अर्जित धन संपत्ति को देना 'दान' परन्तु त्याग तो सर्वथा छोड़ना है, जो रखा उसके रक्षण संवर्धन के भाव आते हैं। गृहस्थ एक-एक पैसा जोड़ने को अपने धन का विकास मानता है एवं खर्च करने पर उसे पसीना आता है। **संत रूपी दर्शन-दर्पण में आत्म स्वरूप की निर्मल दशा झलकना ही प्रसन्नता है।** भगवान् को देख हम भी प्रसन्न होते हैं क्योंकि उनकी मुखमुद्रा में लोभ, लालच या संक्लेश नहीं अपितु आनंद का सरोवर लहराता है। वह उनकी आंतरिक शुचिता का ही प्रतिफल है। जैसे स्वच्छ जल में भले ही लहरें उठ रही हों तब भी भीतरी वस्तु को देखा जा सकता है।

पर आपकी लहरें अलग ही हैं जैसे कीचड़दार जल लहर रहित होने पर भी उसमें मलिनता होने के कारण भीतरी परिणति को नहीं आंका जा सकता। अतः मन को शुद्ध रखने के लिए ही धार्मिक अनुष्ठान किए जाते, इसके अलावा और कोई साधन नहीं है। हमारे अलावा अन्य के भी मनः परिणाम शुद्ध हों ऐसी भावना करने से भविष्य सुधरेगा पर यह तभी संभव हो सकेगा जब हमारा मन अन्तर से उज्ज्वल हो। शौच धर्म की पवित्रता-गहराई दूसरों के लिए नहीं अपितु स्वयं के लिए हैं। सूत्र/धर्म को पर के लिए कहना ही गलत धारणा है, अतः इसे मन से निकाल दें। दर्पण को देखकर जैसे स्वयं के मुख को साफ करते हैं, ऐसे ही पर के निमित्त से स्वयं को साफ-स्वच्छ किया जा सकता है। हम आज दूसरों की गंदगी को देखते हैं स्वयं की नाक में भरे हुए मल को नहीं, पर की आँख की लालिमा को तो देखते, पर स्वयं की आँख की लालिमा को महसूस ही नहीं करते। वस्तुतः दूसरों की ओर देखना जैनाचार्यों ने दोष माना है।

संसारी प्राणी को मन धोने में पसीना आता और तन धोने में आनंद। तन को स्नपित कराने के उपरांत जैसे भूख खुलती है, वैसे ही मन को शुद्ध कर लेने पर आत्मानुभूति रूप भूख खुलती है। 'समयसार' में कथन है कि हमने काम-भोग एवं बंध की कथायें तो बार-बार की हैं, अनादिकाल से करते आ रहे हैं पर शुद्ध आत्मतत्त्व का अनुभव, चिंतन कब हो, ऐसा प्रयास कभी नहीं किया। यह आत्म तत्त्व का अनुभव उसे ही प्राप्त होता है जो दूसरे के मन-वचन एवं काय की नहीं बल्कि स्वयं की भीतरी चेष्टा को देखता है।

तीर उतारो तार दो, त्राता! तारक वीर।
तत्त्व-तन्त्र हो तथ्य हो, देव-देवतरु धीर॥

आत्म तत्त्व को धोने/साफ करने के लिए घंटों या वर्षों नहीं बल्कि एक अंतर्मुहूर्त ही पर्याप्त है। मन गंदा होने का कारण यह है कि भीतर लोभ जागृत होता है। वस्तु मिले या न मिले पर वह उसे प्राप्त करने की योजना अवश्य बनाता है/उसी उधेड़ बुन मायाचार में लगा रहता है, उसके मिल जाने पर मान करता और नहीं मिलने पर क्रोध करता है। ऋण एवं अग्नि को कभी छोटा नहीं समझना चाहिए। अग्नि की छोटी-सी कणिका विशाल भवन को खाक कर देती है और छोटा-सा वृण बढ़कर घाव-नासूर बना जाता तथा छोटा-सा भी ऋण बढ़कर मूल की अपेक्षा ब्याज प्रतिफल बढ़ाता जाता है। मुंशी प्रेमचन्द्र की कहानी ''सवाशेर गेहूँ-बंधुआ मजदूर'' अतः इनके प्रति प्रमाद न करें बल्कि शीघ्र ही इन्हें समाप्त कर देना चाहिए। वैसे ही वचन व तन के साथ मन को भी शुचि बनायें अन्यथा हमारी चेष्टा सरोवर में स्नान करके बाहर आए हुए हाथी के समान ही होगी। जो बाहर आते ही धूल को अपने सिर पर डालता है।

भगवान् महावीर का यही संदेश है कि परिग्रह के कारण कषाय जागृत होती है और उसी के कारण क्रोध, मान, माया, लोभ आदि का वैभव फैलता है। संतोष रखने से अपने आपको स्वस्थ बनाया जा सकता है। मन को शुद्ध बनाये रखने के लिए अपने ऊपर जो परिग्रह .का अंबार लाद रखा है उसे समाप्त करना होगा। सुख चाहने मात्र से दुख से छुटकारा नहीं होगा। छहढाला में कहा- **सुख चाहें दुख ते भयवन्त** - उसके लिये अथक प्रयास कर परिग्रह का विमोचन कर तप-त्याग के पथ पर आगे बढ़ेंगे, तभी परम सुख के लिये प्राप्त होंगे।

महावीर भगवान् की जय!

❑ ❑ ❑

अनंतकालीन संतति

आत्मिक संस्कारों के सामने वैषयिक संस्कार बलजोर नहीं हो पाते, अपितु बलहीन हो जाते हैं। विषय कषायों के संस्कार तो अनंतकालीन हैं जो अज्ञान के कारण सदा बलजोर रहे, पर जो व्यक्ति तत्त्वज्ञान को प्राप्त कर लेता उसके बुरे संस्कार समाप्त होना प्रारंभ हो जाते हैं। उसमें ऐसी भी शक्ति विद्यमान है जिससे अत्यल्प समय में भी उन्हें धोया जा सकता है। संसारी प्राणी तो पंचेन्द्रिय विषयों के प्रति राग के आकर्षण से खिंचता चला जाता किन्तु जिसके पास तत्त्व ज्ञान होता, वह उन विषयों के बीच में रहते हुए उनसे निर्लिप्त अप्रभावी रहता है।

इन विषय कषायों ने संसारी प्राणी को इस छोरहीन संसार में अब तक भटकाया और इसी कारण विभिन्न नातों-रिश्तों रूपी जेलों में फँसकर जीवन अभी तक पिसता आया है। विषय कषायों के चक्कर में रच-पचकर भी दुनिया बोरियत महसूस नहीं कर रही अपितु कुछ और प्राप्ति की आशा में पढ़कर वास्तविक सुख-दुख को ही नहीं समझ पा रही है। ऐसी दशा में गलत संसर्ग हो जाने के कारण वह जीवन में अनर्थ ही करता जाता है और धर्म-कर्म सब कुछ भूलता जाता है। किन्तु संसार-शरीर और भोगों के प्रति अरुचि होने रूप वैराग्य भावों के कारण वह स्वयं को परखता हुआ कर्मोदय के कारण बीच की दशाओं में अपना मूल्यांकन करता हुआ जीवन में आने वाले अनेक कष्टों को सहन करता हुआ भी अपने आत्म स्वरूप को समझता है। ऐसी दशा में कर्मों का आरोहण-अवरोहण करता हुआ वह गलत माहौल के बीच में पहुँचकर भी अपने आपको गलत कार्यों से बचा सकता है।

समयसार में आचार्य कुन्दकुन्द देव कहते हैं

सुद परिचिदाणु भूदा, सव्वस्स वि काम भोग बंध कहा।
एयतस्सुव लंभो, णवरि ण सुलभो विहत्तस्य॥

यह प्राणी आज तक काम, भोग एवं बंध की कथाओं से सुपरिचित रहा है किन्तु यह मोक्ष तत्त्व से आज तक अछूता दूर रहा है।

जैन साहित्य में वर्णित चारुदत्त नामक धनाढ्य व्यक्ति के चरित्र आख्यान को उदाहरण के रूप में समझाते हुए आचार्य श्री ने कहा कि वह तत्त्वज्ञान से युक्त था। वैराग्य पथ से विचलित कराने हेतु परिजनो ने उसकी संगति वेश्या से करा दी और यही चारुदत्त विषयों में रच-पचकर, उन्हीं में फँसकर भटक-भटक कर परिवार की अपार सम्पदा को समाप्त करता हुआ दीन दरिद्री चारुदत्त बन जाता है। भीतरी संस्कार होते हुए माहौल परिवर्तित हो जाने से जैसे पारे का संसर्ग पाकर स्वर्ण अपनी स्वर्णता को समाप्त कर पारे में ही लीन हो जाता, उसी प्रकार यह आत्मा भी अनंत कालीन दुर्गतियों के संसर्ग/संस्कारों के कारण अच्छे संस्कारों से अप्रभावित रहती है। जैसे हिंगड़े की गंध से युक्त डिब्बी में

बहुमूल्य कस्तूरी को रखने पर कस्तूरी की गंध भी बेकार होकर अपना परिचय खो देती है वैसे ही कुसंगतियों के प्रभाव में पड़कर हम अपना निज स्वरूप भूल गये हैं। एक बार भी यदि आत्मा कुसंस्कारों से मुक्त हो जावे तो तत्त्वज्ञान के माध्यम से एक अंतर्मुहूर्त में भी अनंत कालीन बुरे संस्कारों को समाप्त किया जा सकता है।

यही प्रार्थना वीर से, अनुनय से कर जोर।
पग-पग पल-पल बढ़ चलूँ, मोक्ष महल की ओर॥

आचार्य कहते हैं कि ये धार्मिक चरित्र या आख्यान दूसरे को सुनाने के लिए नहीं अपितु स्वयं समझने के लिए है। एक बार नहीं अपितु बार-बार पढ़ें, तभी हम अल्प जीवन में भी विषय कषायों के कारण होने वाली अपनी दुर्दशा को तत्त्वज्ञान से समझ सकेंगे। तब भावज्ञानरूपी कदम पाकर विशेष रसपान करने से सांसारिक कार्यों के प्रति नीरसता आ जाती है। और तब धर्म-कर्म को करता हुआ। व्यक्ति जिनवाणी या सद्‌गुरु के उपदेश-संत कृपा, आशीष पाकर अपने ध्रुव लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

सांसारिक कार्यों को करते हुए व्यक्ति जो कार्य करता वह उसी में रम जाता है। मनुष्य कदम पर कदम बढ़ाता जाता और आदि से अंत तक कमाने के चक्कर में पड़कर इसमें उलझ जाता है। जैसे सिंह का बच्चा बकरियों की संगत में पड़कर मैं-मैं करता हुआ अपना जीवन गुजारता रहता है किन्तु किसी सिंह को देखकर या उसकी दहाड़ सुनकर अपनी शक्ति परिचय प्राप्त कर लेता है। और अपनी दिशा और दशा दोनों को ही परिवर्तित कर लेता है।

कुन्दकुन्द को नित नमूं हृदय कुन्द खिल जाय।
परम सुगन्धित महक में जीवन मम धुल जाय॥

आचार्य भगवत् कुन्दकुन्द स्वामी ने ग्रन्थराज समयसार में बताया है कि जिस प्रकार १०० टंच सोने से बने आभूषण कीचड़ में गिरकर और एक-दो दिन नहीं अपितु महीनों, वर्षों उसी में पड़े रहने पर भी कीचड़ के प्रभाव से प्रभावित नहीं होते। परन्तु लोहे का टुकड़ा उस कीचड़ में गिरकर कुछ ही समय के पश्चात् अपना मूल स्वरूप खो देता है। और कीचड़ के कारण जंगयुक्त हो जाता है। एक ही खान से दोनों धातुएँ निकली, परंतु अपने-अपने गुणधर्म के अनुसार स्वर्ण तो उसके प्रभाव से प्रभावित नहीं होता किन्तु लोहा अपना वास्तविक गुणधर्म छोड़कर उस मिट्टी में क्रमशः क्षीणता को प्राप्त होता हुआ नष्ट हो जाता है। वैसे ही मोही अपने स्वरूप के तत्त्वज्ञान के अभाव में स्वभाव को भूलकर अपना अस्तित्त्व खो देता है, **किन्तु ज्ञानी व्यक्ति परमार्थ ज्ञान प्राप्त कर विषय कषायों के बीच में रहकर भी उससे निर्लिप्त है।**

❑ ❑ ❑

एक जन्म ऐसा भी हो

आज हमारे चारों ओर अंधकार ही अंधकार है, उजाले का ठिकाना नहीं है। सूर्य और चंद्रमा के कारण दिन एवं रात का विभाजन तो हो जाता है किन्तु मोह के कारण दिन में भी रात होती है। मोह का अभाव हो जाने पर रात्रि में भी दिन जैसा ही प्रकाश भासित होता है। विषयों के प्रति लगाव को सम्यग्ज्ञान के द्वारा ही शांत किया जा सकता अन्यथा नहीं। यह सावधानी रखना आवश्यक है कि आज का संयोग कल नियम से वियोग में परिणित होगा ही । इस सत्य से हम शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं और अपने समय को प्रभु की भक्ति में/अपने आत्म कल्याण में लगा सकते हैं। जिसे हम प्रभु का निर्वाण कहते वास्तव में उनका आज जन्म हुआ है। महावीर जयंती को तो शरीर धारी बालक का जन्म हुआ था, किन्तु आज उनका मुक्त अवस्था में ऐसा जन्म हुआ जो आगामी अनंतकाल तक व्यय नहीं होगा अथवा भविष्य के जन्मों का आज ऐसा व्यय हुआ कि जिनका पुनः अब उत्पाद नहीं होगा। उनके कारण हम सभी को जो ज्ञान की किरण मिली वह प्रत्येक को नहीं मिलती, अब उसका सदुपयोग कर उन जैसे अर्हत्पद का हम संवेदन करें।

समकित संयम आचरण, इस विध द्विविध बताय।
वसुविध-विधिनाशक तथा, सुर सुख शिव सुखदाय॥

हम सभी ने एक दो नहीं अपितु अनंत बार पूर्व में शरीर को धारण किया है। जन्म लेने के बाद वृद्धावस्था आ जाने पर भी हमें क्या करना है, यह नहीं सोच पाते। आयु समाप्ति के उपरांत आगे क्या होगा? इसका समाधान पाने का प्रयास नहीं करते। त्रिलोकी तीर्थंकर प्रभु भी इस, पर घर को छोड़कर स्व-घर को चले गए, हम लोगों को अपने निज घर प्राप्ति की चिन्ता ही नहीं है। इस भौतिक नश्वर शरीर को ही अपना घर मान लिया, यही अज्ञान है।

एक तोता पिंजड़े में बंद परतंत्रता का अनुभव करता हुआ उसे ही अपना आवास समझ बैठा है, किन्तु दूसरा तोता पिंजड़े के ऊपर (बाहर) बैठा हुआ मुक्ति-स्वतंत्रता का संवेदन कर रहा है। इस तोते को देख भीतरी तोते को वास्तविकता का बोध प्राप्त होता है और वह शीघ्र ही पिंजड़े से मुक्त होने की कामना एवं प्रयास करता है। ऐसे ही प्रभु के मुक्ति गमन से हम सभी अपने कल्याण के लिये प्रयास करें, यही दिशा बोध एक न एक दिन अवश्य ही हमें संसार के बंध रूपी पिंजड़े से मुक्ति दिलायेगा।

मात्र नग्नता को नहीं, माना प्रभु शिव पन्थ।
बिना नग्नता भी नहीं पावो पद अरहंत॥

आज प्रातःकाल हुए सूर्य ग्रहण को लक्ष्य कर गुरुवर आचार्यश्री ने कहा कि उस समय का मौसम कैसा हो गया था इस पर विचार करने पर लगा कि चंद्रमा की स्थिति तो फिर भी ठीक होती

है, पर प्रताप शाली सूर्य के ऊपर ऐसा चक्र छा गया जिससे वह पूर्ण ढक सा गया। यह ग्रहण तो कुछ ही समय के लिये था किन्तु हमारे जीवन में निगोद अवस्था में पूर्ण जैसी स्थिति रही, जो अनंतकाल से अभी तक चली आ रही है। भले ही अभी पूर्ण ग्रहण-जैसा नहीं है पर हमारी चेतना को आशिक रूप से ग्रसित किए हुए है। इस मोहरूपी ग्रहण को एक बार समाप्त करने पर ज्ञान रूप केवलज्ञान की प्राप्ति होगी। ज्ञानी जीव को दुख कष्ट का अनुभव होते हुए भी भविष्य में सुख की प्राप्ति अवश्य होगी, ऐसा दृढ़ विश्वास है। अतः उसे संसार के विषय भी फीके लगने लगते और उनके प्रति उसकी इच्छा भी समाप्त हो जाती है। सन् १९८० में जब सिद्ध क्षेत्र द्रोणागिरी (छतरपुर) में संघ का प्रवास था, उस समय पूर्ण खग्रास सूर्य ग्रहण हुआ था। तब देखा कि पशु अपने-अपने घर को लौट रहे व पक्षी भी अपने-अपने वृक्षों पर पहुँचकर बोलने-चहकने की क्रिया बंद कर, रात्रि समझ स्वयमेव ही शांत हो गये थे। वैसे ही हम भी विचार करें कि हमारे ज्ञान पर आज तक ग्रहण लगा हुआ है। समीचीन ज्ञान की प्राप्ति के बाद तो विषय कषायों की ओर वृत्ति स्वयमेव बंद हो जानी चाहिए।

महावीर भगवान् की जय!

❑ ❑ ❑

जीवन का प्रारम्भ

दिन के आते ही रात भाग जाती है वैसे ही आत्म-ज्योति के प्रकट होने पर पापमयी जीवन समाप्त हो जाता। और नूतन जिन्दगी प्रारंभ हो जाती है। उस समय राग समाप्त होकर वीतरागता का नवप्रभात होता है। राग की दशा में व्यक्ति आत्म हित की बात भूल जाता फलस्वरूप वह सही को गलत अथवा गलत को सही जैसे सर्प को रस्सी और रस्सी को सर्प मानने लगता यह सब प्रबल राग का ही दुष्परिणाम है।

मुनि वन वन में तप सजा, मन पर लगा लगाम।
ललाम परमातम भजा, निज में किया विराम॥

जिस घटना को देखने से किसी को वैराग्य होता है उसी को देख दूसरे को विशेष राग 'हो उठता है। जिसकी दृष्टि में जो होता है उसे सृष्टि भी वैसी ही दिखती है। किन्तु समीचीन बोध प्राप्त सम्यग्दृष्टि की भावना में, सदा अंतर्दृष्टि रहती है। जिससे वे सदा सभी के सुख या हित प्राप्ति की भावना करते हैं। पूर्वाचार्यों संतों ने चार पुरुषार्थों में धर्म पुरुषार्थ, अर्थ पुरुषार्थ के बाद काम पुरुषार्थ का उल्लेख किया है। इसके उपरांत ही मोक्ष पुरुषार्थ की ओर विशेष गति हो जाती है, धर्म के चलते गृहस्थ आचरण पालन करते हुए न्याय-नीति पूर्वक धनार्जन करके ही भोग-उपभोग की वस्तुओं का प्रयोग करता है किन्तु ध्येयभूत मोक्ष पुरुषार्थ के लक्ष्य को नहीं भूलता है।

आचार्य श्री ने पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव एवं दुष्परिणाम की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए बताया कि **आज चारों और पश्चिमी हवा के वातायन का प्रभाव जोरों से बढ़ता जा रहा है** जिसके कारण धर्म और मोक्ष पुरुषार्थ छूटते जा रहे हैं, इन्हें भुलाकर अर्थ और काम पुरुषार्थ की ओर ही लक्ष्य हो जाना उस हवा का रुख है, भारतीय संस्कृति सदा निवृत्ति प्रधान अर्थात् धर्म और मोक्ष पुरुषार्थ प्रधान रहा इन पुरुषार्थों तक पहुँचने के लिए भूमिका के अनुसार शेष दो पुरुषार्थों का प्रयोग होता है। **पश्चिमी प्रभाव ने भारतीय संस्कृति के गरिमामय माहौल में रंग में भंग या मंगल में दंगल कर अशांति उत्पन्न कर दी जिसमें आनंद के स्थान पर अब सर्वत्र क्रंदन, रुदन ही प्रारंभ हो गया है।**

यह निश्चित है कि गृहस्थ का जीवन अर्थ के बिना नहीं चलता। अतः वह उस द्रव्य (धन) से भोग-उपभोग की सामग्री प्राप्ति हेतु अर्थ को खर्च करता है किन्तु अर्थ की गति को अनर्थ से बचाये बिना तथा मूल कर्मबंधन, संसार से धर्म पुरुषार्थ को किये बिना मुक्ति मिलना संभव नहीं है। इसीलिये भारतीय परम्परा के अनुरूप पहले माता-पिता के द्वारा लड़के-लड़कियों के विवाह संबंध निश्चित किये जाते थे, पर पश्चिमी हवा के प्रभाव से आज पहले ही संबंध स्थापित हो जाते हैं। माता-पिता की स्वीकृति तो मात्र औपचारिकता रह गई है। इसी का दुष्परिणाम है कि पति-पत्नी में विवाह के उपरांत ही आपसी मनो-मालिन्य, तनाव कुंठा की भावनायें दिनों-दिन बढ़ती जाती हैं।

आचार्य श्री ने हरिवंश पुराण कथा की ओर दृष्टि पात कर आकाश सौर मंडल में सूर्यमणि के समान चमकने वाले वैभव को प्रदर्शित करने वाले यदुवंशी नारायण श्री कृष्ण के भावी तीर्थंकर के जीव, कुमार नेमिनाथ के दीक्षा ग्रहण एवं तपस्या को चित्रित करने वाले चित्र तो घरों-मंदिरों में सहज ही मिल सकते हैं। परंतु जिस घटना से उनके मन में वैराग्य के भाव दृढ़ हुए और उन्होंने दीक्षा ग्रहण की ऐसे व्याख्यान के चित्र बहुत कम देखने में आते है। उनकी बारात में आये कुछ जिह्वा लोलुपी व्यक्तियों के आस्वाद के लिये बाड़ी में बंद पशुओं को देखकर एवं चीत्कार सुनकर उन्हें वैराग्य हो गया और वे रथ से उतरकर गिरनारजी उर्जयन्त पर्वत पर जाकर दीक्षा लेकर श्रावक से श्रमण नेमिनाथ हो गए।

मुनि बन मुनिपन में निरत, हो मुनि यति बिन स्वार्थ।
मुनिव्रत का उपदेश दे, हमको किया कृतार्थ॥
यही भावना मम रही, मुनिव्रत पाल यथार्थ।
मैं भी मुनिसुव्रत बनूँ, पावन पाय पदार्थ॥

विवाह की बेला में यह खबर ज्यों ही राजकुमारी राजुल तक पहुँची तो उन्होंने भी संसार की असारता व अस्थिरता जानकर स्वयं के लिये भी वैराग्य पथ पर मोड़ दिया और वह भी जिन आर्यिका

दीक्षा ग्रहण करने हेतु गिरनार पर्वत पर पहुँची, राजुल के उठते-गिरते रहने के कारण संभव हो नारी गिरी अथवा गिरि पर नारी के कारण गिरनारी/गिरनार पर्वत नाम पड़ गया, प्रभु नेमिनाथ और सती राजुल तो गिरनार चले गए किन्तु निरपराध-मूक-मृगादि पशु प्रतीक्षारत हो उस गिरनार की ओर दृष्टि ले जा रहे थे कि इन्हें तो संसार से मुक्ति मिल गई, हमें भी कोई मुक्ति दिला दे इस बंधन से। आचार्य श्री कहते हैं कि मनुष्य को पेट भरने के लिये डेढ़ पाव आटा पर्याप्त है, किन्तु उस पेट्रोल को भरने के लिये अनेक निरपराध पशुओं को मारकर भी उस गड्ढे की अतृप्त इच्छा को पूर्ण नहीं किया जा सकता। वस्तुतः पेट भरने के लिये अनर्थ नहीं किये जाते जितने कि मानसिक स्वार्थ की पूर्ति के लिए किये जाते। भगवान् नेमिनाथ के उपासक सोचते हैं कि उन्होंने शादी को बर्बादी की निशानी समझकर उसे छोड़ दिया। संभवतः इसी कारण शादी नहीं करायी हो। परन्तु दया का रहस्य समझने वाले प्रभु नेमिनाथ ने उस जीव हिंसा को पाप समझा। अहिंसा और शाकाहार के उपासक ने स्वयं को वैराग्य की ओर मोड़, हिंसा के पाँच कारणों का अभाव कर उपदेश दीक्षा के पूर्व ही प्रदान कर प्राणिमात्र का कल्याण किया।

अहिंसा परमो धर्म की जय!

❑ ❑ ❑

स्वयं धर्मात्मा

धर्म मन वचन काय या धन से नहीं वह तो चेतन से संबंध रखने वाला तत्त्व है। वह खरीदने बेचने या डिब्बे में रखकर बंद कर लेने की वस्तु नहीं अपितु धर्मात्मा के अंदर की परिणति है। धर्मात्मा होने की बात तो की जा सकती है परन्तु पहले स्वयं धर्मात्मा बनें, न कि धर्मात्मा बनाने के चक्कर में पड़े। किसी को मार्ग बताने के पूर्व स्वयं उसको पूर्णतः या अंशतः अपने जीवन में आचरित करें।

धर्म निर्जीव वस्तु नहीं जिसे यूँ ही स्थापित कर दिया जावे। उसकी आवाज सुनने की चेष्टा करें। तन-मन-धन या वचनों से डर लग सकता परंतु धर्म की शरण में जाकर भयावह प्रसंगों से अपने आपको बचाया जा सकता है। देश में जो सांस्कृतिक उत्सव होते हैं वे मात्र औपचारिकता पूर्ण नहीं बल्कि उनसे जनता की सुप्त चेतना जागृत होती है। इसीलिए धार्मिक या सामाजिक उत्सव पूर्ण आनंद और उत्साह से मनाये जाते हैं। मन में उत्साह उमंग होने पर वह वचनों से अभिव्यक्त होता है तथा वचनों में आ जाने पर यह अंग प्रत्यंग के हाव-भाव से प्रगट होने लगता है। उत्साह भीतर हो तो वह शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्ति को प्राप्त होता है, क्योंकि हृदय के भाव चेहरे पर भी झलकने लगते है।

समता भज तज प्रथम तू पक्षपात परमाद।
स्याद्वाद आधार ले समयसार पढ़ बाद॥

वर्तमान लोकतंत्रीय व्यवस्था के संबंध में कहा कि **राजकीय सत्ता में यथा 'राजा तथा प्रजा' की उक्ति चरितार्थ होती है** पर लोकतंत्रीय व्यवस्था में यथा प्रजा तथा राजा की सार्थकता होनी चाहिए। जिस कारण जनता अयोग्य व्यक्तियों को हटाकर योग्य व्यक्तित्व को उस पद पर स्थापित करती है। अपने घर की व्यवस्था करने में जो फेल हो वह संपूर्ण भारत देश को क्या नियंत्रित करेगा? जो स्वयं ही अनुशासित-संयमित न हो। वस्तुतः प्रजा का कर्त्तव्य है कि यदि राजा (शासक) धर्मनीति से स्खलित हो रहा है तो उसमें सुधार करावें पर आज तो राजा ही नहीं रह गया और प्रजातंत्र के नाम पर आज मात्र स्टाप सा क्षतिपूर्ति ज्यों लग रहा है।

ये धर्मानुराग से प्रेरित नहीं बल्कि जातीयता, स्वार्थ या अपनत्व के कारण होता इसलिए उसे चेतन से अनुराग नहीं होता। जिनकी शरीर की ओर दृष्टि होती है उन्हें आत्मा की जाति का ज्ञान नहीं होता-वैसे चेतना तो सबके पास है। वेश बदलने मात्र से चेतना लुप्त नहीं हो जाती, वेश-परिवेश या देश की बदलाहट से जन्म-मरण की कुण्डली भले ही बदल जाये पर आत्मा की कुण्डली सदा एक सी रहती है। उसकी कोई भिन्न जाति अंश या वंश नहीं होता।

मात पिता रज वीरज मिलकर बनी देह तेरी।
मांस हाड़ नस लहूँ राधकी, प्रकट व्याधी घेरी॥

इस रज और वीर्य के संयोग से बने शरीर की बात अलग है। पर्याय बदल जाने पर ज्ञान भी पलट जाता है। पर धर्म के संस्कार जिसके जीवन में पड़ गये हों वह प्रशम, संवेग, अनुकंपा और आस्तिक्य दया से संयुक्त हो करुणामय भावों के साथ जीवन - यापन करते हैं उन्हीं का साक्षात्कार प्रभु से हो जाता है -

साक्षात्कार प्रभु से जबलों न होता,
संसारी जीव तबलों भव बीच रोता।
पट्टी सु साफ करता नहिं घाव धोता,
कैसे उसे सुख मिले, दुख-बीज बोता॥

महावीर भगवान् की जय!

❑ ❑ ❑

दीक्षा एक अन्तर्घटना

दीक्षा बाहरी नहीं भीतरी अन्तर्घटना है, जो लौकिक नहीं पारलौकिक है जिसे मन-वचन एवं काय के द्वारा उपयोग को उज्ज्वल बनाकर प्राप्त की जा सकती है। संसार में भी संवेग और निर्वेगमयी भाव बिरले ही जीवों के हो पाते हैं। संसार तथा शरीर की पहचान हो जाने से भोगों के प्रति उदासीनता

आ जाती है और स्वयमेव आत्म-कल्याण की भावना से प्रसन्न चित्त हो दीक्षा को अंगीकार किया जाता है आचार्य श्री ने लिखा है- **वैराग्य की दशा में स्वागत आभार भी भार सा लगता है। आँखों की पूजा आज तक किसी ने नहीं की, सदा चरणों की पूजा होती है यानि दृष्टि नहीं आचरण पूज्य होता है।**

तन मिला तुम तप करो, करो कर्म का नाश।
रवि-शशि से भी अधिक है, तुममें दिव्य प्रकाश॥

ब्रह्मचारी त्रिलोकजी के मंगलाचरण के उपरांत सदलगा की सौभाग्यवती महिलाओं ने मंच पर दीक्षार्थियों के बैठने हेतु स्वस्तिक का निर्माण किया। २३ वर्षीय स्व. श्री बंशीलाल एवं श्रीमती कमलाबाई जैन छिंदवाड़ा के सुपुत्र १० प्रतिमाधारी प्रथम दीक्षार्थी ब्रह्मचारी दिलीपजी विगत ८ वर्षों से आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के संघ में साधनारत थे। दीक्षा के पूर्व वैराग्यमय उद्बोधन में आपने कहा कि पढ़ाई, व्यापार एवं सामाजिक कार्य करते हुए मैं निर्णय नहीं कर पाता था कि भविष्य में मेरा क्या लक्ष्य होगा। तत्त्वज्ञान की प्राप्ति तथा साधु-संतों के समागम से अंतरंग में निर्मल परिणाम हुए। एक दिन प्रसंगवश मंच पर बैठे-बैठे ही मन में विचार आये कि भविष्य में क्या बनूँगा? इस विषय पर परिचर्चा में मैंने निर्णय किया कि मैं अपने आपको पाना चाहता हूँ और इस कार्य हेतु अपने आपको आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के श्री चरणों में समर्पित कर अपने आपको पाना चाहता हूँ। इस हेतु दीक्षा का निवेदन कर मोक्षमार्ग पर चल दिया।

द्वितीय ब्रह्मचारी कुलभूषणजी स्व. गणपतराय गोविंदजी बारे और श्रीमती फूलाबाई से ग्राम महातपुर, तालुका मोड़ा (शोलापुर) महाराष्ट्र में जन्मे, बीएससी, अध्ययन प्राप्त कर आप आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज से ५ वर्ष पूर्व आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कर विगत ३ वर्षों से आचार्यश्री के संघ में रहकर साधक के रूप में १० प्रतिमा के व्रतों का पालन कर रहे थे।

आत्महित की भावना रखने वाले तृतीय ब्रह्मचारी श्री रंजन जैन, उम्र २६ वर्ष, विदिशा जिले के मुरारिया निवासी सद्गृहस्थ श्रावक श्री निर्मलकुमार जैन एवं श्रीमती स्वर्णलताजी के पुत्र हैं। एम. काम. आर्ट तक लौकिक शिक्षा प्राप्त कर आप आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज से आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके श्री दिगंबर जैन उदासीन आश्रम इंदौर में धर्माराधनारत थे। सप्तम प्रतिमा की साधना करते हुए आपने ब्रह्मचारी श्री सुखलालजी, (क्षुल्लक श्री धर्मसागरजी) तथा (क्षुल्लक श्री पुनीतसागर जी) महाराज का सल्लेखना पूर्वक समाधिमरण कराने में पूर्ण योगदान दिया। अचानक इस दीक्षा महोत्सव के कार्यक्रम के प्रारंभ में ब्रह्मचारी अभयजी ने दीक्षार्थी त्रय का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर आचार्य श्री के चरणों में दीक्षा प्राप्ति हेतु निवेदन करने के लिए आह्वान किया। प्रातः ८ बजे दीक्षा का मांगलिक कार्यक्रम प्रारंभ हुआ जो लगभग पौने दो घंटे में पूर्ण हुआ। ब्रह्मचारी दिलीपजी,

ब्रह्मचारी कुलभूषणजी तथा ब्रह्मचारी रंजन जी को आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज ने क्षुल्लक दीक्षा प्रदान कर क्रमशः क्षुल्लक श्री निर्वेगसागर महाराज, क्षुल्लक श्री विनीतसागरजी महाराज तथा क्षुल्लक श्री निर्णयसागरजी महाराज के रूप में नामकरण किया। (तालियाँ) दीक्षा संस्कार करने के उपरांत आचार्य श्री ने संयमोपकरण रूपी मृदु पिच्छिका श्री संतोष सिंघई दमोह, महावीर अष्टगे सदलगा, ब्रह्मचारी चंद्रशेखरजी इंदौर से प्राप्त कर तीनों दीक्षार्थियों को प्रदान की। शास्त्रोपकरण श्री सुरेन्द्रकुमार जैन पानीपत, श्री कल्याणमल झांझरी कलकत्ता तथा श्री विजयकुमार जैन दिल्ली द्वारा पूज्य श्री क्षुल्लक महाराजों के लिये समर्पित किये गये तथा दीक्षार्थी की ओर से भावना भाई कि-

पूज्य-पाद गुरु पाद में प्रणाम हो सौभाग्य।
पाप ताप संताप घट, और बढ़े वैराग्य॥
भगवान् महावीर की जय!

❑ ❑ ❑

नवनीत की प्राप्ति

नीर के मंथन से नहीं बल्कि दही का मंथन करने पर नवनीत की प्राप्ति होती है, वैसे ही शास्त्र पढ़ने से नहीं बल्कि स्वयं के मन का मथन करने तथा रत्नत्रय को प्राप्त करने से ही कल्याणरूपी नवनीत प्राप्त होगा अन्यथा नहीं। शास्त्र या पोथी मात्र ज्ञान नहीं, क्योंकि शास्त्र कुछ भी नहीं जानता है। शास्त्र भिन्न है और ज्ञान भिन्न अतः शास्त्र को जानकर मन जब उसमें लीन होता है तो जीवन में हार की समाप्ति होकर जीत ही जीत होती है।

निज में यति ही नियति है, ध्येय पुरुष पुरुषार्थ।
नियति और पुरुषार्थ का, सुन लो अर्थ यथार्थ॥

संतों ने हमें कल्याण हेतु दिशाबोध दिया है किन्तु शास्त्र का कोई पार नहीं। जीवन में समय बहुत कम है हम सब दुर्मेधा (वक्रबुद्धि) वाले यदि आत्म कल्याण चाहते हैं तो ऐसा कार्य शीघ्र कर लेना चाहिए जिससे जन्म और मृत्यु को समाप्त किया जा सके। जितना समय हम राग द्वेष आदि के करने में लगा देते उतना या उसका लाखवाँ भाग भी सत् कार्य कर पुरुषार्थ करें तो शीघ्र ही आत्म-कल्याण हो सकता है।

आचार्य श्री ने कहा कि किसी भी मंजिल तक पहुँचने हेतु पथ या सीढ़ी अनिवार्य होती हैं अतः पथ का चुनाव महत्त्वपूर्ण है, जो कि शिक्षण के बिना नहीं हो सकता, शिक्षण का अर्थ ज्ञान है तो मराठी, कन्नड़ आदि में उसका अर्थ दंड भी होता है। संस्थागत शिक्षा आजीविका के लिए होती-ऐसी प्रायः आम धारणा होती है। परंतु **विद्या अर्थकारी नहीं, विद्या अवगुणों के नाश तथा परमगुणों की**

प्राप्ति का कारण होती है। शिक्षण क्षेत्र में आंदोलन अभिशाप है। महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में उद्यम/पुरुषार्थ चरम सीमा पर होने चाहिए, **क्योंकि वे शिक्षार्थी ही देश के होनहार (नागरिक) कर्णधार हैं, किन्तु आज विश्व के अन्य विश्वविद्यालयों की तुलना में भारत के विश्वविद्यालयों में उद्यम नहीं-ऊधम अधिक होता है जिसके कारण विद्यार्थियों का एवं देश का भविष्य अंधकारमय होता जा रहा है।**

क्रोध को जानकर उसके आने के द्वार को पहले बंद करें तथा जब-जब क्रोध आता है उन क्षणों में स्वयं को जागृत रखने का प्रयास करें। हम तो बाहरी द्वारों को बंद करने का उद्यम करते हैं। क्रोध तो भीतरी दरवाजे से आकर विस्फोट करता है, जो थोड़ी-सी आकुलता में अपना परिवेश बदलकर अन्य विकारी भावों के रूप में बाहर आ जाता है। पर क्रोध-मान आदि विकारों के आने पर भी उस पर कंट्रोल/नियंत्रण करना ही क्षमा है। आत्मा में जब तक क्षमा के संस्कार नहीं होंगे तब तक शांति की प्राप्ति नहीं होगी।

पुनः भस्म पारा बने, मिले खटाई योग।
बनो सिद्ध पर-मोह तज, करो शुद्ध उपयोग॥

जैसे कि सूर्योदय होने पर हमारी छाया सुदूर पश्चिम में दूर तक चली जाती है। वैसे ही सूर्यास्त के समय वही छाया पूर्व की ओर विस्तृत हो जाती है। किन्तु मध्याह्न के समय जबकि पशु-पक्षी जानवर शांत हो जाते तब वह छाया हमारे शरीर के नीचे आकर समाप्त हो जाती है। वैसे ही हमारी बाह्यवृत्ति जब भीतर हो जाती तो मन में उठने वाली विसंगतियों की तरंगें स्वयमेव समाप्त हो जाती हैं। उसके कारण शरीर भले ही समाप्त हो जाता है, पर आत्मा समाप्त नहीं होती है। बल्कि वह अजर-अमर बन प्रभु आराध्य का रूप धारण कर मोक्ष महल में विराजमान हो जाती है।

आचार्य श्री ने घड़ी के दृष्टांत से अपनी बात को समझाते हुए बताया कि घड़ी में ६ बजने पर या अन्य समयों पर घंटा, मिनिट या सेकेण्ड के कांटे पृथक्-पृथक् दिशा में रहते हैं, किन्तु १२ बजने पर तीनों कांटे एक के ऊपर एक हो जाते हैं। तब तीनों का अंतर समाप्त हो जाता है वैसे ही हमारी बाह्य वृत्ति अंतरंग में आवृत्ति होने से भटकन पुनरावृत्ति भी समाप्त हो जाती है। अतः हमें क्रोध नहीं करना है। जिस समय क्रोध या मान प्रकट होते हैं, उसी समय हमें जागृत रहने की आवश्यकता है। इसी प्रकार हम कर्म की मूल जड़ों को ही समाप्त कर सकते हैं।

सुचिर काल से मैं रहा, मोह नींद में सुप्त।
मुझे जगाकर कर कृपा, प्रभो करो परितृप्त॥

धार्मिक उत्सव हो या अन्य कोई भी उत्सव हो उसमें सर्वप्रथम उत्साह मन में होता फिर वचनों में आते हुए वहीं अंग-अंग में होता है इन तीनों के साथ चेतना जुड़ी रहती है। जब चेतना जागृत होती

तो वचनों से जो आभास कर लेते हैं, उत्साह क्या है? हृदय का अनुकरण मुख करता है। आचार्य श्री ने कहा कि– **जैसे भीतर भाव रहेगा वैसा ही व्यक्त होगा, जड़ में भी चेतना आ जाती है। मन-वचन जहाँ जुड़ जाता वही धार्मिक उत्साह हो जाता है–**

चिन्ता छूती कब तुम्हें, चिंतन से भी दूर।
अधिगम में गहरे गये, अव्यय सुख के पूर॥
युगों-युगों से युग बना विघन अघों का गेह।
युग दृष्टा युग में रहें, पर ना अघ से नेह।
अहिंसा परमो धर्म की जय!

❑ ❑ ❑

संकीर्णता-कल्याण में बाधक

मानसिक विचारों की संकीर्णता के कारण ही हम संसारी प्राणियों की वृत्ति हिंसा, झूठ, चोरी आदि की ओर बढ़ रही है और क्षत्रियता समाप्त होती जा रही है। यह वही भारत है जहाँ लोगों के जीवन में, ग्रन्थों में, गीतों में, वाद्यों में अहिंसा का जयगान होता रहता था। किन्तु उसी भारत में अब अन्याय और पापाचार की ओर कदम बढ़ने लगे। इससे हृदय की धड़कन बदल गई। पाप के कारण गति ही बदल गई है। जिनके परिणामों में शैथिल्य आया उनकी उन्नति नहीं हो सकती अतः शैथिल्य को दूर से ही छोड़ देना श्रेयस्कर है। पुराण पुरुषों की जीवन घटनाओं को सुनकर, उनसे दिशा- बोध प्राप्त कर आचरण में उतारने से मोह, या ममत्व का नशा दूर होगा। तभी हम आपे में आ सकेंगे और तभी आत्मा का वैभव हमारे सम्मुख होगा। आचार्य श्री ने धर्म के बगैर मानव एवं पशु की स्थिति को दर्शाया है–

खुला खिला हो कमल वह, जबलौं जल-सम्पर्क।
छूटा सूखा धर्म बिन, नर पशु में ना फर्क॥

आँखों में निद्रा होने से देखने की इच्छा होते हुए भी वस्तु दिखाई नहीं पड़ती, निद्रा के अभाव होने पर ही वस्तु दिखाई पड़ती है, वैसे ही मोह की निद्रा को दूर करने पर ही आत्मा को पाया जा सकता है। **जैन दर्शन की यह मौलिक विशेषता है कि वह हमारे अन्दर परमात्मा या भगवान् बनने की क्षमता प्रकट करता है** यहीं जैन दर्शन अन्य दर्शनों से जीवमात्र को दिग्दर्शन कराता है। जैन जाति या धर्म किसी व्यक्ति विशेष से संचालित नहीं होता बल्कि वह स्वयं को जीतने से ही संभव है। अतः सही मार्ग को खोजें और उस पर कदम रख कर मुक्ति शाश्वत सुख को प्राप्त करें। जाति या धर्म किसी व्यक्ति विशेष से संचालित नहीं होता बल्कि वह स्वयं को जीतने से ही संभव है। अतः सही मार्ग को खोजें और उस पर कदम रख कर मुक्ति सुख प्राप्त करें।

वस्तुतः हमें आज तक जाति शब्द का रहस्य ही समझ में नहीं आया है। विचारों एवं आचारों के साम्य से सजातीयता-समान जाति होती है इसके अभाव में विजातीयता होती है। विचार एवं आचार के साम्य का नाम ही एक जाति है, उसके अभाव में परस्पर खून का संबंध होने पर भी वह किसी काम का नहीं। क्षत्रिय सदा जाति की रक्षा करने में तत्पर रहता है। वह रक्षा हेतु कदम बढ़ाने पर मर सकता है, पर पीछे कदम नहीं लौटा सकता न रुक सकता और न वापस मुड़ सकता है।

वचन-सिद्धि हो नियम से, वचन-शुद्धि पल जाय।
ऋद्धिसिद्धि-परसिद्धियाँ, अनायास फल जाय॥

जिसके सिर पर छत्र हो वह क्षत्रिय नहीं है बल्कि स्वयं तथा जनता में व्याप्त पाप को उनसे पृथक् करता/कराता है, वही क्षत्रिय है। रणभूमि में खड़े पूज्यजन, परिवारजन, पुरजन या परिचितों से संबंध नहीं जोड़ता बल्कि अनर्थ के लिये तत्पर व्यक्ति को सही राह दिखाने हेतु कमान पर तीर चढ़ाता वही क्षत्रिय है। जिसने जन्म लिया उसकी मृत्यु अवश्य होगी। जन्म शरीर का होता अतः उसका मरण भी अनिवार्य है। भीतरी आत्म तत्त्व को तलवार या भाले आदि के द्वारा वार करके मारा काटा नहीं जा सकता। एक वंश के होकर भी जो अनर्थ की ओर कदम बड़ा रहे हों उन्हें रोकने तथा शिक्षा देने के लिये ही युद्ध करता है। रणांगन से भागने वाला श्री कृष्णजी से इस दिशाबोध तथा वास्तविकता को प्राप्त कर मरते दम तक वह अर्जुन रूप मध्यम पाण्डव असत्य-हिंसा या असत् विचारों को रोकने में तत्पर रहता, यही क्षत्रियता है।

दूर दुराशय से रहो, सदा सदाशय पूर ।
आश्रय दो धन अभय दो, आश्रय से जो दूर॥

आज के इस भारत को उस महाभारत से शिक्षा लेनी चाहिए। क्षत्रिय के एक हाथ में ढाल और दूसरे हाथ में तलवार होती है, वह कभी पैसा हाथ में नहीं लेता। जिसके हाथ में पैसा होता वह स्वयं या पर की ओर दृष्टि नहीं दे पाता और न किसी की रक्षा कर पाता है। आज भारत को पुनः एक अर्जुन और पाण्डवों की आवश्यकता है, उसके बिना कुपथ या उन्मार्ग पर जाती हुई जनता या राजनीति को सुधारा नहीं जा सकता। आत्मा और परमात्मा को भूलकर मात्र अर्थ की ओर दृष्टि रखने वालों को परमार्थ की ओर उन्मुख कराने की आज आवश्यकता है। भारत को विश्व-हितकर्ता माना जाता है, खाने-पीने की वस्तुओं की भरमार से नहीं/बल्कि आत्म/धर्म की सही-सही जानकारी देकर शांति और सुख का मार्ग बताने वाला एक मात्र देश होने से/किन्तु यदि वही उसे भुला देगा तो फिर कौन उत्थान का रास्ता दिखला सकेगा। गलत राह की ओर जाते कदम भी आत्मा या धर्म की चर्चा सुन समझकर पलट जाते। अतः चिड़िया के द्वारा खेत चुग जाने के पूर्व जागृत हों जावें तभी अपनी फसल की रक्षा करके फल प्राप्त कर पायेंगे ये ही सही पुरुषार्थ है।

उन्नत बनने नत बनो लघु से राघव होय।
कर्ण बिना भी धर्म से, विजयी पाण्डव होय॥
अहिंसा परमो धर्म की जय!

❑ ❑ ❑

त्याग का प्रभाव

जीव के तीव्र कर्म के उदय होने पर अनेक प्रयास करने पर भी वह प्रयत्न सार्थक नहीं है। त्याग तपस्या से कुछ कर्म रूपी फल पकते और झड़ भी जाते है। परन्तु ध्यान रूपी अग्नि के संयोग से कर्म शीघ्र ही पक कर निर्जरित हो जाते हैं। जिस प्रकार अधपका आम पाल में शीघ्र ही पक जाता है। ये पाल की संगति है। ठीक उसी प्रकार मार्ग से विपरीत कार्य या बुरी संगति भी पूर्व संस्कार के प्रतिफल स्वरूप उदय में आकर व्यवधान खड़े कर देती है। कुछ भीतरी भाव विकल्प मन में ऐसे स्थिर हो जाते जो उपदेश से नहीं निकाले जा सकते उन्हें तो तप के द्वारा ही निकाला जा सकता है। एक पौराणिक कथा को दृष्टि में रखकर मुनि वारिषेण ने बाल सखा नव दीक्षित साधु पुष्पडाल के भीतरी विकल्प को निकलवाने के लिये अनेकों बार संबोधन दिया। किन्तु जब सफलता प्राप्त नहीं हुई तो आहार चर्या के समय राजमहल का वैभव सुख-सुविधा की सामग्री अनेक राज परिवार की सुन्दर नारियों को दिखाया। और उन सबको त्यागकर मोक्षमार्ग पर आगे बढ़ने वाले वारिषेण की भोगोपभोग की सामग्री देखते ही पुष्पडाल के हृदय में परिवर्तन हुआ और वह निःशल्य हो गये यह कहने से या देखने से नहीं बल्कि भीतरी भावों से निकलती है।

समता भज तज प्रथम तू पक्षपात परमाद।
स्याद्वाद आधार ले समय सार पढ़ बाद॥

त्याग तपस्या का जीवन में प्रभाव रहता है तभी तो आर्यखण्ड की ६४ हजार रानियों के अतिरिक्त ३२ हजार म्लेच्छखण्ड से आईं। रानियों के साथ रहते हुए भी चक्रवर्ती ने उन्हें ऐसे धर्म से संस्कारित किया जो वर्णलाभ रूप हुआ और म्लेच्छखण्ड की उस परिणति से छूटकर समीचीन ज्ञान श्रद्धा एवं चारित्र को अंगीकार करने के योग्य भूमिका तैयार हो सकी। जिससे भीतरी कर्म रूपी अधर्म के संस्कारों को धीरे-धीरे समाप्त किया जा सका।

जैसे सर्प के काटने से मृत्यु हो ही यह निश्चित नहीं/परन्तु मोह ममतारूपी नागिन के दंश से हम भवों-भवों तक मूर्च्छा में गाफिल हो छटपटाते रहे यह निश्चित है। एक बार उस मोह को अंतरंग से त्याग देने पर जन्म-मरणरूपी संसार हमेशा-हमेशा को छूट जाता है। जैसे कृमि रंग वस्त्र पर चढ़ने पर वह वस्त्र फट भले ही जाये पर रंग छूटता नहीं है। वैसे ही शरीर भले ही छूट जाये परन्तु आत्मा पर

कषायों रूपी कर्मों की पर्ते ऐसी चिपकी हैं। जो अतीत काल में अनंतों बार तीर्थंकरों के सान्निध्य-सामीप्य तथा संबोधन रूप धर्मोपदेश पाकर भी नहीं छूट सकी। उसमें मुख्य कारण हमारे मोह के विसर्जन का अभाव रहा। **बुद्धि पूर्वक कर्म करने पर ही कर्म प्रभाव से बचा जा सकता है।**

ऐतिहासिक प्रसिद्धि प्राप्त सम्राट् श्रेणिक को उसकी पत्नी रानी चेलना ने त्याग-तपस्या तथा जिनार्चना की ओर ऐसा प्रेरित किया जिसके कारण ही उन्हें तीर्थंकर महावीर प्रभु का सामीप्य प्राप्त हुआ। तब वह क्षायिक सम्यक प्राप्त करके समवसरण में ६० हजार प्रश्नों को करने की योग्यता हासिल कर सके तथा ३३ सागर की बद्ध आयु को घटाकर नर्क की जघन्य आयु ८४ हजार वर्ष कर सके। "**सिंधु के सामने बिन्दु**" नगण्य होता है। पुरुषार्थ तथा उपादान में ही ऐसी योग्यता होती है कि वह सिंधु को समाप्त कर उसे बिन्दु में समेट सकता है।

मंगलमय जीवन बने, छा जाये सुख छाँव।
जुड़े परस्पर दिल सभी, टले अमंगल भाव॥

संसारी प्राणी को मोह, राग सबसे अधिक धन, पैसों से होता है, किन्तु त्याग से संबंध जुड़ने पर नहीं। कुछ लोग ही गांठ को खोल पाते हैं। जबकि कुछ तो गांठ पर गांठ लगाते चले जाते है। किसी वस्तु का जोड़ना कठिन नहीं पर उसे त्यागना बहुत अधिक कठिन होता है। धन का मोह समाप्त हो जाने पर वह घर में नहीं रह सकता। अर्थ पुरुषार्थ हो तभी काम पुरुषार्थ की ओर दृष्टि जाती है। जिन्होंने स्त्री संबंधी राग का त्याग कर दिया वह उस धन को अपने पास नहीं रख सकता। फिर भी यदि वह लोभ, लालच रखता है तो उसे (मृतक मण्डलवत्) शव कहा जाता है।

जैसे मृतक को सजाया जाता है, पर वह कोई सार्थकता नहीं, वैसे ही धन से वह राग नहीं रखता क्योंकि धन तो जड़ ही है किन्तु राग तो चेतन के साथ किया जाता है। भोगोपभोग सामग्री का त्याग कर पाना कठिन है। अतीत में भोगे हुए भोगों का स्मरण न करना तथा भोगों की आकांक्षा न करना कदाचित संभव है। **पर वर्तमान में भोगों को त्याग पाना साहस और वैराग्य से ही संभव है।**

पुनः भस्म पारा बने, मिले खटाई योग।
बनो सिद्ध पर-मोह तज, करो शुद्ध उपयोग॥

ज्ञानीजन वर्तमान के भोगों के प्रति हेय बुद्धि रखते है, अन्यथा अनर्थ होने में देर नहीं लगती। धन को अनर्थ नहीं मानते हुए परमार्थ को अनर्थ कहना समझदारी के अभाव का ही प्रतिफल है। पुण्य के कारण अर्हद् भक्ति आदि के प्रति नहीं बल्कि उनसे प्राप्त फल की ओर हेय बुद्धि होनी चाहिए। ज्ञानीपन शब्दों से प्राप्त नहीं किया जा सकता है। वस्तु वह तो तत्त्व का ज्ञान होने पर ही उसे सहजता से छोड़ जाता है। राग का त्याग हो जाने पर भोगोपभोग सामग्री सम्मुख होने पर भी वह उनसे प्रभावित

नहीं होता। बल्कि उनकी वीतरागता से ही प्रभावित होता है। जिन परिणामों के द्वारा ही असंख्यात गुणी कर्मों की निर्जरा होती है। जिसे श्रावक एवं श्रमण की ओर संकेत किया है।

महावीर भगवान् की जय!

❑ ❑ ❑

जिनधर्म का प्रभाव

विराटता की ओर दृष्टि जाने पर आश्चर्य होता है किन्तु इकाई की ओर दृष्टि जाने पर विस्मय समाप्त हो जाता है। अज्ञान दशा में विस्मय होता है, पर बोधि प्राप्ति हो जाने पर विराट को देखने पर आश्चर्य नहीं बल्कि सुखद आनंद की अनुभूति होती है। प्रभु की विराटता या निर्माण स्रोत उद्‌गम का बोध नहीं होने पर ही संसार का निर्माण होता है। जिसने इस रहस्य को जाना उसने विराटता में स्वयं को समाहित-अवगाहित कर लिया है। जल बिन्दु धूल में गिरकर समाप्त हो जाती है। किन्तु वही जल बिन्दु दूसरी जल बिन्दुओं से मिलती हुई सिन्धु का आकार ले लेती है। ऐसे सिन्धु का ज्ञान होना आवश्यक है। हम अपने भीतर छिपे विराट सिन्धु परमात्म तत्त्व का ज्ञान नहीं होने के कारण दुखद परिणाम आज तक प्राप्त कर रहें हैं। आचार्य श्री ने कहा है -

बूँद-बूँद के मिलन से, जल में गति आ जाये।
सरिता बन सागर मिले सागर बूँद समाय॥

जो भी आज तक परमात्म पद को प्राप्त हुए उन्होंने भी अपने से पूर्व के महान् लोगों को आदर्श माना है। पसीने की एक-एक बूँद महान् पुरुषार्थ का बोध कराती है। जिसके कारण पत्थर से भी पानी निकाला जा सकता और स्वयं के भीतर छुपी महानता को साकार किया जा सकता है। प्राथमिक दशा में बालकों को गुरुदेव हाथ में पेंसिल देकर हाथ पकड़कर रेखायें खींचना सिखाते हैं। उन रेखाओं के मुड़न और जुड़न से पहले ये १४ स्वर एवं बाद में ३३ व्यंजनों की आकृति निर्माण होती है। वस्तुतः उन १० रेखाओं का वास्तविक ज्ञान ही उन बालकों को पाठ का ज्ञान कराते/ है जैसे-जहाँ जैसी आवश्यकता होती वहाँ वैसी ही आकृति बनाना शुरू करते लेकिन बनाते-बनाते भी वह आकृति नहीं बनती। वह इतनी बड़ी हो जाती है कि उसे नहीं बना पाने के कारण गुरुदेव का डण्डा खाकर हमें भूल का अहसास होता है। कमी होने पर गुरुओं के द्वारा रेखा के ही प्रतीक डण्डे के कारण हमारी रेखा की कमी दूर हो जाती है। जो लोक विधि विधान आस्था की कलम से ही संभव होता है।

तीन-चार मंजिला लकड़ी के बड़े रथ का निर्माण हुआ उसमें यथास्थान दो चक्र (चाक) भी लगाये गये। पर लगाते समय एक भूल हो गयी जिस पर ध्यान नहीं गया। रथ को खींचा गया और देखते ही देखते लाखों रुपयों की लागत से निर्मित रथ जमीन पर गिर पड़ा। कारण खोजने पर पाया

कि उसमें लगे दोनों चाक इसलिये उसमें से निकल गये क्योंकि उसमें डण्डे रेखा की प्रतीक कील नहीं थी जो रथ के चाक को निकलने से रोकती थी। भरत चक्रवर्ती के स्वप्न के अनुसार जिनशासनरूपी रथ में श्रावक और श्रमण रूपी दो चाक आवश्यक हैं। यदि दोनों में तालमेल गठबंधन साम्य और लक्ष्य एक नहीं होगा तो रथ आगे नहीं बढ़ सकेगा। उसके लिये तो धर्म का डण्डा साथ में लगा होने पर ही लक्ष्य की प्राप्ति होगी। आचार्य श्री ने लिखा–

'ही' से 'भी' की ओर ही, बढ़े सभी हम लोग।
छह के आगे तीन, हो विश्व शान्ति का योग॥

देश में जैन समाज की स्थिति आटे में डले नमक के समान है पर नमक के बिना रोटी खाने लायक नहीं होगी, ध्यान रहे नमक की रोटी नहीं बनती। एकता गठबंधन इकाई के बिना भगवान् महावीर के इस तीर्थ को कंधे से कंधा मिलाये बिना तथा तन-मन-धन के सहयोग के बिना अहिंसा वीतरागता का संदेश विश्व में जनमानस को नहीं पहुँचाया जा सकता। सामाजिक क्रांति के बिना विनाश की ओर ही यात्रा होगी। सैनिक शक्ति तथा आण्विक संयंत्र शक्ति से युक्त विश्व में अग्रणी रूस अपने अभिमान के कारण विखण्डित होकर १६-१७ टुकड़ों में विभाजित हो गया। आज मानव शांति की खोज में संयम के बिना अशांत है। शान्ति के लिये विज्ञान की नहीं अध्यात्म के अनुशासन की आवश्यकता है। इसके बिना अध्यात्म में प्रवेश हो ही नहीं सकता। जितने भी साधु-संत, ऋषि-मुनि या धार्मिक श्रावकगण हुए हैं। वे सभी दिन में तीन बार डण्डा रूपी प्रतिक्रमण करके भगवान् महावीर के धर्म को आचरित कर रहे हैं। अत: जीवन में संयम अभिशाप नहीं अपितु वरदान है।

धर्मध्वजा को फहराना, सुरक्षित रखना मात्र बातों से नहीं हो सकता। इसे अक्षुण्ण रूप से आज तक संतों और श्रावकों ने रखा है। अनेक तूफानी परेशानियों के बीच रहकर भी धर्म ध्वजा को गिरने एवं झुकने से बचाया है/सदैव उसे एक हाथ से दूसरे हाथ में सौंपकर मजबूती प्रदान की है। ध्वजा की पहचान प्रतीक चिह्न से होती है, उन चिह्नों से जिन्होंने धर्म की पहचान को धारण किया था। वह ध्वजा मजबूत आधारभूत दण्ड के सहारे स्थिर रह पाती है। इसलिये वास्तु शिल्प से निर्मित ध्वज दण्ड स्थल का भी, निर्माण में महत्त्वपूर्ण स्थान होता है।

जीवन में संयम अपनाकर पुरुषार्थ को जागृत कर प्रकृति के थपेड़े सहकर मानव सजग बनता है। वही जन्म और मृत्यु पर विजय पाने का उद्यम कर मृत्युञ्जयी होता है। अत: खुद को खुदा बनाने के लिये आत्म ज्योति को प्रकाशित कर संयम का डण्डा लगाकर स्वयं को खुदा बनाया जा सकता है।

तन मिला तुम तप करो, करो कर्म का नाश।
रवि शशि से भी अधिक है, तुममें दिव्य प्रकाश॥

❑ ❑ ❑

अन्तर-यात्रा

गर्भावस्था के संस्कार जीवन के अंतिम क्षणों तक जीव के साथ रहते हैं जैसे कौरव और पाण्डव दोनों के संस्कार अलग-अलग थे। इन्हीं पाण्डवों ने परिस्थिति वश कौरवों के साथ महाभारत युद्ध लड़ते हुए भारत में खून की नदियाँ बहा दी। लेकिन यही पाण्डव जब वन में दिगम्बर रूप धारण कर ध्यानारुढ़ हुए। तब उन्हीं कौरवों के द्वारा लोहे के गर्म-गर्म आभूषण पहनाये जाने पर भी ध्यान से जरा भी विचलित नहीं हुए। क्रोध का वातावरण उपस्थित होने पर भी उस रूप अपने परिणाम नहीं होने दिए। यही तो ज्ञानीपन है। ज्ञान की चर्चा करना अलग है तथा चर्या करना अलग। आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने 'समयसार' में कहा है कि जिस प्रकार अग्नि से तपाये जाने पर भी स्वर्ण अपना स्वर्णत्त्व नहीं छोड़ता वैसे ही ज्ञानीजन कितना ही प्रतिकूल वातावरण उत्पन्न हो जाने पर अपना ज्ञानीपन नहीं छोड़ते। आचार्य श्री ने लिखा है कि-

मंगलमय जीवन बने, छा जाये सुख छाँव।
जुड़े परस्पर दिल सभी, टले अमंगल भाव॥

हमारी बाह्यवृत्ति जब भीतर हो जाती है तो मन में उठने वाली विसंगतियों की तरंगें स्वयमेव ही समाप्त हो जाती हैं। उसके कारण शरीर भले ही समाप्त हो जाय पर आत्मा समाप्त नहीं होती, बल्कि यह आप्त (भगवान्) बन जाती है। वैसे अपने आपको प्राप्त करना ही आप्त को प्राप्त करना है। मन यदि शांत रहता तो वचन और काय शांत हो जाते और बाहर भीतर शांति समता का साम्राज्य छा जाता है। क्रोध की नहीं क्षमा की बात होनी चाहिए क्योंकि क्षमा वीरता की पहचान है- "**क्षमा वीरस्य भूषणम्।**" अध्यात्म के रहस्य को स्पष्ट करते हुए आचार्य श्री ने कहा कि शत्रु के प्रति प्रतिशोध नहीं रखना चाहिए। बाहरी शत्रु तो बाद में मित्र भी बन सकता है, यह कुछ काल के लिए ही शत्रु होते, पर कर्मरूपी शत्रु से तो हम अनादिकाल से हारते आ रहे हैं। "**कर्म चोर चहुँ ओर सरबस लूटे सुध नहिं।**" एक बार क्षमारूपी अमोघ शस्त्र को धारण करने पर उसे चूर-चूर किया जा सकता है। अतएव बाहरी नहीं अपितु भीतरी शत्रु को निकालें, बाहर दृष्टि होने पर इन्द्रिय और मनरूपी खिड़कियाँ झट खुल जाती पर भीतरी दृष्टि होने पर आँखें भी अपने आप बंद हो जाती हैं। संसार के सभी पदार्थों के प्रति मात्र ज्ञेय-ज्ञायक संबंध हो जाने पर हमें कर्म कर्म में देह देह में आभूषण ही प्रतीत होते हैं। तब द्रव्य, क्षेत्र, काल आदि सभी बाह्य महसूस होते हैं, ऐसे समय क्रोध निराश्रित हो जाता और क्षमा की सुगंध चहुँ ओर फैल जाती है।

क्रोध के कारणों को समझाते हुए आपने बताया कि आप क्रोध से सही रूप में परिचित नहीं हैं/ क्रोध व्यक्तियों/प्राणियों पर नहीं करना अगर करना हो तो क्रोध पर ही क्रोध करें क्योंकि जो भीतर

है वही तो बाहर आता है। उसके बाहर आने का रास्ता एक ही है, अतः जिस क्षण क्रोध या मान आदि प्रकट होते उसी समय हमें जागृत रहना और कर्म की मूल जड़ को ही समाप्त करना है। अग्नि के समाप्त हो जाने पर कितना भी ईधन इकट्ठा किया जाये वह किसी काम का नहीं होता, किन्तु अग्नि की छोटी-सी कणिका भी समस्त ईधन को समाप्त करने के लिए पर्याप्त है। अतः ध्यान रहे कि ज्ञान के बिना धर्म का पालन संभव नहीं होता। कर्म के होने अथवा आने के कारणों को जानने मात्र से ही वह दूर नहीं होते, उससे मुक्ति नहीं मिलती बल्कि यह तभी संभव है जब उसके उदय में आने पर भी हम उससे प्रभावित न हों। कषाय तो अन्य शरीर को धारण कराने में कारण होती है। यदि अन्य शरीर नहीं चाहिए तो उसके कारणों को भी छोड़ना होगा। जैसे रसोई बन जाने पर ईंधन को बुझा देते हैं, क्योंकि तब वह निरर्थक हो जाता। वैसे ही क्रोध के दुष्परिणाम को जानकर क्रोध, मान, माया और लोभरूपी लकड़ी को जलाना बंद करें तभी जीवन में शांति का वातावरण हो सकता है। आचार्य श्री कहते हैं

समता भज तज प्रथम तू, पक्षपात परमाद।
स्याद्वाद आधार ले, समयसार पढ़ बाद॥

पाण्डव पुराण में पाण्डवों को लक्ष्य में रखकर कहा है कि ''युद्धरत् पाण्डवों को अग्नि तो मात्र मन में लगी थी। वे यह महसूस कर चुके थे कि इसी तन के कारण आत्मा आज तक कषायों से जलती रही है, आज तपरूपी अग्नि से इस शरीर को ही जलाना अथवा कषायों की अग्नि पर क्षमारूपी जल का सिंचन करना है। ज्ञानीजन शत्रु या अन्य से नहीं बल्कि इस स्वयं के नश्वर शरीर से ही बदला लेते हैं। उनकी तन की ओर प्रवृत्ति न हो ऐसा सार्थक प्रयास होता है। वह भीम जब रणांगन में पहुँचता था तो शत्रु पक्ष की सेना सामने से भाग जाती थी। जैसे कि मृगराज सिंह जिस ओर से निकल जाता उस ओर से मदमस्त हाथी समूह भी भाग जाते हैं। वही भीम लाल-लाल गर्म लोहे के कड़े पहनाने पर विचलित नहीं होते। उन्हें गर्म लोहा और पुष्प दोनों समान हो गए ये ही समता का परिणाम है।

जब चित्त में स्थिरता भेद विज्ञान और वैराग्य प्रबल होता है तब शत्रु को जानते हुए भी उस ओर दृष्टि नहीं जाती। अध्यात्म के क्षेत्र में कषाय का होना पागलपन की निशानी है। आध्यात्मिक तत्त्ववेत्ता अपने अतीत पर रोता है, तभी वह उस अतीत की गलती को दूर करने के लिए सार्थक प्रयास करता है। क्षमा को प्रतिपल जीवन में आचरित करना होगा। कष्ट के क्षणों में प्रतिकार के भाव नहीं होना तथा कष्ट देने वाले के प्रति भी अभिशाप के भाव नहीं लाना ऐसी उत्तम क्षमा से ही मुक्ति प्राप्त होना संभव है। यही क्षमा, समता हमें बाहर से भीतर/अंतस् में प्रवृत्ति कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अतः सुखी होने के लिए क्षमा विनम्रता, सरलता और उदारता का जीवन में आना अनिवार्य है।

❑ ❑ ❑

विद्वान्-शास्त्री की समाधि

मोहरूपी शत्रु से सारी दुनिया पीड़ित एवं हताहत हुई है। किन्तु आत्म तत्त्व को प्राप्त करने के लिए सल्लेखना पूर्वक समाधिमरण करने पर मोहरूपी शत्रु को ही हताहत या नष्ट किया जाता है। पंडित जगन्मोहनलाल जी शास्त्री ने समाधिमरण करके विद्वत् जगत के समक्ष एक आदर्श उपस्थित किया है।

इस शरीर के कारण आस्था और निष्ठा में कमी आकर साधना कमजोर पड़ जाती है। पर आस्था एवं निष्ठा को दृढ़ बनाकर ज्ञान, आराधना को शास्त्रीजी ने जीवन में चरितार्थ किया। पंडित जी अनेक वर्षों से सल्लेखना हेतु आचार्य श्री से दिशा निर्देश प्राप्त कर, अपने आपको तैयार कर रहे थे। उन्होंने ९५ वर्ष की वृद्धावस्था में भी ७ प्रतिमाओं का पालन एवं पंच परमेष्ठी की आराधना करते हुए इस नश्वर शरीर को त्यागा। विद्वान तो क्या व्रती-संयमी जीवों में भी ऐसा बहुत कम हो पाता है। विद्वत्ता तथा संयम दोनों पृथक्-पृथक् हैं। सल्लेखना धारण करते हुए प्राणों को छोड़ना ही महत्त्वपूर्ण है। आचार्यश्री ने कहा है– सल्लेखना जीवन से इंकार नहीं है और न ही मृत्यु से इंकार है। अपितु उसमें महाजीवन की आशा है, वह आत्महत्या नहीं है क्योंकि आत्महत्या में कषाय की तीव्रता एवं जीवन से निराशा रहती है।

लंबी उम्र पाकर वह घर को भले ही नहीं छोड़ सके किन्तु उनकी अनवरत यह भावना तो रहती ही थी। उन्होंने जो साधना की उसमें पूर्ण सफलता सीमा से बाहर प्राप्त की। आज कदाचित् साधु बनना तो आसान है पर गृहस्थ अवस्था में रहकर व्रतों को सुरक्षित रखना बहुत मुश्किल (कठिन) काम होता है। उन्होंने अपने विशाल परिवार के बीच में रहकर भी दृष्टि अपने ध्रुव-लक्ष्य की ओर रखी तभी यह संभव हो सका। पंडित जी के समान सभी व्रती बनकर संयम को धारण कर ऐसा ही अंतिम क्षण प्राप्त करे? जिससे साहस के साथ आत्मा को इस शरीर से पृथक् किया जा सके। जिस आत्म तत्त्व का उपदेश युग के आदि में तीर्थंकर आदिनाथ भगवान् ने दिया था आचार्य श्री ने कहा है–

आदिम तीर्थंकर प्रभु, आदिनाथ मुनिनाथ।
आधि व्याधि अघ मद मिटे, तुम पद में मम माथ॥

इस अवसर पर नीरज जी ने कहा कि बड़े पंडित जी ने बड़े बाबा के चरणों में आचार्य प्रवर श्री विद्यासागरजी महाराज के सान्निध्य को प्राप्त किया जो बड़े भाग्य की बात है। या कहें कि ये मणि कांचन योग है। मैंने आचार्य पूज्य श्री विद्यासागरजी महाराज को देखा एवं इनके प्रवचन, चर्या देखी इसका श्रेय पंडित जी को ही है जो कि उनके प्रवचन, चर्या आदि देखी। सन् १९७५ में कटनी में जब आचार्य श्री अत्यधिक अस्वस्थ हो गए थे तब २९ वर्ष की उम्र में ही आपने पंडितजी से समाधिमरण

कराने का भाव व्यक्त किया था तभी पंडितजी ने कहा था कि ''महाराज आप पर अभी धर्म समाज एवं राष्ट्र को बहुत आशा है।''

आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज ने आपको आचार्य पद प्रदान करने के बाद आपके ही चरणों में समाधिमरण का संकल्प लेकर मानो लोक को यह उसी समय बता दिया था कि आप समाधि सम्राट् है। एवं भविष्य में भी, अनेक भक्तजन आपके चरणों में समाधि मरण कर सकेंगे। पंडित जगन्मोहन लाल जी ने जीवन को समाप्त कर मृत्यु का वरण किया। मृत्यु के भय को निकाल कर उन्होंने समयसार को केवल पन्नों में पढ़ा ही नहीं बल्कि जीवन में चरितार्थ भी किया है।

सिंघई महेशजी कटनी ने कहा कि हिन्दुस्तान की जैन समाज कटनी को पंडित जगन्मोहन लाल जी के नाम से जानती थी पर आज उनके नहीं रहने से कटनी शोभाविहीन हो गई है।

ब्रह्मचारी त्रिलोक जी ने बताया समर्पण सच्चा हो तो संतों के चरणों में बैठकर सल्लेखना पूर्वक मरण को प्राप्त किया जा सकता है। बड़े बाबा का मंत्र तथा आचार्य श्री का सान्निध्य अत्यंत दुर्लभता से प्राप्त होता है। निर्मलचंद एडवोकेट जबलपुर ने कहा ''यह दुखमय नहीं अपितु अति सुखमय प्रसंग है। **आदमी तो एक न एक दिन मरता है, पर जो हृदय पर अपनी स्मृति छोड़ जाता उसका मरण ही सार्थक है।** पंडितजी की वाणी एवं मुस्कुराहट में कुछ ऐसी विशेषता थी जिसके कारण यह जगत् को सहज ही अपने नाम के अनुरूप मोहित कर लेते थे।''

डॉ. शिखरचंद जैन हटा ने कहा कि ''यह विशाल श्रद्धा श्रुति सभा पं. जी की जीवन पर्यन्त जिनवाणी सेवा को ही बतला रही है। वे पहले विद्वान हैं। जिन्होंने माँ जिनवाणी की सेवा करते हुए समाधि मरण को प्राप्त किया।'' कुण्डलपुर तीर्थक्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष सिंघई संतोषकुमार ने कहा कि ''पंडित जी जैन समाज के ख्याति प्राप्त विद्वान थे। आपने अनेक वर्षों तक माँ जिनवाणी की सेवा के साथ ही इस क्षेत्र की भी सेवा की। मानव जीवन की सफलता स्वरूप मानो आपने यह समाधि रूपी स्वर्ण कलश चढ़ाया है तथा श्री गुरुवर के चरणों में सल्लेखना पूर्वक समाधि मरण करके विद्वत् जगत में एक अनूठा आदर्श प्रस्तुत किया है।''

प्रकाशचंद जैन एडवोकेट दमोह ने सरस्वती पुत्र पंडित जगन्मोहन लालजी शास्त्री के जीवन का विस्तृत परिचय देते हुए स्मरण पत्र का वाचन किया। अंत में उपस्थित समस्त जन समुदाय ने ९ बार णमोकार मंत्र का स्मरण किया। पंडित जगन्मोहनलाल जी शास्त्री आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज से निर्देश प्राप्त कर विगत २३ जून ९५ को सल्लेखना ग्रहण करने की भावना से ही सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर जी पधारे थे। १०७ दिनों की अनवरत साधना एवं आचार्य श्री के संकेत के अनुरूप ही आहार पद्धति को परिवर्तित करते हुए क्रमशः अन्न आहार का त्याग किया। विगत ७ दिनों में तो जल

एवं लौकी का क्रमशः त्याग कर पूर्ण समर्पण एवं समता पूर्वक अपने जीवन का उपसंहार किया जो जैन विद्वत् समाज के लिए अनुपम आदर्श है।

आपने आसोज सुदी चतुर्दशी शनिवार को आचार्यश्री के मुख से शाम ७.०५ पर मुनिसंघ की उपस्थिति में णमोकार मंत्र श्रवण करते हुए अपने शरीर का त्याग किया। दूसरे दिन प्रातः ७ बजे विशाल जन समूह ने अंतिम शोभायात्रा में भाग लेकर कुण्डलपुर क्षेत्र पर्वत माला की तलहटी में नश्वर शरीर को अग्नि प्रदान की। आचार्य श्री ने लिखा है– **गुरुभक्ति करते-करते जिसका हृदय शुद्ध हो गया है। आस्था मजबूत हो गई है उसे ही गुरु अध्यात्म का रहस्य उद्‌घाटित करते हैं।**

महावीर स्वामी की जय!

❑ ❑ ❑

कलयुगी साम्राज्य

आज के भारत की दशा को लक्ष्य में रखकर आचार्यश्री ने कहा कि जिस भारत के आदि में ब्रह्म-तीर्थंकर आदिनाथ भगवान्, राम, हनुमान, पाण्डव आदि ने जन्म लिया था। जिन्होंने प्राणी मात्र के प्रति अहिंसा परोपकार दया प्रेम, करुणा का दिव्य संदेश जन जन को दिया। उन्हीं के भारत में आज एक दो नहीं अपितु ३६०३१ हजारों की संख्या में कत्लखाने खुल गये हैं। इनमें कुछ तो अत्याधुनिक हैं, जहाँ बीसों हजारों गाय बैल, भैंस, बकरी आदि पालतू जानवरों को फालतू मानकर बेरहमी से मौत के घाट उतार दिया जाता है और उनके भिन्न-भिन्न अंगों को बेचकर विदेशी मुद्रा को अर्जित करने का घृणित कार्य किया जा रहा है। विदेशी मुद्रा की भूख को मिटाने के लिये अहिंसक देश भारत से मांस का निर्यात किया जाना लज्जा की बात है। इस हेतु जहाँ एक दिन में ४,१६,००० प्राणियों को एक ही कत्लखाने में २-४ दिन तक भूखा - प्यासा रखकर हत्या कर दी जाती है। वहीं महिनों पहले हजारों लाखों प्राणियों को संग्रहीत कर मौत के लिये तैयार किया जाता है।

राजा ही जब ना रहा, राजनीति क्यों आज?
लोकतन्त्र में क्या बची ,लोकनीति की लाज॥

जिन प्राणियों के सम्मुख कष्ट संकट हो उनके प्रति दया, अनुकंपा करना प्राणिमात्र का कर्त्तव्य है। किन्तु जिनका प्रतिदिन ही बेरहमी से कत्ल किया जा रहा है। उन जीवों की रक्षा हेतु हम सभी लोगों को एक साथ तत्पर होकर कार्य करना चाहिए। जिन पशुओं से दूध प्राप्त होता है। खेती बाड़ी होती है जो प्रत्येक कार्य में मनुष्य के सहयोगी रहते हैं। उन्हें आधुनिक कुतर्कों से अनुपयोगी सिद्ध किया जा रहा है।

आज सत्य पलटा खा रहा एवं हिंसा का चारों ओर ताण्डव नृत्य हो रहा है। मूक होकर देखना

कहीं आपका उस कार्य के प्रति समर्थन तो नहीं है? भारत से इन जानवरों का मांस तथा अन्य अंग बेचकर विदेशों से गोबर मंगाना इसी पांसे को पलटने की प्रक्रिया है। जिन्हें जनता ने चुनकर अपना प्रतिनिधि बनाया वे ही मंत्री आदि बनकर देश को उन्नत बनाने, विकासशील से विकसित बनाने हेतु गोमांस बेचकर, गोबर आयात करके एक ही रास्ता बता रहे हैं। जो भारत कभी सोने की चिड़िया कहलाता था वहाँ आज उन्नति के नाम पर लोहे के ढांचे फैक्ट्रियों में तैयार हो रहे हैं।

भूल नहीं पर भूलना, शिव-पथ में वरदान।
नदी भूल गिरि को करे, सागर का संधान॥

पूर्व में जहाँ प्रत्येक घर में तांबा पीतल कांसा या अन्य गिलट आदि के बर्तन होते थे। आज उनका स्थान लोहा स्टील एवं प्लास्टिक ने ले लिया है। सोने-चाँदी के बर्तन तो स्वप्न की बात है। आज तो आभूषण के रूप में इनके स्थान पर लोहा एवं प्लास्टिक आ गया है। यह भारतीय संस्कृति के विनाश की सोची-समझी चक्रव्यूह सदृश रचना लगती है।

देश की रक्षा धर्म पालन, संस्कृति रक्षा अहिंसा से ही संभव है। तभी देश में रामराज्य आ सकेगा। अन्यथा रावण राज्य का ही प्रचार-प्रसार बढ़ेगा। सिंहासन पर बैठने वालों को धर्म तथा अधर्म की पहचान होनी चाहिए तथा दया का जीवन में क्या महत्त्व है इसका अच्छी तरह से अध्ययन कर लेना चाहिए। जनता को वोट देने के पूर्व व्यक्ति का वास्तविक मूल्यांकन अनिवार्य है। अहिंसा के माध्यम से धर्म और संस्कृति जीवित रह सकती है। जिस देश में ३०-४० वर्ष पूर्व कुछ ही कत्लखाने थे, वहाँ इनकी आज भीड़ खड़ी कर दी गई है। कत्लखाने स्थापित करने का यही क्रम रहा तो इनकी संख्या हजारों को पार कर के लाखों में हो जायेगी और फिर पशु नहीं बल्कि मनुष्य और कारखाने ही होंगे। आचार्य श्री ने भूल की ओर संकेत किया है -

निरखा प्रभु को, लग रहा, बिखरा सा अध-राज।
हलका सा अब लग रहा, झलका सा कुछ आज॥

विश्व को अहिंसा का पाठ पढ़ाने वाली भारतीय संस्कृति ही सभी को आत्मा से परमात्मा बनने की यात्रा समझा सकती है। देश की उन्नति एवं संस्कृति की रक्षा हेतु उन बूचड़खानों (कत्लखानों) से घिरी हजारों-लाखों एकड़ भूमि में अन्य किसी प्रकार का उद्योग स्थापित करके यह मांस बेचकर किए जाने वाले घाटे का सौदा रोका जा सकता था। जो धार्मिक एवं आर्थिक दोनों ही दृष्टियों से गलत है। अतः वोट की राजनीति के कुचक्रों से ऊपर उठकर तामसिक मनोवृत्तियों पर लगाम लगावें और मति तथा बुद्धि को भ्रष्ट होने से बचाकर भगवान् आदिनाथ, भगवान् राम, वीर, हनुमान, पाण्डव एवं भगवान् महावीर आदि के जीवन से दिशा बोध ग्रहण करें ताकि समय रहते सही दिशा की ओर सही कदम बढ़ सकें।

वैसे सामान्य तौर से पके आम की यही पहचान होती है वह हाथ के छुवन से मृदुता का अनुभव/फूटती पीलिमा से नयनों का सुख एवं फूल-समान नासा फूलती सुगन्ध सेवन से। फिर रसना चाहती है रस चखना मुख में पानी छूटता तब वह क्षुधित का प्रिय बनता यही धर्मात्मा की प्रथम पहचान है। मेरा सो खरा नहीं, खरा सो मेरा। इस जहाँ में तलवारों का वार सहने वाले लोग आज भी हो सकते हैं लेकिन फूलमालाओं का वार सहना कितना कठिन है। इसे सहने वाले विरले ही साधक मिलते हैं बन्धुओ!

गगन गहनता गुम गई, सागर का गहराव।
हिला हिमालय दिल विभो! देख सही ठहराव॥

अहिंसा परमो धर्म की जय!

❑ ❑ ❑

संस्कृति का विकास : सद्-आचरण से

युग के आदि में आदिम तीर्थंकर वृषभनाथ ने प्रजा के उत्थान हेतु असि-मसि-कृषि-वाणिज्य-विद्या एवं शिल्प रूप षट् कर्मों का उपदेश दिया था। उसमें विद्या उल्लेखनीय है, उस विद्या के साथ 'आचरण' और जुड़ जाने से 'विद्याचरण' हो सकता और सोने में सुगंध आ सकती है। भारतीय संस्कृति में विद्या आत्मतत्त्व की प्राप्ति हेतु की जाती थी, पर आज विद्या (शिक्षा) अर्थकारी हो गई है। अर्थकारी विद्या से भारतीय संस्कृति का समुचित विकास, ज्ञान के सही प्रयोग एवं आचरण से ही संभव है।

दीनों के दुर्दिन मिटे, तुम दिनकर को देख।
सोया जीवन जागता, मिटता अघ अविवेक॥

मनुष्य सुख शांति तो चाहता है इस हेतु उपयुक्त वातावरण भी चाहिए। वह मूक पशु- पक्षियों का संरक्षण करें उनका विनाश नहीं। उनके दूध से ही हमारे शरीर में शक्ति और चरणों को गति प्राप्त होती है। भारत में रचित किसी भी सत् साहित्य में पशु वध के माध्यम से जीवन उन्नति या वित्त लाभ की बात नहीं कही गई। आज की अपेक्षा भारत को पूर्व में सोने की चिड़िया कहा जाता था। तब पूर्व में आज से पचास गुनी मुद्रा प्राप्त होती थी। महात्मा गाँधी भी जैन धर्म के सत्य, अहिंसा सिद्धांतों से प्रभावित थे, जिनका उल्लेख उन्होंने अपनी जीवनगाथा में भी किया है। परन्तु आज पशुओं को बूचड़खाना में निर्मम रीति से मारकर विदेशी मुद्रा के लोभ में विदेशों में मास का निर्यात कर भारत प्रतिपल पाप का आचरण कर रहा है। इस मांस निर्यात पर अविलंब रोक लगना चाहिए। बूचड़खानों

की योजनाओं पर प्रतिबंध लगे, ऐसी मेरी तथा समस्त अहिंसक समाज की भावना है। यदि लोकसभा में इस बात को वजनदारी से रखा जाता है तो सुख, शांति एवं कल्याणकारी कार्यों हेतु जैन समाज कटिबद्ध होकर राष्ट्र के विकास हेतु भरपूर मदद करेगी।

वृष का होता अर्थ है, दयामयी शुभ धर्म।
वृष से तुम भरपूर हो, वृष से मिटते कर्म॥

गाँधीजी ने कहा था कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अब किसी पार्टी को नहीं बल्कि देश को आगे बढ़ाने हेतु आचरण की आवश्यकता है, जो स्वयं के साथ जनता को भी आचरण के सांचे में ढाल सके। विगत ४-५ दशक व्यतीत हो जाने पर भी आज तक गाँधी जी के विचार साकार नहीं हो सके। अच्छे विचार तभी उठेंगे जब स्वयं का आचरण श्रेष्ठ, पवित्र होगा। उसी के माध्यम से देश क्या समस्त विश्व का कल्याण होना संभव है। सूट, पेंट या पायजामा धारी नहीं बल्कि कमर कसने वाला व्यक्ति ही इस कार्य को मजबूती से कर सकता है। मंत्रीजी (पूर्व केन्द्रीय मंत्री विद्याचरण शुक्ल जी) भी धोती ही कसकर यहाँ पधारे हैं। ये यदि अपनी कमर को कसें तो यह कार्य शीघ्र हो सकता इस हेतु मेरा मंगल आशीष है। धर्म तो अपने श्रम की निर्दोष रोटी कमाकर देने में है जो कि 'स्व' से पलायन नहीं, 'स्व' के प्रति जागरण का नाम ही धर्म है। ये प्रदर्शन की बात नहीं किन्तु दर्शन, अन्तर्दर्शन की बात है।

''साधना अभिशाप को वरदान बना देती है'' अतएव वासना के स्थान पर जीवन में उपासना आनी चाहिए। गाँधी जी की भावना के अनुरूप अहिंसा एवं सत्य के माध्यम से इस लोकतंत्र में मानव-जाति और पशु हित की बात हो सकती है। पुराण पुरुषों की उपस्थिति में प्रजा सुख-शांति का अनुभव करती। जीवन में आरोहण अवरोहण तो चलते रहते हैं। आज भगवान् वृषभनाथ महावीर भले नहीं है। पर उनका जीवन दर्शन उनके द्वारा प्रदर्शित पथ आज भी हमारे सम्मुख है। उसका सही सही अनुपालन होने से ही देश और विश्व सुख शांतिमय जीवन जी सकता है।

'ही' से 'भी' की और ही, बढ़े सभी हम लोग।
छह के आगे तीन हो, विश्व शान्ति का योग॥
अहिंसा परमो धर्म की जय!

❑ ❑ ❑

गौवंश से ही उन्नति

भारत में श्रीकृष्ण जैसे महापुरुषों ने जन्म लिया, जिन्होंने मानव ही नहीं बल्कि पशु-पक्षियों के भी प्राणों की रक्षा की है। नारायण श्रीकृष्ण की जन्माष्टमी को लोग पर्व के समान मानते हैं। उन्होंने संकट के क्षणों में प्राणियों की रक्षार्थ गोवर्धन पर्वत को उठाकर अपने बाहुओं पर उसको स्थित रखकर

नीचे प्राणियों को शरण दी और दया धर्म का पालन किया था। उन्हीं के भारत में आज जीवों की हिंसा हो रही है जो घृणास्पद तथा शोचनीय है गाय, बैल, भैंस, बकरी आदि पशुओं को बूचड़खाना में एक साथ लाखों की संख्या में समाप्त कर उनकी हड्डी, मांस, चर्बी आदि निर्यात करके विदेशी मुद्रा को इस राष्ट्र के कर्णधार शासक कमाना चाहते हैं। विचार कीजिये यह कैसा व्यापार है? गौवंश को समाप्त करके देश की कभी भी उन्नति नहीं की जा सकती।

अर्थ नीति को समझने संभालने वाले शासकों को अर्थ उत्पत्ति के साधन जुटाने वालों को आदर्शकारी भारतीय संस्कृति से शिक्षा लेनी चाहिए उसके लिए और भी अन्य साधन हो सकते हैं। क्या किसी भी विकसित राष्ट्र ने गाय-बैलों को समाप्त करके उन्नति पाई है ? कृषि प्रधान कहलाने वाला देश आज पशु धन से कृषकाय क्षीण होता जा रहा है इस कारण हमारी संस्कृति भी क्रमशः समाप्त होती जा रही है। विदेशों से आयातित खाद्य आदि रसायनों से यहाँ की धरती भी बंजर होती जा रही है। मांस बेचकर, गायों को समाप्त कर कमाये जाने वाली मुद्रा की अपेक्षा उन मूकप्राणियों की मुद्राओं की ओर भी देखो। मुद्रा संग्रह अर्थ धनार्जन के नाम पर निरपराध जीवों का वध करके मांस बेचने वाला यह भारत देश कहाँ तक अपनी उन्नति कर पायेगा। यह विचारणीय तथ्य है।

आज के राजनेता साधु संतों के पास जाकर जहाँ इन मूकप्राणियों की रक्षा करने का वचन देते हैं, बाद में वे ही वचनों से मुकर भी जाते हैं। इस कारण से भारतीय संस्कृति के अध्ययन से वंचित, ऐसे राजनेता मात्र स्वार्थ सिद्धि के लिए देश को अंधकार की ओर ले जाते हैं। चोरी छिपे इन मूकप्राणियों को ट्रकों, रेलों में भर भरकर अन्यत्र कई मीलों दूर तक फैले आधुनिक मशीनीकृत बूचड़खाना तक ले जाया जाता है। जहाँ जानवरों को कई दिनों तक भूखा-प्यासा रखकर महीनों तक स्टाक विभिन्न प्रकार से कष्ट देते हुए निर्दयता पूर्वक दिन-प्रतिदिन समाप्त किया जाता है।

गोमाता के दुग्ध सम, भारत का साहित्य।
शेष देश के क्या कहें, कहने में लालित्य॥

यह सरकार एक तरफ तो मोर, सिंह, चीते आदि की रक्षा के लिये कानून बनाती, शिकार करने पर प्रतिबंध लगाती है। वहीं दूसरी ओर इन मूक प्राणियों के वध हत्या के लिए खुल्लम-खुल्ला लाइसेंस दे रही है। ऐसा अंधेर क्यों ? आचार्य श्री ने लोगों को जागृत करते हुए कहा कि सरकार को आप चुनते हैं। अतः उस व्यक्ति को चुने जो योग्य, न्यायप्रिय तथा अहिंसक नीति का पालक हो, तभी देश से हिंसा के वातावरण की समाप्ति होगी। आप अपने-अपने परिवार के हित के बारे में सोचते हैं। उसकी सुख-सुविधा की आपूर्ति हेतु सरकार के समक्ष माँग रखते, हड़ताल, आन्दोलन आदि करते हैं तब क्या इन मूक पशुओं की रक्षा हेतु सरकार से माँग नहीं कर सकते हैं। श्रीकृष्ण जैसे शलाका पुरुष,

जिन्हें 'गोपाल' कहते थे अर्थात् जो गौवंश के पालनहार कहलाते थे। वे भी इनकी रक्षा हेतु प्रतिपल तत्पर रहते थे तब आप भी सरकार से आग्रह करें। ताकि वह लाखों की संख्या में होने वाले पशुसंहार (हत्या) को बंद कराएँ जो प्रजातंत्र के नाम से नरकुण्ड जैसा घृणित कार्य कर रही है।

शास्त्रों में 'गौवत्स' को समप्रीति कहा गया है 'वत्स' शब्द से ही वात्सल्य शब्द बना है। अजीव वस्तु से राग तो हो सकता पर प्रेम, वात्सल्य, स्नेह जड़ पदार्थों से नहीं बल्कि सचेतन जीवित प्राणियों से होता है। जब बैल वत्सरूपी गाय का बछड़ा समाप्त हो जावेगा, तब वात्सल्य किससे करेंगे? धर्म शब्दों तक ही सीमित न रह जावे। महत्त्व तब है जब शब्दों से अर्थ एवं भाव स्पष्ट हो तब ही उसकी सार्थकता होती है। आपका नाम 'गोपाल' है। अतः शब्द का अर्थ गौ यानी गौवंश का पालनकर्ता और आप विध्वंश करने वालों को सम्मान दे रहे हैं। पशु-पक्षी तो निरपराधी है, उनका विध्वंस नहीं बल्कि उनके उत्थान के साधन जुटाने चाहिए। अपने जीवन में देखें, मात्र प्रचार-प्रसार में ही न उलझें। क्योंकि अहिंसा धर्म ही पूज्य है। भारतीय संस्कृति में हिंसा का स्थान नहीं है इसलिये इसका समूल नाश अनिवार्य है। आचार्यश्री ने कहा कि-

सुनते-सुनते शास्त्र को, बधिर हो गए कान।
तो भी तृष्णा ना मिटी, प्रयाण-पथ पर प्राण॥

आप संसार में अपने स्वार्थ के बारे में सोचते रहते हैं लेकिन जिसके कारण आपके जीवन का लालन-पालन एवं संवर्धन हुआ, उसके साथ क्रूरता पूर्ण किये जाने वाले कार्य-व्यवहार क्या सत्कार्य के योग्य है? इनका मूल्यांकन आप भले ही न कर सकें परन्तु जानवर तो इसका मूल्यांकन कर लेते हैं इसीलिये तो वे हमारे कष्ट को दूर करने हेतु स्वयं कष्ट सहन करते रहते हैं। आपको बाहुबल मिला उसकी सार्थकता इसी में है कि उसका प्रयोग दूसरों की रक्षा करने में हो किन्तु जो निर्बल-असहाय निरपराध जनों की रक्षा में ही सक्षम नहीं वे जीवन में दया को अंगीकार करने वालों की रक्षा क्या करेंगे?

भगवान् महावीर, श्रीकृष्ण, राम आदि शलाकापुरुष कहलाते हैं। जिनका जीवन आदि से अंत तक कल्याण से जुड़ा होता वे ही शलाका पुरुष हैं। वे संख्या में ६३ माने गए यह संख्या भी महत्त्वपूर्ण है। छह के सामने तीन रखने से ६३ बनता जो मांगलिक महोत्सव तथा सुख-साधन जुटाने वाला होता किन्तु आज ६३ का नहीं बल्कि ३ की ओर पीठ करके बैठने वाले ३६ का युग आ गया है। अतः कलिकाल में धर्म कर्म उलटता ही जा रहा आज राजनीति में धर्म के नाम से काम लिया जा रहा है। ये ही दुखदायी है जिससे बचने का प्रयास कर भारत राष्ट्र की आदर्शपूर्ण संस्कृति की रक्षा हो सकती

अहिंसा परमो धर्म की जय!

❑ ❑ ❑

परम निर्वाण

बंधन कोई भी हो वह आकुलता कराता है। जीव को कोई भी बंधन रुचता नहीं। आने जाने रहने उठने-बैठने आदि सभी बंधन आकुलता देते हैं। पर वस्तुतः क्षेत्र का या शरीर का बंधन मात्र हो जाना बंधन नहीं, वह तो भीतरी भावों से होता है। संसार के बंधनों में पड़े जीव को मुक्ति प्राप्ति के योग्य वाणी देने वाली महान् आत्मा, इस युग के अंतिम तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी को आज बंधन से मुक्ति स्वरूप मोक्ष सुख निर्वाण प्राप्त हुआ था। इस तिथि के माध्यम से हम सभी प्रेरणा प्राप्त करें और संसार में रहते हुए भी विषय भोगों के प्रति विमुखता लाकर इस जीवन को मुक्ति के लिए एक साधन बना लें यही इसकी सार्थकता है।

आज चारों ओर अंधकार ही अंधकार छाया है उजाले का ठिकाना नहीं। सूर्य-चन्द्रमा के कारण दिन एवं रात का विभाजन होता, किन्तु मोह के कारण दिन में भी रात होती है। मोह का अभाव हो जाने पर रात्रि में भी अंधकार सा नहीं अपितु दिन जैसा प्रकाश प्रतिभासित होता है। विषयों के प्रति लगाव को समीचीन ज्ञान के साथ ही शांत किया जा सकता है। यह सावधानी रखना आवश्यक है कि आज जो संयोग संबंध है कल उसका नियम से वियोग होगा। इस तिथि से हम शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। जिसे हम प्रभु का निर्वाण - दिवस कहते हैं, वास्तव में उनका आज जन्म हुआ है।

अविद्याभिदुरं ज्योतिः परं ज्ञानमयं महत्।
तद्प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं तद्द्रव्यं मुमुक्षुभिः॥
(इष्टोपदेश-४९)

अर्थ—अज्ञान अन्धकार को नष्ट करने वाले उत्कृष्ट ज्ञान के मोक्षाभिलाषी प्राणी उसे पाकर एवं चर्चा कर एक दिन आत्म सात हो जाते हैं।

महावीर जयंती को तो शरीर धारी बालक का जन्म हुआ था किन्तु आज उनका युवावस्था में ऐसा जन्म हुआ जो आगामी अनन्त काल तक व्यय नहीं होगा। अथवा भविष्य के जन्मों का आज ऐसा व्यय हुआ जिनका पुनः अब उत्पाद नहीं होगा। उनके कारण हम सभी को जो ज्ञान की किरण मिली वह दुर्लभ है। अब उसका सदुपयोग कर उन जैसे अनर्घपद का हम संवेदन करें यही प्रयास करना है। आचार्य श्री कहते हैं कि—**केवलज्ञान और मुक्ति में उतना ही अंतर है जितना १५ अगस्त और २६ जनवरी में। केवलज्ञान का होना स्वतंत्रता दिवस और मुक्ति का होना गणतंत्र दिवस है।**

सभी ने अनंत बार पूर्व में शरीर को धारण किया है। जन्म लेने के बाद युवा-प्रौढ़ एवं वृद्धावस्था आ जाने पर हमें क्या करना चाहिए, यह नहीं सोच पाते। आयु समाप्ति के उपरांत आगे क्या होगा। यह समस्या सबके सामने है, पर इसका समाधान पाने का प्रयास नहीं करते। तीन लोक को हित

की दिव्यध्वनि प्रदान करने वाले तीर्थंकर प्रभु इस पर घर को छोड़कर आज अपने घर को चले गये। हम लोगों को अपने निज घर प्राप्ति की चिंता ही नहीं है। इस भौतिक नश्वर मकान या शरीर को ही अपना घर मान लिया है, यही अज्ञान है। **सर्वकर्म विप्रमोक्षो मोक्षः अर्थात् समस्त कर्मों की समाप्ति का नाम ही मोक्ष है।**

इस अवसर्पिणी में इस भूपर, वृषभ-नाथ अवतार लिया,
भर्ता बन युग का पालन कर, धर्म-तीर्थ का भार लिया।
अन्त-अन्त में अष्टापद पर, तप का उपसंहार किया,
पाप-मुक्त हो मुक्ति सम्पदा, प्राप्त किया उपहार जिया॥

(नंदीश्वर भक्ति हिन्दी-२९)

आगे दो तोतों का उदाहरण देते हुए कहा कि एक तोता पिंजड़े में बंद परतंत्रता का अनुभव करता हुआ उसे ही अपना आवास समझ बैठा है। किन्तु दूसरा तोता पिंजड़े के ऊपर बाहर बैठा हुआ मुक्ति स्वतंत्रता का संवेदन कर रहा है। इस तोते को देख भीतरी तोते को वास्तविकता का बोध प्राप्त होता और वह शीघ्र ही पिंजड़े से मुक्त होने की कामना एवं प्रयास करता है। ऐसे ही प्रभु के मुक्ति गमन से हम सभी अपने कल्याण के लिए प्रयास करें, यही दिशा बोध एक न एक दिन अवश्य ही हमें संसार के बंधन रूपी पिजड़े से मुक्ति दिलायेगा।

इस मोह रूपी ग्रहण को एक बार समाप्त करने पर ही दिव्य ज्ञान रूप केवलज्ञान की प्राप्ति होगी। ज्ञानी जीव को दुख/कष्ट का अनुभव होते हुए भी भविष्य में सुख की प्राप्ति अवश्य होगी ऐसा दृढ़ विश्वास हैं और इसी पथ पर आगे बढ़ते हुए एक दिन प्रभु के लिये परम निर्वाण की प्राप्ति हुई थी।

महावीर भगवान् की जय!

❑ ❑ ❑

दिगम्बर साधु का प्रतीक पिच्छिका

संतों के समागम तथा धर्मोपदेश से हिंसामय जीवन अहिंसक बन जाता है। संतों के प्रभाव से मानव क्या पशु भी अपने जीवन निर्वाह के लिये पेट को कब्रिस्तान नहीं बनाते। वीतराग मुद्रा को देखकर सर्प तथा नेवला जैसे जन्म जात बैरी प्राणी भी परस्पर बैर को छोड़ देते हैं। उनके मन में मरने-मारने के भाव नहीं आते, बल्कि परस्पर रक्षा के भाव जागृत होते हैं। उनमें दूसरों को कष्ट देने के लिये नहीं अपितु कष्टों को हरने के भाव होते हैं। यह निर्विकार मुद्रा का ही अचिंत्य प्रभाव है।

माँ के द्वारा प्रदत्त संस्कार बच्चों के जीवन में अंतिम क्षण तक विद्यमान रहते हैं। क्योंकि माँ के दूध में करुणा का अमृत समाहित होता है परन्तु २० वीं शताब्दी में बच्चों को माता का नहीं अपितु

डिब्बे का दूध मिलता है तो उनमें अहिंसा, दया और करुणा के संस्कार कैसे उत्पन्न होंगे?

आचार्य, उपाध्याय एवं साधु परमेष्ठी सदैव दया धर्म का पालन करने में तत्पर रहते हैं। वे जीवन में आदि से अंत तक किसी भी छोटे-बड़े जीवों को पीड़ा नहीं पहुँचाते इस हेतु अहर्निश सावधानी रखते हैं। इसीलिए आदान निक्षेपण समिति के लिये दया की प्रतीक चिह्न मयूर पिच्छिका रखते हैं। यह पिच्छिका दयाधर्म का पालन करने के लिये गमानागमन प्रवृत्ति के समय हाथ-पैर आदि को प्रक्षालित कर जमीन को संशोधित करने एवं प्राणियों की रक्षा के लिये कर में धारण की जाती है।

अनल सलिल हो विष सुधा, व्याल माल बन जाय।
दया मूर्ति के दरस से, क्या का क्या बन जाय॥

मयूर पिच्छिका संयम का सर्वोत्कृष्ट उपकरण है। दया धर्म की मूर्ति साधुजनों के हाथ में यह उपकार करने वाला उपकरण अहिंसा धर्म को मूर्तरूप देने एवं अहिंसा धर्म का पालन करने के लिये धारण करते हैं। उनकी कायिक, वाचनिक या मानसिक क्रिया से किसी भी प्राणी को कष्ट न पहुँचे, इसीलिए वे सदा सावधानी पूर्वक क्रियायें करते हैं। यह मयूर पंख मोर को भार हो जाने के कारण वह इच्छानुसार उड़ या भाग नहीं पाता तो कार्तिक या अगहन मास में अथवा वर्ष में एक-दो बार वह स्वयं ही छोड़ देता है। तभी इनका प्रयोग पिच्छिका हेतु किया जाता है। इन मयूर पंखों को उसके शरीर से बलात् कभी भी नहीं तोड़ा जाता।

इस मयूर पिच्छिका के पंख की यह विशेषता है कि उसका अग्रभाग यदि आँखों में चला जावे तो भी पीड़ा नहीं पहुँचती। पसीना तथा जल का संपर्क हो जाने पर भी यह आर्द्र नहीं होती और न ही उस पर धूल का प्रभाव पड़ता है। कोमल, मृदु निर्लेपता एवं हल्कापन इसके विशेष गुण हैं। इसीलिए दिगम्बर जैन साधु इसके माध्यम से बैठने के स्थान पर इससे प्रक्षालन करते हैं। जब यह इतनी मृदु है तब इसके धारक साधुओं के भाव कितने कोमल होंगे यह स्वयं पहचाना जा सकता है। आचार्य श्री ने कहा कि- **समयसार जीवन का नाम है, चेतन का नाम है और शुद्ध परिणति का नाम है उसमें पर की बात नहीं स्व की बात है। और उसे पाने हेतु भूत और भविष्यत् इन दोनों को भुलाकर वर्तमान का संवेदन करना ही अध्यात्म का सार है।**

मूक तथा उपसर्ग अन्तकृत, अनेक विध केवल ज्ञानी,
हुए विगत में यति मुनि गणधर, कु-सुमत ज्ञानी विज्ञानी।
गिरि वन तरुओं गुफा कंदरों, सरिता सागर तीरों में,
तप साधन कर मोक्ष पधारे, अनल शिखा मरु टीलों में॥

(नंदीश्वर भक्ति हिन्दी-३४)

जिन्होंने पंच नमस्कार मंत्र के जाप करने का संकल्प किया है, वे निश्चय ही साधना के क्षेत्र में बढ़कर भावों को उत्साहित कर कर्म निर्जरा करने में तत्पर रहते हैं। अत: सभी उत्साह के साथ अहिंसा त्याग एवं तपस्या के क्षेत्र में आगे कदम बढ़ावें तथा दया धर्म का पालन करते हुए पंच परमेष्ठियों की आराधना में लीन हों। आचार्य श्री ने भाव के प्रभाव की और दृष्टिपात करते हुए कहा कि-

नदी के किनारे हिंसक जानवर रूप सिंहनी तथा निकट ही शाकाहारी पशु गाय के साथ-साथ जलपान करते देखा गया है। वही गाय के बछड़े के द्वारा सिंहनी के तथा सिंहनी के शावक को गाय के स्तनपान की घटना को व्याख्यायित किया है। वैसे यह विस्मयकारी घटना होकर भी मनोरम दृश्य प्रस्तुत करती है। गाय भयभीत नहीं थी अपितु दोनों सगी बहिनें सी ही लग रही थीं। ये आनंद विभोर का क्षण ऐसा था जो आज तक प्राप्त नहीं हुआ था। किंतु इसका कारण था मयूर पिच्छिका के धारक वीतरागी निष्पृही दया की साक्षात् प्रतिमूर्ति नग्न दिगम्बर साधु का सात्विक सान्निध्य था, जहाँ अन्याय एवं पापवृत्ति से दूर रहकर जिन्होंने जीवन को अहिंसामय बनाकर पतित पापमय जीवन जीने वालों को शरण प्रदान की है। ऐसे पंच परमेष्ठियों का नाम उच्चारण स्मरण एवं आराधना करने से ही पापों की निर्जरा होती है। अत: हम उन साधु संतों का मार्गदर्शन प्राप्त कर जीवन को सार्थक करें।

अहिंसा परमो धर्म की जय!

❑ ❑ ❑
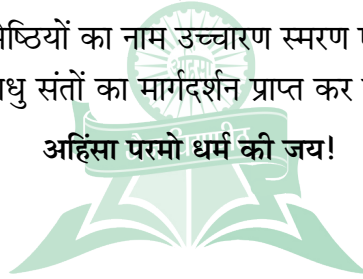
अर्थ नहीं परमार्थ साधो

आचार्य परम्परा में उद्‌भट आचार्य समन्तभद्र स्वामी हुए हैं जिन्होंने उज्ज्वल चारित्र का पालन कर जैन धर्म की अपने जीवन में इतनी प्रभावना की है जो "**भूतो न भविष्यति**"। उन्होंने श्रावकों को अपनी समीचीन चर्या बनाये रखने के लिये एक महान् ग्रन्थ रत्नकरण्डक श्रावकाचार की रचना की है। यहाँ गुजरात में समयसार का स्वाध्याय बहुत हुआ किन्तु अब चर्या समीचीन बनाये रखने के लिए उसी श्रावकाचार के स्वाध्याय की बड़ी आवश्यकता है। उस श्रावकाचार में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र इन तीनों (रत्नत्रय) का सटीक एवं संक्षेप में वर्णन किया गया है।

जैसे आप अपने जीवन में वित्त के लिए पुरुषार्थ करते हो वैसे आत्मोत्थान के लिए भी धर्म पुरुषार्थ करो, यदि कल के दिन को उज्ज्वल देखना चाहते हो तो आज के दिन पुरुषार्थ करो अर्थात् भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए वर्तमान को सुधारो।

यहाँ (ईडर में) ३-४ जिनालयों में जाकर जिन बिम्बों के दर्शन किये तो सारी थकान गायब हो गयी, ऐसे भव्य अतिशयकारी जिन बिम्बों के दर्शन करके लगा कि यहाँ जैनियों की बहुलता एवं बहुत प्रभाव रहा है किन्तु आज यहाँ लोग कम हैं बाहर अर्थ के लिए चले गये हैं (इसी बीच श्रोताओं ने कहा नहीं महाराज यहाँ राजाओं के द्वारा बहुत त्रास था इसीलिए गये हैं)।

अब संक्षेप से यही कहना चाहता हूँ कि घर की रक्षा के समान इन जिनालयों की भी रक्षा करो, बच्चों के ऊपर जैसे अर्थ के संस्कार डालते हो वैसे ही परमार्थ के अच्छे संस्कार डालो। श्रावक धर्म का समीचीन पालन करो क्योंकि श्रावक की खान से ही मुनि निकलते हैं। यदि आप अहिंसा धर्म एवं श्रमणत्व की रक्षा करना चाहते हो तो उसे धारण करो क्योंकि धारण करने से ही उसकी रक्षा संभव है, मात्र कहने से नहीं।

❑ ❑ ❑

न पद रहे न पद चिह्न

जहाँ थोकमाल बिकता हो वहाँ फुटकर में समय निकल जाये तो ठीक नहीं परन्तु एक नीति है कि दुकान पर आया हुआ ग्राहक माल खरीदे बिना वापिस ना जाने पाए। इस नीति के अनुसार थोक दुकान पर फुटकर ग्राहक कल थोक माल खरीदने वाला बन सकता है। (प्रवचन से पूर्व दिलीप गांधी सूरत, मूलचन्द्र बुखारिया अहमदाबाद वालों ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत लिया और दिलीप गांधी की धर्म पत्नि ने दो प्रतिमाएँ लीं। उन्हीं को लक्ष्य बनाते हुए उपरोक्त बात आचार्य महाराज ने कही)।

सभी पशुओं में हाथी विशालकाय होता है जबकि वह क्या खाता है और क्या पीता है यह सबको ज्ञात है। फिर इतना विशालकाय क्यों होता है ऐसा प्रश्न सहज ही सामने आता है ? ऐसा ही

एक विशालकाय शक्तिशाली हाथी राजा के साथ कई रूपों में रहा। कभी मित्र रूप में, कभी पिता रूप में, कभी भाई रूप में और राजा को सब कुछ प्रदान कर हर बार विजय दिलाता रहा।

जीवात्मा का सिद्धांत बड़ा अद्भुत है। जो अनादिकाल से चला आ रहा है। इसका प्रारंभ कहाँ और अंत कहाँ ज्ञात नहीं। जीवात्मा का जीवन क्रम हमेशा एक सा नहीं रहता, प्रति समय परिवर्तित होता रहता है। इस सिद्धांत के अनुसार वह हाथी भी बूढ़ा हो गया, शारीरिक बल कम हो गया, जैसे जैसे जीवन बढ़ता है वैसे वैसे आयु छोटी (कम) होती चली जाती है, बाल, तरुण, युवा आदि पर्यायें नष्ट होती चली जाती हैं। पर्याय दृष्टि के कारण ही मान सम्मान, हर्ष विषाद आदि घटनायें घटती हैं। यदि हम अपनी ओर दृष्टिपात कर लें तो वे सब समाप्त हो जाती हैं।

जैसे जल में तरंगें उठती हैं बनती हैं मिटती रहती हैं, परन्तु जल ज्यों का त्यों बना रहता है वैसे ही पर्याय बनती मिटती रहती हैं, लेकिन द्रव्य ज्यों का त्यों बना रहता है। पर्याय की ओर देखने से तेरा-मेरा, छोटा-बड़ा, हर्ष-विषाद, आशा-निराशा आदि दिखती है ध्रुव सत्य की ओर देखने पर सब गायब हो जाता है।

इस तपोवन में किसी के पद चिह्न नहीं मिलेंगे थोड़ी हवा आते ही सब मिट जाते हैं, तूफान आने पर तो न पद रहते हैं न पद चिह्न। पता नहीं कितने आए और कितने चले गए परन्तु आज किसी के पद चिह्न नहीं रहे। बंधुओं यह मत देखो यह चरण चिह्न किसका है, बस बढ़ते चले जाओ दूसरों के चरण चिह्न से पर की पहचान होती है, अपनी नहीं।

जिस प्रकार आकाश में ध्वनि विलीन हो जाती है वैसे ही इस धरती से सब के नाम, चरणचिह्न और पर्यायें विलीन हो गयीं। मरना और जन्म लेना पर्याय है। आप पढ़ते हैं ''मरना सबको एक दिन'' बंधुओं एक दिन नहीं एक पल में सबको मरना है। सुनने में आता है कि वह चला गया-वह चला गया पर यह सुनने में नहीं आता कि क्या साथ ले गया, फिर भी आप वर्षों की बात करते हो अरे परसों की बात करो। बारह भावना में ये भी कहा है –

कहाँ गए चक्री जिन जीता भरत खंड सारा,
कहाँ गए वे राम अरु लक्ष्मण जिन रावण मारा॥

थोड़ा इन पंक्तियों पर भी विचार करो। चिंतन करो। निगोद से २ हजार सागर के लिए त्रस पर्याय के लिए निकलना होता है, निगोद में रहने का कोई लेखा जोखा नहीं है, (वह तो संसारी प्राणी के लिए माँ की गोद के समान है)।

जीवन के क्रम और पर्यायों वाली घटना उस हाथी के साथ भी घट रही थी। हाथी वृद्ध हो जाने पर स्वतंत्र छोड़ दिया गया। घूमते-घूमते एक तालाब के अंदर कीचड़ में फंस गया। वह निकलना

चाह रहा है पर निकल नहीं पा रहा है, वह सोचता है कोई आयेगा निकालने; किन्तु कोई नहीं आया। प्राय: देखा जाता है कि संकट के समय कोई दूसरा काम नहीं आता। फिर वह हाथी सोचता है क्या पर्याय की दुर्दशा है मैं कितना बोझ ढोता था पर आज अपना शरीर भी नहीं ढो पा रहा हूँ। इसी बीच रणभूमि में रण भेरी बजती है उसे सुनकर हाथी जो जोश आ गया, आवेग आ गया और वह हाथी उस आवेग में तालाब के बाहर आ गया।

युद्ध में जीत बिना आवेग/जोश के नहीं हो सकती इसीलिए आवेग लाने के लिए पहले रणभूमि में भेरी बजती थी और सैनिकों की बाहुओं में खून दौड़ने लगता था कि पर चक्र आया है उससे स्वचक्र की रक्षा करना है। पर आज युवाओं में जोश का अभाव है। आज के युवा एयर कंडीशन में रहते हैं फ्रिज का ठंडा खाते हैं और कूलर की ठंडी में रहते हैं, अत: अब उनमें जोश लाने के लिए हीटर लगाकर गर्म करने की आवश्यकता है। ठंडी में रात भर गाड़ी खड़ी रहने पर धक्का लगाने की आवश्यकता पड़ जाती है, आज तो ट्रैक्टर से खिचवाना पड़ती है तब कहीं चालू होती है, किन्तु आपकी गाड़ी कब से खड़ी है पता ही नहीं।

जैसे बूढ़ा हाथी भी जोश में आकर पूरी शक्ति लगा कर कीचड़ से बाहर आ सकता है वैसे ही आप भी पूरी शक्ति लगा दें तो इस संसार रूपी कीचड़ से पार हो सकते हैं। बड़े आश्चर्य की बात है आज के बूढ़े भी उस बूढ़े हाथी की तरह शक्ति तो लगा रहे हैं पर विषय भोगों में, न कि संसार समुद्र में कीचड़ से पार होने में। बस एक बार शक्ति का समीचीन प्रयोग करने की आवश्यकता है, अपने स्वभाव की ओर दृष्टिपात करने की आवश्यकता है अपने स्वाभिमान को जागृत करने की आवश्यकता है। यदि एक बार स्वभाव की पहचान हो जाय, एक बार चेतना जागृत हो जाय और पूरी शक्ति लगा दें तो चुटकी बजाते ही कार्य सिद्ध हो जायेगा। अपनी (निज की) भूल ही संसार चक्र में भ्रमण का कारण है। आदिनाथ भगवान् के जीव ने भूल की तो संसार में भटक गया जब अपनी भूल ज्ञात हुई तो इस संसार समुद्र से पार हो गया।

यह सिद्धक्षेत्र बताता है कि यहाँ अनेकों आत्माओं ने अपना स्वाभिमान जागृत किया, अपनी भूल को सुधारा और अपनी सोई हुई शक्ति को उद्घाटित किया। यह कार्य बाल, वृद्ध और दुर्बल सभी ने किया है। संतों के ये उपदेश सोई हुई शक्ति को उद्घाटित कराने वाले होते हैं, समीचीन दिशा बोध देने वाले होते हैं और जो काल के भरोसे बैठे हुए पुरुषार्थ हीन व्यक्ति हैं उन्हें पुरुषार्थ शील बनाने वाले होते हैं।

काल कभी लौटने और लौटाने की वस्तु नहीं है और जो काल के गाल में चले गये उसे कोई लौटा नहीं सकता है। कहने को सूर्य लौटता है, उदय होता है पर काल का नहीं। काल में कार्य होते

हैं काल से नहीं। काल कब से है इसे ज्ञानी जान सकते हैं पर्याय बुद्धि वाले नहीं। पर्याय बुद्धि वालों को तो काल चक्कर में डालने वाला होता है। काल के बिना कुछ नहीं होता ऐसा जो जान कर काल का दास बना हुआ है वह पर्याय दृष्टि वाला पज्जय मूढ़ कहलाता है।

जब ऊपर के क्षेत्र वाले ट्रस्टियों ने ऊपर क्षेत्र पर पधारने का श्रीफल चढ़ाकर आमंत्रण दिया और नीचे तपोवन वालों ने दूसरे रविवार की कही तब आचार्य श्री ने अपने प्रवचन में जवाब देते हुए कहा जब दो रवि एक साथ नहीं देख सकते तो दो रविवार की बात क्यों ? दूसरे रविवार की चिंता करने से वर्तमान के रविवार का महत्त्व कम हो जाता है। नीचे और ऊपर ये भी पर्याय है इन पर्यायों के ऊपर उठकर इन सिद्ध क्षेत्रों में आकर सोचना विचारना चाहिए कि हे भगवन् आप ऊपर चले गये किन्तु हम कितने बार ऊपर नीचे हुए पता नहीं और आत्मा की बात मनोयोग पूर्वक आत्मा से सुन लेना चाहिए तब आत्मा का कल्याण होता है।

भेद भाव तज दे अरे, खून सभी का एक।
जैन धर्म है, जाति ना, निज स्वरूप सब एक॥
सर्वोदय जिन तीर्थ में, ऊँच नीच ना भेद।
धर्म साधना के लिए, नहीं जाति का भेद॥
आया क्यों, क्या साथ में लाया, क्या ले जाय।
क्या क्या करता सोच तू, भेद ज्ञान हो जाय॥
भेद ज्ञान ही ज्ञान है, व्यर्थ भौतिकी ज्ञान।
भेद ज्ञान बिन मौत की, नहीं सही पहचान॥

(विद्या स्तुति शतक से)

❑ ❑ ❑

जीवन के अंतिम तीन दिन

इस संसारी प्राणी को सुख अभीष्ट है जब मिलता है तब सब कुछ भूल जाता है और काल की गति का अनुमान ही नहीं लगता कि कब निकल गया। यदि सांसारिक सुख न होता तो अभी तक संसार खाली हो गया होता। इसी सुख के कारण जिसको जहाँ सुख मिलता है वह वहीं मस्त रहता है, वह स्थानांतरण भी नहीं चाहता स्थानांतरण में दुख महसूस करता है।

यह सांसारिक सुख मोह से युक्त होता है। मोह अंधकार का कार्य करता है, जब तक वह उस सुख में लीन रहता है तब तक अतीन्द्रिय सुख को भूला रहता है और एक बार मोह का पर्दा हटते ही जब अतीन्द्रिय सुख मिलता है तब इस सांसारिक सुख को भूल जाता है।

कैमरे के माध्यम से फोटो लेते हैं उससे मात्र ऊपर का फोटो आता है और जब एक्सरे के माध्यम से फोटो लेते हैं तो भीतर का चित्र आता है जबकि दोनों में कुछ विशेष प्रकार की किरणें हैं, दोनों में फोटो ही लिया जा रहा है किन्तु एक भीतर की लेता है दूसरा बाहर की।

संगीत की भी कुछ ऐसी तरंगें होती हैं जिनके प्रभाव से बंद कमल खुल जाता है, बुझा हुआ दीप जल जाता है। सूर्य किरणों में ऐसी शक्ति होती है जिनके प्रभाव से बंद कमल खिल जाता है, क्योंकि जब किरणें किसी एक पर केन्द्रित हो जाती हैं तब ऐसा होता है, इसी प्रकार जब आत्मा एक वस्तु में लीन हो जाती है और अन्य को भूल जाती है तब एक शक्ति उत्पन्न होती है। जिससे ऐसी अद्भुत घटनाएँ घट जाती हैं। आप जो फोटो लेते हैं उससे भीतर का नहीं बाहर का फोटो आता है, गाते आप हैं पर कमल खिलता नहीं और बुझा हुआ दीप जलता नहीं।

आत्मा अजर अमर, रूप-रस से रहित, स्वतंत्र, अनंत गुणों से युक्त और स्वसंवेदन प्रत्यक्ष है यह बात हमें झकझोर देती है क्योंकि यह आत्मा इस प्रकार होते हुए बंधन में क्यों है और इसका अनुभव क्यों नहीं हो रहा है ? ये तीर्थ क्षेत्र बंधन से मुक्ति और आत्मानुभव के लिए होते हैं यहाँ आकर यदि बंधन काटना है तो प्रबंध की बात छोड़ दो। यदि अनुभव करना है तो इन प्रवचनों को सुनकर गुनने (विचारने) की बात करो, यदि प्रबंध में ही लग जाओगे तो गुनने की बात कौन करेगा ?

बाहरी प्रबंध और सम्बन्ध टूटने पर भीतरी जगत से सम्बन्ध जुड़ता है भीतर ए-सी- में रहने वाले ऐसे ही रह जाते हैं क्योंकि ए-सी- की लाइन का बटन आफ (बंद) होते ही क्रोध आ जाता है और बाहरी आनंद सब साफ हो जाता है। यहाँ क्षेत्र पर ऐसी ही ए-सी- है, वैसी ए-सी- की व्यवस्था नहीं, बाहर जाओ या भीतर आओ कोई परिवर्तन नहीं। क्षेत्रों का ऐसा प्रभाव होता है कि जैसे क्षेत्र में जाओ वैसे भाव जागृत हो जाते हैं। यदि मोह के क्षेत्र में पहुँच जाओगे तो सोया हुआ मोह भी जागृत हो जाता है।

जब सम्बन्ध मोह से सहित होते हैं तब संयोग वियोग के समय आँखों में पानी आने लगता है। यदि सम्बन्ध मोह सहित नहीं तो पानी नहीं आता। मेरा गुणधर्म और मैं कौन हूँ, बस इतना परिचय काफी है, दुनिया के परिचय से कोई मतलब नहीं। एक आत्म तत्त्व का ज्ञान हो जाना पर्याप्त है उस का ज्ञान हो जाने पर तत्त्व का ज्ञान अपने आप हो जाता है। अपने स्वभाव के परिचय बिना हमने अनंत काल व्यतीत कर दिया, यह काम मोह ने किया है। मोह एक ऐसा पदार्थ है जो भिन्न वस्तुओं में ऐक्य स्थापित कर देता है। जो मोह को छोड़ देता है वह तीन लोक का पूज्य बन जाता है। जब मोह का बंधन टूट जाता है तब बाहरी बंधन कोई बाधा नहीं दे पाते।

आप प्रकाश के माध्यम से प्रकाशित वस्तुओं को देखकर तिजोरी में बंद करते हैं और प्रकाश

आज तक नौकरी करता रहा है पर प्रकाश को नहीं देखा, प्रकाश को नहीं पकड़ा और प्रकाश की कीमत नहीं समझी। प्रकाश आत्मा है, प्रकाशित वस्तुएं ये शरीरादि हैं जब ये ज्ञात हो गया कि ये पर हैं, मेरा नहीं, फिर उसका संग्रह क्यों ? मैं ज्ञाता दृष्टा एक अखंड दिव्य तेजोमय चेतन स्वभाव वाला हूँ, यह कहना और तदनुरूप संवेदन करना दोनों में बहुत अंतर है।

जैसे हवा को सदा गति कहा है वैसे ही संसार में रहते हुए मुनि को भी सदा गति कहा है। वह किसी से बंधता नहीं उसका स्वतंत्र विचरण चलता है। इसी युग में कुंद-कुंद जैसे महान् आचार्य हुए हैं। उन्होंने गिरि गुफाओं में रह कर आत्म साधना करते हुए जिन ग्रन्थों को लिखा उनका प्रभाव आज के मोही पर पड़ रहा है और उन बातों को पढ़कर आज हम साक्षात् कर रहे हैं। उनके वे ग्रन्थ भी आज हमें निर्ग्रन्थ हो कर पूज्य बने हुए हैं क्योंकि उन्होंने अनुभूति के माध्यम से ऐसे ग्रन्थों की रचना की जिनका अर्थ आज हमें समझ में आ रहा है वह भी बड़े सौभाग्य की बात है पर जो इस स्वर्णमय जीवन को विषयों में लगा रहा है वह बर्तन साफ करने रत्नों की भस्म बना रहा है, पैर धोने अमृत खर्च कर रहा है, प्याज की खेती के लिए कपूर की बाड़ लगा रहा है।

शरीर को इतना मोटा ताजा मत बनाओ कि आत्मा की ओर उपयोग ही न लग पाये। ऐसा बनाकर आप शरीर को निरुपयोगी बना रहे हैं या कि धन कि उपयोगिता सिद्ध करना चाहते हैं कुछ समझ नहीं आता। संतों ने कहा है शरीर को मात्र साधन मानकर चलिये।

(आचार्य श्री जी ने सुकुमाल मुनि की कथा को लक्ष्य बनाकर प्रवचन प्रारंभ करते हुए कहा) जहाँ बाहरी कोलाहल समाप्त हो गया है, सूर्य की किरणों को प्रवेश पाने के लिए स्थान नहीं है, जहाँ बाहर का भीतर और भीतर का बाहर नहीं आ सकता है, बाहर का परिचय भीतर वालों को और भीतर वालों को बाहर का परिचय नहीं है सुनते हैं ऐसी स्थिति जेल में रहती है। ऐसी परिस्थितियों में रहने वाला एक व्यक्ति रात्रि में गीतमय भक्ति पाठ को सुन कर उठ जाता है, किन्तु आसपास कोई दिखाई नहीं दे रहा है। उस गीत को सुनकर उसे ''घर काराघर वनिता बेड़ी परिजन हैं रख वाले'' लग रहे हैं मोह का बंधन टूटता जा रहा है।

वह व्यक्ति उस आवाज को सुनकर वहाँ जाना चाह रहा है पर बाहर जायें भी कैसे ? कोई साधन नहीं हैं ? वहाँ पड़ी हुई साड़ी पर अचानक दृष्टि पड़ती है। उसकी रस्सी बना कर खिड़की से नीचे सरकने लगता है। नीचे आकर उस ओर बढ़ने लगता है, जिस ओर से आवाज आ रही है। उसका शरीर बहुत सुकुमाल है सरसों के दाने भी जिसे चुभते हैं पर अब नंगे पैर जा रहा है, पैर लहूलुहान हो गये हैं, साड़ी के घर्षण से हाथ लाल लाल हो गये हैं फिर भी परवाह किये बिना बढ़ता जा रहा है। आगे देखता है कि एक वीतरागी संत बैठे हैं, उनके दर्शन होते ही दीक्षा के भाव हो गये, और दीक्षा के बाद वीतरागी संत ने कहा अब मात्र तीन दिन शेष रह गये हैं।

आजकल कुछ लोग दीक्षा को हेय कह कर काल के भरोसे बैठे हैं। उन्हें काल की पहचान सही नहीं हो पा रही है। होगी भी कैसे ? क्योंकि काल को वहीं पहचान सकता है जो शरीर को गौण कर देता है नहीं तो काल के गाल में कवलित हो जाता है। काल से कार्य नहीं होते, किन्तु काल में कार्य होते हैं, अतः कार्य करते चले जाओ काल की ओर मत देखो। काल में डायरेक्ट विघ्न उपस्थित करने की क्षमता नहीं है जबकि उस काल रूपी विघ्न में ही विघ्न पैदा करने की शक्ति आत्मा में है। काल ही काल की चर्चा में आत्मा को लपेटो नहीं, कुछ काल निकालकर आत्मा की भी अर्चा करो।

वे सुकुमाल मुनि एक गुफा में जा कर ध्यानस्थ हो गये। गुफा में जाते समय पगतलियों से खून रास्ते में गिरता गया जिसकी गंध से वहाँ स्यालिनी अपने बच्चों सहित पहुँच जाती है और खाना प्रारंभ कर देती है। वह खा रही है मुनि का उपयोग केवल आत्मा में है, तीन दिन तक खाती रही पर शरीर की ओर कोई दृष्टि नहीं है। अंत में वे सुकुमाल मुनि नश्वर देह को छोड़ कर सर्वार्थ सिद्धि पधारे।

मुक्त हुए वा हो रहे, रत्नत्रय ले जीव।
जिन आगम, गुरु देव ही श्रद्धा जिसकी नींव॥

देव शास्त्र गुरु वैद्य हैं, दूर करें भव पीर।
औषधि ले रत्नत्रयी, बन जा अमर अमीर॥

सोच समझ रख राह पर, जमा जमा कर पैर।
जोश होश हो धैर्य हो, तभी सफल हो सैर॥

दोष स्वयं का स्वयं को, गुण पर का दिख जाय।
अहित त्याग जो हित गहे, शाश्वत निधि वो पाय॥

जो ना डर कर भागता, देख मार्ग के शूल।
उसे मार्ग के शूल भी, बन जाते है फूल॥

(विद्या स्तुति शतक से)

❑ ❑ ❑

शिष्य गुरु का सम्बन्ध

आचार्य उमास्वामी महाराज हुए हैं जिन्होंने पूरी जिनवाणी को सर्व प्रथम संस्कृत भाषा में सूत्र रूप में लिपिबद्ध किया है। उसमें एक सूत्र आता है –**"परस्परोपग्रहो जीवानाम्"** यह सूत्र तीन शब्दों से निर्मित हुआ है, जिसका अर्थ है परस्पर में एक दूसरे जीव पर उपकार करना जीव का लक्षण है। उपकार अजीव पर नहीं, जीव पर किया जाता है। किन्तु जिसके पास संवेदना शक्ति नहीं वह भी उपकार करता है। सूत्र में पर नहीं कहा किन्तु परस्पर कहा जो गहन अर्थ रखता है।

जो उपकार को जानता है उस पर उपकार होना चाहिए। सामने वाला उपकार माने न माने किन्तु उपकार करना हमारा कर्त्तव्य होना चाहिए। इस सूत्र पर आचार्य पूज्य पाद महाराज के द्वारा टीका लिखी गई। उसमें एक बात बड़ी विचित्र कही गई कि छोटों पर बड़ों का उपकार तो ठीक है; किन्तु छोटों का बड़ों पर उपकार कैसे हो सकता है। शिष्य का गुरु पर उपकार कैसे हो सकता है ? भक्त का भगवान् के ऊपर उपकार कैसे ? इस बात को मनोयोग पूर्वक ध्यान से सुनना, यह महावीर भगवान् की दिव्य देशना का सार तत्त्वार्थ सूत्र है। उसके एक-एक सूत्र की गहराई में जाना चाहें तो यह जीवन छोटा पड़ जायेगा।

भगवान् ने हमें मार्ग बताया यह उनका उपकार है, और भगवान् ने जो मार्ग बताया उस मार्ग पर चलना भगवान् के ऊपर हमारा उपकार है। गुरु की आज्ञा का पालन करना गुरु के ऊपर उपकार है। जब यह व्याख्या सामने आती है तब हम भगवान् से छोटे नहीं रह जाते हैं किन्तु यदि नहीं करते तो जैन धर्मानुयायी कहते लज्जा आनी चाहिए। जो भगवान् के मार्ग पर चलता है वही भगवान् का सही अनुयायी है। भक्त वह होता है जो भगवान् की खोज करता है और भगवान् की आज्ञा पालन करता है यही भक्त और भगवान् में सम्बन्ध होता है। जो करने योग्य कार्य को जानता है और अपना कर्त्तव्य समझकर करता है वही कृतकृत्य होता है। उसी कर्त्तव्य के पालन से हमारे भगवान् कृत कृत्य हुए हैं। कर्त्तव्य प्रदर्शन की वस्तु नहीं है। सम्यग्ज्ञान और शोभा कर्त्तव्य पालन से है। कई लोग सुनते सुनते वृद्ध हो गये फिर भी कर्त्तव्य की बात समझ में नहीं आ रही है और मात्र नारे लगाये जा रहे हैं। बंधुओं नारे लगाये बिना भी हम कुछ कार्य कर सकते हैं। आज तो कुछ नारे राज नीति जैसे लगने लगे हैं अब इनको बंद करो। हम बोलकर शब्दों से ही भाव पहुँचा सकते हैं ऐसा भी नहीं है, किन्तु बिना बोले पहुँचा सकते हैं।

ज्ञानसागरजी हमारे गुरु हैं, उन्होंने जो कहा मैं उसे कहने में लगा हूँ। वे यह नहीं कह गये कि तुम्हारे ऊपर अजमेर वालों का ऋण लदा है उसे चुकाना है। मेरे ऊपर तो ज्ञानसागर जी का ऋण लदा है। ज्ञानसागर जी गुरु महाराज ने कितने चातुर्मास आपके अजमेर में किये, उसका कर्ज कितना लदा है उसे आप लोगों को पहले चुकाना है। गुरु महाराज ने कहा जिन्होंने पहले कर्ज लिया है उन्हें अब कर्ज नहीं देना और उन्होंने यह भी कहा कि जहाँ दुकान न चले वहाँ नहीं रहना।

ज्ञानसागरजी महाराज वृद्ध थे फिर भी अपने आवश्यक पालन करते हुए जो पास था उसे यह लायक समझ कर मुझे दिया उसे लेकर मैंने अपनी गाड़ी वहाँ से रवाना कर दी। उन्होंने कहा मूलधन में कभी भी कमी नहीं आना चाहिए यह हमेशा ध्यान रखना। वह बात मैंने हमेशा याद रखी है तभी मूलधन आज तक सुरक्षित है। इसके लिए एक सूत्र 'सुनना सब की करना मन की।' जो आकर कुछ कहे उसे हव-हव (हाँ-हाँ) कह कर टाल देना ग्राहक को तोड़ना भी नहीं और जल्दी जल्दी देना भी नहीं।

जैसे किसान बीज बोता है एक पानी दे देता है फिर उसकी तरफ देखता ही नहीं, किन्तु ताप के कारण जब पौधा सूखने की ओर होता है तब फिर एक पानी दे देता है परिणाम स्वरूप फसल लहलहाने लगती है। वैसे ही ज्ञानसागर जी ने कहा था जब सूखने लगे/साहस टूटने लगे तब थोड़ा पानी दे देना यही ध्यान रखते हुए सुधासागर जी महाराज को भेजा है।

अनंत सिद्ध परमेष्ठी हमारे सामने से निकल गये, ४-४ बार दिव्य देशना दी गई फिर भी कल्याण नहीं हुआ मात्र सुनते बैठे रहे। सुनने मात्र से कार्य सम्पन्न या कल्याण नहीं होता। आज लोग कहते ज्यादा हैं करते कम किन्तु पहले करते ज्यादा, कहते कम थे। आज तो कार्य होने से पूर्व ही पत्र पत्रिकाओं में निकल जाता है। पर ज्ञानसागर जी ऐसे नहीं थे। उन्होंने प्रवचन किये शास्त्र लिखे, जिन्हें देख विद्वान लोगों ने कहा ये प्रकाशन के योग्य हैं तब महाराज (ज्ञानसागरजी) ने कहा मैं साधक हूँ प्रकाशक नहीं। महाराज ने वीरोदय, जयोदय आदि ऐसे महान् ग्रन्थों की रचना की, जिसे समझने में विद्वानों को भी कठिनाई महसूस होती थी तब विद्वानों ने टीका लिखने की प्रार्थना की। गुरु महाराज ने टीका और अन्वयार्थ लिखकर सब की माँग पूर्ण कर दी। इस प्रकार ज्ञानसागर जी ने जो हमें दिया है वह ऋण हमारे और आपके ऊपर है उसे चुकाना है।

ज्ञानसागरजी का लक्ष्य था मैं कौन हूँ इसको जानना, और मेरा कर्त्तव्य क्या है उसे करना। जीवन को सफल बनाने के लिए अपना कर्त्तव्य करना चाहिए ड्यूटी ऑफ राइट नॉलेज वाली बात होना चाहिए। वे वृद्धों के साथ वृद्धों जैसे, युवाओं के साथ युवा जैसे, बालक के साथ बालकों जैसे हो जाते थे यह उनकी कुशलता थी। आज तो धारा प्रवाह स्पीच चाहिए, उस धारा प्रवाह स्पीच में इतना बोलते हैं कि उन्हें स्वयं ही कुछ पता नहीं रहता है कि क्या बोल रहा हूँ आज प्रवचन और शास्त्र स्वाध्याय में बहुत अंतर हो गया है।

ग्राहक आये आप माल (कपड़ा) दिखाये ढेर लग जाय फिर भी न ले तो सच-सच बताओ कैसा लगता है ? महाराज ऐसा लगता है कि हे भगवान् ऐसे ग्राहकों से बचाओ। अरे भैया ऐसे हमारे पास प्रतिदिन ग्राहक आये तो मुझे कैसा लगता होगा। ज्ञानसागर जी जब मिलेंगे तो हम यही कहेंगे, इन मारवाड़ी ग्राहकों से बचाओ।

ज्ञानसागरजी महाराज की हमारे ऊपर ऐसी कृपा हो गयी कि हम तो धन्य धन्य हो गये उनके हम ऋणी हैं और यह ऋण नहीं बल्कि अब कर्त्तव्य है। ज्ञानसागरजी ने जो अध्यात्म का ज्ञान इस युग को वैसा ही दिया जैसे दीपक बुझने वाला हो और उसमें तेल डाल दिया हो। मेरा तो पुण्य था जो भले ही अल्प काल के लिए मिला पर मिला है। जो मिला है उसे व्यक्त नहीं कर सकते। यदि २-३ वर्ष और देर कर जाता तो मेरा जीवन अंधकारमय हो जाता। जिनके स्मरण करने मात्र से प्रकाश मिल जाता

है उनका स्मरण बार बार करते रहना चाहिए। उनमें ज्ञानसागरजी भी एक प्रकाश पुंज है वे ऐसा ही प्रकाश जीवन में देते रहें ऐसी मैं प्रार्थना करता हूँ।

(यह प्रवचन ज्ञानोदय तीर्थ अजमेर राजस्थान से पधारे ५०० श्रावकों के लिए दिया गया था। सुधा सागर जी महाराज की प्रेरणा से ज्ञानोदय तीर्थ बन रहा है। वहाँ पधारने के लिए आचार्य श्री को आमंत्रण देने आये थे।)

❑ ❑ ❑

संसार असार है भीड़ बेशुमार है

यह संसार असार है ऐसा बहुत लोग कहते हैं। किन्तु लगता नहीं कि यह असार है क्योंकि कहने वालों की अपेक्षा सार ढूँढ़ने वालों की संख्या ज्यादा है और जो कहते हैं कि संसार में सार नहीं उन्होंने इसे छोड़ा क्यों नहीं ? संसार को सार कहने वालों में छोटे-बड़े, धनी-निर्धनी, बालक-बुड्ढे और ज्ञानी-अज्ञानी सभी हैं। इन सब की भीड़ बेशुमार है। जो दूसरों को असार कह कर स्वयं उसमें यदि सार मानता है वह लौकिक व्यक्तियों के बीच में भले ही ज्ञानी माना जाये, किन्तु जब स्वयं को बोध होता है तो पश्चाताप के अलावा कुछ हाथ नहीं लगता। संसार को असार घोषित करने वाला उसी में सार ढूँढ़े तो पागलपन ही माना जायेगा। जिस वस्तु का असार के रूप में वास्तविक ज्ञान या अनुभव हो जाता है उसके प्रति कोई आकर्षण नहीं रह जाता है।

एक व्यक्ति अपने महल के ऊपर बैठकर इन्द्रजाल के समान आकाश नगर को देख रहा है। उसे कागज पर उतरवाना चाह रहा है सेवक को बुलाया उसके कहने पर सेवक ने सारी सामग्री ला कर रख दी; किन्तु जैसे ही कागज पर बनाना शुरू करना चाहता है वैसे ही वह (आकाशनगर) बिखर गया (आकाशनगर का अर्थ बादलों का समूह होता है) इस दृश्य को देख वह ऊपर से नीचे उतरकर महल से बाहर सीधे वन की ओर चला जाता है। वे थे धर्मनाथ स्वामी।

हमारे सामने कितनी बार ये घटाएँ छा गयीं और कितनी बार मिट गयीं फिर भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा किन्तु ज्ञानी के लिए बादलों का एक टुकड़ा संसार को असार जानने के लिए पर्याप्त है।

तीर्थंकर बादलों के निमित्त से मुक्त हो गये किन्तु बादलों को आजतक मोक्ष नहीं मिला। जिसका उपयोग हमेशा सावधान रहता है उसको वस्तु स्थिति जानने के लिए एक छोटी सी घटना पर्याप्त है। संसार की असारता का जिसे ज्ञान हो गया हो उसे घर छोड़ने में समय नहीं लगता। सागर के पानी की एक बूंद को चखने के बाद ज्ञात हो गया कि खारी है तो फिर पूरे सागर को चखने की आवश्यकता नहीं है। जब संसारी प्राणी का उपयोग सावधान हो जाता है तब सारे प्रश्न चिह्न समाप्त हो जाते हैं। संबोधन उसके लिए होता है जो सावधान होना चाहता है। मोक्ष मार्ग में सावधान का अर्थ

है सार और असार का ज्ञान होना किन्तु संसारी प्राणी सावधान है संसारमार्ग में। संसार महत्त्वपूर्ण नहीं, किन्तु संसार में रहकर सावधानी महत्त्वपूर्ण है।

तीर्थंकरों को कोई मना नहीं सकता। उनकी मान्यता मनाने से बदलती नहीं है। वे एक बार जिसे छोड़ देते हैं उसे फिर पीछे मुड़कर देखते भी नहीं हैं। तीर्थंकरों के जैसी बारह भावनाएँ और संसार शरीर भोगों से विरक्ति के प्रति चिंतन धारा चलती है वैसी अन्य किसी की नहीं चलती।

देवों में सबसे महत्त्वपूर्ण पद लौकांतिकों का माना जाता है। वे देव ऋषि माने जाते हैं, उनका अपना एक अलग आकर्षण होता है। उनका सम्बन्ध अतीत के जीवन से जुड़ा रहता है। प्रवचनसार की गाथा नं- १०८ में १०८ मुनि श्री को कहा कि तुम अपनी दीक्षा की तिथि को याद करो। तुम दीक्षा की तिथि को याद रखो ऐसा कहने के पीछे उनका अपना अनुभव छुपा है। दीक्षा की तिथि को याद करने से वैराग्य का दृश्य सामने आ जाता है।

तीर्थंकरों के पैर अन्य साधकों की तरह फिसलते नहीं वे पैरों को जमा जमा कर रखते हुए सिंह वृत्ति से चलते हैं। सिंहवृत्ति का अर्थ क्रूरता नहीं बल्कि अपने स्वभाव के अनुरूप कार्य कर लेना चाहिए। ज्ञान आत्मा का स्वभाव है जो प्रमाद में भी रह जाता है। जब हमारी धर्मनाथ भगवान् के समान प्रमाद छोड़कर सावधानी होगी, तभी हमारा मोक्ष कार्य सम्पन्न हो सकता है। जिन घटनाओं से जिन्हें वैराग्य हुआ है उनकी उन घटनाओं को पढ़ने सुनने से भी हमें वैराग्य हो सकता है। तीर्थंकर ऐसी भावनाएँ भाते है कि १३वें गुणस्थान के लिए कारण होती हैं, ऐसी भावनाएँ हमारे अंदर भी बनी रहें इसी भावना के साथ धर्मनाथ भगवान् की जय।

धर्म के दो भेद किये गये हैं। एक निश्चय, दूसरा व्यवहार। इन दोनों में कार्य कारण का सम्बन्ध है। व्यवहार धर्म को सराग धर्म भी कहा गया है, सराग धर्म में भक्ति सर्वोपरि है, क्योंकि भक्ति से चित्त की शुद्धि होती है, चित्त की शुद्धि से मन एकाग्र होता है, मन की एकाग्रता का नाम ध्यान है, ध्यान ही सर्वोपरि तप है और **तपसा निर्जरा च** तप से कर्मों का संवर और निर्जरा होती है, सम्पूर्ण निर्जरा का नाम मोक्ष है इसलिए भक्ति परंपरा से मोक्ष का कारण है।

❑ ❑ ❑

पथिक का पाथेय

युग के आदि से धर्म अक्षुण्ण रूप से आया तो है लेकिन नदी के प्रवाह के समान बीच-बीच में अलग-अलग परिस्थितियाँ बनती रहती हैं। युग के आदि में वृषभनाथ ने राज्य करके अपने दोनों पुत्रों के लिए अपनी भूमि दो भागों बाँट दी लेकिन चक्रवर्ती पद पिता से नहीं मिला और मिल भी नहीं सकता। वह स्वयं पुरुषार्थ कर पुण्यार्जन से प्राप्त होता है। तीर्थंकर का पुत्र चक्रवर्ती तो हो सकता है लेकिन तीर्थंकर पद अपने बेटे को नहीं दे सकता।

आदिनाथ दीक्षा लेकर मौन बैठ गए। उसी बीच दो बालक जाकर आदिनाथ स्वामी के सामने बैठ गए और इंतजार करने लगे कि दादाजी अब उठेंगे, अब उठेंगे, परन्तु नहीं उठे तब देवों ने अपना रूप परिवर्तित करते हुए सामने आकर कहा भगवान् ध्यान में लीन हैं। वे बोलेंगे नहीं, बैठने से पूर्व कह दिया कि तुम्हें विजयार्ध की श्रेणी में जमीन दी गई उन बालकों ने सहज सरल भाव से कहा हम तो दादाजी से ही लेंगे। ऐसी सरलता थी पूर्व में। आदिकाल में (दोनों बालक आदिनाथ के साले के पुत्र थे एक का नाम नमि दूसरे का नाम विनमि था इन्हीं से विद्याधरों का उद्भव हुआ)

युग के आदि में कैसा वातावरण था और आज कैसा है उसका चित्रण मूलाचार में भी किया गया है। युग के आदि में जैसा भोलापन और सीधापन था वैसा आज देखने को नहीं मिलता। आदिम तीर्थंकर और अंतिम तीर्थंकर के बारे में बहुत सी विशेषताएँ रहीं हैं। प्रथम तीर्थंकर के काल में मंद बुद्धि वाले थे, परन्तु सरल स्वभावी थे महावीर के काल वाले कुटिल हैं इनकी बुद्धि सीधी नहीं, बल्कि उल्टी चलती है इनकी भूतों की चाल है आज तो ये जानते नहीं मानते नहीं और ऊपर से तानते भी हैं।

जब भगवान् महावीर स्वामी थे तब वे उन कुटिल बुद्धि वालों को संभाले हुए थे, लेकिन आज संभालने वाला नहीं है। आज कितना भी धार्मिक वातावरण बना लिया जाता है, फिर भी धर्म के संस्कार नहीं पड़ रहे हैं। हिंगड़े के डिब्बे में से हिंगड़ा निकाल कर साफ कर दो और उसमें कस्तूरी रख दो, तो वह हिंगड़ा भी अपना प्रभाव डालता है। उसी प्रकार आज बच्चों को कितने अच्छे संस्कार दो, तो भी वह कुसंस्कार रूपी हिंगड़ा छूटता नहीं है।

इस युग में जितने भी विकास हो रहे हैं वे सब दुर्बुद्धी के कारण बना रहे हैं। आज जैसे जैसे भवनों में विराटता आ रही है, मंजिलें बढ़ती जा रहीं हैं वैसे वैसे पाप की विराटता बढ़ती जा रही है। आज एक नंबर का पैसा नहीं रहा, दो नम्बर का पैसा है। इसी प्रकार आज संस्कारों में वृद्धि की जा रही है, रक्षक भी आज भक्षक बनता जा रहा है, ऐसी स्थिति में हम भाग्य को या काल को दोष देकर पुरुषार्थ करना भूलते जा रहे हैं। इसीलिए संत कहते हैं ऐसा काम चलने वाला नहीं है और काल वान को देखकर पुरुषार्थ करके उन दुर्बुद्धि वालों में सुबुद्धी डालना होगा तभी ये मार्ग सुरक्षित रह सकता है।

पहले स्वेच्छा से दिया हुआ ही लिया जाता था किन्तु आज देने वाले की इच्छा न होते हुए भी जबरदस्ती (बाह्य करके) लिया जाता है ऐसा इसलिए हो गया है कि अर्थ प्रधान हो गया है और परमार्थ गौण हो गया है। हमें सीख के लिए उस ओर दृष्टिपात करना होगा जिस ओर का संकेत गुरुओं का मिला है। गुरुओं की वाणी मार्ग में उत्पन्न होने वाले बाधक तत्त्वों को दूर करती है। कितने भी बाधक तत्त्व साधना में सामने हो यदि गुरु की वाणी हमारे सामने हो, तो बाधक कारण अपने आप अलग हो जायेंगे और गाड़ी आगे बढ़ती जायेगी। पथ पर चलने से बाधक कारण आते हैं, लेकिन उनको दूर

करने के लिए कुंदकुंदाचार्य महाराज ने चार उपकरण बतायें है। मार्ग पर आरूढ़ साधक (श्रमण) इसे पाथेय (नाश्ता) समझ कर चलें—

(१) जिन लिंग—साधक यथाजात बालकवत् जो निर्दोष जिन लिंग का भेष है उसे धारण किए रहें। श्रावक भी यथा शक्ति मोक्ष मार्ग पर चलता है उसे भी श्रावक धर्म निर्दोष रूप से पालन करना चाहिए।

(२) विनय—विनय नय के साथ चलता है। नय का अर्थ भगवान् जहाँ तक पहुँचे वहाँ तक पहुँचा दे। यदि हमारे पास विनय है तो हम निश्चित रूप से भगवान् के पास पहुँच सकते हैं।

(३) गुरु वयणं (गुरु के वचन)—जैसे माँ अपने शिशु से जो कहती है शिशु वह मानता है वैसे ही शिष्य को गुरु की बात मानना चाहिए। गुरु और माँ ऐसे वचन देते हैं जो हमेशा कानों में गूंजते रहते है। कर्ण की माँ ने कहा बेटा गंगा के पास नहीं जाना। बेटे ने भी कह दिया अच्छा माँ ठीक है, किन्तु जब गंगा पार करने की बात आयी तब कर्ण विजयी होकर घर आया और उसके कानों में माँ के शब्द गूंजते रहे। गुरु के वचन मोक्ष मार्ग पर याद रखना सबसे बड़ी विनय है। गुरु के बाद श्रुत की विनय आती है।

(४) श्रुताभ्यास—आज सूत्र का अभ्यास है, किन्तु शेष तीनों बातें समाप्त होती चली जा रहीं हैं युग के आदि में ऐसा नहीं था। जैसा आगम में कहा गया और गुरु द्वारा संकेत किया गया वैसा करना पड़ता है तब अनुभव प्राप्त होता है। अनुभव परम आवश्यक है, परन्तु अनुभवपने आप नहीं आते वह तो चलते समय ही आते हैं। होने में और रहने में बहुत अंतर है। हैं से होने वाली यात्रा बहुत महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। होने में परिश्रम लगता है। होने में और रहने में वैसा अंतर है जैसे पानी जमीन में है इस प्रकार पानी के होने में और खोद कर फिर उसे कुएँ में बनायें रखने में। जमीन में पानी है पर उसे कुएँ में बनाये रखना बहुत कठिन है। हम में शक्ति है, युक्ति नहीं। हम हैं, हुए नहीं। ये तभी संभव है जब चार चीजें जीवन में हों।

आज का बच्चा एक कार्य के कहने पर दस कार्य करता है, परन्तु न करने योग्य ही कार्य करता है और अपनी माँ को एक पंथ दो काज वाली बात सुनाता है। आज हम लोग दोषों के पुंज हैं, हर कार्य में दोष ही दोष लगते हैं इसलिए दिन में तीन बार प्रतिक्रमण करने की आज्ञा है। आगे तो और भी अंधकार आने वाला है। जबकि २२वें तीर्थंकर तक की परंपरा वालों को कोई दोष ही नहीं लगते थे।

आज जो धुंधलापन आया है और आगे जो अंधकार आने वाला है उसमें कारण यह है कि आज का युग अर्थ की ओर मुड़ गया है। परमार्थ गौण हो गया है धुंधलेपन में तो फिर भी दिख सकता है। किन्तु जब आँखों में धूल चली जाये तो दिखना बंद हो जाता है। आज धूल घुस गयी है और

कर्त्तव्य अकर्त्तव्य कुछ दिख नहीं रहा है। यदि आँखों की धूल अलग करना चाहते हो तो आचार्य कुंदकुन्द स्वामी की चार बातों को जीवन में उतारना चाहिए। इस क्षणभंगुर जीवन का सदुपयोग करो। अहिंसा की ओर कदम बढ़ाओ और विषय भोगों से पीठ फेर लेने में ही जीवन की सार्थकता है।

सीधे सीधे सिझ गये, बने सिद्ध भगवंत।
टेड़े सब संसार में, खड़े अनंतानंत॥
गुरुओं के आदेश में, ना तो तर्क वितर्क।
कर सहर्ष स्वीकार वह, पालन करो सतर्क॥
(विद्या वैभवशतक से)

❑ ❑ ❑

डाँटो नहीं बाँटो

महावीर के महान् जीवन को हम शब्दों में नहीं बांध सकते हैं। शब्द जड़ हैं एवं शब्द का एक क्रम होता है फिर भी यदि उनके साथ भाव जुड़ जाते हैं तो उस विराटता को भी एक वाक्य में बांध सकते हैं। बांध का अर्थ कोई बांध बांधना या रस्सी से बांधना नहीं है। उस महान् व्यक्तित्व को यदि समझना है तो उसे जीवन में उतारना होगा।

परोपकाराय रवे प्रवासः परोपकाराय कवे प्रयासः।
परोपकाराय वने बसंता परोपकाराय वदंति संता॥

सुबह सूर्य की यात्रा प्रारंभ होती है बालभानु के रूप में। बालभानु के उदय होने पर चिड़िया चहकने लगती है। जब दोपहर में भानु प्रतापशाली हो जाता है, तब उसे सब देख नहीं पाते हैं। जो सूर्य की तीखी तीखी किरणें जलाती हैं उन्हीं किरणों में कोमल-कोमल कलियों को खिलाने (विकसित करने) की क्षमता है। जीवन में पड़े बीजों को अंकुरित करने की क्षमता है।

आप लोग सनराइज और सनसेट देखने जाते हो, उसके तेज प्रताप को देखना नहीं चाहते जबकि हमें उसके प्रकाश और प्रताप की कीमत करना चाहिए क्योंकि उसमें महान् परोपकारिता, महान् विशालता और महान् विराटता छिपी है। उसकी विशालता, विराटता, परोपकारिता यही है कि वह सारे विश्व को ऊर्जा देता रहता है। इसी प्रकार आज से २५ सौ वर्ष पूर्व एक ऐसे सूर्य का उदय हुआ जिसने सबको ऊर्जा दी, सोई हुई चेतना को जागृत किया। उनके द्वारा दिये हुए सूत्र दिये (दीपक) का कार्य कर रहे हैं। उन सूत्रों में प्रकाश भरा हुआ है, इसलिए उनके सामने अंधकार रह कैसे सकता है। यदि प्रकाश की यात्रा नहीं होती तो अंधकार भागता कैसे ? भगवान् महावीर स्वामी ने प्रयास करके प्रकाश फैलाने का काम किया है। ज्ञान दीपक के समान है जो स्वयं प्रकाशित होता है और दूसरों को

प्रकाशित करता है। जब सूर्य पूर्व में रहता है तो पश्चिम में उसकी किरणें नहीं पहुँच पाती हैं इसलिए वह प्रवास (यात्रा) करता है। छाया की ओर देखने से बैठने के भाव आ जाते हैं। छाया अधर्म द्रव्य है। अतः अधर्म द्रव्य की शरण में मत जाओ (जैसा द्रव्य संग्रह में कहा है) **छाया जह पहियाणां......**

छाया आशा का प्रतीक है और इस प्रकार होने से अच्छाई समाप्त हो जाती है। १२ बजे जब तेज प्रतापी सूर्य आता है तब छाया गायब हो जाती है।

जब तक मेहनत नहीं होती तब तक पसीना नहीं आता और पसीना न आने से भीतर का विकार (रोग) बाहर नहीं आ सकता मेहनत का अर्थ मैं का/अहं का नत नष्ट हो जाना। अर्थात् मेहनत से अहं झुक जाता है और समर्पण के भाव आ जाते हैं। आप लोग बातों बातों के लिए हिल जाते हैं किन्तु कार्य करने के लिए नहीं हिलते। योजनाएँ बहुत बनाते हैं, परन्तु सरकार भगवान् भरोसे होती है। आप भगवान् को आदर्श मानकर कहते हैं, आप ही डूबती नैया को पार लगा सकते हैं। बन्धुओं आदर्श को सामने रखने मात्र से काम नहीं होता किन्तु आदर्श को सामने रखकर तदनुरूप पुरुषार्थ करने से काम होता है।

भगवान् दूसरों को पानी पिलाकर प्यास बुझाते है और आप अपने को पानी पिलाकर प्यास बुझाते हैं, इन दोनों में बहुत अंतर है। अपने आपको पानी पिलाने से प्यास बुझती है इसे छोड़ दो, बंधुओं, दूसरों को पानी पिलाकर देखो तो क्या होता है ? जो देना जानता है दूसरों की प्यास बुझाता है, वह अपनी प्यास बुझा ही लेता है। आज देखो मैत्रीकुण्ड में कैसे हजारों पशु पक्षी पानी पीकर चले गये, मैंने कई लोगों से सुना है खिलाने-पिलाने के बाद (आहारदान आदि से) भूख प्यास मिट जाती है। आप खिलाना-पिलाना भूल जाते हैं किन्तु खाना पीना नहीं भूलते। अपने आप को भूलकर दूसरों को प्रकाश देने का, खिलाने पिलाने का और शरण देने का कार्य महावीर, राम, हनुमान, आदिनाथ आदि ने किया है।

बाँटने (वितरण) से कभी समाप्त नहीं होता किन्तु डांटने से समाप्त हो जाता है। सब बांटने के लिए है रखने के लिए नहीं, यदि रखते चले जाये तो स्थिति बिगड़ जायेगी। अर्थ को जितना प्रयोग में लाया जाये उतना विकास होगा। ताले में बंद रखने से विकास रुकता है, दरिद्रता बढ़ती है और यदि तन-मन-धन सब बांट दो तो सारी दरिद्रता समाप्त हो जायेगी।

भगवान् महावीर ने कुछ दिया नहीं किन्तु जो कोई आया उसे अपनाया यही उनकी आय है, व्यय तो है ही नहीं। उन्होंने जड़ का संग्रह नहीं, चेतन का संग्रह किया। उन्होंने जड़ के जोड़ने को नहीं, छोड़ने को अपनाया है, इसीलिए उनकी कीर्ति चारों ओर बढ़ती (फैलती) चली गई। भगवान् महावीर स्वामी ने छोटों को बड़ा बनना सिखाया है इसीलिए वे बड़े हुए हैं।

मंत्र पढ़ने से या रटने से सिद्ध नहीं होता, किन्तु उसके प्रति श्रद्धा समर्पण और एकाग्रता से सिद्ध होता है। जो अपने जीवन में मंत्रों को आत्मसात कर लेता है उसे मंत्र अपने आप सिद्ध हो जाते हैं। मंत्रों का अपना प्रभाव होता है जैसे गारुण मंत्र के प्रयोग से सर्प को आकर उसका विष निकालना पड़ता है, जिसे उसने काटा है।

हम लोगों का जीवन वन है, जी हाँ एक वन है, जिसमें पेड़ तो हैं, किन्तु फल फूल पत्तों से रहित सूखा सा है, जिसकी छाया भी अच्छी नहीं लगती। उस सूखे वन को बसंत हरा भरा बना देता है। जहाँ बसंत न भी हो, वहाँ यदि संत चले जाय तो बसंत आ जाता है। अकाल भी सुकाल बन जाता है। महावीर स्वामी के आने से यही हुआ। उनके जन्म होने से पूर्व ही दरिद्रता समाप्त हो गयी, क्योंकि उनकी दृष्टि आत्महित के साथ-साथ पर कल्याण की भी थी, इसलिए आज भी उनका नाम ले रहे हैं। हम अपने जीवन में ऐसा कार्य करें जो बसंत के समान हो। जो बिना दिये जीना चाहते हैं, वे अपने आपको धोखा दे रहे हैं।

उसने अपने जीवन को ही नहीं समझा जो मात्र लेने की बात जानते है देने की बात सुनना भी नहीं चाहते। कदम स्वार्थ की ओर बढ़ रहे हो परमार्थ की ओर नहीं तो ऐसा करना भी अपने आपको धोखा देना है। द्रव्य संग्रह की ओर वही दृष्टि रखता है जो द्रव्य संग्रह को नहीं देखता (पढ़ता)। **''द्रव्यति इति द्रव्य''** जो द्रवणशील है वह द्रव्य है यह जब द्रव्य का लक्षण समझ में आ जाता है तब द्रव्य संग्रह से दृष्टि हट जाती है।

भगवान् महावीर स्वामी का जीवन काल ७२ वर्ष का था उसे कारिका के समान चार चरणों में बांट दो तो १८-१८ वर्ष एक एक चरण में बैठते हैं ये १८ दोषों के नाश के लिए है। अंतिम चरण में कहा गया कि संतों के वचन परोपकार के लिए होते हैं कहा भी है **त्रिभुवण हिद मसद वक्काणं** अर्थात् तीनों लोकों के हित के लिए संतों के वचन होते हैं।

❑ ❑ ❑

भीतर की डाँट

एक व्यक्ति को डॉक्टर ने कहा कि इस दवाई को दिन में ३ बार पी लेना। उस व्यक्ति ने दवाई पीने के लिए डांट खोली और दवाई निकालना चाही, किन्तु दवाई नहीं निकली। दो-तीन बार प्रयास करने पर भी जब दवाई नहीं निकली, तब उसने सोचा इसमें दवाई नहीं है। इसी बीच दूसरे व्यक्ति ने कहा कि इसमें दवाई है परन्तु एक डांट और खोलना पड़ेगी तब दवाई निकलेगी। दवाई, डांट और शीशी का रंग एक सा होने से उसे ज्ञान नहीं हो रहा था। ज्ञान होते ही उस डांट को निकाल दिया गया और दवाई बाहर आ गई। इसी प्रकार मोक्ष मार्ग में दो प्रकार की डांट होती है एक बाहरी, दूसरी

भीतरी। बाहरी डांट निकालना मात्र पर्याप्त नहीं है, किन्तु भीतरी डांट निकालना भी आवश्यक है। हमारे जीवन में भीतरी डांट राग, द्वेष, मोह, मात्सर्य आदि हैं जो आत्मा के साथ लगी हुई हैं। भीतरी डांट को दिखाया नहीं जा सकता, इसे महसूस करना पड़ता है।

लक्षण प्रत्येक पदार्थ का होता है, जैसे काँटा लगा है उसके कुछ लक्षण हैं, पहला लक्षण जहाँ काँटा लगा है वहाँ दर्द होता है। दूसरा लक्षण काला निशान दिखाई देना। बिना लक्षण के काँटा निकलना असंभव है। इसी प्रकार लक्षण ज्ञात करके यह जानो कि क्या मेरा है क्या पराया है। अभी तक दुनिया का परिचय करते रहे और कहा यह भी मेरा है यह भी मेरा है किन्तु मेरा परिचय में नहीं आया, मेरी अनुभूति में नहीं आया। जब तक भीतरी डांट नहीं निकालते तब तक उसका परिचय, उसकी अनुभूति उसकी प्राप्ति नहीं होती।

बाह्य परिग्रह बाहरी डांट है उसे खोलकर दान, पूजा, भक्ति आदि कर ली इतने मात्र से काम नहीं चलता। डांट बहुत सारी हैं जो निकल नहीं रही हैं, इसी कारण अमृत औषधि को प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं। इन तीर्थ क्षेत्रों पर रह कर अनेकों तपस्वियों ने अपनी भीतरी डांट निकाली है। अतः ये क्षेत्र भीतरी डांट निकालने के लिये होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को वृद्धावस्था में उत्साह नहीं रहता अतः वृद्धावस्था के पूर्व डांट निकालने कमर कस कर सामने आना चाहिए, जब कमर ही टेड़ी हो जाये तब फिर कमर कैसे कस पाओगे।

भगवान् महावीर स्वामी ने कहा, मूर्च्छा परिग्रहा। मूर्छा ही परिग्रह है, जो बहुत खतरनाक है। यदि मूर्छा की अवधि बढ़ जाती है तो वह आपरेशन से भी ज्यादा खतरनाक हो जाती है। वह मृत्यु के लिए कारण हो सकती है। मैं कौन हूँ ? मेरा स्वरूप क्या है ? वह पहचान भी मूर्च्छा के कारण नहीं हो पाती है। जो समझना चाहता है किन्तु प्रयास करने पर भी समझ नहीं पाता तो उसकी गलती नहीं, उसके पूर्व कृत कर्मों का प्रतिफल है।

किसी कार्य को करने के लिए रुचि होना आवश्यक है और क्या करना, कैसे करना, क्यों करना? ये कुछ ३-४ प्रश्न, कार्य करने के पूर्व समझना भी आवश्यक है। जिस क्षेत्र में जो सीनियर है उस क्षेत्र में प्रवेश करने वालों को उस सीनियर से पूछना चाहिए। जिसे उस क्षेत्र का ज्ञान ही नहीं वह दूसरों को कैसे रास्ता बता सकता है। इसीलिए जिसने डांट निकालने का प्रयास ही नहीं किया, उससे डांट निकालने की सलाह नहीं लेना चाहिए।

भूख डालने की बात नहीं भूख लगने की बात होती है। यदि मंदाग्नि है तो भोजन और भोजन की प्रशंसा व्यर्थ जाती है। आज भोजन पचाने के लिए दवाई, भूख बढ़ाने के लिए दवाई, शौच जाने के लिए दवाई, नींद लाने के लिए दवाई। इस प्रकार भोजन कम दवाई ज्यादा ले रहे है ये लक्षण

अपव्यय के हैं। पहले जो ज्यादा भोजन किया उसी के करने से ही शरीर निकम्मा हो गया है। शरीर निकम्मा हो जाने से ही दवाई खा रहे हैं। यदि दवाई ही खुराक बन जाये तो छूटना मुश्किल होता है।

जैसे कैपसूल के भीतर दवाई होती है और ऊपर से डांट होती है। कैपसूल की दवाई शीघ्र काम करती है क्योंकि उसके पास डांट होती है जिससे बाहरी प्रभाव उसके ऊपर नहीं पड़ता। कैपसूल पेट में जाते ही ऊपर का केप घुल जाता है और दवाई बाहर आती है। तो अपना प्रभाव शरीर पर एटम बम्ब के समान छोड़ता है। यदि उसका केप (डांट) ही न गले तो दवाई काम नहीं कर सकती। स्वाध्याय भी एक कैपसूल है। जो कुंद कुंद के समयसार रूपी कैपसूल खा रहे फिर भी काम नहीं कर रहा, क्योंकि समयसार का कैपसूल घुल नहीं रहा और दवाई ज्यों की त्यों रह रही है इसीलिए अब उन्हें रत्नकरण्डक श्रावकाचार का चूर्ण ही पर्याप्त है। उसी से पेट साफ होगा, भूख बढ़ेगी। कैपसूल तो औषधि नहीं किन्तु दवाई रखने का एक केप (साधना) है। आज दवाई की एक्सपायर डेट होती है इसी प्रकार धर्म कर्म की भी एक अवधि होती है इसीलिये आज धर्म की ऐसी टेबलेट बनाना चाहिए जिससे दूसरों पर एवं स्वयं पर अच्छा प्रभाव पड़े।

धार्मिक क्षेत्र में मात्र बाहरी परिणाम नहीं भीतरी परिणाम (रिजल्ट) भी देखना चाहिए। आज आर्टिफिशियल धर्म हो रहा है जैसे नेलपॉलिस, लिपिस्टिक लगाकर आर्टिफिशियल ओठ और नाखून दिखाना चाहते है। इसे मैं मात्र प्रदर्शन मानता हूँ। उत्साह भीतर से होना चाहिए एक के उत्साहित होने पर दूसरे को उत्साह आ सकता है। भीतर से उत्साह होने पर भूख प्यास में भी तेज टपकता रहता है। यदि धर्मात्मा खाये पिये फिर भी टी-बी- जैसे मरीज बने रहे तो देखने वालों पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? हमारे भगवान् कोई श्रृंगार नहीं करते फिर भी शरीर पर तेज बना रहता है, वीतरागता टपकती रहती है।

राग द्वेष मद मत्सर कम करने से एक अलग तृप्ति होगी। एक अलग अनुभव होगा, एक अलग आनंद आयेगा। जो क्रोधादि कषाय को पी लेगा उसकी शक्ति बढ़ जायेगी और जो करेगा उसे वह क्रोधादि कषाय पी जायेगी, उसकी शक्ति समाप्त हो जायेगी।

नील कंठ का नाम शिव कहा क्योंकि वो विष को भी पचा लेता है। यदि कषाय शांत हो और मन प्रसन्न हो तो विष खाने पर भी पेट में जाकर अमृत बन सकता है और यदि कषाय काम कर रही है तो अमृत भी विष का काम करता है यहाँ कषाय का अर्थ उद्विग्नता है। उद्विग्नता व्यक्ति सदा भयभीत रहता है। जो चीज हमारे लिए हानिकारक है उसका ज्ञान पहले आवश्यक है। जैसे औषधि विपरीत होती चली जा रही है उसी प्रकार आज धर्म भी विपरीत होता चला जा रहा है। आज ऐसी धारणा बनती चली जा रही है कि अर्थ के द्वारा धर्म होता है इसीलिए धर्म पर कम, अर्थ पर ज्यादा विश्वास हो रहा है और धर्म को कम, अर्थ को ज्यादा समय दिया जा रहा है।

डांट लगाने से सदा, अपयश और विनाश।
नहीं डांट खाना बुरा, सद्गुण होत विकास॥
शीशी शिष्य समान है, डांट चाहिए दोय।
दोनों की बिन डांट के, कभी न कीमत होय॥
(विद्या स्तुतिशतक से)

❑ ❑ ❑

पूज्य बड़ा या पूजक

चौबीस तीर्थंकर हुए। अंतिम तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी हुए। उनके तीर्थकाल से पूर्व भगवान् पार्श्वनाथ। पार्श्वनाथ का एक अपना अलग ही स्थान है जो हम लोगों के लिये बहुत प्रेरणा -दायी है, धर्म हमेशा दया की मुख्यता को लेकर है। दया ही धर्म का मूल है उसकी शाखायें और उपशाखाएँ बहुत लम्बी चौड़ी हैं। यदि हम धर्म मात्र की चर्चा करते रहते है तो जीवन सार हीन माना जायेगा। दया के बिना पैसे के बल पर जो धर्म का प्रचार प्रसार करते हैं उसका आगे जाकर मूल ही सिद्ध नहीं होता है।

आज दो तीन वर्ष में ही हाथों हाथ फल चाहते हैं इसी कारण कलम पद्धति आ गई। कलम लेखनी को भी कहते हैं अलग-अलग जाति के पेड़ को मिलाकर एक नया कलमी पेड़ उत्पन्न किया जाता है इस प्रकार के विकास को देखते हुए किसी व्यंग्यकार ने लिखा कि अब कलमी बच्चे भी मिलेंगे। यदि यह हो गया तो न मूल मिलेगा न चूल, न मूल ना संस्कार।

पार्श्वनाथ रथ में बैठकर घूमने गये थे। किसी कारणवश रथ से उतरे उस समय वे मुनि नहीं थे, मुनि रथ में नहीं बैठते, वे तो सदा ज्ञानरथ में बैठते हैं। पार्श्वनाथ दयामय रथ में बैठते थे इसीलिये उन्होंने कहा जिस लकड़ी को तुम जला रहे हो उसमें जीव है। जिसमें जीव हो अथवा जीव होने की योग्यता हो उसे जलाया नहीं जाता। जैसे आप चावल चढ़ाते हैं क्योंकि वे जीवन्त नहीं हैं और आगे भी जीवंत होने की योग्यता नहीं है।

जिसमें दया को स्थान नहीं वह धर्म नहीं। दयाधर्म के अभाव में जो संसार में भटक रहे हैं उन्हें रास्ता संतों को ही बताना होता है। दया धर्म का प्रचार मात्र शब्दों से होता है ऐसा एकान्त नियम नहीं।

मोक्ष मार्ग विवेक के साथ ही प्रारंभ होता है संसारी प्राणी को भले ही दिव्य ज्ञान नहीं है परन्तु उसके पास विवेक है उसे रखना चाहिए उसी विवेक से दिव्य ज्ञान की प्राप्ति होगी, जिस धर्म में दुनिया के जानने की क्षमता है उस धर्म के माध्यम से दिव्य ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। पोथी ज्ञान नहीं किन्तु योनि स्थान (जीवोत्पत्ति) कहाँ-कहाँ किस रूप में है यह विवेक जागृत होना ज्ञान है।

नमः सिद्धेभ्यः तीर्थंकर कहते हैं ओम् नहीं कहते हैं। फिर भी सुनते हैं नाग नागिन को णमोकार मंत्र सुनाया पार्श्वनाथ ने। णमोकार मंत्र का अर्थ होता है नमस्कार मंत्र अतः नमः सिद्धेभ्यः किया, अर्थात् सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार किया। पंच नमस्कार की बात नहीं है।

दया का रहस्य खुल जाता है तब दयावान देवों को पीड़ा हो जाती है कि मैंने दया का ऐसा कार्य नहीं किया। दया का रूप द्रव्य, क्षेत्र काल भाव के अनुसार अलग-अलग हुआ करता है। दया का पाठ तिर्यंच ने लिया जिससे वह तिर्यंच देव हुआ, और फिर देवाधिदेव को देखकर अनुग्रह करने लगा। दया धर्म के प्रति जो समर्पित हो जाता है वह धर्मात्मा कहलाता है। दया का प्ररूपण केवली ही कर सकते हैं क्योंकि वही दया के विराट रूप हैं। दयामय कार्य को करने वाले प्रभू ने असंख्यात जीवों पर दया की। इतिहास उदाहरणों से भरा पड़ा है।

धर्म कर्त्तव्यपरक है कर्त्तापरक नहीं। दया धर्म के पालन से ही उस दयावान की पूजा होती है दयामय धर्म जब जीवन में उतर जाता है तो हम तर जाते हैं और दुनिया को प्रकाश मिल जाता है। प्रकाश दीपक देता है किन्तु जो प्रकाशित करता है वही दीपक कहलाता है धर्मात्मा के पास बैठने से अथवा धर्म की बात सुनने मात्र से धर्मात्मा नहीं होते किन्तु जीवन में दयामय धर्म उतारने से धर्मात्मा होते हैं।

धरणेन्द्र पद्मावती पूजक हैं और पार्श्वनाथ भगवान् पूज्य हैं। पूज्य मुख्य होता है वही बड़ा होता है अतः भगवान् मुख्य हैं उन्हें ही बड़ा होना चाहिए। जैसे फोटो लेते समय मुख्य की ओर फोकस करते हैं। पूजक के संविधान हो सकते हैं, विधान (पूजन) नहीं। जैसे गाड़ी (कार) में तीन व्यक्ति फ्रंट में बैठते हैं तो उन तीन में एक ड्राइवर भी होता है उसके गले में माला नहीं डालते। देवाधिदेव के चरणों में देव झाड़ू लगाते हैं वे कभी यह नहीं कहते कि तुम भगवान् की पूजा छोड़कर हमारी पूजा करो। वे स्वयं भगवान् की पूजा करते हैं।

जिस कार्यक्रम में मिनिस्टर कलेक्टर पुलिस आदि आ जाते हैं उसमें सामान्य लोगों की भीड़ अपने आप लग जाती है उसी प्रकार देवाधिदेव की जब पूजा करते हैं तब सामान्य देव अपने आप आ जाते हैं। आप लोगों को वीतरागता का ज्ञान न होने से और स्नेह, लोभ, आशा और भय के कारण देवी देवताओं की पूजा करने लगते हैं। भगवान् न देते हैं न लेते हैं किन्तु सामान्य चार निकाय के देव देते भी हैं, और लेते भी हैं और धक्का भी देते हैं। कहीं धक्का न दे दे, नहीं तो क्या होगा इसी डर के कारण आप पूजते हैं। देवों की पूजा नहीं परन्तु पद के अनुसार आदर तो देना ही चाहिए।

सेवक हमेशा पीछे ही रहता है जब कोई गड़बड़ी होती है तो रक्षक बनकर आगे आ जाता है। आप धर्मात्मा हैं भगवान् के दास हैं और देव दासानुदास हैं अतः देव तो आयेंगे ही फिर उनसे डरना

नहीं चाहिए। दयाधर्म भाव प्रधान है यदि भाव सहित भगवान् को नमस्कार किया जाता है तो भय संकट बाधायें दूर हो जाती हैं। यदि हम सम्यग्ज्ञान मय क्रियायें करते हैं तो भगवान् का बहुमान और अधिक हो जाता है। जिसको जो पद मिला उसको उसी रूप में मानना उसी के अनुरूप पूजना सम्यग्ज्ञान का कार्य है।

❑ ❑ ❑

दीक्षा समारोह

(आज सात ब्रह्मचारियों की क्षुल्लक दीक्षायें हुईं एवं अक्षय तृतीया पर्व मनाया गया)

दंसणवय सामाइय, पोसह सचित्तराइभत्ते य।
बंभाऽरंभ परिग्रह अणुमण मुद्दिट्ठ देसविरदो य॥

यह अति प्राचीन गाथा है जिसमें दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषध, सचित्त त्याग, रात्रि भुक्ति त्याग, ब्रह्मचर्य, आरंभत्याग, परिग्रहत्याग, अनुमति त्याग और उद्दिष्ट त्याग, इन ग्यारह प्रतिमाओं का कथन किया है।

दर्शन प्रतिमा का अर्थ सच्चे देव शास्त्र गुरु के प्रति निष्ठा। जिसकी दर्शन प्रतिमा उज्ज्वल होगी उसका उत्साह भंग नहीं होता और चरित्र में उत्तरोत्तर वृद्धि होगी।

दूसरी व्रत प्रतिमा है इस व्रत प्रतिमा में तीन मकार एवं पाँच उदुम्बर फलों (बड़, ऊमर, कठूमर, पीपल, पाकर का त्याग) पाँच अणु व्रत (अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत एवं परिग्रहपरिमाणाणुव्रत), चार शिक्षाव्रत, और तीन गुणव्रत होते हैं जिनका पालन करना होता है। इसके अन्तर्गत एक सल्लेखना व्रत भी रखा गया है जो आज के युग में बहुत कठिन हो रहा है अब अंत समय में अस्पताल की शरण में चले जाते हैं जो ठीक नहीं। यह सल्लेखना व्रत परीक्षा के समान है जिन्होंने घर छोड़ दिया हो उनके इसका पालन हो जाता है।

तीसरी प्रतिमा है सामायिक प्रतिमा, जिसका महत्त्व आज दिन-प्रतिदिन कम होता जा रहा है। मुनियों के शुद्धोपयोग का स्वाद सामायिक के काल में ही आता है वह भी प्रमाद छोड़कर करने से, मात्र खाना पूर्ति करने से किसी को इसका स्वाद नहीं आ सकता है। सामायिक प्रतिमा में आरंभ आदि समस्त सावद्य का त्याग रहता है, अत: गाड़ी में चलने वालों के सामायिक प्रतिमा व्रत का पालन नहीं होता।

चौथी प्रोषधोपवास प्रतिमा है जो दिन में एक बार ही आहार लेते हैं उनका प्रतिदिन प्रोषध चलता है, अत: जब कभी उपवास करेंगे तो प्रोषधोपवास ही होता है। मुनियों का जब उपवास हो तो नियम से प्रोषधोपवास ही होता है।

पांचवी सचित्त त्याग प्रतिमा है इस प्रतिमा का धारी जल और भोजन सचित्त ग्रहण नहीं करता अचित्त (प्रासुक) ही ग्रहण करता है। प्रासुक में चलित रस न हो, किन्तु रस स्वाद परिवर्तित कर लेता है।

छठवीं प्रतिमा है रात्रिभुक्ति त्याग और सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा है। सातवीं प्रतिमाधारी घर नहीं छोड़ता किन्तु घरवाली को अवश्य छोड़ देता है।

आठवीं प्रतिमा आरंभ त्याग प्रतिमा है इस प्रतिमा में घर गृहस्थी के समस्त आरंभ कार्य त्याग कर देता है, नौवीं परिग्रह त्याग प्रतिमा है यह प्रतिमाधारी आरंभ आदि क्रियाओं का त्याग करने के बाद जो आवश्यकतानुसार परिग्रह रख लिया है उसी से उदर पूर्ति करता है। शेष परिग्रह न रखता है न अनुमति देता है। दसवीं अनुमति त्याग प्रतिमा है, यह प्रतिमाधारी आरंभ परिग्रह आदि पाप क्रियाओं को स्वयं तो करता ही नहीं, उसकी अनुमति (अनुमोदना) भी नहीं देता है, भले ही घर में रहे घर का त्याग न करे। ग्यारहवीं उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा है। दसवीं प्रतिमा के बाद घर का भी त्याग हो जाता है। भिक्षा वृत्ति से भोजन आहार ग्रहण करता है। थाली में भोजन करने से भी भिक्षा वृत्ति नहीं पलती है। भिक्षा वृत्ति से आहार ग्रहण नहीं करने से जिह्वा इन्द्रिय पर विजय प्राप्त नहीं होती है।

बंधुओं चरित्र अपने आप आता नहीं ग्रहण किया जाता है जो मानते हैं कि चरित्र अपने आप आ जायेगा उसका जीवन यूं ही चला जायेगा परन्तु चरित्र नहीं आयेगा। साधू (क्षुल्लक) बनाना दीक्षा देना मात्र निमित्त होता, साधू बनाना नहीं बनता है। भाव लिंग को प्राप्त करना है। भाव लिंगी मुनि अनंतबार नहीं बनता किन्तु संयमा संयम और उपशम सम्यक्त्व को असंख्यात बार प्राप्त कर सकते हैं।

आगम में दो पद बताये है एक सागार दूसरा अनगार। क्षुल्लक सागार में आते हैं। इनके पास जो पिच्छिका कमंडलु शास्त्र है वह उपकरण में आते हैं किन्तु लंगोट दुपट्टा और कटोरा उपकरण नहीं वह तो परिग्रह है। उसे भी छोड़ना है जो लौकिक सम्बन्ध थे टेलीफोन करना रुपये पैसे रखना आदि अब नहीं हो सकता। भगवान् महावीर की इस परम्परा में आचार्य श्री शांतिसागरजी, आचार्य श्री वीर सागर जी, आचार्य श्री शिवसागर जी, आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज हुए उन्हीं की परम्परा में, मैं आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज का शिष्य (आचार्य विद्यासागर जी) हूँ इसी परम्परा में आज सात क्षुल्लक दीक्षित हुए हैं।

(१) क्षुल्लक प्रज्ञासागरजी पूर्वनाम विनोदकुमारजी गढ़ाकोटा।

(२) क्षुल्लक प्रबुद्धसागरजी पूर्वनाम प्रदीपकुमारजी, जबलपुर।

(३) क्षुल्लक प्रशस्त सागर जी पूर्वनाम स्वतंत्रकुमारजी, सनावद।

(४) क्षुल्लक प्रवचनसागरजी पूर्वनाम चंद्रशेखरजी, बेगमगंज।

(५) क्षुल्लक पुण्यसागरजी पूर्वनाम शांतिनाथ, लालाबड़ी (महाराष्ट्र)।

(६) क्षुल्लक प्रभावसागरजी पूर्वनाम मनोजकुमारजी, शाहगढ़।

(७) क्षुल्लक पायसागरजी पूर्वनाम पायप्पाजी (महाराष्ट्र)।

❑ ❑ ❑

दान का शुभारंभ श्रेयांस से

किसान अपनी फसल काटकर खलिहान में लाया फिर दांये करने लगा, पहले ट्रेक्टर नहीं थे इसीलिये बैलों से दांये की जाती थी। किसान ने बैलों को मुशिका लगा लिया। जो मुंह को सींदे (बंद कर) उसका नाम मुशिका है। धान्य पशु की खुराक नहीं यदि खा भी ले तो पचता नहीं। धान्य मानव की खुराक है और घास पशु की खुराक है किन्तु आज मनुष्य घास भी खाने लगा और धान्य भी।

अपने किये गये कर्म का फल तिल का ताड़, सरसों का पहाड़ बनकर आता है। काल का सबसे छोटा प्रमाण एक समय है उसमें किये गये कर्म से ७० कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण की अवधि बनकर कर्म आते हैं। कर्म यदि थोड़ा सा ब्रेक लगा देता है, तो क्या क्या हो सकता है इसका प्रत्यक्ष प्रमाण आदिनाथ के जीवन की घटना है। उन्होंने पूर्व जीवन में ६ घड़ी के लिये बैल के मुख में मुशिका लगाया था जिसके फल स्वरूप ६ माह तक आहार का अलाभ रूप अंतराय कर्म बनकर सामने आया। श्रेयांसि बहुविघ्नानी। श्रेष्ठ कार्यों में विघ्न होते हैं।

राजा श्रेयांस महापुरुष नहीं थे किन्तु महापुरुष से बढ़कर माने जाते हैं क्योंकि दान की परम्परा आदिकाल में उन्हीं ने चलाई थी, जिस समय राजा श्रेयांस के यहाँ आहार हुआ तो रत्नों की वृष्टि हुई होगी उसे देखने भरत चक्रवर्ती भी गया होगा, किन्तु चक्रवर्ती के हृदय में जरा भी मात्सर्य भाव नहीं आया। पूर्व भवों में देशना के संस्कार वर्तमान में कार्य कर सकते हैं जैसे राजा श्रेयांस के किये।

आहार संज्ञा में पीड़ा भले ही न हो किन्तु आकुलता तो रहती ही है, आकुलता साध्य और असाध्य भेद से दो प्रकार की होती है। आदिनाथ ने दीक्षा लेने के ६ माह बाद आहार चर्या की। यदि ६, ६ माह में एक बार आहार को उठे तो हजार वर्ष में दो हजार बार आहार तो किया होगा। पेट ने ऐसा काम किया कि बड़ों-बड़ों को भी क्यू (लाइन) में खड़ा कर दिया।

केवली के केवलज्ञान और केवलदर्शन ये भी पराश्रित हैं क्योंकि बिना वीर्य (शक्ति) के यह अपना कार्य नहीं कर सकते हैं अनंत शक्ति आवश्यक है ज्ञान दर्शन आदि को कार्य करने के लिये। जैसे करंट है किन्तु वायर नहीं तो बल्व नहीं जल सकता। बल्व नहीं हो और वायर लगा हो तो भी प्रकाश नहीं मिल सकता, यदि बल्व कम वाट का लगाया हो तो प्रकाश थोड़ा मिलेगा जिससे पूरा कमरा भी प्रकाशित नहीं हो सकता।

किसी कार्य के सम्पन्न करने के लिये यथायोग्य विधि आवश्यक है कर्म काटने के लिये भी विधि है। यदि कर्म काटने की विधि ज्ञात है तो कट सकते है अन्यथा नहीं। कर्म बंधने के बाद बिना भोगे नहीं कट सकता, वह किसी न किसी रूप में फल देकर ही जायेगा, चाहे स्वमुख से फल दे या पर मुख से फल दे। इसीलिए कर्म बांधते समय ध्यान रखो। मुनि बनने के बाद १० वें गुणस्थान तक अंतराय कर्म का बंध और १२ वें गुणस्थान तक उदय चलता रहता है। भाव श्रद्धा का फल है अतः देवशास्त्र गुरु के ऊपर श्रद्धा करके उनके अनुसार बताये गये मार्ग पर चलो। जिससे उत्तरोत्तर कर्म निर्जरा बढ़ती चली जायेगी, कर्म कटते चले जायेंगे।

जीवन मुक्ति सर्वप्रथम आदिनाथ भगवान् को मिली बाद में अन्य साधकों को। केवल ज्ञान प्राप्त हो जाना जीवन मुक्ति है, परन्तु आदिनाथ भगवान् से पूर्व कुछ साधु मोक्ष चले गये। वह वैसा हुआ जैसे भोजन के लिए सब एक साथ बैठे हों परन्तु पेट सबका अलग-अलग समय में भरता है। पेट भरते चले जाने पर उठते चले जाते हैं।

❑ ❑ ❑

आत्मा को छानने का छन्ना

आज रविवार है जो आपको बहुत अच्छा लगता है। रवि का अपना काम है जगत को प्रकाश देना। रवि के समान ही महान् व्यक्तियों का काम हुआ करता है जो युगों-युगों से चला आ रहा है। जीवन क्या है, इसको बताने वाला ज्ञान है, साहित्य और शब्द है जो प्रकाश का काम करता है। शब्द जीव है किन्तु यह जीव के बिना उत्पन्न नहीं होता शब्दों को आज तक विज्ञान ने पैदा नहीं किया। शब्द का जीवन जीव के बिना प्रारंभ नहीं होता। उसे भाव प्रदान करने का श्रेय जीव को ही है। शब्दों से हम समझ जाते हैं कि हमारा स्वभाव क्या है, सुख-दुख क्या है, हमारा लक्ष्य क्या है इत्यादि।

मूर्ति खंडित हो जाये तो उसका दूसरा निर्माण हो सकता है किन्तु एक बार लिखा साहित्य खराब हो जाने पर दुबारा लिखा जाना कठिन है। अपने आपको पहचानने के लिये सारा परिश्रम किया जाता है। जो अपना परिचय दूसरों के माध्यम से देते हैं उसे मैं उधार समझता हूँ। जिस प्रकार साहित्य की समीक्षा होती है उसी प्रकार आत्मा की भी समीक्षा होना चाहिए, लेकिन वह बिना आत्म ज्ञान के नहीं हो सकती है।

चार ज्ञान गूंगे हैं केवल एक ज्ञान बोलता है, वह है श्रुत ज्ञान। जो बोलता है वह बोलने वाले का तो कल्याण करा ही देता है, किन्तु दूसरे का भी करा देता है। ज्ञान कल्याण के लिये तब हो सकता है जब हम उस पथ पर चलने लगते हैं। जिन भगवान् की मुख मुद्रा के माध्यम से मोक्षमार्ग पर आरूढ़ हो जाते हैं, अतः मतिज्ञान भी स्व (आत्म) कल्याण के लिये कार्यकारी है। जिन लिंग के माध्यम से

जिन मार्ग एवं सम्यग्ज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं। श्रुतज्ञान के माध्यम से युग परिवर्तित कर सकते हैं बस हमारे पास योग्यता होना चाहिए, इसके माध्यम से लाखों व्यक्तियों को एक साथ उपदेश दिया जा सकता है।

धर्म हमारे भीतर है बस अधर्म को छांट कर भगाने की आवश्यकता है। स्वरूप हमारे भीतर है बस कुरूप को छांटकर बाहर फेंकने की आवश्यकता है। अपने इन दोषों का मूल अपना अज्ञान ही है। अज्ञान का अर्थ उल्टा ज्ञान होता है जो विभाव रूप होता है अभाव रूप नहीं।

श्रुतज्ञान के माध्यम से ही हम अपने आप को देख सकते हैं जैसे दर्पण में देखते हैं किन्तु पीछे देखो तो मात्र सिंदूर दिखता है। अपने आप के चेहरे को दर्पण में देखना हो तो सिंदूर की ओर नहीं देखना यदि हम जिन लिंग प्राप्त कर लेते हैं तो उपदेश देने की कोई आवश्यकता नहीं है मात्र दर्शन से ही दुनिया बोध प्राप्त कर लेगी।

दुनिया को नहीं अपने आप को छानो, किन्तु अभी तक दुनिया को छाना। अपने आप को नहीं छाना, दुनिया को छानते छानते छन्ने वर्कशाप के क्लीनर के वस्त्र के समान हो गये हैं किन्तु छान नहीं पाये, श्रुत ज्ञान छन्ने का काम करता है उससे अपने आप को छानो। छन्ने को हमेशा साफ रखना आवश्यक है।

श्रुतज्ञान का अर्थ आगम होता है। स्व और पर तत्त्व जिसके द्वारा अभिगम्य (जाना जाता) हे वह आगम कहलाता है। आपा धापी में स्व-पर का ज्ञान समाप्त हो जाता है। आज पढ़-अपढ़ दोनों इसी में लगे हैं यदि इस आपा धापी में संन्यासी भी लग जायें तो आपा को भूल जायेंगे। गर्मी का समय था, सुबह की बात थी, रास्ते में नीम के वृक्षों की पंक्ति लगी थी तब एक दोहा बना-

खंडन मंडन में लगा, लिया न निज का स्वाद।
फूल नीम का महकता, किन्तु कटुक ही स्वाद॥

नीम का फूल महकता बहुत है, लेकिन चखोगे तो कटुक ही लगेगा। इसी प्रकार जो श्रुत ज्ञान खंडन मंडन में लगा हो, तो वह नीम के पुष्प के समान कटुक ही होता है। जो श्रुत आत्मा के स्वाद लेने में लगा हो वही सही है, उसी से मीठा स्वाद आता है। आत्म तत्त्व की प्रधानता के बिना तत्त्व ज्ञान नीम के समान कटुक ही होता है। आत्म ज्ञान होना और आत्म संवेदन होना दोनों अलग-अलग हैं। जो आत्मा का स्वाद नहीं ले रहा है वह आत्म ज्ञान नहीं है भले ही श्रुत केवली क्यों न हो। जहाँ हार-जीत, खंडन मंडन की बात हो वहाँ कुछ हाथ नहीं लगता। यदि हम ज्ञान के माध्यम से स्वमुखी हो जायें तो आनंद का पार नहीं रहता। जिस समय आत्मा का स्वाद आ जाता है, उस समय वर्णन करने की इच्छा ही नहीं होती है।

घड़ी वही मूल्यवान है जिस घड़ी में हम आत्म वैभव की ओर दृष्टिपात करते हैं। हम पर के वैभव में लगे हैं आत्म वैभव में नहीं। आनंद तो आत्म वैभव में आता है दूसरों के वैभव को देखने में नहीं। पर ज्ञान के साथ ''आत्म पधाने'' पद भी नहीं भूलना चाहिए।

योग्यता का नाम भव्यता है। जो संसार की वस्तुओं को प्राप्त करने की योग्यता रखते हैं वे भव्य हैं और जो अपने को जानकर उसे प्राप्त करने की योग्यता रखते हैं वे भी भव्य हैं इस दृष्टि से सभी भव्य हैं। जब हम अपनी आत्मा से बाहर आते हैं तो बहिरात्मा हो जाते हैं। वह बहिरात्मा ही दूसरे को बहिरात्मा कह सकता है।

दुनिया डरती है उस व्यक्ति से जो दुनिया की ओर देखता है किन्तु जो अपनी ओर देखता है उससे कोई भी नहीं डरता। इसीलिये भगवान् बाहुबली के शरीर में पक्षियों ने घोंसले बना लिये, सिंह आकर बैठ गये, जीव जंतुओं ने वामी बना ली। मन के अधीन मानव है इसी मानव से प्रदूषण फैलता है पशु-पक्षियों से नहीं। पशु पक्षियों का बोलना संगीत का काम करता है किन्तु मानव की शब्द ध्वनियों से विप्लव हो जाता है, प्रदूषण फैलता है। शब्दों के माध्यम से यदि शांति फैलायी जा सकती है, तो विप्लव भी फैलता है। सिंह हमारा बैरी नहीं किन्तु हमारे शब्द सुनते ही उसका उपयोग उस ओर चला जाता है और उसे लगता है यह हमारा दुश्मन है। शब्दों में शक्ति होती है। एक ही शब्द, योजनों तक तेजो लेश्या का काम कर सकता है। शब्द शक्ति एक है, प्रयोग अच्छाई और बुराई के रूप में दो प्रकार से किये जाते हैं। यदि हम सात्विक मन से दूसरे के लिये अच्छे शब्दों में कुछ कह देते हैं तो उद्धार हो जाता है और यदि बुरे मन से कुछ कहते हैं तो विप्लव हो जाता है। श्रुत दो प्रकार का होता है एक स्वार्थ दूसरा परार्थ। दुनिया में अर्थादि के लिये परिश्रम सभी करते हैं किन्तु जो विद्वान करते हैं वह सभी के लिये होता है। संस्था के माध्यम से साहित्य प्रकाशन तो हो सकता है किन्तु यदि आँखों में ज्योति ही न हो तो, कहना ही पड़ेगा की प्रकाश न तो प्रकाशन से लाभ क्या ?

धर्म की यहाँ गुजरात में भूख प्यास है किन्तु दाल के पानी के रूप में। यहाँ रत्नकरण्डक श्रावकाचार ही पर्याप्त है न्याय शास्त्ररूपी हलुआ नहीं, आप भी जिनवाणी के रहस्यों को समझते हुए मोक्षमार्ग पर अग्रसर हों बस यही गुरु ज्ञानसागरजी महाराज को स्मरण करते हुए कहना चाहता हूँ।

❑ ❑ ❑

अहिंसा धर्म का महत्त्व

धर्म के स्वरूप के विषय में हम परिचित होते हुए भी अपरिचित से रह जाते हैं क्योंकि धर्म अहिंसा पर टिका है इसी बात को हम भूल जाते हैं। हम दया धर्म को उसके पास देख सकते हैं जिसके जीवन में अहिंसा है। जिस क्षेत्र में हिंसा रुक गई वहाँ अहिंसा है। हिंसा का रुकना ही अहिंसा है। हिंसा

का अभाव ही अहिंसा का अवतार है।

सबसे ज्यादा हिंसा संज्ञी पंचेन्द्रिय करता है। जैसे जैसे इन्द्रियाँ घटती चली जाती हैं वैसे वैसे हिंसा भी घटती चली जाती है। सबसे कम हिंसा एकेन्द्रियों से होती है। जहाँ पांच इंद्रियाँ होती हैं वहीं पंचायत बैठती है। पंचेन्द्रिय यदि सबसे ज्यादा हिंसा कर सकता है तो अहिंसा का पालन भी अच्छे ढंग से कर सकता है।

आज देश को नहीं पूरे विश्व को शान्ति और उत्थान के लिये अहिंसा की परम आवश्यकता है। पतन का कारण रुक जाये तो उन्नति हो सकती है। पतंग होती है वह कोई भी बना सकता है किन्तु पतंग में डोर बांधना विज्ञान की बात है। बंदर की पूँछ की तरह पतंग की पूँछ होती है पतंग को उड़ाने के पूर्व बैलेन्स बनाने की बड़ी आवश्यकता है उसी प्रकार अहिंसा धर्म के लिये बैलेन्स परम आवश्यक है। हिंसा जितनी कम होती है, सुख शांति का अनुभव उतना अधिक होता है।

अहिंसा धर्म की बात जैसे आप सुनने आये हैं, यहाँ धर्मसभा लगी है वैसे पूर्व में भी लगती थी। संत की वाणी खिर रही थी उसे एक व्यक्ति खड़ा खड़ा सुन रहा था। सभा समाप्त हुई सभी ने कुछ न कुछ नियम लिये, उस व्यक्ति ने कुछ भी नहीं लिया। संत ने उसे बुलाया। जैसे ग्राहक को पटाने की कला आपके पास होती है वैसे ही साधु के पास भी होती है। उसने कहा आपने जो कहा उससे विपरीत काम ही मेरा है। मेरा धंधा ही मछली मारना है फिर मैं कैसे हिंसा का त्याग करूँ ? सूर्य तो एकाध दिन विश्राम ले सकता है लेकिन मैं विश्राम नहीं ले सकता साधू ने कहा ठीक है तुम एक काम करना, जो जाल में पहली मछली आये उसे छोड़ देना। उसने कहा यह तो सरल है। साधु महाराज ने कहा संकल्प पक्का होना चाहिए उसने कहा हाँ संकल्प पक्का है।

संकल्प ले कर गया। जाल उठाया पानी में डाला पहली मछली आयी उसे निशान लगाकर छोड़ दिया। दूसरी बार जाल डाला, वही मछली आयी, दूसरी जगह तीसरी बार जाल डाला फिर वही मछली आयी इस प्रकार बार-बार वही मछली आई और वह छोड़ता गया। यदि आपसे कहा जाय कि जो पहला ग्राहक आये उसकी आमदनी (लाभ) मंदिर को दान दे देना तो आप नहीं कर सकते परन्तु वह प्रतिज्ञा में दृढ़ था। शाम हो गयी वह सोचता है कि गृहमंत्री (पत्नि) बहुत तेज है घर में प्रवेश नहीं देगी। घर गया वही हुआ रात भर बाहर ही पड़ा रहा रात्रि में सर्प ने काट लिया। वह मरकर देव हुआ। अहिंसा धर्म का यही तो महत्त्व है। छोटा सा नियम भी आत्म कल्याण के लिए कारण बन सकता है।

व्रत (प्रतिज्ञा) कभी छोटा नहीं होता व्रत तो व्रत होता है, जिसका फल अपरंपार और अपूर्व होता है। संतों की वाणी से ही आत्मोन्नति का प्रारंभ हुआ करता है। जब तक अहिंसा धर्म में आस्था और आत्मा की भावना नहीं होगी तब तक उन्नति नहीं होगी। धर्म की शुरुआत तब होती है जब लिये

गये संकल्प के प्रति दृढ़ता और आस्था होती है। आस्था को मजबूत प्रतिज्ञा के माध्यम से ही बनाया जा सकता है। धर्म की शुरुआत छोटे बड़े से नहीं किन्तु विचारों की दृढ़ता से होती है।

जो आस्था और प्रतिज्ञा में कमजोर होता है वह कभी आत्मोन्नति नहीं कर सकता है। धारणा जिसकी पक्की होती है वह मंजिल प्राप्त कर लेता है। जब ज्ञान हो जाता है कि शरीराश्रित जीवन नश्वर है तब आत्मा की बात होती है और शरीर गौण हो जाता है।

आज अहिंसा को रोकने की आवश्यकता होते हुए भी इसे रोकने के लिये कोई कटिबद्ध नहीं हो रहे हैं। जो हिंसा के माध्यम से धन का संग्रह होता है वह देश, समाज, परिवार एवं स्वयं के लिए घातक होगा। आज धर्म और समाज के प्रति बहुमान नहीं रहा इसी कारण अलकबीर जैसे कत्लखाने का डायरेक्टर जैन बन गया। पहले ऐसे हिंसक व्यापार को नहीं करते थे।

जो पूर्व में इतने बड़े बड़े तीर्थक्षेत्र बनाये गये वे हिंसा के कार्य करके नहीं बनाये गये किन्तु जो न्याय नीति और दया का पालन करते हुए द्रव्य संग्रह किया, उसके माध्यम से बने हैं, तभी इन क्षेत्रों पर आते ही वीतराग मय भाव होते हैं। कोई भी कर्म करो, अहिंसा को दृष्टि में रखकर करो। यदि अहिंसा धर्म रहेगा तो स्वयं उन्नत होंगे और देश भी उन्नत होगा। भारत ही ऐसा देश है जो अपने धर्म कर्म को बेचने तैयार है। दया की बात अब शास्त्रों तक ही रह गई है तभी तो भारत से आज मांस निर्यात किया जा रहा है।

प्रशम, संवेग, अनुकंपा और आस्तिक्य गुण सम्यग्दृष्टि रखता है, अतः ऐसे महान् दया के कार्य सम्यग्दृष्टि ही कर सकता है मिथ्या दृष्टि नहीं।

आज जन जागरण की आवश्यकता है क्योंकि लोक तंत्र में लोक संग्रह की आवश्यकता होती है धन संग्रह की नहीं। अनेक पार्टी और अनेक विचारों वाले होने से दल दल हो रहा है। यदि आप अपने स्वार्थ के लिए वोट उन्हीं को दे रहे हैं जो हिंसा का कार्य करते हैं, जो मांस निर्यात करते हैं अथवा कराते हैं तो आप के द्वारा भी हिंसा का समर्थन हो गया ऐसा समझना चाहिए। आप लोगों को पार्टी या सत्ता के लिये नहीं, अपने देश के लिए समर्थन देना चाहिए।

जिसके पास दया धर्म के प्रति अटूट श्रद्धान है वही बूचड़ खानों को बंद करा सकते हैं। यदि इस प्रकार का हिंसात्मक कार्य आँखों देखा होता रहेगा तो नर्क का दृश्य यही आ जायेगा। अहिंसा धर्म के माध्यम से ही देश का संरक्षण हो सकता है गोला बारूद से नहीं।

जब दया धर्म ही जीवन में नहीं तो आत्मा की बात कहाँ से आयेगी। दया धर्म के अभाव से अभी तो पशु से भी गया बीता जीवन जी रहे हैं। फिर आत्मा व परमात्मा की बात आयेगी कैसे ? आज अंडों को शाकाहारी घोषित किया जा रहा है उसे सिद्ध करने के लिए कहा जा रहा है कि उससे बच्चा

उत्पन्न नहीं होता है। अंडों से बच्चे उत्पन्न हो अथवा न हो परन्तु वह मांसमय पिंड तो है ही। मांस को शाकाहारी कैसे कहें। जिसकी बुद्धि बिलकुल से खो गयी हो वही कह सकता है।

धीवर ने प्राण छोड़ दिये पर प्रण नहीं छोड़ा। आप दोनों छोड़ने को तैयार हैं। जहाँ पर विवेक बुद्धि सुरक्षित है वहाँ दया धर्म है। ऐसे दया धर्म को बारंबार नमस्कार।

दया रहित जो धर्म है, विनय रहित जो ज्ञान।
समता बिन जप तप रहा, यथा देय निष्प्राण॥
सम्यग्दृष्टि जीव का, कोमल रहे स्वभाव।
दीन दुखी को देखकर, धारे करुणा भाव॥
(विद्या स्तुतिशतक से)

❑ ❑ ❑

वत्थु सहावो धम्मो

आत्मा का स्वभाव जानना-देखना है यही उसका धर्म है, किन्तु जहाँ जाते हैं अथवा जहाँ से आते हैं वहाँ का जानना देखना भले बुरे रूप में अलग-अलग हो रहा है। संसारी प्राणी का जानना देखना नहीं छूट सकता है परन्तु भला बुरा छूट सकता है।

जिनवाणी के शरण से, गुरुओं के समागम से सदाचरण से संस्कारित होकर जैसा वातावरण यहाँ है वैसा आप अपने ज्ञान से दूसरी जगह ले जा सकते हैं। जहाँ वातावरण अच्छा नहीं है वहाँ भी यहाँ जैसा जीवन यापन कर सकता है। वहाँ रहने वाले व्यक्तियों को भी जिनवाणी शरण, गुरु समागम की चाह पैदा कर सकता है।

एक सेठ सामायिक करने बैठा है दीपक जला कर। उसने संकल्प लिया है जब तक दीपक जलता रहेगा तब तक सामायिक करूँगा। पत्नि को कुछ पता नहीं था। जैसे भोजन परोसते जाते हैं वैसे ही वह सेठानी दीपक में घी परोसती (डालती) गई। समय बहुत हो गया प्यास सताने लगी भीतर से संक्लेशित भाव होने लगे, परन्तु व्यक्त नहीं होने दे रहा है। उसी समय उसका मरण हो गया।

किसी को ज्ञान नहीं था कि सेठ ने ऐसा नियम लिया है फिर भी उसने व्रत नहीं तोड़ा। आप होते तो कहते किसने देखा कि मैंने ऐसा नियम लिया और उठ जाते।

यो श्रावक व्रत पाल स्वर्ग सोलम उपजावै।
तह तैं चय नर जन्म पाय मुनि ह्वै शिव जावै॥

जो श्रावक हो और सामायिक में मरण करे तो ऐसा नियम नहीं कि स्वर्ग ही जाये। सामायिक

का अर्थ मात्र आसन लगाकर बैठना नहीं बल्कि समतापूर्वक बैठना सामायिक है। जो समता के धनी होते हैं वही सामायिक कर सकते हैं। श्रावक भी समता धारण कर सकते हैं।

जैसे दूध से बने दही का मंथन करने वाली सभी सामग्री ठीक हो किन्तु दही ही ठीक न हो तो मक्खन ठीक नहीं आ सकता है वैसे ही भाव यदि ठीक होते हैं तो कार्य (प्रतिफल) बहुत अच्छा होता है। सेठ का द्रव्य, क्षेत्र, काल तो बहुत ठीक था किन्तु भाव ठीक नहीं था, वह बिगड़ गया था। भाव जैसा था वैसा मिला। वह भावों के अनुसार जल में जा कर मेंढक हो गया। घी और जल दोनों तरल है किन्तु एक के पीने से प्यास बुझती है दूसरे से बढ़ती है। जो एक बार संस्कार पड़ जाते हैं वे जल्दी नहीं जाते। सेठ के संस्कार पड़ गये थे परन्तु एक बाद फेल हो गया कोई बात नहीं। जो एक कक्षा में दो साल पढ़ता है उसका अनुभव विशेष होता है। जब योग्य समय मिल जाता है तब पूर्व में पड़े संस्कार फलीभूत हो जाते हैं।

भगवान् महावीर स्वामी का समवसरण आया। सभी लोग वहाँ जा रहे थे। वह मेंढक भी मुख में पांखुड़ी दबाकर फुदकता हुआ जा रहा है। उस मेंढक के पूजन, भक्ति, दर्शन के भाव कहाँ से आये? पूर्व पड़े संस्कार से आये। मनुष्य यदि पूर्व संस्कार वाली बात पर जरा ठीक से विचार करे तो ज्ञान की विराटता को पा सकता है। उस मेंढक को द्रव्य, क्षेत्र, काल आदि श्रावकों के समान नहीं मिले, फिर भी पूर्व के संस्कारों से पूजन के भाव स्वयं के हैं। वह स्वयं वाहन है, रास्ते में बड़े वाहन वालों के वाहन से वह मर गया। मर कर देव हुआ।

वह देव बन कर सोचता है मैं कहाँ से आया हूँ ? कैसे आया हूँ ? वह ज्ञान से जान करके जिस राजा श्रेणिक के वाहन से मरा था उससे पहले समवसरण में पहुँच जाता है। यह जैन धर्म उपादान और भाव प्रधान है जो बहुत अद्वितीय है। इस आत्मा का कब कैसा प्रभावक जीवन बनता है, कब उन्नत होता है, यह सब भावों पर आधारित है। वह मेंढक उन्नति करके प्रभावक देव बना। यदि पूजक बनना चाहते हो तो मेंढक के समान बनो। इसीलिए स्वामी समन्तभद्राचार्य महाराज ने रत्नकरण्डक श्रावकाचार में मेंढक का उदाहरण रखा है।

यदि सामायिक करना चाहते हो तो सेठ के समान मत करो और यदि पूजन करना चाहते हो तो मेंढक के समान करो यह मेंढक का उदाहरण इसलिये दिया कि मनुष्य को थोड़ी टीस पहुँच जाये।

मेंढक ने पूजा तो की नहीं थी मात्र पूजा के भाव से जा रहा था उसका फल देव पर्याय मिली। यदि आप भी ऐसा सोचें मात्र भाव पूजा कर ले, तो ऐसा नहीं। आप को तो द्रव्य सहित ही पूजा करना चाहिए द्रव्य सहित पूजन से भाव कुछ अलग ही उमड़ते हैं। जैसे होली खेलते हैं तो भावों से मात्र रंग नहीं डालते किन्तु जब रंग घोलकर डालते है तो भाव अलग ही होते हैं, आनंद अलग ही होता है।

हमेशा-हमेशा भाव से पूजा नहीं होती। घर में बैठकर आप अनेक प्रकार के भाव तो कर सकते हैं लेकिन पूजन सामायिक, जाप, स्वाध्याय आदि के विशुद्ध भाव वहाँ नहीं कर सकते हैं, वे विशुद्ध भाव तो मंदिर में ही हो सकते हैं। कुछ ही समय में मेंढक के तीन भव हो गये। अतः सद्‌भावना के साथ अपनी आत्मा के ऊपर अच्छे संस्कार डालते जाइये।

रत्नत्रय रूपी संस्कार ही हमारे सही काम आयेंगे। मुक्त होने का एक ही रास्ता है, हम आत्मा के ऊपर रत्नत्रय के संस्कार डालते चले जाये। संस्कार चश्मे के समान हैं जो आत्मा को देखने का साधन बन जाते हैं और आत्म विकास के लिये कारण होते हैं। रुचि और आस्थापूर्वक डाले गये संस्कार ही आगे काम आते हैं। मनुष्य भव अच्छे संस्कार डालने के लिए आषाढ़ के समय खेत में बीज डालने (बोने) के समान है, इसलिए मनुष्य जीवन के समय को व्यर्थ मत खोओ।

संतान के ऊपर आपका सबसे बड़ा उपकार यही है कि उसके ऊपर अच्छे संस्कार डालो। उन्हें धर्म मार्ग पर लगाओ। मात्र पैसे कमाने के संस्कार डालोगे, तो आप उपकार नहीं अपकार कर रहे हैं। धन के संस्कार डालने की आवश्यकता नहीं वे तो स्वयं आ जाते हैं। इन विषयों (विषय भोगों) के वातावरण में हमें धर्म के संस्कार डालना ही चाहिए। देवगति में संस्कार देने की बात नहीं है। इस मनुष्य पर्याय में सम्यग्ज्ञान पूर्वक संस्कार डालना चाहिए, तभी देव गति में समवसरण में जाने के भाव होंगे। यदि सम्यग्दृष्टि है तो दूसरे भव में संस्कार काम आ सकते हैं। मिथ्यादृष्टि तो सब भूल कर विषय कषायों में लग जाता है। जितना लंबा चौड़ा जीवन मिलेगा, उतना लम्बा चौड़ा कार्य भी मिलेगा अतः इस जीवन में कुछ कर लो।

अन्य किसी भवरूपी दुकान पर जाओगे तो तुम धर्मरूपी दुकान चला नहीं सकते, खरीदी कर सकते हो। इसीलिये यहाँ पर हमें दुकान खोलने का सौभाग्य मिला है, उसे खोलकर अच्छे ढंग से चलाये तो उसका फल हमें अच्छा ही मिलेगा। जिस प्रकार दुकानदार को अखबार पढ़ने से नये नये भावों की जानकारी मिलती है, उसी प्रकार श्रावकों को श्रावकाचार पढ़ने से नयी नयी जानकारी मिलती है।

कर्म करना तो सब को आता है किन्तु ये मिटते कैसे हैं यह ज्ञात नहीं है। जो कर्म किये जाते हैं वे मिटते हैं, क्योंकि जो बनते हैं वे मिटते हैं, जो बनते नहीं मात्र हैं वे मिटते नहीं। कर्म किये हैं उन्हें मिटाया जा सकता है। अतः कर्म मिटाने की जानकारी होना चाहिए। मात्र रुपये पैसे, जमीन, जायदाद, भोग उपभोग आदि से जीवन सुन्दर नहीं होता। इस मेंढक की भाव कथा को सुनकर कैसे भाव करना चाहिए यह भी सोच लेना चाहिए।

❑ ❑ ❑

भटकाने वाला कौन

(आज आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज की २४वीं पुण्य तिथि थी इस अवसर पर ब्रह्मचारी अजयजी ने संचालन किया, क्षुल्लक चंद्रसागरजी, ऐलक निर्भयसागर जी, ऐलक अभय सागर जी, एवं मुनि श्री १०८ योगसागर जी महाराज ने अपनी अपनी भाव भीनी गुरूणां गुरु श्री ज्ञानसागरजी महाराज के प्रति श्रद्धांजलियाँ समर्पित की। इसी प्रसंग को लेकर आचार्य श्री ने कहा) अभी आप ने अनेक लोगों की भावाञ्जलियाँ सुनी।)

काल अपनी गति से संसार के सारे पदार्थों को लेकर चल रहा है। काल अपनी गति से चलता है, किन्तु कभी-कभी जल्दी और कभी-कभी विलंब से भागता हुआ दिखाई देता है। आज गुरु महाराज की २४वीं पुण्य तिथि है किन्तु लगता नहीं कि २३ वर्ष हो गये। जब काल की ओर देखता हूँ तो वह स्थायी सा लगता है। जब किसी कार्य में लग जाता हूँ तो काल का पता ही नहीं चलता।

जब परिणमन को देखता हूँ तो सत्ता ही नजर नहीं आती है और जब सत्ता को देखता हूँ तो परिणमन ही नजर नहीं आता है। कहा भी है –

''सत्ता सव्व पयत्था सविस्स रुवा अनंत पज्जाया''

यदि महासत्ता का आधार लिया जाये तो जो अभी आकुलतायें हो रही हैं, सब मिट जायेंगी। आचार्य श्री को हमेशा-हमेशा उसी महासत्ता को देखने का अभ्यास रहता था। वे जल की ओर देखते थे लहर (तरंग) की ओर नहीं।

अभी आत्मा में विकल्प ही विकल्प है परन्तु जब हम आत्मा की ओर देखने लग जाते हैं उसी से परिचय करने लग जाते हैं, तब सारे विकल्प अपने आप शांत हो जाते हैं। किसी ने कहा है–

जमाने में उसने सबसे बड़ी बात कर ली।
जिसने अपने आप से मुलाकात कर ली॥

मृत्यु महोत्सव इसलिये बड़ा लग रहा है कि हम जमाने की ओर देख रहे हैं जो संकल्प विकल्पों में ही रहता है, जो जमाने में रहता हुआ बहता नहीं जमा ही रहता है, वह संसार समुद्र में नहीं जाता। जो व्यक्ति जमता नहीं बहता ही रहता है, वह बहता-बहता समुद्र में जा कर डूब जाता है।

ज्ञानसागर जी गुरु महाराज घर में बहुत ही शांतिमय जीवन जीते थे घर में पूरे समय तक व्रती रहे। व्रतों से कभी नीचे नहीं गिरे, वे पापों से बचकर रहते थे, प्रत्येक कदम बहुत अच्छे ढंग से जमा-जमा कर रखते थे। उनका जीवन ऐसा जमा हुआ था कि उसे शब्दों में नहीं कहा जा सकता। जब हम गीली मिट्टी पर चलते हैं तो अंगूठा गढ़ा कर चलने पर फिसलते नहीं। हाथ जमाकर लिखना नहीं होता किन्तु दिमाग में जम जाने से लिखना होता है।

मेरी भावना है कि मैं जो कुछ भी बनूं वह गुरु चरणों में चढ़े और वहीं जम जाऊं। इसी भावना से एक दोहा लिखा था–

पंक नहीं, पंकज बनूँ, मुक्ता बनूँ, न सीप।
दीप बनूँ, जलता रहूँ, गुरु पद पाद समीप॥

महापुरुष वीरता और साहस से काम लेते हैं, ऐसे उन महापुरुषों के माध्यम से साहस मिलता है और कमजोर व्यक्ति भी वैसे ही वीरता से सामने आता है, जैसे रणांगण में वीर हो तो कमजोर भी वीरता से सामने आता है।

हमारा ज्ञान अनेक वस्तुओं में लगा होने से, हमारे ज्ञान में ज्ञान नहीं आ रहा है इसी कारण हम निर्वाण को प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं ज्ञान जिस पदार्थ को देखना चाहता है, ज्ञान को उस पदार्थ रूप परिणमन करना होता है तभी वह पदार्थ दिखता है। इसी कारण पर पदार्थ को देखते समय ज्ञान–ज्ञान को नहीं दिखता है। **हमें पदार्थ नहीं भटका रहा है, किन्तु ज्ञान भटका रहा है।** आचार्य महाराज की दृष्टि पर पदार्थ की ओर नहीं, ज्ञान की ओर ही रहती थी इसीलिए वे संसार में फँसे नहीं। आज दुनिया में ऐसे बहुत से खेल है जिसमें ज्ञान को उलझाया जाता है दुनिया उसी में उलझना पसंद करती है। मुनि उस ज्ञान में रमते हैं उलझते नहीं। जानो देखो किन्तु उस ज्ञान से उलझो नहीं। ज्ञानी मुनि ज्ञान में रमते हैं उलझते नहीं, वे सदा खाली रहते हैं, आत्मा में रमते हैं परन्तु एक स्थान पर जमते नहीं।

नाव की शोभा पानी में है, नाव में पानी हो तो उसकी शोभा नहीं। नाव यदि खाली रहे तो पार हो जाते हैं और यदि नाव कुछ खा ले (अर्थात् पानी भर जाये) तो डूब जाते हैं। उसी प्रकार साधु की शोभा खाली रहने में है। एक व्यक्ति यदि सूखी लकड़ी का सहारा ले लेता है तो नदी पार हो जाता है। ज्ञान सागर जी गुरु महाराज हमारे लिए ऐसे ही लकड़ी के समान थे संसार समुद्र पार होने के लिए।

यदि एक व्यक्ति करेंट में चिपका हो और दूसरा उसे निकालने जाय तो वह भी उसी से चिपक जाता है इस प्रकार हजारों व्यक्ति चिपक सकते हैं किन्तु यदि एक सूखी लकड़ी का सहारा ले ले, तो सब छूट सकते हैं। ज्ञानसागर जी महाराज ने यही किया।

जब शरीर के किसी अंग पैर आदि में दर्द हो तो तेल या बाम आदि लगाते हैं। उसे लगाने से मात्र ठीक नहीं होता, उसे लगाने के बाद गर्मी देने से ठीक होता है। जब दिमाग में गर्मी आ जाती है और ज्ञान काम नहीं करता, वह अपसेट हो जाता है तो उसे करेंट दी जाती है। जिससे अपसेट माइंड सेट हो जाता है। ज्ञानसागर जी गुरु महाराज ने हमें ऐसी करेंट दी कि हमारा अनादिकालीन अपसेट माइंड सेट हो गया। करेंट कितना देना यह भी दिमाग होना चाहिए। ज्ञान छूट जाता है टूटता नहीं। अतः पहले ज्ञान ठीक करो नहीं तो पैर टूट जायेंगे। ज्ञानसागर जी महाराज ने पहले चारित्र नहीं दिया, बल्कि पहले दिमाग ठीक करके ज्ञान दिया, फिर बाद में चलने के लिए पैर (चारित्र)।

जैसे समय पर योग्य कन्या का जब तक विवाह नहीं करते तब तक श्रावक (पिता) को चैन नहीं रहती। उसी प्रकार ज्ञानसागर जी को पद देने से पूर्व तक चैन नहीं रही, अतः उन्होंने उचित समय पर कन्यादान के समान अपने पद का दान किया और सब कुछ त्याग कर समाधि जो मुख्य लक्ष्य था उसकी ओर बढ़ गये। वे व्यक्ति ही अपने लक्ष्य को पा सकते हैं, जो अपने लक्ष्य प्राप्ति के साधनों के अलावा अन्य किसी पदार्थों से न चिपका हो। जैसे कागज चिपकाना हो तो हाथ में कागज न चिपके इसका ध्यान रखा जाता है, नहीं तो कागज हाथ में चिपककर फट जाता है वैसे ही साधक ध्यान रखता है।

जैसे सर्कस में तार पर चलने वाला कलाकार तार की ओर नहीं, लगातार हाथ में ली गई लकड़ी की ओर ही देखता रहता है और तार को पैरों से ही देखते हुए चलकर लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार ज्ञानी साधक पुरुष होता है। उसमें ज्ञानसागरजी महाराज भी एक है। जैसे पैर बराबर जमीन मिलने पर भी आज आदमी चलता है तो सब को विस्मय होता है वैसे ही ज्ञानी दिगम्बर मुनि जब चलता है तो सब को विस्मय होता है। गुरु ज्ञानसागर जी महाराज ने ऐसी कला, साहस, और शक्ति दी कि अब हमें तार पर चलना तो सरल है ही, किन्तु दौड़ भी सकते हैं।

लोहा पर पदार्थ (नमी) को पकड़ लेने से जंग खाकर अपने आपको खो देता है और स्वर्ण कभी पर पदार्थ को पकड़ता नहीं इसीलिए कभी नष्ट नहीं होता। अतः पदार्थों के इस प्रकार के स्वभाव को जानकर हम पर पदार्थों को पकड़े नहीं, उससे चिपके नहीं और अपने जीवन को स्वर्ण की भांति बनाये।

गुरु महाराज के पास ऐसी सत्ता, संस्था और संपदा थी कि अन्य बाहरी सत्ता संस्था और संपदा की आवश्यकता ही नहीं होती थी। अपनी सत्ता और संस्थादि को जानकर उस स्व की संपदादि में इतने लीन रहते थे कि पर की चर्चा का समय ही नहीं था। ऊपरी ऊपरी ज्ञान से कुछ नहीं होता अतः वे तलस्पर्शी ज्ञान रखते थे। तलस्पर्शी ज्ञान किसी ग्रन्थ को एक बार बढ़ने से नहीं किन्तु अनेक बार पढ़ने से होता है। उन्होंने सभी को ऐसा ज्ञानरूपी प्रकाश दिया, मुझे भी मिला किन्तु अंत में।

जब स्वयं ही नहीं चल पा रहा हो तो दूसरों को कैसे चला सकता है। जब स्वयं को दिशा बोध का ज्ञान न हो तो दूसरों को कैसे दे सकता है। अतः वे स्वयं चलते थे और समस्त ज्ञान रखते थे। पटरी पर यदि गाड़ी हो तो थोड़ा धक्का लगाने पर भी आगे बढ़ सकती है। ज्ञान सागर जी महाराज ने कृपा करके मेरी गाड़ी पटरी पर ला कर खड़ी कर दी। ऐसे उन गुरु महाराज के प्रति दिन गुण गान गाये और एक दिन भी न चले तो ठीक नहीं, किन्तु हम ३६४ दिन चले और एक दिन गुणगान गायें तो ठीक है।

आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज की जय

❑ ❑ ❑

वे कहते नहीं

धर्म की बात सुनने का अधिकार जीव मात्र को है। ये बात अलग है कि सुनने के उद्देश्य की पूर्ति कौन करता है ? भगवान् महावीर स्वामी के समवसरण की रचना होने के बाद देवों से खचा-खच भरा था समवशरण फिर भी वाणी नहीं खिरी, क्योंकि भगवान् को एक भव्य मुमुक्षु मनुष्य की आवश्यकता थी। दुनिया की बात तो किसी से भी की जा सकती है किन्तु मोक्ष की बात मुमुक्षु से ही की जाती है।

अहिंसा धर्म और मोक्ष की बात सुनकर उसके उद्देश्य की पूर्ति मनुष्य ही कर सकता है और कुछ अंशों में तिर्यंच भी कर सकते हैं। देव मोक्ष की बात सुनते है परन्तु उसका पालन नहीं कर सकते।

कुछ लोग प्रतिज्ञा किसी के सामने लेते हैं और कुछ अपने भीतर ही भीतर स्वयं ले लेते हैं। मनुष्य सुनता है, गुनता (विचार करता) है किन्तु बोलता भी है। तिर्यंच सुनता है, गुनता है परन्तु बोलता नहीं। इसी कारण तिर्यंच जन्म लेने के कुछ समय बाद सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है। मनुष्य कम से कम ८ वर्ष अंतर्मुहूर्त में कर पाता है। मनुष्य स्वयं उलझता है और उलझाता है। दूसरों को फंसाने के लिए जाल बिछाता है, किन्तु तिर्यंच ऐसा नहीं करते इसीलिये सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की भूमिका मनुष्य से पहले बन जाती है।

संकल्प चारित्र की कोटी में आता है। लिये गये संकल्प के प्रति आस्था है या नहीं ये मनुष्य के साथ घटित होता है (यदि नहीं है तो द्रव्य लिंगी कहा जाता है) किन्तु तिर्यंचों को आज तक द्रव्य लिंगी नहीं कहा। आज लोग कहते हैं पहले सम्यग्दर्शन प्राप्त करो, बाद में चारित्र अंगीकार करो जबकि ऐसा एकान्त नियम नहीं है। मनुष्य की बात क्या, मूक जानवर भी चुटकी बजाते-बजाते सम्यग्दर्शन के साथ-साथ चारित्र अंगीकार कर लेते हैं, किन्तु मूक तिर्यंच बताते नहीं कि मैंने ऐसा संयम अंगीकार किया है। वे सोचते है कि जीवन का सही रास्ता यही है। वे व्रत संयम लेते समय कोई शर्त नहीं रखते कि मुझे इसमें यह छूट मिल जाये इसीलिये वे अपने व्रतों में फैल न होते हुए अपना कल्याण कर जाते हैं।

जंगल में रहने वाले एक मूक प्राणी ने संकल्प लिया कि मैं रात्रि में पानी नहीं पीऊँगा। एक दिन उसे पानी नहीं मिला। प्यास बहुत सता रही थी। खोजते-खोजते बहुत समय हो गया फिर उसे एक हरा भरा वृक्ष दिखाई दिया। उसने सोचा वहाँ पानी होना चाहिए। पानी की आशा में वहाँ गया। वहाँ उसे एक बावड़ी दिखाई दी। उसमें देखा पानी भी है प्यास बुझाने के लिये नीचे बावड़ी में उतरा। पानी के पास तक पहुँचते अंधेरा हो जाता है। ऊपर आता है, देखता है कि अभी दिन है। पुनः नीचे जाता है तो अंधेरा पाता है, ऊपर आता है, दिन का उजाला पाता है। पुनः नीचे जाता है, इस प्रकार ऊपर नीचे चढ़ते उतरते प्यासा ही मर जाता है, पर अंधेरा होने से अपना संकल्प नहीं तोड़ता।

उसकी जगह मनुष्य होता तो पानी पी लेता और कहता महाराज से प्रायश्चित ले लूँगा, महाराज ने ही तो प्रतिज्ञा दी थी और यह भी पूछ लेता कि आगे भी ऐसा कर सकता हूँ क्या ? यह मनुष्य कितना विषयों के अधीन हुआ है ये कुछ भी कहा नहीं जा सकता है। यह मनुष्य प्रण को नहीं, प्राणों को देखता है। उस मूक प्राणी ने प्रण नहीं तोड़ा भले ही प्राण छोड़ दिये।

हमारे अंदर राग-द्वेष, आकुलतादि रूप जो परिणाम होते हैं वे सब कर्म बंध के कारण होते हैं। हम राग-द्वेष करके अपनी आत्मा का ही घात करते चले जाते हैं। राग-द्वेष करना ही भाव हिंसा है। द्रव्य हिंसा होने से पहले भाव हिंसा हो जाती है। भावों द्वारा हिंसा, झूठ, चोरी और कुशील आदि होते ही रहते हैं इसका पता लगाना बहुत कठिन होता है।

महावीर भगवान् का मार्ग आत्माश्रित है। अतः आत्माश्रित होने से निज की ओर देखने से सरल है, और यदि पर की ओर देखते हैं तो बहुत कठिन है।

एक सियार भी अपनी स्मृति के माध्यम से अपने भाव ताजा बनाये रख सकता है और तोड़ता नहीं। इसे कहते हैं आस्था और संयम। आस्था में कमी आने से ज्ञान में कमी आ जाती है और संयम डांवाडोल होने लगता है। आस्था ज्ञान और संयम में कमी होने से विकास तो दूर रहा, उल्टे विनाश की ओर कदम बढ़ जाते हैं। रत्नत्रय की उन्नति सो ज्ञान का विकास है, वही आत्मा का विकास है।

जैसे-जैसे ज्ञान को विषयों की ओर ले जाते हैं, वैसे-वैसे ज्ञान फकीर होता चला जाता है, ज्ञान का हास्य होता चला जाता है। यदि ज्ञान का हास्य होता है तो आत्मा का हास्य होने लगता है।

मानव एक ऐसा प्राणी है कि एक त्याग करके दूसरा रास्ता निकाल लेता है। इसके हाथ में संविधान बनाना और तोड़ना दोनों है। संविधान नियम कानून की व्यवस्था मनुष्यों के लिये ही है। रात्रि भ्रमण और खान-पान आदि में अधिक विषमता मनुष्यों में होती है, पशु पक्षियों में नहीं। पशु जो हिंसक है वे रात्रि में ही निकलते हैं, जो अहिंसक हैं वे दिन में ही निकलते हैं रात भर शांत बैठते हैं, पशु दिन में चरते हैं रात को जुगाली करते हैं, लेकिन मनुष्य दिन में भी चरता है और रात में भी चरता है। पशु-पक्षी अपनी मर्यादा में रहते हैं, मनुष्य की कोई मर्यादा नहीं रही।

सूर्य में आतप रहता है जो तेजमय होता है, उसमें एक विशेष प्रकार की ऊर्जा रहती है जो भोजन पचाने में सहायक होती है। यहाँ रात्रि भोजन पानी के त्याग का सियार (तिर्यंच) प्राणि का उदाहरण इसीलिए दिया कि मनुष्यों में जागृति आ जाये। यह सियार रात्रि पानी त्याग के कारण मर कर प्रीतिंकर बना जिसे देख कर सब के मन में उसके प्रति प्रीति जाग जाती थी।

सोलहवें स्वर्ग में तिर्यंच संयमासंयम चारित्र के माध्यम से पहुँच जाता है। स्वर्ग की अधिकांश सीटें तिर्यंचों से भरती हैं, किन्तु मनुष्य इतना होशियार है कि वह स्वर्ग में भी मुखिया बनकर बैठता

है। मनुष्य जीवन के ये क्षण इतने कीमती हैं कि इन्हें शब्दों में नहीं कहा जा सकता है। एक व्यक्ति हजारों लाखों लोगों का एक साथ विकास कर सकता है। गुणस्थान चेंज (परिवर्तन) करा सकता है। वह स्वयं भगवान् बन सकता है और दूसरों को भगवान् बनाने में कारण हो सकता है।

प्रभु को देखते ही असंख्यात जीवों का चढ़ा विषय भोगों का जहर एक साथ उतर सकता है। यदि पेड़ पौधों की जड़ें विषाक्त जल से जल जाती हैं तो शुद्ध जल से कलियाँ खिल जाती हैं, ऐसे ही हमारे बीच में रहने वाले मनुष्यों के द्वारा ही यदि प्राणी विषाक्त जीवन जी सकते हैं तो अमृतमय कमल के समान खिला जीवन भी जी सकते हैं।

यहाँ आने के बाद हम जीवन के निर्वाण की बात नहीं सोच रहे हैं तो कहाँ सोचेंगे। सोचे विचारे बिना यदि कार्य करते हैं तो अफसोस ही प्राप्त होता है। तारंगा की इस पावन भूमि पर साढ़े तीन करोड़ मुनियों ने निर्वाण पद को प्राप्त किया, ऐसी पावन भूमि पर आना अपना परम सौभाग्य मानना चाहिए और अपने आपको धन्य मानना चाहिए।

आप विदेशी को देशी बनाना चाहते हैं और आप स्वयं देशी रहना नहीं चाहते। आप विदेशी सामान अपनाना चाहते हैं। यहाँ भारत के पशु भी अहिंसा का पालन कर रहे हैं और विदेशों में मनुष्य भी नहीं कर पा रहे हैं। सियार की प्रतिज्ञा पालन करने की निष्ठा मानव मन को झकझोर देती है।

आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज की जय

❑ ❑ ❑

जिनवाणी का सार

(आज ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी थी जिसे श्रुत पंचमी के रूप में मनाया जाता है इस कार्यक्रम का संचालन ब्रह्मचारी सर्वेश कुमार जी ने किया। इस प्रसंग पर ब्रह्मचारी ऐ-के- जैन इंजीनियर अहमदाबाद, क्षुल्लक निर्णय सागर जी, क्षु- विनीत सागर जी, ऐलक नम्र सागर जी एवं योगसागर जी ने अपने उद्बोधन दिये तदुपरांत आचार्य श्री ने एक दोहे से अपने प्रवचन की शुरूआत की)

सार सार दे सार दे, बनूं विसारद धीर।
सहार दे, दे तार दे, उतार दे उस तीर॥

सरस्वती (जिनवाणी) माँ से हमें सार की मांग करना चाहिए। अक्षर ज्ञान की मांग करना चाहिए शब्दों की नहीं। जो क्षय को प्राप्त न हो वह है अक्षर। अक्षर को सुन सकते हैं पढ़ सकते हैं और सुना सकते हैं। शब्द को सुन सकते हैं, पढ़ नहीं सकते हैं। भगवान् के द्वारा निकले शब्द श्रवण से अथवा गुरुओं के मुख से निकली देशना सुनने से देशना लब्धि प्राप्त होती है।

दुनिया में पदार्थ अनंतानंत हैं जो केवली के ज्ञान में दर्पणवत् झलक रहे हैं। उसमें बहुभाग

अकथ्य है। अकथ्य और अवक्तव्य में बहुत अंतर है। जिस अकथ्य को जब केवली भगवान् भी नहीं कह सकते फिर उसे आम लोग छाती ठोक ठोक कर कैसे कह रहे हैं, यह कुछ समय में नहीं आता। ध्यान रखना एक पदार्थ का पूर्ण कथन अनंत केवली भी नहीं कर सकते।

केवली भगवान् ने जो जाना उसका अनंतवाँ भाग कहा। उस अनंत वे भाग का गणधर ने अनंतवां भाग सुना, उसका अनंतवाँ भाग कहा और जो कहा उसका असंख्यातवाँ भाग लिखा गया। आज वही पूर्ण नहीं है उसका अंशमात्र ही रह गया। बीच-बीच में जो आचार्य हुए वे हमें उसका सार-सार देते रहे। उसी से हमारा काम चल रहा है।

हमें सभी प्रकार की बीमारी लगी है इसीलिए किसी एक स्पेशलिस्ट डाक्टर से काम नहीं चलने वाला किन्तु सभी प्रकार के रोगों की दवाई करने वाले सामान्य डाक्टर से काम चलेगा। ऐसे ही सामान्य डाक्टर चाहिए। हमारे आचार्यों ने सामान्य डाक्टर का कार्य किया है। उन्होंने कहा मैं सार-सार की बात बताऊँगा। इसमें अभिमान की बात नहीं यह तो गौरव की बात है।

आचार्यों ने कहा पहले भगवान् को पहचानो। शास्त्र की पहचान कराते हुए समंतभद्र स्वामी कहते हैं–

आप्तो पज्ञ मनुल्लंघ्य मदृष्टेष्ट विरोधकम्।
तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम्॥

जो कुपथ का निराकरण करे उसे शास्त्र कहा है और जो सब का हित (भला) करने वाला है, हित करने वाले को सार्वम् कहा है। जिसका वादी प्रतिवादी द्वारा उल्लंघन नहीं किया जा सके, प्रत्यक्षपरोक्ष और अनुमानादि प्रमाणों से कोई विरोध न आता हो ऐसा जो सर्वज्ञ के द्वारा उपदिष्ट है उसे शास्त्र कहते हैं। जैसे शब्द देखने में नहीं आता वैसे ही सर्वज्ञत्व देखने में नहीं आता है।

प्रतिमा क्या कह रही है उसे कानों से नहीं सुन सकते, उसे मात्र आँखों से सुन (देख) सकते है। आचार्य समंतभद्र स्वामी कहते है जो वीतरागी, हितोपदेशी और जो १८ दोषों से रहित है वे सर्वज्ञ हैं वही हमारे देव हैं। भोजन करने वाले हमारे देव (भगवान्) नहीं हो सकते। हमारे भगवान् बाहर भीतर एक से लगते हैं। उनकी मुद्रा सामुद्रिक होती है। वे जीवन पर्यंत सदा किशोर बालक वत् होते हैं, वे कभी वृद्ध नहीं होते यदि वृद्ध होते हैं तो ज्ञान चारित्र और उम्र से वृद्ध होते हैं। भगवान् की ऐसी वीतरागता की ओर एक बार भी दृष्टि रखकर देखने मात्र से अनंतकालीन मिथ्यात्व क्षय को प्राप्त हो जाता है और सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाता है।

इन आँखों से सर्वज्ञता नहीं दिखती, वीतरागता दिखती है। जहाँ वीतरागता हो वहाँ सर्वज्ञता आ ही जाती है। सर्वज्ञता जानने की चीज है और वीतरागता देखने की चीज है।

सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानंद-रसलीन।
सो जिनेन्द्र जयवंत नित, अरि-रज रहस विहीन॥

मिथ्या दृष्टि की दृष्टि में भी वीतरागता आ सकती है किन्तु सम्यग्दृष्टि की दृष्टि में सर्वज्ञता नहीं आ सकती। देव शास्त्र गुरु की पहचान वीतरागता से ही होती है।

आज सेल्फ स्टेडी होने लगी है जो ठीक नहीं। आज जो निजी स्वाध्याय और उस स्वाध्याय का जो व्यवसाय होने लगा ये दोनों इस युग का बड़ा आश्चर्य जनक कार्य है। आज ग्रन्थों पर मूल्य आ गये, सर्वाधिकार सुरक्षा की बात आ गयी। पहले ग्रन्थों पर मूल्य स्वाध्याय, सदुपयोग, चिंतन मनन आदि रखा जाता था। आज ग्रन्थों को वाद में देखते हैं, पहले कीमत देखते हैं। जिनकी आजीविका का साधन जिनवाणी है वे कभी सत्य नहीं बोल सकते हैं। जरा विचार करो जिनवाणी से चेतन या वेतन, स्वाध्याय या व्यवसाय किसकी बात कर रहे हो। आज इतना तो अच्छा है कि प्रतिष्ठित भगवान् का मूल्य नहीं रखा गया किन्तु जिन जिनवाणी नहीं बच पायी।

भगवान् अतुल हैं, अमोल है। प्रतिष्ठित होने के बाद भगवान् का मूल्य सम्यग्दर्शन होता है। एक कारिका का मूल्य करोड़ रुपये भी कम है। कारिका तो अमूल्य है इसी प्रकार की सही पहचान से सम्यग्दर्शन हो सकता है। जिन ग्रन्थों के पढ़ने से, विषय कषायों का पोषण और आजीविका का साधन हो जाय वह स्वाध्याय नहीं है।

श्रद्धानं परमार्थाना माप्तागमतपोभृताम्।
त्रिमूढ़ापोढ़मष्टाङ्गं सम्यग्दर्शनमस्मयम्॥

इस प्रकार जिसके माध्यम से सम्यग्दर्शन होता है और जिस भक्ति पूजन अभिषेक से असंख्यात गुणी कर्मों की निर्जरा बतायी है उसे बंध का कारण कहा जा रहा है। जिसे व्यवहार सम्यग्दर्शन मानकर स्वीकार नहीं किया जा रहा है और अपनी अपनी चला रहे हैं। यह वैसा ही है जैसे एक बालक अंधेरे में खोटी चवन्नी (२५ पैसे का सिक्का) चला लेता है और कहता चल गई, चल गई खोटी चवन्नी चल गई। ग्रन्थों में लिखा है कि सम्यग्दर्शन देव दर्शन करने से होता है किन्तु ऐसा कहाँ लिखा कि पूजन अभिषेक करने से मात्र बंध ही होता है ?

आचार्य कुन्दकुन्द देव कहते हैं कि

जेण रागा विरज्जेज जेण सेय सुरज्जदि
जेण मेत्तिं पभावेज्ज तं णांण जिण सासणे॥

धर्मानुराग को हम राग तो कहते हैं किन्तु यह राग महानता लिये होता है। जैसे आचार्य कुंदकुंद देव महाराज ने धर्मानुराग से ही तो शास्त्र की रचना की है। जब धर्मानुराग बुरा था, हेय था,

तो आचार्यों ने उस राग से ग्रन्थ क्यों लिखे। स्वयं पथ से दूर हो रहे हों तो दूसरों को कैसे रास्ते में ला सकते हैं। जैसे माँ ने नाक में तेल लगा-लगा कर सीधी की है तभी हम बाजार में नाक दिखाने लायक बने हैं, वैसे ही अनेक आचार्यों ने अपना कर्त्तव्य समझकर शास्त्रों की रचना की जिसके माध्यम से हम यहाँ खड़े होने लायक बने हैं। जिन आचार्य महाराजों ने ये धर्मानुराग की बात कही है उसे हम आग कह दे यह हमारा ही महान् अपराध माना जायेगा। ऐसे वीतरागी महाराजों को हम रागी कह दे तो हम अभागे ही माने जायेंगे।

जिनवाणी भव्य जीवों के कल्याण के लिए है। पुरुषार्थ करो मीठा फल मिलेगा।

कुछ लोगों का मानना है कि कसायपाहुड षट्खंडागम से प्राचीन है। कसायपाहुड में एक ही विषय पर बहुत किन्तु षट्खंडागम में बहुत प्रकार का है। ऐसे ग्रन्थों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि हमारी आत्मा के ऊपर कितनी धूल है उसे कैसे दूर कर सकते हैं। जैनेतर लोग आज कहते हैं कसायपाहुड को पढ़कर कि कोई सर्वज्ञ है जिन्होंने ये सब बताया कि सारे विश्व में ऐसा ग्रंथ नहीं है। ऐसी जिनवाणी को पढ़कर अथवा सुनकर रत्नत्रय की प्राप्ति हो तभी सार्थक है। जिनवाणी को पढ़कर जहाँ-तहाँ नहीं रखना चाहिए उसकी पूरी विनय होना चाहिए।

कल्याण हो जायेगा
माल मत छोड़ो, मालकियत छोड़ दो।
कल्याण हो जायेगा
जिसने जन्म लिया है उसकी मौत निश्चित है
इसलिये मौत को नहीं, मौत का भय छोड़ दो
कल्याण हो जायेगा
भोजन अनिवार्य है, जिंदगी जीने के लिये
इसीलिये भोजन नहीं, भोजन के प्रति गृद्धता छोड़ दो
कल्याण हो जायेगा। (विद्यामंजरी से)

❑ ❑ ❑

जहाँ मिटती तन मन की गर्मी

तन की गर्मी तो मिटे मन की भी मिट जाय।
तीर्थ जहाँ पर उभय सुख अमिट अमित मिल जाय॥

संसारी प्राणी दो प्रकार के दुखों से दुखित है। तन से और मन से जिसमें मन के द्वारा अर्थात्

अपने भावों से ज्यादा दुखित है किन्तु तीर्थक्षेत्रों पर दोनों प्रकार के दुख मिट जाते हैं और कभी न मिटने वाला असीम अमित सुख प्राप्त होता है।

गर्मी तन की हो या मन की वे दोनों बाहर से नहीं आती है। जैसे मलेरिया बुखार में ठंड बाहर से नहीं आती और गर्मी रजाई से नहीं आती वह तो भीतर से आती है, उसी प्रकार पुण्य पाप कर्म भीतर से आते रहते हैं।

सिन्धु नीर ते प्यास न जाये तो पण एक न बूंद लहाय॥

नरकों में इतनी प्यास लगती है कि समुद्र के पानी से भी नहीं बुझती। फिर भी एक बूँद पानी नहीं मिलने पर भी नहीं मरता यहाँ पर पानी न मिले तो मर जाता है इस कर्म सिद्धान्त की ओर भी देख लेना चाहिए।

नारकियों को गर्मी-ठंडी एवं भूख प्यास लगती है, किन्तु वहाँ असुर कुमार के देव जाते हैं उन्हें ठंडी गर्मी भूख प्यास नहीं लगती। तिल-तिल देह के खंड होते हैं फिर भी उन नारकियों के शरीर पारे के समान पुनः जुड़ जाते हैं यह कर्म सिद्धान्त की बात है। जो सुख-दुख, हर्ष-विषाद है वे पुण्य पाप कर्म के उदय से मिलते हैं।

बंधन जब तक नहीं टूटते तब तक कितने भी प्रबंध कर लो फिर भी कुछ होने वाला नहीं है। इस प्रकार के ज्ञान होने को धर्म कहते हैं, इसी को भेद विज्ञान कहते हैं। सुख-दुख कर्म की देन है जब तक ऐसा नहीं जान लेते तब तक समता नहीं आती है। संसार में हम जो भोग रहे हैं और भोगेंगे वह सब कर्मोदय से है। जैसी करनी वैसी भरनी यह भारतीय नीति ही नहीं, सिद्धान्त भी है।

दया किस पर और क्यों की जाय यह भी होश (ज्ञान) रखना चाहिए। जब हम दया करने चले जाते हैं तब अपने आप कर्म और कर्म फल की ओर दृष्टि चली जाती है। जैसे सीता के जीव ने स्वर्गों से देखा कि रावण का जीव नरक में है। सीता के जीव ने वहाँ जाकर संबोधन किया और साथ लेकर आने की कोशिश भी की किन्तु ला नहीं पाया। वह रावण भी सोचता है मैंने पूर्व जीवन में अच्छा किया होता तो अच्छा होता।

भारतीय संस्कृति की जैसी करनी वैसी भरनी वाली बात नरकों में भी काम आती है जैसे रावण के जीवन में घटित हो रही है। वह पूर्व कर्म को लेकर पश्चाताप कर रहा है। अतः अच्छा है कि यहाँ पर कुछ अच्छा कर लो, नहीं तो नरकों में जाने के बाद पश्चाताप ही हाथ लगेगा।

आज कोई संस्था हो बिना पैसे से नहीं चलती है। अर्थ का यदि सदुपयोग नहीं किया जाता है तो उसका कोई अर्थ नहीं है। काल रहते उसका सदुपयोग कर लेना चाहिए। काल नहीं पलटता किन्तु काल में जो किया जाता है वह जरूर पलटता है, जो भविष्य काल में कर्मों के रूप में आ जाता

है। हम पलटाने के भाव तो कर सकते हैं लेकिन पलटा नहीं सकते है जैसा सीता के जीव ने किया। दया करुणा के माध्यम से तत्त्ववेत्ता उपकार करने की बात कर ही लेता है। कर्म का उदय सत्य और तथ्य है।

हमें ऐसे समीचीन कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए जिससे तन और मन दोनों प्रकार की गर्मी मिट जाये। यहाँ पर करोड़ों आत्माओं ने दोनों प्रकार की गर्मी मिटायी, अंदर बैठे शत्रुओं को निकाल फेंका और मुक्ति को पाया प्रत्येक शिला इसकी प्रमाण देती है।

बम दो प्रकार के होते हैं एक बारूद भरकर बनाये जाते हैं जिन्हें गर्मी (आग) दी जाती और फूट जाते हैं। इन्हें सावधानी से रखना होता है नहीं तो बिना टाइम में भी फूट सकते हैं। दूसरे प्रकार के टाइम बम्ब होते हैं जो समय आते ही फूट जाते हैं। यदि विस्फोट से बचना चाहते हो तो समय से पूर्व निकालकर फेंक दो। उसी प्रकार हम समय से पहले चेत जायें तो हम भी कर्मों के विस्फोट से बच सकते हैं।

भारत देश के मध्यप्रदेश में जबलपुर एक ऐसा स्थान है जहाँ खमरिया बारूद की फैक्ट्री है। उससे कुछ ही क्षणों में पूरा जबलपुर समाप्त हो सकता है इसीलिए वहाँ जल की ऐसी व्यवस्था रखी है कि एक मिनट में वह जलमय हो जाये और विस्फोट से बच सके। इसी प्रकार क्रोध कषाय रूपी बारूद को शांत करना चाहते हो तो क्षमा रूपी नीर लाओ।

ऐसे इस क्षेत्र पर साढ़े तीन करोड़ मुनियों ने कर्म रूपी बारूद के विस्फोट को शांत किया इसीलिए यहाँ पर जहाँ भी बैठो शांति का अनुभव होता है। मनुष्य जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है जीवन को तप मय ढालना।

अंतर जगत बहुत विराट है। जो भूत भविष्य और वर्तमान से सम्बन्ध रखता है अंतर जगत की ओर दृष्टि रखने वाला ही उस विराटता से सम्बन्ध रखता है। जैसे वैज्ञानिकों के क्षण खोज में ही निकलते हैं उसी प्रकार तत्त्व वेत्ता के क्षण अंतर्जगत् में डूबे हुए तत्त्वज्ञान में ही निकलते हैं।

जब शरीर भिन्न आत्मा भिन्न ऐसा भेद विज्ञान हो जाता है तब शरीर का ज्ञान तो होता है परन्तु लगाव नहीं रहता। यह शरीर राग-द्वेष की जड़ है और राग-द्वेष आग है ऐसा जानकर उसे पकड़ते नहीं मात्र जानते हैं। ऐसे भेद विज्ञानी घर में रहने वाले श्रावकों को भी विशेष लगाव नहीं रहता और एक कर्त्तव्य समझ कर कार्य करते चले जाते हैं।

क्षेत्रों पर आयें तो अपने आपको जानने देखने की कोशिश करें अपने कर्मों के बारे में सोचें, सिद्धत्व का चिंतन करें। इन क्षेत्रों पर आज भी वही गंध है जो पहले थी आज भी वही पवित्रता है जो पहले थी। यहाँ जैसे गाय भैंस आदि पशु आते हैं और चरकर चले जाते हैं वैसे ही कहीं आप तो यहाँ आकर नहीं कर रहे हैं।

इस क्षेत्र पर आकर करोड़ों जीवों ने लाभ लिया और अनंत कालीन दुख की दशा को समाप्त किया। जो सभी अतीत होता जा रहा है, जो कभी भी वापिस नहीं आने वाला है। अतः जीवन के प्रत्येक क्षण उस दिव्य ज्योति को चलाने में लगाना चाहिए।

हम जैसा खाते हैं वैसी डकार आती है। हम खाये महेरी और डकार खीर की आये ऐसा हो नहीं सकता। विषय कषायों में व्यतीत किये गये क्षण अंधकार पैदा करते हैं। अवशेष के माध्यम से ही विशेष बात समझ में आती है। इस क्षेत्र पर ये अवशेष नहीं रहेंगे तो फिर आप कैसे कह सकेंगे कि यह सिद्धक्षेत्र है इसीलिये बाप दादाओं से जो मिला है उसे सुरक्षित रखिये और अपने द्वारा कमाई गई पूंजी का दान करिये।

गुरु गगन से ऊँचा समुंदर से भी गहरा है।
धर्म का महल बस उनके ही दम से ठहरा है॥
जिंदगी क्या है मोह का पर्दा हटाकर देखो।
पता चलेगा तुम्हें जरा खुद में नहाकर देखो॥

(विद्यामंजरी से)

❑ ❑ ❑

शत्रु और मित्र कौन ?

(आज प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाशजी फिरोजाबाद वाले आये आचार्य श्री जी से पूर्व उन्होंने अपनी देवशास्त्र एवं गुरु के प्रति भावाञ्जलि समर्पित की) अभी पंडितजी ने कहा कि–हम आचार्य महाराज के पास बैटरी चार्ज करने के लिये आये हैं पंडितजी आप चार्ज तो कर लेते हैं किन्तु चार्ज भी देना चाहिए।

आचार्य समंतभद्र स्वामी ने रत्नकरण्डक श्रावकाचार की रचना की, जिसे मंगलाचरण से प्रारंभ कर अंत भी मंगलाचरण से किया है। जिसके माध्यम से हम जैसों को जागृत किया है।

पाप मरातिर्धर्मो बन्धुर्जीवस्य चेति निश्चिन्वन्।
समयं यदि जानीते, श्रेयो ज्ञाता ध्रुवं भवति॥

हमें शत्रुओं से बचना चाहिए और मित्रों से मिलना चाहिए। हमें अपाय (दुख) पहुँचाने वाले शत्रु होते हैं और सुख पहुँचाने वाले मित्र होते हैं, किन्तु हमें यह ज्ञान नहीं कि मित्र कौन है और शत्रु कौन? शत्रु बाहर नहीं भीतर है जिसके सम्बन्ध में आचार्य समंतभद्र स्वामी एक श्लोक के माध्यम से कहते हैं हमारा हित अर्थात् मित्र धर्म है और शत्रु अधर्म है।

अधर्म से बचने के बाद धर्म प्राप्त करने की कोई वस्तु शेष नहीं रह जाती। जैसे रेशम का

कीड़ा अपनी लार से वेष्ठित होने के कारण उसी में मर जाता है वैसा ही अधर्म होता है। जैसे प्रकाश के आते ही अंधकार भाग जाता है वैसे धर्म के आते ही अधर्म भाग जाता है।

अधर्म को तब तक हटाते जाओ जब तक धर्म की प्राप्ति नहीं हो जाती है। जैसे मानलो २०० फीट नीचे पानी है यदि कोई कहता है कि पानी निकालो तो ऐसा कहने से पानी नहीं आने वाला किन्तु जो मिट्टी है उसे निकालो, पानी अपने आप आ जायेगा। इसी प्रकार धर्म तो आत्मा है किन्तु मात्र अधर्म रूपी मिट्टी हटाना है। हम मिट्टी निकालना नहीं चाहते और पानी चाहते हैं यह हमारी मूर्खता है।

पहले के लोग आग को राख में छुपा कर रखते थे। जब उसकी आवश्यकता होती थी तब राख को हटा देते थे और आग मिल जाती थी। वैसे ही राग रूपी राख हटेगी तो हमारे अंदर वह विद्यमान चमकती हुई तेज आत्मा रूप आग प्राप्त हो जायेगी।

घड़ी के तीन काँटे

घड़ी में तीन काँटे होते हैं जो समय को बताते हैं। एक सेकेंड का कांटा होता है, जो चलता नहीं, भागता है। इसी से ज्ञात होता है कि घड़ी चल रही है। जिसका विशेष कार्य होता है वह चलता नहीं, भागता है जैसे आप को विशेष कार्य हो तो आप चलते नहीं भागते हैं। घंटे का कांटा चलता है किन्तु ज्ञात नहीं होता कि ये चल रहा है इसे अनुमान से जान सकते हैं कि ये चल रहा है क्योंकि अपने स्थान से दूसरे स्थान पर चला गया है।

सेकेंड का कांटा चारित्र का प्रतीक है। जो भागता है उसे कुछ कहने सुनने की फुर्सत नहीं रहती है। जब कहीं आग लग जाती है तब एक पानी से भरी गाड़ी (फायर ब्रिगेड) तेज रफ्तार से घंटी बजाती हुई भागती जाती है, वह रुकती नहीं अथवा जैसे विशेष रोगी को लेकर जाती हुई एम्बुलेन्स होती है वह भी नहीं रुकती है। उसके आते-जाते कलेक्टर मंत्री को भी रास्ते से हटना पड़ता है। इसी प्रकार चारित्रधारी चलता ही रहता है रुकता नहीं।

सेकेंड के कांटे के साथ मिनट और घंटे के दो कांटे और चलते रहते हैं। मिनट का कांटा ज्ञान का प्रतीक है और घंटे का कांटा आस्था का प्रतीक है। इन तीनों का सम्बन्ध एक ही केन्द्र से रहता है। बारह बजे ये तीनों एक हो जाते है जो यथाख्यात चारित्र की दशा को बताते है। जैसा छहढाला में कहा भी है

तीनों अभिन्न अखिन्न शुध, उपयोग की निश्चल दशा।
प्रकटी जहाँ दृग ज्ञान व्रत, ये तीन धा एकै लसा॥

एक चौथा कांटा और होता है जो स्वयं चलता नहीं, इसका उन तीनों कांटों से कोई सम्बन्ध नहीं भी रहता। उसे अलार्म कांटा कहते हैं। गुरु अलार्म का काम करते है। जो सोने वालों को जगा देते हैं। मराठी में इसे अल्लाराम कहते हैं अर्थात् जिसे अल्ला भी जगाये और राम भी जगाये वह है

अल्लाराम-अलार्म। वर्तना परिणाम आदि तो अनादिकाल से काल द्वारा होता रहा है फिर भी काल (समय) कभी भी किसी को उठा (जगा) नहीं सकता गुरु का वचन रूपी अलार्म ही उठा सकता है। आप लोग ऐसे अर्ध चेतना की अवस्था में हैं कि जब अलार्म बजने लगता है तब आप उसके स्विच पर हाथ रख देते हैं और वह बंद हो जाता है आवाज आना बंद हो जाती है। इसी प्रकार बेहोशी की दशा में हित अहित क्या है और हेय उपादेय क्या है इसका ज्ञान नहीं हो पाता है।

मोक्ष मार्ग सो मोक्षमार्ग है बिना मार्ग के मंजिल नहीं है। उस मोक्ष मार्ग के ४ उपकरण हैं। सर्वप्रथम यथाजात बालकवत् जिनलिंग। अर्थात् बालक जन्म के समय बाहर भीतर से नग्न रहता है। उसके काया तो रहती है किन्तु माया नहीं रहती। दूसरा उपकरण गुरुवचन। वचन अलग और प्रवचन अलग होते हैं जैसे बच्चा कहीं जाता है और जाने से पूर्व कहता है माँ कुछ कहो। तो माँ कुछ कहती है वह सदा याद रखता है यही है वचन। गुरु अपने अनुभव से शिष्य को ऐसे वचन दे देते हैं, कि शिष्य को मार्ग में कोई कष्ट नहीं होता। तीसरा विनय होता है विनय मंजिल तक पहुँचाने का एक मार्ग है। चौथा है श्रुताभ्यास। गुरु के बिना यदि कोई श्रुतज्ञान प्राप्त करता है तो वह रहस्यों को जान नहीं सकता, जिनवाणी के रहस्यों को गुरुवाणी ही बताती है। ये चारों चीजें जिस के पास है उसे मोक्ष मार्ग से कोई नहीं, रोक सकता है।

ज्ञानार्जन के लिए अपने आप को हमेशा जवान समझना चाहिए और धर्म के लिए वृद्ध समझना चाहिए। अर्थात् ज्ञानार्जन करते समय सोचना चाहिए कि अभी मुझे बहुत जीना है और धर्म करते समय सोचना चाहिए मौत सामने खड़ी है।

रत्नकरण्डक श्रावकाचार रत्नत्रय की प्ररूपणा करने वाला ग्रन्थ है। जब पेटी ही रत्नों की हो तो उसमें रखी वस्तु कितनी कीमती होगी अर्थात् ज्ञानसागर जी गुरु महाराज ने इस ग्रन्थ को रत्नत्रय स्तुति ग्रन्थ कहा है पानी की गति है मिट्टी की नहीं। अतः पानी की गति के लिए मिट्टी निकालो पानी अपने आप आ जायेगा। जितना खोदोगे उतना मीठा पानी आयेगा।

धर्म ध्यान ना, शुक्ल से, मोक्ष मिले आखिर।
जितना गहरा कूप हो, उतना मीठा नीर॥
खुदा तो मौन रहते हैं, उनसे वास्ता क्या है।
गुरुवर बोलते तुम हो, बता दो रास्ता क्या है॥
अज्ञानमयी कोठी में, आस्था बिन पड़ा रहा।
करुणा कर बता दो नाथ, सम्यग् आस्था क्या है॥
संसार में भटका फिरा, मोह से, अज्ञान से।
इसको हटाने का बता दो, सच्चा रास्ता क्या है॥

भूखे ना मुझसे हो सकेगी, यात्रा उस मोक्ष की।
उस रास्ते का तुम बता दो, अच्छा नास्ता क्या है॥
मिथ्यात्व में लिपटे पड़े हैं, शास्ता इस काल में।
अब बता दो हे गुरुवर, सम्यग् शास्ता क्या है॥

❑ ❑ ❑

देश की रक्षा धन से या धर्म से

जब आप लोगों को प्यास लगती है तो कारण खोज लेते हैं कि क्यों लगी और कैसे शांत होगी। जब शारीरिक दर्द होता है तो कारण की खोज कर लेते हैं उसी प्रकार हमें अपने जीवन में मोक्ष के कारणों को खोजना होगा।

जब तर्जनी को दूसरों की ओर करते है तो दोषों की ओर संकेत करते हैं। जब ऊपर की और हिलाते हुए करते हैं तो संकेत प्राप्त होता है कि खबरदार ऐसा किया तो, यह दंड का प्रतीक बन जाती है। यही तर्जनी जब स्थिर ऊपर की ओर आती है तो भगवान् की ओर संकेत करती है। इस प्रकार तर्जनी साम, दाम, दंड, भेद और आत्मा परमात्मा आदि सभी की ओर संकेत करती है।

विज्ञान प्रत्येक कार्य शोध परख करके ही स्वीकार करता है। जब सभी प्रकार के पुरुषार्थ कर लेने के बाद कार्य सिद्ध नहीं होता तो उसे भी भगवान् के अस्तित्व को स्वीकार करके उस पर छोड़ना पड़ता है। जैसे जब किसी डॉक्टर के यहाँ जाओ तो वह कहता है कि मैं पूरा पुरुषार्थ कर रहा हूँ किन्तु सफलता सब ऊपर वाले की कृपा से संभव है। पुरुषार्थ तब तक होना चाहिए जब तक सफलता नहीं मिल जाती। सफलता मिल जाने पर अभिमान नहीं होना चाहिए।

पुरुष अभिमानी होता है, अभिमान उन्नति में बाधा खड़ी कर देता है। आज आदमी अभिमान उपासना में भी कर जाता है। करने योग्य कार्य करना चाहिए उसी में अपने चित्त को लगाये रखना चाहिए। भगवान् की उपासना जब कभी नहीं होती किन्तु योग्य समय पर की जाती है।

विमान चालक बाहर रास्ता नहीं देखता किन्तु भीतर लगी हुई दिशा बोधक घड़ी (चुम्बकीय सुई) को बार-बार देखता है। वह सोता नहीं। जो सो जाता है वह खो जाता है। समुद्र में कोई साइन बोर्ड नहीं रहते जिसे देखना हो। भीतर लगी घड़ी से तूफान आदि के संकेत भी मिल जाते हैं फिर भी कई घटनायें घट जाती हैं।

नीतिकारों ने कहा है धन और सत्ता के मिलने से व्यक्ति पागल हो सकता है और दशा बिगड़ जाती है। दशा ठीक करना चाहते हो तो दिशा बोध प्राप्त करो। संतों के डायरेक्शन (दिशा) को बहुत महत्त्व दिया है। यदि दिशा सही नहीं मिले तो दशा कभी सुधर नहीं सकती बल्कि और दुर्दशा होती

चली जाती है। बहुत मात्रा में शस्त्र होने से विजय नहीं मिलती किन्तु जब उस शस्त्र को सही-सही चलाना आता हो तब विजय प्राप्त होती है।

धन के माध्यम से आगे बढ़ना विदेश नीति है इसे आप भूल जाओ क्योंकि धन जितना अधिक बढ़ेगा पागलपन उतना अधिक बढ़ेगा। जैसे पेट भरने के बाद एक रोटी अधिक हो जाय तो चैन से नहीं सो सकते हैं। आज भारत की जो धन की नीति बन गई है वह ठीक नहीं उसे तो अपनी वही धर्म नीति बनाये रखना चाहिए। धर्म नीति से ही सब ठीक किया जा सकता है। धन भारत के लिये पागलपन और पराजय के लिये कारण बन सकता है। जिस दिन भारत देश से धर्म उठ जायेगा उस दिन कुछ नहीं बच सकता। भगवान् ने हमें जागृत किया है यदि उसे भुला दिया तो बहुत अनर्थ हो जायेगा। आर्टिफिशियल गैस तब तक काम कर सकती है जब तक आपके फेफड़े कार्य कर रहे हों। इसी प्रकार धन आपके लिये तब तक सहाई हो सकता है जब तक तुम्हारे अन्दर धर्म है। (धन आर्टिफिशियल गैस के समान है और धर्म फेफड़े के समान है)

❑ ❑ ❑

आज भारत सरकार पशुओं का मांस विदेश निर्यात कर रही है यह बहुत बड़ी हत्या है। पशु हत्या भारत के लिए कलंक है। अपने राष्ट्र की उन्नति के लिए पशुओं का मांस बेचना सरासर अन्याय है मानवता का अपमान है। मात्र धन ही सब कुछ नहीं है आज जो धन के लिए पशुओं की हत्या हो रही है इससे राष्ट्र की उन्नति नहीं हो सकती। दूसरों का वध करके हम अपनी रक्षा क्या कर सकेंगे? पशु हत्या, पशु वध, मांस निर्यात यह हिंसा है, दानवता है, महा पाप है। मांस निर्यात महा हिंसा है, दानवता है, महा पाप है। मांस निर्यात कर भारत जैसे कृषि प्रधान अहिंसक देश को कलंकित मत करो। मांस निर्यात बन्द करो इसी में राष्ट्र का भला है।

मांस निर्यात रोकने अब हस्ताक्षर नहीं, हस्तक्षेप चाहिए

पशुओं का वध बिना मौत के हो रहा है, इस पशु वध को रोकने में आपका क्या सहयोग है? क्या मात्र संकल्प पत्र में हस्ताक्षर? नहीं, नहीं, पशु वध को रोकने के लिए अब हस्ताक्षर की आवश्यकता नहीं अब हस्तक्षेप चाहिए। हस्तक्षेप का अर्थ बाधा उत्पन्न करना, और वह बाधा किसमें? हिंसा में, अहिंसा में नहीं। पशु वध हिंसा है, कत्लखाने हिंसा है, मांस निर्यात हिंसा है, इस हिंसा में बाधा उत्पन्न करो, यह पशुओं की हिंसा हस्ताक्षर से रुकने वाली नहीं है इसके लिए अब हस्तक्षेप की आवश्यकता है। स्वतंत्र होने के बाद पशुओं का हमारे ऊपर डिपेन्ड होना, यानि उनका संरक्षण करते लेकिन यह भारत इतना गरीब हो गया कि पशुओं पर डिपेन्ड हो गया, यानि पशुओं को मारकर उनका खून मांस बेचकर अपनी गरीबी भगाना चाहता है उनसे पैसा कमाना चाहता है। पशुओं का मांस बेचकर क्या भारत धनी बन जायेगा पशुओं की हत्या करके यह भारत अपने कर्ज को मिटा लेगा? मांस बेचने से न भारत का उत्थान होगा और न उसकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी । कत्लखाने कृषि प्रधान देश के लिए कलंक हैं।

देश में बढ़ती हिंसाएं, बर्बरताएं हमारे विनाश का मानसून तैयार कर रही हैं। कत्लखाने, पशु हत्या, मांस निर्यात, वृक्षों की कटाई पक्षियों की तस्करी, फैलता प्रदूषण, बिगड़ता पर्यावरण हमारे जीवन मरण का प्रश्न है। यदि हमने इस बढ़ते पापाचार पर प्रतिबंध नहीं लगाया तो प्रकृति के प्रकुपित होने में अब देर नहीं है। प्रकृति का प्रकुपित प्रकोप भूकम्प, ज्वालामुखी, दुर्भिक्ष के भीषण विकराल दाडों में दुनियाँ को चबा जायेगा। अतः आवश्यकता है एक 'जन क्रांति' की जो दुनिया के हिंसक वातावरण को अहिंसा और करुणा में बदल दे।

आप गाँव में रहें या शहर में अथवा कहीं भी रहें आपको 'मांस निर्यात' के खिलाफ एक आन्दोलन करना है। इसके लिए आप अपने यहाँ एक 'मांस निर्यात निरोध परिषद' का गठन करें और जनमत तैयार करें और यह मात्र जैनों का जनमत नहीं अपितु आपके गाँव- शहर में रहने वाले जितने भी समुदाय हैं उनसे मिलकर विचार विमर्श करके उन सबके साथ अपनी आवाज को बुलन्द करें। रैलियां निकालें, धरना दें, दैनिक समाचार पत्रों में पशु वध से होने वाली आर्थिक, धार्मिक, पर्यावरणीय जानकारियाँ लेख मालाएं प्रकाशित कराएं इस आन्दोलन को मंद न होने दें।

खून मांस बेचकर, कत्लखाने खोलकर, पशुओं का कत्ल करके क्या आप ईश्वर से प्रार्थना करने के काबिल हैं? क्या आप ईश्वर से राष्ट्र की सुख समृद्धि की दुआएं माँग सकते हैं? किस मुँह से माँगोगे? किस मन से माँगोगे? किन भावनाओं से माँगोगे? ईश्वर की उपासना करने वाले देश में कत्लखानों की क्या आवश्यकता? ईश्वर की उपासना तो हिंसा, कत्ल से घृणा कराती है, सभी जीवों को जीने का सन्देश देती है, सभी से प्रेम, स्नेह, वात्सल्य सिखाती है। कत्लखाने खोलना, मांस का

निर्यात करना धर्म का अपमान है। सरकार को किसी भी धर्म का अपमान करने का अधिकार नहीं, कोई भी हिंसा को अच्छा नहीं कहता, इन कत्लखानों से धार्मिकता कम हो रही है। इन कत्लखानों से समाज को क्या शिक्षा मिलेगी? समाज तो पशुओं की रक्षा के लिए, पशु सेवा के लिए, पशु संरक्षणालय बनाता है, गौ शाला बनाता है और सरकार कत्लखानों का लाइसेंस देती है। मांस निर्यात से धार्मिक भावनाएँ आहत हो रही हैं।

जो व्यक्ति अपने लिए रोता है वह स्वार्थी कहलाता है लेकिन जो दूसरों के लिए रोता है वह धर्मात्मा कहलाता है। यदि हम दूसरों के लिए रोना सीख लेते हैं तो बहुत से लोग हँसने लगेंगे। धर्म को समझने के लिए सबसे पहले मंदिर जाना अनिवार्य नहीं अपितु दूसरों के दुखों को समझना पहले अनिवार्य है परन्तु जब तक हम हमारे दिल में किसी को जगह नहीं देंगे तब तक हम दूसरों के दुखों को नहीं समझ सकते। पहले दिल में जगह दें जमीन में नहीं, जमीन में जगह देना कोई जगह देना नहीं है यह तो सभी दे सकते हैं, लेकिन दिल में जगह देना सबके वश की बात नहीं। दिल में जगह वही दे सकता है जिसका हृदय विशाल है छोटे दिल वाला तो मात्र जमीन में जगह देता है दिल में नहीं।

जीवन में सहमति की अपेक्षा सहयोग की महत्ता है। सहमति तो हर व्यक्ति दे देता है लेकिन सहयोग हर कोई नहीं दे सकता। अब हमको सहमति की नहीं सहयोग की आवश्यकता है। जनता यदि एक दूसरे को सहयोग देने लगे तो हम एक दूसरे के बहुत निकट आ सकते हैं। एक दूसरे का सहयोग करने से हृदय में आत्मीयता का संचार होता है, परस्पर मैत्री से स्नेह दृढ़ होता है। हम आदमी को नहीं पशु पक्षियों को भी सहयोग दें उनके सुख-दुख में भी अपना हाथ बटाएं, उनको कष्ट से निकालें उनकी परेशानी दूर करें, उनकी जिन्दगी का ख्याल रखें, कहीं वे हमारे द्वारा पीड़ित तो नहीं हैं?

नेता को वोट देने वाला भी नेता से कम नहीं होता, वह भी एक नेता होता है। वोट लेने वाला नेता होता है तो वोट देने वाला भी नेता होता है। जब दोनों ही नेता होते हैं तो वोट देने वाला नेता अपने नेता के चुनाव में गलती क्यों कर जाता है? ऐसे नेता का चयन करना चाहिए जिसके द्वारा हमारा संरक्षण हो, हमारी संस्कृति, हमारे धर्म का संवर्द्धन हो। जिस नेता के द्वारा हमारा संरक्षण न हो, हमारी संस्कृति, धर्म का ह्रास हो उसको कभी भी चयन नहीं करना चाहिए। आज हमारे देश की पशु सम्पदा का विनाश हो रहा है और यह सब कौन करा रहा है? आखिर है तो सरकार ही न? सरकार ही ने तो कत्लखाने खुलवाये हैं। फिर हमारा क्या कर्त्तव्य होता है? जिसको हमने वोट दिया अपना प्रतिनिधि बनाया यदि वही हमारी आवाज को न सुने तो हमको उस नेता से सत्ता वापस ले लेना चाहिए। इसमें कोई बुराई की बात नहीं, यह तो योग्यता की बात है, किसी पार्टी की नहीं।

आप अपनी ताकत जगाइये, आपके पास विराट शक्ति है। आप अपनी भावनाओं, भावों की शक्ति से सारी दुनियाँ बदल सकते हैं आप अपनी सम्प्रेषण की शक्ति को जानिए। सम्प्रेषण का अर्थ भावों का खेल है, भावों की शक्ति का चमत्कार। आप अपनी सम्प्रेषण की शक्ति से सारी दुनियाँ को हिला सकते हैं। आप अपने भावों में करुणा, अहिंसा, दया को भरिए आप अपने अहिंसक भावों का सम्प्रेषण डालिये। यदि आपके भावों में सहानुभूति है, तो बिना दवा के भी रोगी ठीक हो सकता है।

हमारी दया सक्रिय होना चाहिए। निष्क्रिय नहीं। सक्रिय दया का अर्थ आचरण में उसका पालन होता है। यदि हमारी दया सक्रिय हो जाये जो आज ही कत्लखाने बन्द हो सकते हैं। हर समाज में कितनी कितनी संस्थाएँ हैं लेकिन सक्रिय न होने के कारण हमारी जीत नहीं हो पा रही है अगर हम सब मिलकर बीड़ा उठा लें और संकल्प कर लें कि हम भारत से मांस निर्यात नहीं होने देंगे तो सरकार की क्या मजाल कि वह इसको रोक सके। अपनी दया को सक्रिय करो भावनाओं में स्फूर्ति लाओ और जुट जाओ इस जीव दया के कार्य में। एक दिन अवश्य विजय मिलेगी, अवश्य जीत होगी बस आप लोग लगे रहो इसकी गति को मंद मत होने दो एक दिन अवश्य आयेगा जिस दिन मांस निर्यात रुक जायेगा।

❑ ❑ ❑

दूध बेचो खून नहीं

जो बच्चे अपनी माँ को खो देते हैं यानि बच्चे को जन्म देकर जिसकी माँ मर जाती है, उन अनाथ बच्चों का पालन-पोषण गौ माता के दूध से हो जाता है। गौ का दूध आदमी के बच्चों को पुष्ट करता है, शक्ति देता है, उनको एक लम्बी उम्र देता है। जो शक्ति माँ के दूध में नहीं वह शक्ति है गौ माता के दूध में। ऐसी शक्तिवर्धक, स्वास्थ्य की जननी गौ माता का आज वध हो रहा है, जिसका हमने दूध पिया, उसी का आज खून बेच रहे हैं। भारत के लिये यह बहुत बड़ा कलंक है। भारत आज गौ मांस बेच रहा है, गौ की हत्या कर रहा है। भारत ने कत्लखाने खोल लिये हैं, मांस निर्यात कर रहा है, यह मांस बेचना भारतीय संस्कृति नहीं, भारत में तो जीवों को बचाया जाता है, उनका पालन-पोषण किया जाता है। भारत कृषि प्रधान देश है, मांस प्रधान नहीं। आज भारत में मांस का व्यापार हो रहा है, शराब का व्यापार हो रहा है, अण्डों की खेती हो रही है, यह सब भारत के लिये कलंक है। मांस, शराब, अण्डे, मछली को बेचकर यह भारत कभी भी उन्नति नहीं कर सकता, क्योंकि यह सब हिंसा है। यह हिंसा का पैसा, खून का पैसा, तुम्हारे मस्तिष्क को विकृत कर देगा और सारा पैसा दिमाग को ही ठीक करने में खर्च हो जायेगा फिर देश की उन्नति के लिये क्या बचेगा?

राष्ट्र का विकास अहिंसा से ही हो सकता है, हिंसा से नहीं। यदि तुम भारत की उन्नति चाहते हो तो हिंसा को रोक दो हिंसा से इस देश को मुक्त कर दो। इस देश की उम्र बढ़ जायेगी, यदि हिंसा को नहीं रोक सके तो समझ लेना देश की उम्र बहुत कम बची है। हिंसा बहुत बड़ा गुनाह है। हिंसा से बढ़कर पाप नहीं है, हिंसा सब पापों की जड़ है।

जीवित पशुओं को मारकर उनका मांस बेचकर हम अपने देश को अहिंसा का संदेश कैसे दे सकते हैं? मांस का निर्यात करके पैसा कमाना यह धन कमाने का साधन कतई नहीं हो सकता। भारत को खून, मांस बेचना छोड़ देना चाहिए। खून, मांस बेचकर भारत सुखी नहीं हो सकता।

मांस निर्यात करना सबसे बड़ा घोटाला है, लेकिन आश्चर्य इस बात का है कि इस महा घोटाले को कोई घोटाला नहीं समझ रहा है और इसके विषय में कोई आवाज नहीं उठा रहा है। देशवासियों का यह पहला कर्त्तव्य है कि वे सबसे पहले मांस निर्यात के हिंसक घोटाले को बंद करवायें, जब तक पशु हत्या का घोटाला रुकेगा नहीं, तब तक यह भारत अपना विकास नहीं कर सकता। भारत का विकास पशु हत्या को रोकने में ही है।

इन जानवरों को मारकर हम कैसे जिंदा रह सकते हैं? इन गाय- बैल इत्यादि को फसल की तरह नहीं उगाया जा सकता। पेड़-पौधों को तो उगाया जा सकता है, लेकिन इनको उगाया नहीं जा सकता। भारत के अपने आदर्श हैं, लेकिन मांस बेचकर भारत ने अपने सारे आदर्श मिटा डाले। आदर्श के नाम पर उसके पास कुछ नहीं बचा। भारत को पुनः उन संस्कारों को जीवित करने की आवश्यकता है, जिनको वह भूल गया है, यदि इन अहिंसा के संस्कारों को जीवित नहीं किया गया तो हिंसा का प्रलय हम सबको तबाह कर देगा। अतः हमको मांस-निर्यात बंद करके ही अहिंसा के संस्कारों को जीवित करना है।

आज के आदमी का सबसे ज्यादा पैसा दिमाग और दवाई में ही खर्च होता है, पेट में नहीं। वह अपने पेट को अच्छी- अच्छी चीज खिलाना चाहता है, लेकिन उसका दिमाग खराब होने के कारण वह खिला नहीं पाता। उसका दिमाग इसलिए खराब है, क्योंकि उसके दिल में दया मर गई। दया के समाप्त हो जाने पर दिल बेकार हो जाता है और जिसका दिल बेकार हो जाये, उसका पेट ठीक कैसे रह सकता है और खराब पेट वाला आहार नहीं दवाई खाता है। आज हम अपने दिल और दिमाग को ठीक कर लें हमारा पैसा दवाई से बच जायेगा और उस पैसे से हम अपने देश की तरक्की अच्छी तरह से कर सकते हैं।

भले आप राम, महावीर को याद न करो लेकिन दया को याद रखो, क्योंकि जहाँ दया है वहीं राम हैं, वहीं महावीर हैं। दया ही राम है, दया ही महावीर है। आज भारत के पास दया नहीं रही इसलिए वह मांस निर्यात जैसे खूनी कर्म करने लगा, अन्यथा दूध का देश खून क्यों बेचता? ❑

जो करे देश का सुधार वह है सच्ची सरकार

ऐसी सरकार को लेकर क्या करना जो बूचड़खाने खोले, पशुओं का वध करे मांस का निर्यात करे, हमको वह सरकार चाहिए जो हिंसा, कत्लखाने, पशु-वध और मांस निर्यात पर प्रतिबंध लगाये, इनको रोके। इन कत्लखानों में मात्र पशुओं का ही वध नहीं हो रहा है अपितु जनता की धार्मिक एवं मानवीय भावनाओं को मारा जा रहा है। ऐसा करके क्या हम अपने देश में सुख, शांति, अहिंसा, मैत्री, का वातावरण तैयार कर सकते है? क्या इन कत्लखानों से सत्य, अहिंसा जीवित रहेगी? क्या इन कत्लखानों से मानवता जिन्दा रहेगी? हिंसा का उद्योग देश में हिंसा ही फैलायेगा, अहिंसा नहीं। सरकार अहिंसा की बात करती है लेकिन हिंसा के कार्य छोड़ती नहीं। अहिंसा की स्थापना हिंसा से नहीं हो सकती। आज हमको हिंसा नहीं अहिंसा चाहिए, अहिंसा को समाप्त करके क्या हिंसा से देश बचा पायेंगे?

सरकार को चाहिए कि वह हिंसा को रोके, जो हिंसा को न रोक सके वह देश को बर्बादी से नहीं बचा सकता। यह हमारी दृष्टि का भ्रम है कि हम पशुओं के मांस निर्यात से अपने देश की आर्थिक सम्पदा का विकास करना चाहते हैं आर्थिक विकास के लिए हमको मौलिक व्यवसायों को अपनाना होगा व्यक्तिगत परिश्रम को मजबूत करना होगा, अपव्यय और अनावश्यक उत्पादनों को रोकना होगा। यदि हम व्यक्तिगत परिश्रम को मजबूत कर लें, तो हम स्वयं अपने ऊपर डिपेण्ड (आश्रित) हो सकते हैं। परिश्रम का अभाव देश में गरीबी पैदा कर रहा है, हर व्यक्ति परिश्रम करने लगे तो देश का आर्थिक विकास बहुत जल्दी हो सकता है। लेकिन देश की मौलिक चेतन सम्पदा को चौपट करके उसके बदले में कुछ विदेशी मुद्रा का लालच हमारे देश को चौपट कर रहा है।

भारतीय इतिहास में ऐसा युग कभी भी नहीं आया जिस वक्त भारत ने मांस का निर्यात किया हो, अपितु हर युग में भारत ने पशुओं का संरक्षण किया है उनको बचाया है लेकिन आज के शासकों को यह कौन-सी धुन सवार हो गई है पशु वध करना, यह एकदम विपरीत कदम है इसको रोकना चाहिए। देश को जानवरों से विहीन मत होने दें सरकार का कर्त्तव्य है कि वे इस ओर अपने कदम उठाये। जनता कत्लखानों के विरोध में अपनी आवाज उठा रही है उसको सुने, सरकार को जनता की आवाज सुनना चाहिए। जनता का फर्ज होता है कि वह ऐसी सरकार का चुनाव करे जो अहिंसक कार्य करे, जनता अपने प्रतिनिधियों का चयन करती है लेकिन उसको यह सोचना चाहिए कि हमारा प्रतिनिधि कैसा हो, चरित्रवान, आस्थावान, निःस्वार्थी, न्यायी, सेवक, अहिंसक प्रतिनिधि को चुनना चाहिए। अगर आप अपनी धार्मिक भावनाओं की रक्षा करना चाहते हो तो ऐसी सरकार बनाओ जो हिंसा से देश को मुक्त कर कत्लखाने रहित भारत का निर्माण करे।

जब तक बुरी चीज का त्याग नहीं होता तब तक अच्छी चीज का ग्रहण नहीं हो सकता और बुरी चीज का त्याग भी तभी होता है जबकि बुरी चीज का ज्ञान हो जाये। बुरा क्या है? अच्छा क्या है? इसका सबसे पहले ज्ञान करो, समझो। तुम्हारी अच्छाई से कई लोगों की बुराइयाँ छूट सकती हैं, दूसरों की बुराइयाँ तुम्हारी अच्छाई से छूट सकती हैं। लेकिन बुराईयों को छोड़ने के लिए हमको आस्था की सबसे बड़ी आवश्यकता है क्योंकि त्याग का क्रम आस्था के बाद ही आता है। हम आस्थावान बन जायें हमको हमारी बुराइयाँ समझ में आने लगेंगी। बुराईयों को समझना ही अच्छाईयों का मार्ग है। बुराई को समझो और भलाई पर लग जाओ।

धन जीवन का ध्रुव बिन्दु नहीं है, वह तो एक सहारा है एक पगडंडी है उसको जीवन का लक्ष्य नहीं बनाना चाहिए। जीवन धन के लिए नहीं जीवन तो धर्म के लिए है, धन एक साधन है अपनी जरूरतों को पूर्ण करने का। धन साधन है जबकि धर्म साधना है, धन पेट के लिए है धर्म शांति के लिए है, धन से तो हमारा पेट भरता है लेकिन शांति पेट भरने से नहीं मिलती क्योंकि पेट शांति का स्थान नहीं शांति का स्थान तो आत्मा है और धर्म आत्मा की खुराक है। इसलिए जीवन में धन के साथ-साथ धर्म भी होना अनिवार्य है। धर्म और धर्म के स्वरूप को समझे बिना हम अपने इष्ट की प्राप्ति नहीं कर सकते।

धर्म आत्म शांति का विज्ञान है, आत्म खोज का विज्ञान है। धर्म की परिभाषा मानव ने नहीं अपितु धर्म ने मानव को धर्म की परिभाषा सिखाई। वस्तुतः धर्म परिभाषाओं की वस्तु नहीं क्योंकि धर्म भाषा नहीं भाव है। हम धर्म को भाषाओं से समझ रहे हैं इसलिए धर्म को नहीं समझ पा रहे हैं, धर्म भावों से समझा जाता है लेकिन वे भाव भी आपके पास होना चाहिए जो आपको समझा सकें। धर्म समझ में आने पर जीवन अधर्म से बच जाता है। धर्म हमको गुनाहों से बचने का संकल्प देता है, एवं आत्मिक उत्थान की ओर ले जाता है। धर्म हिंसा और अशांति का विरोधी है, वह हिंसा को कभी पसंद नहीं करता क्योंकि हिंसा अशांति है। दुनियाँ का कोई भी प्राणी हो उसकी पहली माँग आत्म शांति ही होती है। वह आंतरिक क्लेशों से बचना चाहता है, यह बात अलग है कि वह शांति के यथार्थ मार्ग को न समझ अशांति की पगडंडी में भटकता रहता है। धर्म जीवन विज्ञान है। मानव जाति आज संकट में गुजर रही है क्योंकि उसने धर्म को ठुकराया है इसीलिए वह ठोकर खा रही है। यदि हम अपना सर्वांगीण चहुँमुखी विकास चाहते हैं तो हमको अहिंसा धर्म की वेदी पर अपना माथा टेक जीवन में उसको ट्रान्सलेट (परिवर्तित) करना होगा।

❑ ❑ ❑

मांस निर्यात करना, राष्ट्रीय चिह्न का अपमान है

प्रकृति को रोकना डेन्जर (खतरा) है प्रकृति को मत रोकिए यदि तुमने प्रकृति को रोकना चाहा तो समझ लो तुम्हारा जीवन खतरे में है। आज हमने प्रकृति से छेड़छाड़ करके अनेक खतरे पैदा कर लिए हैं, हमने नदियों को रोक लिया बांध बना लिया। याद रखो, नदियों में कमी भी ''डेंजर'' नहीं लिखा रहता जबकि बांधों में ''डेंजर'' लिखा रहता है क्योंकि हमने प्रकृति से छेड़छाड़ किया है, नदियों को रोक कर हमने कई खतरे पैदा कर लिए हैं। प्रकृति में रहो लेकिन प्रकृति के अनुसार रहो प्रकृति के अनुसार चलने में ही मानवजाति का भला है, यदि मानव जाति को खतरों से बचाना चाहते हो तो प्रकृति के प्रतिकूल मत चलो। जीवन में राइट नॉलेज (समीचीन ज्ञान) होना चाहिए, यह दुनियाँ भटक रही है क्योंकि इसके पास राइट नॉलेज नहीं है, हमारे पास सब कुछ है किसी बात की कमी नहीं है लेकिन हमारे पास सबसे बड़ी गरीबी राइट नॉलेज की है। यदि तुम आत्मशांति की खोज करना चाहते हो तो बाहर की यात्रा बंद कर दो। शांति बाहर नहीं मिलेगी शांति भीतर मिलती है और आत्मशांति के लिए समीचीन ज्ञान की आवश्यकता है। जब हमको राइट नॉलेज हो जाता है तब हम अपने (राइट) अधिकार की बात करना छोड़ देते हैं यानि हम कर्त्तव्य की ओर बढ़ जाते हैं। बात कर्त्तव्य की करो, अधिकार की नहीं, कर्त्तव्य ही जीवन है, अधिकार नहीं। यदि हम दुनियाँ का भला करना चाहते हैं तो हमको कर्त्तव्यशील बनना होगा और अधिकार की बात को छोड़ना होगा। सच्चा ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमको भीतरी चेतना को समझना होगा। वह सच्चा ज्ञान मंदिर में ही नहीं रणांगन (युद्ध भूमि) में भी हो सकता है। इसका ज्वलंत उदाहरण है भारतीय इतिहास का आदर्श नरेश सम्राट अशोक महान्, अशोक महान् को सच्चा ज्ञान मंदिर में नहीं युद्ध में हुआ था, अशोक ने जब युद्ध भूमि में लाशों का ढेर देखा उसकी आत्मा काँप उठी, वह रो पड़ा, उसका दिल दहल उठा और उसकी आत्मा चिल्ला उठी, ये नरसंहार आखिर किसके लिए? नहीं, नहीं राष्ट्र की रक्षा के लिए, प्रजा की उन्नति के लिए? यह खून खराबा उचित नहीं और उसने आजीवन युद्ध का त्याग कर दिया। उसने सोचा दूसरों के खून से राष्ट्र की उन्नति संभव नहीं, प्रजा की रक्षा और राष्ट्र की उन्नति के लिए अहिंसा ही एक मात्र सच्चा साधन है।

उस अशोक महान् की मुद्रा ही आज हमारा राष्ट्रीय चिह्न है। हमारे देश का राष्ट्रीय चिह्न ही अहिंसा का प्रतीक है। जब हमारे देश की राष्ट्रीय मुद्रा ही अहिंसा का प्रतीक है तो फिर देश हिंसा का सहारा लेकर राष्ट्र की उन्नति का स्वप्न क्यों देख रहा है। अशोक ने युद्ध का त्यागकर दिया था, क्या भारत को नहीं मालूम कत्लखानों में युद्ध से भी बदतर स्थिति है। जहाँ जिन्दा जानवरों का कत्ल कर दिया जाता है फिर अशोक महान् की मुद्रा को राष्ट्रीय चिह्न बनाने का क्या अर्थ? यदि हमारी राष्ट्रीय मुद्रा अहिंसा का प्रतीक है तो हमको भी अहिंसा का अनुपालन करना चाहिए। अन्यथा

राष्ट्रीय मुद्रा का अपमान है। जिस मुद्रा में "**सत्यमेव जयते**" का वेद वाक्य लिखा हो फिर भी सरकार मांस का निर्यात करे यह कौन सा आदर्श है।

जिसको आप माँ कहते हैं और उसी गौ माँ का मांस बेचकर राष्ट्र का उत्थान चाहना यह कितनी लज्जा शर्म की बात है। भले ट्रेक्टर से कृषि हो जाये लेकिन ट्रेक्टर से दूध नहीं मिल सकता, घी नहीं मिल सकता, खोवा, गोबर नहीं मिलेगा।

अतः गौ रक्षा अनिवार्य है। यदि गैय्या नहीं रही भैय्या तो याद रखो भगवान् की आरती के लिए भी पेट्रोल की आवश्यक्ता होगी क्योंकि घी गाय से मिलेगा ट्रेक्टर से नहीं। गाय एक चेतन धन है जड़ धन के लिए चेतन धन को नाश करके धन की वृद्धि करना बिल्कुल बेकार है यह तो अभिशाप है, इससे देश का कुछ भी उत्थान नहीं होगा। भारत को किस बात की कमी है। भारत के पास कृषि के लिए बहुत जमीन है फिर आज मछली की खेती, अण्डों की खेती, मांस की खेती क्यों की जा रही है?

गाँधी जी के शब्दों में () अर्थात् गाय करुणा की कविता है। उन्होंने गौ रक्षा का अर्थ भी बहुत अच्छा किया ( ) अर्थात् गौ रक्षा का अर्थ क्या है? ईश्वर के समग्र मूक सृष्टि की रक्षा करना गौ रक्षा है। मूक सृष्टि का अर्थ पशु जगत् के समग्र प्राणी जैसे-गाय, बैल, भैंस, घोड़ा, बकरी, बकरा, मुर्गा, मेंढक, मछली, पक्षी इत्यादि सब। गाय का दूध पीने वालो गाय का खून मत होने दो, राष्ट्र की रक्षा और प्रजा का पालन हमारा धर्म होना चाहिए यदि हम राष्ट्र की रक्षा और प्रजा का पालन नहीं कर सके तो हमारा अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा। हमारे पास आज राष्ट्रीय गीत है, राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रीय चिह्न है लेकिन हमारे 'राष्ट्रीय चरित्र' नहीं है यदि हम अपना राष्ट्रीय चरित्र बना लें तो हमारे राष्ट्र का भला है। वह राष्ट्रीय चरित्र क्या है? सत्य और अहिंसा ही हमारा राष्ट्रीय चरित्र हो, सत्य और अहिंसा ही हमारा राष्ट्रीय धर्म हो, और यदि हमारे नस-नस में इस राष्ट्रीयता का संचार हो जाये तो फिर हमको किसी दूसरी चीज का सहारा लेने की कोई आवश्यकता नहीं। हमारा राष्ट्रीय ध्वज अहिंसा का प्रतीक है, अहिंसा की ध्वजा को फहराने वाला देश, करुणा, विश्व मैत्री, विश्व शांति का अमर सन्देश देने वाला देश, गाय की आरती और पूजा करने वाला देश मांस निर्यात कर अपने आदर्श को खो रहा है अपनी संस्कृति को कलंकित कर रहा है!!! "**विनाश काले विपरीत बुद्धि**" वाली कहावत चरितार्थ होने वाली है याद रखो। दूध फटने के बाद उसमें कितना भी अच्छा रसायन डालो वह दूध पुनः सही नहीं हो सकता इसी प्रकार यदि एक बार देश की संस्कृति फट गई, विकृत हो गई तो समझ लो देश बचने वाला नहीं है। भारत के उज्ज्वल भविष्य के लिए देश की पशु सम्पदा को बचाना आवश्यक है और इसके लिए देश के कर्णधारों को जागना है। जो कर्णधार तो हैं लेकिन उनके कानों में आवाज नहीं जाती।

आप भारत के अतीत उन पवित्र पद चिह्नों में चलिए जिससे दुनियाँ को सच्चाई का मार्ग मिले सत्य का दर्शन हो, और असत्य से घृणा हो। हमारा आचरण ऐसा हो कि हमारे द्वारा प्रजा का ही नहीं अपितु प्रतिपक्ष का भी संरक्षण हो। सन्तों का यह उपदेश है कि आप अपनी यात्रा रोकिए मत अपने जीवन को उन्नति के मार्ग पर लगाइये। अशोक महान् के आदर्श को मत भूलिये, जिससे हमारी राष्ट्रीय मुद्रा बनी है। विदेशी मुद्रा के खातिर अपनी मुद्रा (दशा) मत बिगाड़ो। सबका संरक्षण करो, सबका भला करो, किसी का वध मत करो, किसी को मत सताओ, किसी की जान पर हमला मत करो, पशुओं की रक्षा करना ही धर्म है।

❑ ❑ ❑

राष्ट्र का उत्थान कत्लखानों से नहीं

यह भारत भूमि है, यह कृषि प्रधान देश है। जहाँ वेदों, पुराणों की पूजा होती है, यहाँ प्रत्येक प्राणी को अभयदान दिया जाता है यहाँ बीजों को भी बचाया जाता है क्योंकि उनमें भी अंकुर का जीवन होता है वृक्ष का विकास होता है। जीवन की रक्षा ही भारतीय संस्कृति है लेकिन आज यह भारत किस उन्मार्ग पर जा रहा है इसका बड़ा दुख है। बीजों को भी कष्ट न पहुँचाने वाला यह भारत आज बड़े-बड़े गाय, बैल, भैंस, इत्यादि जिन्दा जानवरों को कत्ल करके उनका मांस खून बेच रहा है। यहाँ की गाय भी गीता से कम पवित्र नहीं है लेकिन इस भारत ने उस पवित्र गाय को भी कत्ल करने का घिनौना कुकृत्य प्रारंभ कर दिया है। गाय का खून, मांस बेचकर विदेशी मुद्रा कमा रहा है, यह हत्या का काम भारत को चौपट कर देगा, किसी की हत्या करके, खून करके, हम अपने खून के जीवन को सुरक्षित नहीं रख सकते। इसके लिए हमको भारत से मांस का निर्यात तुरन्त बंद कर देना चाहिए।

भारत की अहिंसा का आदर्श आज भी हमारे शास्त्र पुराणों में सुरक्षित है यह वह भारत है जहाँ यज्ञ-हवन की पूजन सामग्री के लिए भी अग्नि में होम के लिए भी यह कहा जाता था कि " **यजैर्यष्टव्यम्**" अर्थात् यज्ञ की अग्नि में उन धानों (बीजों) की आहूति करो जो धान तीन वर्ष पुराने हैं, जिनमें उगने, अंकुरित होने की शक्ति नहीं रही है उन निर्जीव धानों(बीजों) का अग्नि में हवन करो, यह है भारतीय संस्कृति जहाँ जीवित बीजों को भी अग्नि में नहीं डाला जाता। लेकिन आज भारत की वह आदर्श संस्कृति कहाँ गायब हो गई? आज तो जिन्दा जानवरों को यांत्रिक कत्लखानों में, मशीनों में काटा जा रहा है, ये कत्लखाने प्रतिदिन लाखों की संख्या में पशुओं की बलि ले रहें हैं, इतना ही नहीं करंट के द्वारा जानवरों को मारा जा रहा है और यह सब कर रही है हमारी सरकार।

सोना, चाँदी, हीरा, मोती का निर्यात करने वाला यह भारत आज खून, मांस हड्डी का निर्यात कर रहा है। इन जानवरों को मारकर के उनका मांस निर्यात करके यह भारत कभी भी अपनी उन्नति नहीं कर सकता। राष्ट्र को कत्लखानों की आवश्यकता नहीं भारत को पशु शालाओं की आवश्यकता है, गौ शालाओं की आवश्यकता है, दुग्ध शालाओं की आवश्यकता है। गायों को मारकर सरकार विदेशियों के पेट में गौ-मांस डाल रही है और यहाँ दूध की भुखमरी पड़ रही है देश में नकली दूध का प्रचलन बढ़ रहा है, जिस नकली दूध से घातक बीमारियाँ बढ़ रही हैं - आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने पशुओं को सुरक्षित रखें ताकि हमको शुद्ध दूध और खाद की प्राप्ति हो और जहरीले नकली दूध, घी, खाद से बचे रहें।

यह कौन सी सरकार है जो अण्डों को शाकाहारी कह रही है और झूठा प्रचार कर रही है। अण्डे कभी शाकाहारी नहीं हो सकते, अण्डे तो मांसाहारी ही हैं, अण्डों में जीव है, वह भ्रूण है, उसमें जीवन है। अण्डे किसी वृक्ष पर नहीं लगते। अण्डों का उत्पादन किसी वृक्ष पर नहीं होता, अण्डे कोई फल नहीं हैं, वह तो मुर्गी का बच्चा है। ऐसे जीवित अण्डों को शाकाहारी कहना सरासर अन्याय है। दुनियाँ का कोई भी अण्डा शाकाहारी नहीं हो सकता। आज वैज्ञानिकों ने भी इसी बात को सिद्ध कर दिया कि अण्डा मांसाहारी ही है और वह अण्डा मानव स्वास्थ्य के लिए घातक है, उसका सेवन कैंसर जैसे प्राणघातक रोगों को जन्म देता है अतः सरकार को जनता के साथ अन्याय नहीं करना चाहिए और टी.वी. में अण्डों का विज्ञापन बंद होना चाहिए। यह देश के साथ खिलवाड़ है।

क्या यही पचास वर्ष का विकास है? कि हम अण्डों को शाकाहारी कहने लगे? मांस को बेचने लगे, मांस खून को सुखाकर पैकेट में बंद कर बेचने लगे? विकास के नाम पर देश में हिंसा का विकास हुआ है, अन्याय का विकास हुआ है, अत्याचार का विकास हुआ है, मानवीय सभ्यता, संस्कारों और चरित्रों का ह्रास हुआ है यही है हमारी पचास वर्ष की उपलब्धि। परतंत्र भारत में मांस का निर्यात नहीं हुआ, लेकिन आज स्वतंत्र भारत में मांस का निर्यात हो रहा है। हम स्वर्ण जयंती का जश्न मनाने की तैयारियाँ कर रहे हैं मात्र सभा, संगोष्ठी, सम्मेलनों के रूप में। इससे भारत का कुछ विकास नहीं हो सकता, भारत के विकास के लिए अहिंसा चाहिए, सत्य चाहिए। किसी ने मुझसे कहा महाराज १५ अगस्त को आप कोई विशेष कार्यक्रम देंगे क्या? मैंने कहा मैं तो रोज १५ अगस्त मना रहा हूँ क्योंकि आप लोगों ने आजादी का दुरुपयोग किया है मैं तो आजादी का महोत्सव प्रतिदिन मनाता हूँ मेरे लिए १५ अगस्त रोज है क्योंकि मैंने समझा है- आजादी का सही मायना। आजादी की स्वर्ण जयंती का मनाना तभी यथार्थ होगा कि हम अपने देश से हिंसा, अन्याय, अत्याचार को समाप्त कर दें और अहिंसा, न्याय, सदाचार को अपने जीवन में उतार लें। यदि हमारे जीवन में अहिंसा नहीं, सत्य नहीं, न्याय नहीं, सदाचार नहीं तो फिर हम अपने देश को सुरक्षित नहीं

रख पायेंगे, क्योंकि देश की रक्षा, सत्य अहिंसा न्याय सदाचार से ही होगी, अकेले राष्ट्रीय जश्न मनाने और गीत गाने से नहीं होगी।

❑ ❑ ❑

नन्दी की रक्षा ही शंकर की पूजा है

शंकर का नन्दी कत्लखानों में कट रहा है और आप शंकर जी के मंदिर में पूजा कर रहे हैं। यह ठीक नहीं, अब मंदिर नहीं, कत्लखाने में कट रहे शंकर के नन्दी को बचाओ यही सबसे बड़ी शंकर की पूजा है। पशु वध रोकना ही सबसे बड़ी पूजा है। पूजा के लिए मंदिर अनिवार्य नहीं। मंदिर तो हम अपने अंदर ही बना सकते हैं, यदि हमारे दिल में करुणा और अहिंसा की वेदी बनी है तो समझ लो अवश्य तुम्हारे अन्दर परमात्मा का मंदिर बना हुआ है, और तुम उस परमात्मा की पूजा कर रहे हो। हम आज मंदिर में पूजा कर लेते हैं और समझ लेते हैं कि हमने परमात्मा को खुश कर लिया, नहीं, नहीं, जब तक हमारे अन्दर से हिंसा, क्रूरता, बर्बरता निकल नहीं जायेगी तब तक हम अपने भीतरी भगवान् को नहीं समझ पायेंगे। अब मंदिर में जाकर भगवान् की पूजा करने की अपेक्षा, जो कत्लखानों में पशु कट रहे हैं उन पशुओं की हत्या रोको उनकी जान बचाओ यही सबसे बड़ी पूजा है।

पशुओं की रक्षा के लिए उनके संरक्षण के लिए हमको अपने गाँव में गौ-शाला का अवश्य निर्माण करना चाहिए। गौ-शाला भी मंदिर से कम नहीं है उस गौ-शाला में भी आपको परमात्मा के दर्शन हो सकते हैं वहाँ आपकी पूजा हो सकती है, वहाँ भी आपका भजन हो सकता है। अहिंसा के दर्शन आपको गौ शाला में भी हो सकते हैं इसलिए आप गौ-शाला का अवश्य निर्माण करें। दूसरी बात, यदि आपके घर में गाय, बैल, भैंस आदि जानवर हैं और जब वे वृद्ध हो जाते हैं तो आप उनको बेचें नहीं। यदि आप बूढ़े गाय-बैल आदि पशुओं को बेचते हैं तो अवश्य आप पाप के भागीदार हैं क्योंकि वे बूढ़े जानवर कसाई के यहीं जावेंगे और वह उनका कत्ल करेगा और मांस बेचेगा। इसलिए हमारा कर्त्तव्य है कि हमने जिनसे जीवनभर काम लिया उनसे खेती की, उनका दूध पिया अब उनको अपने माता-पिता के समान पालन पोषण करें, यही सबसे बड़ा धर्म है।

इस प्रकार से पशुओं को कत्ल होने से बचाने के लिये यह बहुत सरल उपाय है (१) गौ-शाला (२) बूढ़े जानवरों को नहीं बेचना (३) गाँव-गाँव में चौकियाँ स्थापित करना, अर्थात् जहाँ-जहाँ से ट्रकों में भर-भर कर पशु कत्लखानों में कटने के लिए चले जाते हैं उनको उन चौकियों में पकड़ना और ले जाने वालों को पुलिस के हवाले करना। गाँव-गाँव में इस प्रकार का प्रचार प्रसार करना कि कसाई जानवरों को कहीं से भी खरीद न सकें। इस प्रकार से पशु वध रोकने के उपाय हम कर सकते हैं, करना चाहिए। यदि हम गाँव-गाँव में इस प्रकार की व्यवस्था कर लें तो कत्लखाने आज बन्द हो सकते हैं।

धर्म एक नदी के समान है, धर्म एक सूर्य के समान है जिस प्रकार नदी किसी जाति, समाज, अमीर-गरीब आदि के भेद-भाव बिना जो उसके तट पर जाता है उसको जल प्रदान करती है, वह नदी किसी को मना नहीं करती कि तुम मेरा पानी मत पियो। इसी प्रकार सूर्य प्रकाश बिना भेद-भाव के सबके घरों में अपना प्रकाश प्रदान करता है। बस धर्म भी इसी प्रकार होता है। धर्म वही है जो सबको जीना सिखलाता है, धर्म वही है जो पक्षपात करना छुड़वाता है। धर्म वही है जो सुख से जीना सिखलाता है। धर्म वही है जो शांति से जीना सिखलाता है। धर्म को समझो, धर्म हमारी ईर्ष्या, राग, द्वेष छुड़वाता है, विरोध प्रतिशोध छुड़वाता है धर्म का अर्थ कर्त्तव्य होता है और कर्त्तव्य का अर्थ करने योग्य कार्य। करने योग्य क्या है? अच्छाई करने योग्य है। करने योग्य क्या नहीं है? बुराई करने योग्य नहीं है। बुराई निन्दा, चुगली, कलह, झगड़ा यह सब अयोग्य कार्य हैं इनको नहीं करना चाहिए।

यह मनुष्य मनु की सन्तान है, मनन करता है, चिन्तन करता है, विचार करता है विचारशील है लेकिन आचार शील नहीं है लेकिन अब मनुष्य को आचार शील बनना है। आचार का अर्थ नैतिक आचरण होता है हमको आज आचरण की आवश्यकता है मनुष्य के जीवन में आचरण की बड़ी कीमत होती है। आचरण के बिना मनुष्य, मनुष्य नहीं कहला सकता। कीमत मनुष्य की नहीं होती, कीमत आचरण की होती है। सदाचार की होती है, शाकाहार की होती है। यदि मनुष्य में सदाचार, सेवा, शाकाहार, सरलता नहीं तो वह मनुष्य नहीं कहला सकता। सदाचार का नाम है आदमी, सरलता का नाम है आदमी, अहिंसा का नाम है आदमी, ईमान का नाम है इंसान, मानवता का नाम है धर्म। इंसान को ईमान की पूजा करना चाहिए।

योग का नाम है आदमी, भोग का नाम नहीं। जब भोग समाप्त हो जाते हैं और योग में लीन हो जाता है तब सारे विकार समाप्त हो जाते हैं वासना एक विकृति, खराबी है, वासना को जीते बिना योग साधना प्रारम्भ नहीं हो सकती। योग साधना के लिए वासना को पहले छोड़ना होगा, वासना को भूलकर उपासना करो, प्रार्थना करो, साधना करो। वासना के साथ उपासना नहीं हो सकती। उपासना करने के लिए प्रार्थना करो, साधना करो, और कामना करो कि हमारा जीवन सफल हो इसके लिए पुण्य काम करो। मनुष्य जीवन पुण्य का फल है। इसलिए पुण्य कार्य करो पाप कार्य से बचो हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह से बचो। अच्छाई का कार्य करो, बुराइयों से बचो। मनुष्य जीवन की सफलता इसी में है कि हमें पापों से बचकर पुण्य करना है।

आचार्य श्री ने भारत की प्राचीन कानून प्रणाली एवं दण्ड संहिता का उल्लेख करते हुए कहा कि प्राचीन भारत में दण्ड के नाम पर तीन धाराएँ थी पहला 'हा' दूसरा 'मा' और तीसरा 'धिक्' इनका अर्थ यह है कि यदि किसी ने कोई अपराध कर लिया तो उसको दण्ड के नाम पर राजा मात्र 'हा' कहता था यानि हाय! हाय! तूने यह क्या कर लिया। बस इतने मात्र में वह अपराधी सुधर जाता

था। किसी को 'मा' यानि अब ऐसा कभी मत करो। और किसी को 'धिक्' यानि धिक्कार। धिक्कार। छी छी। बस ये तीन ही दण्ड थे, न सजा थी न जुर्माना और न फाँसी। मात्र शाब्दिक उच्चारण रूप दण्ड में ही उस समय का आदमी सुधर जाता था लेकिन जैसे-जैसे समय गुजरता गया उद्दण्डता बढ़ती गई और दण्ड संहिताओं का भी विस्तार होता गया और आज तो दण्ड के नाम पर सजा है, जुर्माना है, फाँसी है सब कुछ है लेकिन किसी भी प्रकार से अपराधों में कमी नहीं है दिनों दिन अपराध बढ़ते ही जा रहे हैं।

अपराधों को जन्म देने में हिंसक वातावरण का पहला हाथ है सरकार अपराधों को रोकने के लिए कानून बनाती है लेकिन हिंसक वातावरण का स्वयं निर्माण भी करती है। यह तो सत्य है कि कत्लखानों से कभी अहिंसक वातावरण का निर्माण नहीं हो सकता। जहाँ कत्ल होता है, खून होता है, जिन्दा जीवों को मशीनों से काटा जाता है, ऐसे वध स्थानों में अहिंसक वातावरण की क्या कल्पना की जा सकती है? इन्हीं कत्लखानों की वजह से ही आदमी के अन्दर भी अनेक प्रकार के अपराध जाग रहे हैं। इन कत्लखानों ने पशुओं की चोरी करना सिखला दिया, हजारों को कसाई बना दिया, अत्याचार करना सिखला दिया, यूजलैस (अनुपयोगी) जानवर के नाम पर दुधारू जानवरों का भी वध होने लगा है। जवान गाय-बैल का भी कत्ल होने लगा है। एक तरफ तो सरकार गौ-वंश के गीत गाती है और दूसरी और कत्लखाने खोलकर गाय-बैलों का कत्ल करके उनके मांस को डिब्बों में बन्द कर विदेश निर्यात करती है, और वहाँ से गोबर मंगाती है दूध पाउडर मंगाती है यह कौन सी नीति है? मांस निर्यात मनुष्यता के लिए अभिशाप है इसको रोकना चाहिए, कत्लखाने मानव जाति पर कलंक है, कत्लखाने भारतीय अहिंसक संस्कृति पर कुठाराघात है, मांस निर्यात को रोकना चाहिए पशु बचाओ और उसके लिए हम सबको एक जुट हो जाना चाहिए।

❑ ❑ ❑

वतन को बचाओ पतन से

आज लोगों को अपने तन की चिन्ता है। वतन की नहीं, इसलिए वतन का पतन हो रहा है। यदि वतन को पतन से बचाना चाहते हो तो वतन की बात करो तन की नहीं। वतन की रक्षा के लिए हमको अपने ऐतिहासिक प्रसंगों को याद करना होगा। अपना इतिहास खोलना होगा, अपनी संस्कृति को सामने रखना होगा। इतिहास और संस्कृति को भूलकर हम अपने देश का नव निर्माण नहीं कर सकते, क्योंकि हमारी संस्कृति अहिंसा प्रधान रही है जबकि आज हम अहिंसा को भूलकर हिंसा को पसंद कर रहे हैं कैसे कहें कि हम अपने देश को सुरक्षित रख सकेंगे। संस्कृति को मिटाकर, इतिहास को भुलाकर देश का सुधार नहीं किया जा सकता। संस्कृति को आदर्श मानकर ही हम अपने कदम आगे बढ़ा सकते हैं अन्यथा हम अपना कोई आदर्श स्थापित नहीं कर सकते।

भारतीय साहित्य कहता है पानी को कपड़े में छानकर पियो, रास्ते पर नीचे देखकर चलो मुँह से सत्य कहो और मन को पवित्र रखो। लेकिन आज तो लोग खून को छानकर पीने की बात कर रहे हैं! यह कितना बुरा दिन है इस देश का कितनी बड़ी अहिंसा का भाव कि पानी छानकर पियो ताकि सूक्ष्म जीवों की रक्षा हो सके, उनका घात न हो, उनकी हिंसा न हो लेकिन आज तो बड़ी हिंसा को भी ध्यान में नहीं रखा गया, पशु-वध होने लगा, पशुओं का मांस निर्यात होने लगा, कहाँ गई वह हमारी भारतीय आचार संहिता की सत्यता? आज सत्य ही लुप्त हो रहा है, पवित्रता ही लुप्त हो रही है, अहिंसा ही लुप्त हो रही है, दया, करुणा ही लुप्त हो रही है। क्या होगा इस देश का? यह आज एक विचारणीय बिन्दु है।

याद रखो। जिस दिन दया का समापन हो जायेगा यह धरती शमशान बन जायेगी। दिल में दया के रहते ही हम आपस में रहकर कुछ कर सकते है, दया के अभाव में मात्र आपसी टकराव ही होगा, हिंसा ही होगी इसलिए हिंसा को रोकने के लिए दिल में दया को पैदा करना होगा, दया हिंसा को रोकती है, जबकि दया की कमी हिंसा को जन्म देती है। देश में दया की कमी के कारण ही कत्लखाने खुल गये हैं यदि हम दया की कमी को दूर कर देंगे तो देश के सारे कत्लखाने बंद हो जायेंगे और अब समय आ गया है दिल में दया को जागृत करने का यदि हमने दया की उपेक्षा की तो यह हमारे लिए खतरनाक सिद्ध हो सकती है। आज आवश्यकता है पशुओं को बचाने की जो बेमौत मारे जा रहे हैं। बेकसूर, निर्दोष प्राणियों की हत्या महापाप है, यह महापाप हमको रोकना चाहिए। यदि हम जीव-जन्तुओं की रक्षा नहीं कर सके तो इतने बड़े राष्ट्र की रक्षा कैसे करेंगे? जीव जन्तुओं को मारना जघन्य अपराध है। पशु-वध जैसे हिंसक, क्रूर कार्य करके हम अपने राष्ट्र को उन्नत नहीं बना सकते। हिंसा से उन्नति संभव नहीं है, हिंसा को छोड़े बिना राष्ट्र उन्नत हो ही नहीं सकता।

बोलना सबको आता है लेकिन सत्य बोलना सबको नहीं आता, लाइट जलाने मात्र से जीवन में उज्ज्वलता नहीं आ जाती, जीवन में डी-लाइट (सुख) भी होना चाहिए, जीवन में मात्र रास्ता नहीं साथ-साथ आस्था भी चाहिए, वस्तुतः जिस दिन मांस निर्यात रुकेगा उसी दिन सही '**स्वतंत्रता दिवस**' होगा। यह स्वतंत्रता नहीं है कि हम मनमानी करें स्वतंत्रता का अर्थ तो सभी जीवों को जीने का समान अधिकार दिलाना होता है यह कौन-सी स्वतंत्रता है कि हम अपने लिए तो मानवाधिकार की बात करें और पशुओं को अनुपयोगी कहकर उनका कत्ल कर दें। यह मानवाधिकार भी नहीं है। मानव को यह अधिकार नहीं है कि वह किसी की जान पर हमला करके किसी का जीवन छीने। जीने का अधिकार सबको है मृत्युदण्ड भी उसी को मिलता है जिसने कोई क्रूर अपराध किया हो लेकिन ये बेकसूर पशु निरपराधी हैं। इन्होंने कोई अपराध नहीं किया है फिर इनको बेमौत क्यों मारा जा रहा है? इस अपराध की भी सजा होना चाहिए।

भारत वह राष्ट्र है जिसने हमेशा सारे विश्व को दिशा बोध दिया है और अहिंसा का सन्देश दिया है लेकिन वही भारत आज अपनी दिशा से भटक गया है। अहिंसक देश को आज अहिंसा का उपदेश देना पड़ रहा है। क्योंकि उसने हिंसा को विकास का साधन समझ लिया है। जो गलत कदम है। मात्र अर्थ नीति ही सब कुछ नहीं है परमार्थ नीति भी होना चाहिए। अर्थ नीति देश को समृद्ध नहीं कर सकती, भौतिक सुख सुविधाएँ आदमी को सुखी नहीं बना सकती। सुखी बनने के लिए परमार्थ नीति की आवश्यकता है। केवल अर्थ नीति व्यक्ति को सन्तुष्ट नहीं कर सकती उसके साथ परमार्थ भी होना चाहिए परमार्थ का अर्थ न्याय नीति का सहारा लेकर जीवन विकास है।

हम न्याय की बात करते हैं लेकिन न्याय का काम करना नहीं चाहते। हमारे न्यायालय किसलिए हैं? न्याय और कानून की व्यवस्था हिंसा और अपराध को रोकने के लिए ही तो हैं न कि 'शो' के लिए। फिर हमारे न्याय का क्या अर्थ जो हिंसा पर प्रतिबंध न लगा सके। क्या न्यायालय कत्लखाने नहीं रुकवा सकता? हिंसा को रोकने में न्यायालय की क्या भूमिका है? ये कत्लखाने हिंसा और कत्ल के ठिकाने हैं, ये कत्लखाने पर्यावरण के लिए घातक हैं। प्रदूषण, गन्दगी फैलाने वाले हैं इन पर प्रतिबन्ध लगाना चाहिए कत्लखाने मुक्त भारत का निर्माण करो यही भारत की सही स्वर्ण जयन्ती है।

❑ ❑ ❑

घी की नहीं गाय की रक्षा करो

घी का दीपक मंगल का प्रतीक है, घी के दीपक से आँख की ज्योति बढ़ती है। घी के बिना हम भोजन कर सकते हैं लेकिन घी के जले बिना हम प्रकाश प्राप्त नहीं कर सकते, जीवन को भोजन नहीं प्रकाश चाहिए। विदेश में घी नहीं है इसलिए वहाँ आरती भी नहीं है, विदेश में दूध है, मक्खन है, दही है, मलाई है, लेकिन घी नहीं, घी भारत की पहचान है। अतः वह घी की मूल प्रदाता गाय की रक्षा करना आज का हमारा प्रथम कर्त्तव्य है। हमको घी की नहीं गाय की रक्षा करना है। गाय की रक्षा होने पर घी की रक्षा स्वयं हो जावेगी।

घी का दीपक जलता है लेकिन उसके जलने से दूसरों को प्रकाश मिलता है। तुम जलना प्रारंभ कर दो, जलाना नहीं, तुम मिटोगे नहीं, मरोगे नहीं, तुम समाप्त नहीं होगे। तुम जलोगे, दूसरों को प्रकाश मिलेगा, तुम जलाओगे स्वयं मिट जाओगे। आज हम दूसरों को जला रहे है, हिंसा से बढ़कर और कौन सी आग हो सकती है? भारत ने कितने कत्लखाने खोल लिये, इन कत्लखानों में प्रतिदिन कितना खून हो रहा है, कितनी गायें कट रही हैं, मांस का निर्यात हो रहा है सरकार विदेशी मुद्रा की लालच में अपनी पशु सम्पदा का विनाश कर रही है। इन पशुओं के कटने से प्रकृति असन्तुलित हो रही है, प्रकृति के प्रकोप बढ़ रहे हैं, लेकिन हमने अपने स्वार्थ के लिये यह सब

अनदेखा कर दिया है, मात्र अर्थ के लिए हम अपनी प्रकृति का विनाश कर रहे हैं, परमार्थ की हमने अर्थी निकाल दी। जिस परमार्थ के लिये यह जीवन था उसी परमार्थ की आज अर्थी बन गई। याद रखो! परमार्थ की अर्थी बनना ही प्रलय का लक्षण है। आज हम प्रलय के निकट हैं, किस वक्त हमारे ऊपर प्रलय का प्रहार हो जावे यह घटना अनिश्चित है।

भारत की आजादी के उपरांत भारत में गाय बैलों के कत्ल की रफ्तार तेजी से बढ़ गयी है। भारत में पशुओं का कत्ल करके उनके मांस को बेचकर विदेशी मुद्रा कमाने की अवैध नीति अपनाकर कृषि प्रधान देश के धवल माथे पर कलंक की काली बिन्दी लगा दी जो भारत के लिए अभिशाप है।

ये पशु-पक्षी देश की अमूल्य सम्पदा है। इनसे ही धरती की हरियाली सुरक्षित रहेगी, ये पशु जीवित रहेंगे तो यह धरती प्रसन्न रहेगी, पशुओं को मारकर धरती को सुरक्षित नहीं रखा जा सकता। हमारा कर्त्तव्य है कि हम इन तमाम पशु-पक्षियों की रक्षा करें, इनको मारें नहीं, उनको सतायें नहीं, उनको अपनी शरण दें, सेवा करें, उनकी रक्षा करें, वस्तुतः यही सच्ची धार्मिकता है।

जीवों पर दया करना हमारा राष्ट्रीय कर्त्तव्य है, राष्ट्रीय कर्त्तव्य को भूलकर हम अपने राष्ट्र को उन्नत नहीं कर सकते। जिस राष्ट्र में दया नहीं है, मैं समझता हूँ उस राष्ट्र में कोई शास्त्र नहीं क्योंकि दया से बड़ा और कौन सा शास्त्र हो सकता है। आखिर हमारे शास्त्र पुराण हमको दया करना ही तो सिखलाते हैं। फिर भी हमने यदि दया का पालन नहीं किया तो शास्त्रों को पढ़कर या अपने पास रखकर उनकी पूजा आरती करने से भी कुछ नहीं होगा।

दया से बढ़कर और कौन सी पूजा है, जिसके दिल में दया नहीं वह आरती करके भी क्या करेगा? आरती तो दिल को साफ-कोमल करने के लिये की जाती है, लेकिन कठोर दिल वाला आरती करके भी क्या प्राप्त करेगा? दया करना परमार्थ है, आज हम धर्म को बेचकर धन कमा रहे हैं उसी का यह परिणाम है कि हमारा देश ५० वर्ष को पार करके भी गरीबी को नहीं भगा सका।

विकास नहीं तो प्रकाश नहीं और प्रकाश के बिना क्या उचित क्या अनुचित एक बराबर है। हम विकास करें लेकिन प्रकाश के साथ अन्धकार के साथ नहीं। हिंसा एक अंधकार है, जबकि अहिंसा प्रकाश है। अहिंसा के साथ जो विकास होगा वही हमारी वास्तविक उपलब्धि मानी जा सकती है। हिंसा का विकास विनाश का निमंत्रण है। पशु रक्षा करना अहिंसा है और कत्लखाने, मांस निर्यात हिंसा है अब हिंसा से भारत को बचाना है।

इसी पुनीत भावना के साथ अहिंसा परमो धर्म की जय।

❑ ❑ ❑

विराट कवि सम्मेलन

बचाओ पशु-धन, नहीं तो मिट जायेगा वतन

श्री दिगम्बर जैन रेवा तट सिद्धोदय तीर्थ नेमावर में पावन पयुर्षण पर्व के उपलक्ष्य में आचार्य विद्यासागर जी महाराज के सान्निध्य में **''मांस निर्यात बन्द करो, अत्याचार का अन्त करो'' ''बचाओ पर्यावरण नहीं तो अकाल मरण'' ''बचाओ पशु-धन, नहीं तो मिट जायेगा वतन''** आदि अहिंसा, पर्यावरण, करुणा, शाकाहार के चर्चित विषयों को लेकर एक विराट कवि सम्मेलन का आयोजन हुआ। जिसमें विभिन्न स्थानों से आये कवियों ने अपनी जोशीली बुलन्द आवाज में कविता पाठ किया सारे कवियों ने खचाखच भरी धर्म-सभा को मोहित कर लिया सबके मन में पशुओं पर हो रहे अत्याचार के विरोध में एक अहिंसक भावना पैदा हुई। इस विराट कवि सम्मेलन का संचालन प्रसिद्ध कवि सत्य नारायण 'सत्तन' ने किया।

मंगलाचरण के दौर पर सत्य नारायण 'सत्तन' की गुरुभक्ति की पंक्तियों ने जन मानस के हृदय गद्‌गद् कर दिये।

धर्म देशना विद्यासागर जी की हृदय से स्वीकार करो,
बंद करो मांस निर्यात पशु संहार बन्द करो।
तुम बने महाराज हो गये नंगे,
जिधर रखे पैर वहीं हो हर-हर गंगे॥

कवि कैलाश जैन ने मंगलाचरण करते हुए अपनी कविता की-

ठहर गया विद्यासागर नर्मदा के तीर
स्वयं नर्मदा बोल उठी ये इस युग के महावीर॥
दूध की नदियाँ लोप हो गईं
धरा खून से लाल-लाल,
कृष्ण कन्हैया की गैय्या भी,
हो गई आज यहाँ हलाल....
क्या कल बूचड़खानों में,
इंसान को काटा जायेगा।
पशु मांस खाने वाला क्या,
इंसानों को खायेगा?

ये पंक्तियाँ केवल पंक्तियाँ नहीं इसमें एक सच्चाई भी निहित है कत्लखानों में जो पशु काटे जा रहे है उनकी बेहद संख्या है इसी रफ्तार से पशु कटते रहे तो एक दिन देश में पशु समाप्त हो जायेंगे। हम गाय, बैल, भैंस, आदि जानवरों के चित्र मात्र कैलेंडर में देखेंगे और उनके नाम शब्दकोशों में पढ़ेंगे। स्थिति बहुत भयानक है जिस देश में कृष्णजी की पूजा होती है। उसी देश में कन्हैया की गैय्या कत्ल हो रही है, उसी का मांस निर्यात हो रहा है आवश्यकता इस बात की है कि हम जनता को इस पशु हत्या का बोध करायें, पशुओं की हत्या का विरोध करायें। यदि हमने इस हत्याकाण्ड को अनदेखा कर दिया तो आने वाले समय में हमको महा संकट से गुजरना होगा देश में कोई संकट न आये इससे पहले ही हम अपनी सुरक्षा कर लें। वस्तुतः यदि इंसान इसी प्रकार मांस का भक्षण करता रहा तो एक दिन सारे पशु समाप्त हो जायेंगे फिर नम्बर आयेगा इंसान का। आदमी, आदमी को न खाये इसके लिए हमको अभी से वह शाकाहार क्रांति लाना है जिसमें हम भी सुखी रहें और पशु पक्षी भी मस्त रहें।

कवि सुरेश वैरागी मन्दसौर ने भी लोगों को हिन्दुस्तान की पहचान बताई –

जिन्हें पूजता राम, महावीर, गौतम का देश,
उनके मांस का निर्यात कर दिया भारत से विदेश।
सोचो समझो भारत माँ के मुँह में आज मुस्कान नहीं,
पशु मांस निर्यात करें यह अपना हिन्दुस्तान नहीं।

ठीक ही है भारत कृषि प्रधान देश है अहिंसा प्रधान देश है यहाँ गाय की पूजा होती है, यहाँ हीरा, मोती, रत्नों का निर्यात होता था यहाँ पशु पालन होता है। आदि ब्रह्मा ने युग के आदि में भारतीय जन मानस को यह नारा दिया था कि **''कृषि करो या ऋषि बनो''** भारत ने यह नारा भुला दिया, पशु पालन करने वाला देश आज पशुओं का कत्ल कर रहा है यह भारत के लिए कलंक है। भारतीयो! जागो मांस निर्यात करना भारत की संस्कृति नहीं है। भारत की गरिमा को बताते हुए एक अन्य कवि ने कहा।

देखो शंकर तेरा नन्दी कत्लखानों में काटा जाता है।
राजनीति के अन्धों द्वारा, देश मिटाया जाता है॥
मंगल पाण्डेय के इतिहास को दुहराया जाता है।
और गौ माता का खून बहाया जाता है॥

आप अपनी आजादी के इतिहास को जरा याद करें, भारत की आजादी का इतिहास ही गौ रक्षा से प्रारम्भ हुआ था। कारतूस पर गाय की चर्बी लगाकर अंग्रेजी सरकार ने भारतीयों का धर्म भ्रष्ट करना चाहा लेकिन मंगल पाण्डेय ने इसको सहन नहीं किया और विद्रोह कर दिया। वस्तुतः वह

विद्रोह नहीं था वह तो अहिंसा की लड़ाई का मंगलाचरण था। हिंसा को रोकने के लिए हम जो कदम उठाते हैं वह हिंसा नहीं कहलाती वह तो अहिंसा का कदम है। हमको भी आज आवश्यकता है एक अहिंसा की लड़ाई लड़ने की। सरकार ने जो कत्ल घर, बूचड़खाने खोल रखे हैं उन तमाम बूचड़खानों को समाप्त करना है। भारत को गौ शालाओं की आवश्यकता है कत्लखानों की नहीं।

जीवों की रक्षा करना ही हमारी संस्कृति है इसी बात को कहता है एक कवि–

जो जलचर, थलचर, नभचर हैं
उनकी रक्षा करना ही हमारी कल्चर है॥

और अब हमको जीवों की रक्षा के लिए एक जंग छेड़ना होगी सरकार को समझाना होगा, जनता को जगाना होगा। अपनी भारतीय संस्कृति और इतिहास का अध्ययन करना होगा और इसके लिए एक कवि कहता है–

बहुत सहा हमने अब तक,
अब नहीं सहन करेंगे।
खून की धारा भारत में,
अब नहीं बहने देंगे।
बन्द करो मांस निर्यात,
नहीं तो, हिन्दुस्तान में नहीं रहने देंगे॥

वस्तुतः यह संकल्प है हमको अब सचेत हो जाना है हमारा देश वीरों का देश है, रणवीरों का देश है, बहादुरों का देश है शहीदों का देश है। हम मौत से डरने वाले नहीं है हम तो पाप से डरते हैं। क्षत्रिय वही कहलाता है जो निर्बलों की रक्षा करता है। हथियार चलाने वाला क्षत्रिय नहीं, अपितु सच्चा क्षत्रिय तो वह है जो दूसरों की जान बचाता है, सच्चा वीर तो वह है जो दूसरों की जान बचाने के लिए अपनी जान भी कुर्बान कर देता है। इसी बात को कहता है एक कवि–

पशुओं की रक्षा के खातिर, कुर्बान जवानी कर देंगे,
इस धरती से बूचड़खानों की, खतम कहानी कर देंगे॥

मेरे प्रिय जवानों जागो उठो, अपनी चेतना को जागृत करो, और भारत को हिंसा से मुक्त करो, हमको हिंसा मुक्त भारत का निर्माण करना है कत्लखानों से मुक्त भारत का निर्माण करना है, मांस निर्यात मुक्त भारत का निर्माण करना है। कुछ करो–

भाई-बहिनो कुछ नई बात कर लो,
हिन्दुस्तान से भ्रष्ट नेताओं का निर्यात कर दो॥

भ्रष्ट नेताओं का निर्यात करने में कोई हिंसा भी नहीं है, क्योंकि उनको तो जिन्दा निर्यात करना है, वे तो पशुओं को कत्ल करके उनका मांस निर्यात कर रहे हैं। हमको उनका जिन्दा निर्यात करना है। वस्तुतः आज भारत को अहिंसा की आवश्यकता है, यदि हिंसा को फाँसी लगाना चाहते हो, हिंसा को कालापानी भेजना चाहते हो तो अहिंसकों की फौज तैयार करो और एक जन आन्दोलन करके तमाम हिंसा के कार्य को रोक दो और एक गीत में सारी जनता को लयबद्ध कर दो वह गीत यह है कि–

एक कलंक लग रहा है आदमी की जात को,
बंद करो, बंद करो, मांस के निर्यात को।
क्या हो गया, ये गाँधी के देश को,
रुपये के बदले खून बेचता विदेश को॥

और भी कवियों ने अपनी ओजस्वी वाणी के द्वारा सारे जन मानस में एक चेतना जागृत कर दी, कवियों का संचालन कर रहे सत्यनारायण सत्तन ने शाकाहार की बात करते हुए उसकी गरिमा बढ़ाई एक प्रसंग उन्होंने सुनाया कि एक व्यक्ति ने उनसे कहा –

मैं मुर्दा खाता हूँ
लेकिन अण्डा नहीं खाता,
क्योंकि अण्डे का
जन्मस्थान ठीक नहीं ???

वस्तुतः अण्डा तो मांसाहारी ही है उसको शाकाहार नहीं कहा जा सकता अतः **''सण्डे हो या मण्डे कभी न खाओ अण्डे''** अन्त में जब भी कवियों ने अपनी-अपनी कविताएँ पढ़ीं तदुपरांत कवियों के कवि, महाकाव्य 'मूक माटी' के रचयिता मनीषी महाकवि आचार्य विद्यासागर महाराज ने अपनी अमृतवाणी रूपी झरने से तीन घंटे से आस लगाये बैठे श्रोताओं को तृप्त किया। आचार्य श्री ने कहा कि– हमारा देश सत्य का पुजारी है, हमारे देश में अहिंसा की ध्वजा फहराती है फिर भी आज सरकार जो मांस का निर्यात कर रही है यह बड़ी पाप की बात है। अब हमको इस हत्याकांड का विरोध करना है, इसके लिए डरना नहीं है। हिंसा को रोकने के लिए जो हिंसा हो जाये वह हिंसा नहीं है वह तो अहिंसा है। प्रतिदिन कत्लखानों में लाखों जीवों का खून हो रहा है ऐसी स्थिति में हम धर्म की बात कैसे कर सकते हैं? सबसे पहले पशु हत्या के इस अधर्म को रोक लो फिर धर्म की बात करो।

माँ के मरने पर बच्चे का पालन गौ माता के दूध से होता है। दुनियाँ में दो ही दूध हैं– पहला माँ का दूध दूसरा गौ माता का दूध। आज गाय भी खतरे में है और दूध भी। अब कायरता को छोड़ दो और पशु-हत्या को रोकने के लिए आगे आओ।

यह भारत योग प्रधान है भोग प्रधान नहीं, अब उपयोग लगा कर योग की साधना करो, यहाँ आत्मा परमात्मा की साधना होती है और यह आत्मा सभी के पास है पशुओं के पास भी है फिर पशुओं का कत्ल क्यों? यह पापाचार कब तक चलेगा याद रखो। जब किसी की अति हो जाती है जो उसकी इति भी होती है अब पाप की इति करना है कीमत पैसों की नहीं कीमत तो जीवन की है किसी के जीवन को छीनने का हमको कोई अधिकार नहीं सबको जीने का अधिकार है। अतः किसी को मत मारो सबको जीने दो जीवन सबको प्यारा है। चाहे वह जानवर हो या आदमी अतः किसी भी जीव को मत मारो।

❑ ❑ ❑

बचाओ पर्यावरण, नहीं तो अकाल मरण

आज इस विज्ञान के युग में भी धरती के साथ अन्याय हो रहा है, पर्यावरण का सत्यानाश हो रहा है, जल, जंगल, जमीन, जानवर और जनता प्रदूषित हो चुकी है। पर्यावरण की खराबी के लिए सबसे बड़ा प्रदूषण रासायनिक खादों का है, इन जहरीली रासायनिक खादों के कारण फसल प्रदूषित हो चुकी है, फल सब्जियाँ, अनाज प्रदूषित हो चुका है, जल और वायु प्रदूषित हो चुकी है। आज हमारे पास न शुद्ध अनाज है और न जल। जो अनाज हम खा रहे हैं वह जहरीला है क्योंकि उसमें भी जहरीले रासायनिक खादों का अंश मिला है। कीट-नाशक दवाएँ भी पर्यावरण को प्रदूषित कर रही हैं। आज अनेक राष्ट्रों में अनेक जहरीली दवाएँ भी पर्यावरण को प्रदूषित कर रही हैं। आज अनेक राष्ट्रों में अनेक जहरीली दवाओं एवं कीट-नाशकों पर प्रतिबन्ध लग चुका है, लेकिन यह तो भारत है जहाँ सब कुछ खुल्लम-खुल्ला है। हमारी बीमारियाँ इन्हीं जहरीली उर्वरकों का परिणाम है। आज भी आवश्यकता इस बात की है कि पर्यावरण को प्रदूषण से बचाया जाये, और इसके लिए तमाम रासायनिक खादों एवं कीट नाशक दवाओं के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाये।

ये रासायनिक खादें धरती को जला रही हैं, धरती की उपजाऊ शाक्त को नष्ट कर रही हैं, धरती के पास जो अपनी निजी शक्ति है उसको तबाह कर रही हैं। यदि इसी प्रकार इन रासायनिक खादों का प्रयोग होता रहा तो एक दिन सारी धरती बंजर हो जायेगी। जहाँ आज फसल उगती हैं वहाँ पर घास तक पैदा नहीं होगी। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है कोल्हापुर, सांगली (महाराष्ट्र) के पास की हजारों एकड़ जमीन जो आज बाँझ हो चुकी है वहाँ न तो फसल होती है और न ही मकान बना सकते क्योंकि दल-दल हो चुकी है, उसमें क्षार की मात्रा अधिक बढ़ चुकी है। भले आज इन खादों से फसल की मात्रा बड़ी है लेकिन आगामी समय में उन खेतों की स्थिति बड़ी खराब हो जायेगी।

हम अपने खेत में इन जहरीली रासायनिक खादों को डालकर धरती के साथ अन्याय न करें, धरती को बीमार न करके उसके साथ खिलवाड़ न करें। धरती ही जीवन है यदि धरती बीमार हो

जायेगी तो समझ लेना उसी क्षण यहाँ की हरियाली नष्ट हो जायेगी। याद रखो, हरियाली के नष्ट होने पर आदमी का जीना मुश्किल हो जायेगा, हरियाली के अभाव में आप खा नहीं सकेंगे, जी नहीं सकेंगे, सो नहीं सकेंगे। यदि जीवन की रक्षा चाहते हो तो हरियाली की रक्षा करो, पर्यावरण की रक्षा करो, धरती की रक्षा करो, बचाओ पर्यावरण नहीं तो अकाल मरण।

जिस दिन देश की कृषि समाप्त हो जायेगी, वहाँ दाने-दाने की भुखमरी मच जायेगी। देश की जिन्दगी कृषि पर आधारित है मशीनों पर नहीं। सोना-चाँदी, हीरा-मोती से हम अपना पेट नहीं भर सकते, पेट भरने के लिए कृषि चाहिए, अनाज चाहिए, फसल चाहिए। जब खेत में फसल खड़ी नहीं होगी तब भारत का क्या होगा? फिर हमारा क्या होगा? हमारे खेतों में फसल खड़ी है इसलिए हम भी खड़े हैं यानि जीवित हैं फसल के अभाव में चारों ओर भुखमरी मच जायेगी। देश की रक्षा के लिए कृषि की रक्षा अनिवार्य है और वह कृषि की रक्षा इन कीटनाशक दवाओं, रासायनिक जहरीली खादों से नहीं होगी। कृषि की रक्षा के लिए हमको अपनी प्राचीन कृषि प्रणाली अपनाना होगी। पहले समय में हमारे यहाँ खेत में गोबर खाद का प्रयोग किया जाता था, वह गोबर खाद थी। गोबर की खाद जहाँ डाली जाती है वहाँ की फसल भी अच्छी होती, है और धरती की उत्पादन क्षमता का नहीं होता। प्रयोगों से यह भी पता चला है कि गोबर की खाद देन से गरमी के दिनों में खेत में उतनी नमी रहती है, जितनी लगभग डेढ़ इंच पानी बरसने से रहती है।

हम गोबर की खाद का प्रयोग करें, गोबर की खाद से जमीन कभी नष्ट नहीं हो सकती, गोबर की खाद का प्रभाव पर्यावरण पर अच्छा पड़ता है। जो कभी भी नुकसानदायक नहीं है। यदि हमने अपनी भारतीय कृषि व्यवस्था पर ध्यान नहीं दिया तो इसके परिणाम बहुत बुरे होंगे। गाय और गोबर दोनों पर्यावरण के संरक्षण हैं ये पृथ्वी के भार नहीं है, गाय जितना खाती है उससे अधिक खाद देती है, यह प्रयोग द्वारा सिद्ध हो गया है कि जहाँ गाय बैल आदि रहते हैं उस स्थान पर यदि टी.बी. के मरीज को बैठा दिया जाये तो उसकी बीमारी ठीक हो जाती है। इन जानवरों का हमारे जीवन में बड़ा योगदान है। ये जानवर पर्यावरण के संरक्षक हैं हमारा कर्त्तव्य है कि हम पशुओं की सुरक्षा करें। पशुओं को सुरक्षित रखकर ही पर्यावरण की सुरक्षा हो सकती है

यह कौन सी अर्थ नीति है? दुधारू जानवरों को कत्ल करके उनका खून मांस निर्यात किया जा रहा है और गोबर विदेशों से बुलवाया जा रहा है। हमको विदेश से गोबर बुलवाने की आवश्यकता नहीं, हम इन दुधारू जानवरों का पालन करें, उनसे दूध भी मिलेगा और गोबर भी। गायों, भैसों, का पालन करें, उनसे लाभ ही लाभ है, उनसे हमको शुद्ध दूध-दही-घी की प्राप्ति होगी जिससे हमारा स्वास्थ्य ठीक रहेगा। अतः आदमी का स्वास्थ्य और धरती का स्वास्थ्य दोनों को ठीक रखने के लिए पर्यावरण की रक्षा अनिवार्य है, गाय की रक्षा ही पर्यावरण की सुरक्षा है।

अर्थ पुरुषार्थ करो लेकिन अनर्थ पुरुषार्थ मत करो। मांस निर्यात अर्थ नहीं अनर्थ पुरुषार्थ है। उद्योग करने में हिंसा होती है लेकिन हिंसा का उद्योग नहीं होता, उद्योगी हिंसा अलग है और हिंसा का उद्योग अलग है। इसलिए तो उद्योग करो लेकिन हिंसा का उद्योग मत करो। मांस का उद्योग मत करो। मांस के उद्योग का अर्थ है निरपराधी जीवों की हत्या। यह कौन सा न्याय है कि जो निरपराध है उसको दण्ड दिया जाये? निरपराध को दण्ड देना यह कौन सा लोकतन्त्र है। दण्ड संहिता होना चाहिए लेकिन अपराधी के लिए, निरपराधी के लिए नहीं। देश की पशु सम्पदा का नाश देश की कंगाली का कारण है। भारत में धन गाय, बैल, भैंस, घोड़ा इत्यादि को माना जाता था, और उनकी सुरक्षा की जाती थी। अनुपयोगी कहकर पशुओं को काटना छल है, कोई भी जीव, किसी का जीवन कभी अनुपयोगी नहीं होता। यदि मनुष्य पशुओं को अनुपयोगी कहता है तो क्या आदमी पशुओं के लिए अनुपयोगी नहीं है?

जनता का भी कर्त्तव्य होता है कि वह ऐसे व्यक्ति का चयन करे जो अहिंसक हो। पापों का समर्थन करने वाले व्यक्ति का चयन नहीं करना चाहिए। यह प्रजातन्त्र है। यहाँ प्रजा ही अपने प्रतिनिधि का चुनाव करती है। अतः जनता को बड़े सोच विचार कर, विवेकपूर्वक उस व्यक्ति का चयन करना चाहिए जो प्रजा को सुख समृद्धि, देश की गरिमा को कलंकित न करे, जो पशु हत्या रोके, कत्लखाने बंद कर पशुओं का संरक्षण करे, एवं अहिंसा, दया, न्याय का पालन करे। आपके वोट में बहुत शक्ति है। आप जरा विचार करो कि जिनको आपने चुना है फिर उनसे यह क्यों नहीं कह रहे हो। तुमने शासन को बनाया है, शासक से माँग करो कि इस देश से मांस का निर्यात तुरंत बंद करे। यह बात आज के लिए नहीं हमेशा के लिए याद रखें आपका अपना वोट उसी को दें जो मांस निर्यात बंद करे। देश की हरियाली और खुशियाली की रक्षा करे। जंगल, जमीन, जानवर, जल और जनता की रक्षा करे। देश में अधर्म और हिंसा को न होने दे।

❑ ❑ ❑

देश को कर्ज से मुक्त करना ही, स्वर्ण जयन्ती की सार्थकता है

हम भारत में रहते हैं, भारत में कमाते हैं, भारत का अनाज खाते हैं भारत का पानी पीते हैं लेकिन हम अपना धन विदेश में रखते हैं, क्या भारत के ऊपर विश्वास नहीं? जिस माटी पर जीते हैं उसी को सन्देह से देखते हैं, बस यही भारत की कंगाली का कारण है। 'तन भारत में और धन विदेश में इसीलिए गरीबी है वतन में' भारत कंगाल हो रहा है ऋण के भार से दब रहा है, कर्ज बढ़ रहा है और हमारे ही देशवासियों का धन विदेशों की बैंकों में रखा है, हम कैसे कहें कि हम अपने देश का विकास कर रहे हैं। यदि हम भारत को गरीबी से मुक्त करना चाहते हैं, कंगाली मिटाना चाहते हैं तो अपने देश का धन विदेशों में नहीं रखना चाहिए विदेश में धन-रखने वालों ने ही देश को गरीब

बनाया है। आज हमको इस बात की महती आवश्यकता है कि हम अपने देश को कर्ज से मुक्त करने के लिए अपना धन विदेश में न जाने दें।

देश को कर्ज से मुक्त करना ही स्वर्ण जयन्ती की सार्थकता होगी। आज देश को आजाद हुए पचास वर्ष होने को आ रहे हैं लेकिन पचास वर्ष में हमारे देश का कर्जा ही बड़ा कौन सी तरक्की की है, पचास वर्ष के उपरांत भी देश को कर्ज से मुक्त न कर सके, गरीबी न भगा सके हिंसा आतंक न रोक सके फिर किया ही क्या? कर्ज ले-लेकर देश को कब तक चलायेंगे? देश प्रेमियों देश को कर्ज से मुक्त करो भारत की सम्पदा भारत में रहने दो वस्तुतः भारत को धन की आवश्यकता नहीं भारत तो धनी ही है उस धन को विदेश से वापस ले आओ। पचास वर्ष के उपरांत भी हमको यह ज्ञात नहीं की क्या करना है, क्या नहीं करना है फिर स्वर्ण जयन्ती मनाने से क्या लाभ? पचास वर्ष के उपरांत मात्र हमने इतना याद रखा है कि १५ अगस्त को हमारा देश स्वतंत्र हुआ था। पचास वर्ष के बाद भी हम ऋणी ही हुए जबकि हमको धनी होना था। ऋणी होना भी अच्छा है लेकिन धन से नहीं आदर्श से हम ऋणी हैं हमारे पूर्वजों के कि जिन्होंने हमारी संस्कृति को यहाँ तक लाया, देश को आजाद कराया, उन्होंने बहुत कष्ट उठाये, मुशीबतें सही, अनेक बाधाओं से जूझे, जीवन-मरण से लड़ते रहते, और निस्वार्थ भावना से देश और देश वासियों की सेवा की, ऐसे कर्त्तव्य शील, निष्ठावान, अहिंसक पूर्वजों के हम ऋणी हैं। हमारे पूर्वजों ने जीना सिखलाया लेकिन हम उनको कहाँ तक आदर्श मानते यह हमको ज्ञात है। अपने पूर्वजों के आदर्शों को याद करो, उनके ऋणी बनो और देश को ऋण से मुक्त करो। आजादी की स्वर्ण जयन्ती पर देश को कर्ज से मुक्त करने का संकल्प लो यही सच्ची भारतीयता, राष्ट्रीयता है।

यह कैसी विडम्बना है कि भारत का धन विदेशों में रखा है और भारत अपना ही धन अपने लिए कर्ज के रूप में ले रहा है। अपनी मुद्रा विदेश में रखकर और विदेशी मुद्रा के लिए मांस बेचकर विदेशी मुद्रा कमा रहा है? यह कौन सी कमाई है, कि अपने धन को नष्ट करना और विदेश के धन को इकट्ठा करना यह नीति नहीं यह तो अनर्थ नीति है। इस अनर्थ नीति को पहले समाप्त करो अन्यथा देश कभी भी आर्थिक सम्पन्न न होगा।

कोई भी पार्टी हो वह सत्ता की ओर न देखे परन्तु देश की सत्ता देश की अस्मिता की ओर देखे, सत्ता की ओर देखने से अहंकार होता है, स्वार्थ होता है, लेकिन जब हम देश की सत्ता-अस्मिता की ओर देखते हैं तो स्वाभिमान होता है, कर्त्तव्य का बोध होता है, दायित्व का बोध होता है। सत्ता (पार्टी) की ओर मत देखो देश की अस्मिता की ओर देखो, भले तुम किसी भी पक्ष के रहो, चाहे तुम पक्ष के हो या विपक्ष के लेकिन देश का पक्ष कभी भी मत भूलना यह देश की अस्मिता को देखने का अर्थ है जो व्यक्ति देश का पक्ष लेगा वह अपना धन विदेश में नहीं रख सकता। देश को कर्जदार नहीं बना सकता है इसलिए तुम भी याद रखो।

मरना है तो मरजा
लेकिन मरने से पहले
कुछ कर जा
पर न कर कर्जा

देश के लिए कुछ कर जाओ लेकिन कर्जा मत कर, हमने आज भारत की क्या दशा कर दी। अंग्रेजों के जमाने में मांस का निर्यात नहीं होता था लेकिन आज स्वतंत्र भारत में मांस का निर्यात हो रहा है, अंग्रेज विदेशी थे, लेकिन हम तो देशी हैं। फिर भी अपने देश की स्थिति खराब कर डाली। मांस निर्यात भारत के लिए बहुत बड़ा कलंक है। स्वर्ण जयंती के अवसर पर इस कलंक को धोने का संकल्प ले लेना चाहिए यही भारत को सुधारने का सही संकल्प है। भारत इतना क्रूर बन गया है भारत के पास आज दया का अभाव हो चुका है, दया के अभाव में ही यहाँ प्रलय का वातावरण तैयार हो रहा है। हम अपने देश की तरक्की दया के रहते ही कर सकते हैं दया के अभाव में क्रूरता से किसी का भला नहीं है, दया जीवन है क्रूरता मौत है, क्रूरता को छोड़ो दया को अपनाओ। देश में सुभिक्ष हो ऐसी कामना करो, भावना करो।

दुनियाँ में सुभिक्ष हो, मंगल हो लेकिन उसके पहले यह बात ध्यान रखो कि सुभिक्ष के लिए किसी की हत्या न हरना पड़े, किसी का वध न करना पड़े, किसी को कष्ट दुख देना न पड़े। आज हम अपने देश में सुभिक्ष लाना चाहते हैं आदमी का जीवन सुरक्षित रखना चाहते हैं लेकिन यह होगा कैसे क्योंकि हमारे पास मानवता नहीं है। दूसरों की हत्या करके, दूसरों का खून करके हम अपने देश की उन्नति कैसे कर सकते हैं। क्या यही मानवता है?, यही अहिंसा है? यही सत्य है? मांस निर्यात करने वाला देश अहिंसा का सन्देश कैसे दे सकता? यदि हम अहिंसा, सत्य, करुणा का सन्देश देना चाहते हैं एवं मानवीय चेतना जागृत करना चाहते हैं, राष्ट्र को आगे बढ़ाना चाहते हैं तो इसके लिए हमको एक मानवीय क्रान्ति लाना होगा। वह मानवीय क्रान्ति सभा समारोहों में नहीं उसके लिए जीवन परिवर्तित करना होगा। देश में हिंसा के सारे कार्य रोकना होगा। जो देश अहिंसा के सहारे आजाद हुआ वही देश आज हिंसा प्रधान हो रहा है। हिंसा से हमारी स्वतंत्रता सुरक्षित नहीं रह सकती। देश को सुरक्षित रखने के लिए भारत को हिंसा से मुक्त करना होगा और मांस निर्यात वर्तमान की सबसे बड़ी हिंसा है इसको रोकना होगा।

आज कितनी तेजी से जानवर कट रहे हैं यदि यही रफ्तार रही तो एक दिन सारे जानवर समाप्त हो जायेंगे और फिर नम्बर आयेगा किसका? आदमी का, प्रकृति का नहीं क्योंकि प्रकृति में मांस नहीं। प्रकृति जीव तो पैदा करती है लेकिन मांस पैदा नहीं करती प्रकृति तो शुद्ध है। आज हम

अपनी प्रकृति का विनाश कर रहे हैं लोग पर्यावरण की चर्चा करते हैं प्रदूषण हटाने की बात करते हैं लेकिन प्रदूषण-लाने का काम बंद नहीं करते। ये कत्लखानों से सारी धरती में प्रदूषण फैल रहा है, नदियों का पानी प्रदूषित हो रहा है, वातावरण गन्दा हो रहा है, प्रकृति का सन्तुलन बिगड़ रहा है, लेकिन हमको इसकी चिन्ता नहीं है। हम तो मात्र चिल्लाना जानते हैं पर्यावरण बचाने का काम मात्र वृक्ष लगाने से नहीं हो सकता हम वृक्षों को लगाने की बात करते हैं, लगाते हैं, लेकिन पशुओं को काट रहे हैं, यह प्रक्रिया हमारे लिए घातक है इसको हमें रोकना चाहिए।

भारतीय संस्कृति में दृश्य का नहीं दृष्टा का मूल्य है, जड़ का नहीं चेतन का मूल्य है, 'पर' का नहीं 'स्व' का महत्त्व है। आज हम अपनी संस्कृति को लुटा रहे हैं, मिटा रहे हैं मात्र चंद चाँदी के टुकड़ों में। ये गाय, बैल भैंस, इत्यादि जो जानवर हैं ये जीवित हैं, चेतन हैं, चेतन धन को नष्ट करके जड़ धन की कमाई करना राष्ट्र को समाप्त करना चाहिए। जीने का अधिकार सबको है। यह हमारा स्वार्थ है कि हमने जानवरों को यूजलैस(अनुपयोगी) कह दिया जीवन किसी का हो चाहे वह जानवर का हो या आदमी का वह कभी यूजलैस (अनुपयोगी) नहीं होता, यूजलैस (अनुपयोगी) तो हमारा स्वार्थ होता है, हमारा अज्ञान होता, अन्याय होता है। हमारे यूजलैस(अनुपयोगी) स्वार्थ ने जानवरों को यूजलैस (अनुपयोगी) कह दिया जिसका परिणाम है कि भारत आज मांस का व्यापार करने लगा।

स्वतन्त्रता का क्या अर्थ है, आज हम स्वतंत्र होकर भी समझ नहीं पाये हैं और न जाने कब समझेंगे? आज हमको पचास वर्ष हो रहे है स्वतंत्रता प्राप्त किये, लेकिन हम कहाँ देख रहे हैं और क्या समझ रहे हैं? पचास वर्ष के उपरांत भी हम यह समझ नहीं पाये कि अहिंसा क्या है यदि अहिंसा को समझ लेते तो मांस का निर्यात क्यों करते? कत्लखाने क्यों खोलते? यदि आपको अपने देश की रक्षा करना है, देश को बचाना है तो अपने अन्दर स्वाभिमान जागृत करो, अपने कर्त्तव्यों को समझो, अपने दायित्वों का पालन करो, अपने आप का बोध प्राप्त करो, निश्चित ही हमारे देश में एक ऐसा वातावरण तैयार होगा जो हिंसा के तूफान को रोक देगा। हिंसा को रोकने के लिए हमें किसी धन की आवश्यकता नहीं, हिंसा धन से रुकने वाली भी नहीं है क्योंकि हिंसा का स्रोत तो हमारा स्वार्थी मन है, झूठी प्रतिष्ठा है, सत्ता की लोलुपता है। हम अपने मन से स्वार्थ को निकाल दें, सत्ता की लम्पटता को छोड़ दें, हमारे विचारों को पवित्र बना लें हिंसा रुक जायेगी। विचारों में पवित्रता अहिंसा से ही आ सकती है, हिंसा से नहीं क्योंकि अहिंसा पवित्र है और हिंसा अपवित्र है।

यदि भारत की पवित्र संस्कृति और सभ्यता को पवित्र रखना चाहते हो तो भारत से मांस का निर्यात बंद कर दो मांस बेचना भारतीय संस्कृति नहीं, बस। यही स्वर्ण जयन्ती की सार्थकता है।

❑ ❑ ❑

आँख नहीं, आँसू पोंछो

हरदा-निकटस्थ नेमावर स्थित सिद्धोदय सिद्धक्षेत्र में एक विशाल धर्मसभा को संबोधित करते हुए आचार्य श्री विद्यासागर जी ने कहा कि अपने दुखों में रोने वाले, आँसू बहाने वाले इस दुनियाँ में बहुत हैं लेकिन जो दूसरों के दुखों में रोते हैं, आँसू बहाते हैं, दूसरों के आँसू पोछते हैं ऐसे लोगों की संख्या इस दुनियाँ में बहुत कम है। अब आप दूसरों के आँसू पोंछना सीखिए अपने आँसू तो सभी पोंछ लेते हैं, अपने आँसू पोंछना धर्म नहीं, दूसरों के आँसू पोंछना धर्म है। आज दुनियाँ में बहुत आँसू हैं फिर भी हमारी आँख में आँसू नहीं आ रहे हैं हमारी आँख गीली नहीं हो रही हैं हमारे पास आँख तो हैं लेकिन आँसू नहीं। अहिंसा की पहिचान अस्त्रों से नहीं आँसू से होती है। लेकिन आँसू उसी आँख में आ सकते हैं जिस दिल में करुणा होगी, दया होगी। करुणा से खाली दिल वाले की आँख में आँसू नहीं आ सकते। आज जो मूक हैं, निर्दोष हैं, अनाथ हैं, ऐसे निरीह जानवरों की आँखों में आँसू हैं वो पशु अपनी करुण पुकार कैसे कहें क्योंकि उनके पास शब्द नहीं वे बोल नहीं सकते शायद यदि वे मूक प्राणी बोलना जानते तो अवश्य किसी कोर्ट में अपनी याचिका दायर कर देते, अपने अत्याचारों की कहानी सुना देते लेकिन हम इन्सान हैं जो बोलने सुनने वाले होकर भी कुछ न समझ रहे हैं और न सुन रहे हैं।

आचार्य श्री ने आगे कहा कि याद रखो अभिशाप सबसे बड़ा शस्त्र है। यदि हमें इन मूक पशुओं की श्राप, बद्दुआ लगी तो हमारा देश तबाह हो सकता है। आज तो वैज्ञानिकों ने भी सिद्ध कर दिया कि हिंसा, कत्ल की वजह से भूकम्प आते हैं। आज प्रकृति में जो घटनाएँ घट रही हैं, कहीं अकाल, कहीं भूकंप, कहीं बाढ़, ये सारे रूप हिंसक कार्य के ही हैं। हिंसा से सारी प्रकृति आन्दोलित हो जाती है, क्षुब्द हो जाती है, वातावरण उत्तेजित हो जाता है पर्यावरण नष्ट हो जाता है यदि हमारे देश में हिंसा, कत्ल होता रहा, कत्लखाने खुलते रहे, मांस निर्यात होता रहा तो क्या हमारा पर्यावरण सुरक्षित रह सकता है? और जब हमारा पर्यावरण ही नष्ट हो जाये तब हमारी उन्नति का क्या अर्थ? क्या विदेशी मुद्रा पर्यावरण को बचा लेगी? जब आदमी का ही जीना मुश्किल हो जायेगा तब दुनियाँ की सारी संपत्ति किस काम की? पर्यावरण और स्वास्थ्य का ठीक रहना ही मानव जाति का विकास है, पर्यावरण को बिगाड़ करके हम अपने स्वास्थ्य को जिन्दा नहीं रख सकते अतः पर्यावरण की रक्षा के लिए हिंसा, कत्ल के काम छोड़ने होंगे, पशुओं को बचाना होगा।

सुनते हैं कि पहले देवताओं के लिए पशुओं की बलि चढ़ाते थे लेकिन आज आदमी के लिए पशुओं की बलि चढ़ाई जा रही है। आदमी के लिए पशु का कत्ल हो रहा है, देश की उन्नति के लिए पशुओं का वध हो रहा है, खून मांस बेचकर देश की उन्नति का स्वप्न देश की बर्बादी का लक्षण है। आदमी के पास भुजाएं हैं फिर उन भुजाओं का सही दिशा में पुरुषार्थ क्यों नहीं किया जा

रहा है? आज भुजाओं से भी पैर का काम लिया जा रहा है। भला हुआ कि आदमी के पास सींग नहीं हैं अन्यथा यह आदमी क्या-क्या करता पता नहीं। दूसरों के पैर तोड़कर हम अपने पैरों पर खड़े नहीं हो सकते, मैं राष्ट्र को पंगु देखना नहीं चाहता पशुओं के अभाव में भारत पंगु हो जायेगा, भारत कृषि प्रधान देश है यहाँ की जनता सदियों से पशु पालन और उनके माध्यम से अपना निर्वाह करती चली आ रही है कृषि उत्पादन के क्षेत्र में गौ-वंश का उपकार भुलाया नहीं जा सकता।

आज अध्यात्म के शिविर लगाने में जितना पैसा खर्च किया जा रहा है यदि वह पैसा मांस निर्यात रोकने के क्षेत्र में लगाया जावे तो बहुत अच्छा होगा और अब शिविर शहर में नहीं राष्ट्रपति भवन में लगाओ और वह शिविर, दया का, अनुकम्पा का, करुणा अहिंसा का हो, जिससे लाखों करोड़ों जानवरों का कत्ल रुके। देश के राष्ट्रपति को देश की पशु सम्पदा का ध्यान होना चाहिए लेकिन आज नहीं है इसीलिए नागरिको अब जागो और मूक पशुओं की आवाज को राष्ट्रपति भवन तक पहुँचाओ ताकि वह भवन पशुओं की पुकार से हिल उठे और पशुओं का कत्ल होना बन्द हो जाये मांस निर्यात रुक जाये।

वस्तुतः आज हमको जागृत होने की जरूरत है। यह हमारा देश युगों-युगों से सत्य अहिंसा का सन्देश देता आ रहा है हम अपने इतिहास को खोलें अपनी संस्कृति को पहिचानें उसका अध्ययन करें। भारतीय इतिहास, संस्कृति और सभ्यता पशु-वध की इजाजत नहीं दे सकती। वध तो वध है चाहे जानवर का हो या मनुष्य का इसमें अन्तर नहीं है। आओ हम सब मिलकर अपने देश से इस पशु वध को रुकवायें। पशु-वध रुकवाना ही आज की अनिवार्यता है। आचार्य श्री ने एक जंगली प्राणी की महानता और उसकी सेवा, करुणा का उदाहरण देते हुए कहा कि एक जंगल में आग लग गई, सारा जंगल जल रहा था सारे जंगल के प्राणी यहाँ वहाँ भाग रहे थे एक स्थान पर एक तालाब था उसी तालाब के पास सारे जंगल के प्राणी पहुँच गये। वह तालाब जंगली जानवरों से खचाखच भर गया। उसी तालाब में प्राणियों के झुण्ड में एक हाथी था अचानक हाथी ने अपना एक पैर उठा लिया बस उसी वक्त उस हाथी के पैर के उठाये वाले स्थान पर एक छोटा सा खरगोश का बच्चा आकर बैठ गया हाथी ने देखा कि पैर रखने के स्थान पर एक खरगोश का बच्चा बैठा है यदि मैं अपना पैर रखता हूँ तो वह खरगोश का बच्चा मर जायेगा अतः वह हाथी तीन पैर से खड़ा रहा उसने अपना पैर धरती पर नहीं रखा।

एक दिन, दो दिन, तीन दिन तक तीन पैरों पर खड़े-खड़े वह हाथी इतना जकड़ जाता है उसका पैर फूल जाता है अन्त में वह हाथी नीचे गिर गया और मर गया लेकिन उसने अपना पैर जमीन पर नहीं रखा, यह है जंगली जानवर की महानता/ करुणा की जीवन्त कहानी। एक जंगली प्राणी भी एक जीव की रक्षा के लिए अपना जीवन न्यौछावर कर सकता है लेकिन आज हम हैं जो

जंगल में नहीं शहर में रहते हैं गुफाओं में नहीं भवनों में रहते हैं शिक्षित और सभ्य होकर बर्बरता और क्रूरता का काम कर रहे हैं। जंगल में रहने वाले भी अहिंसा/करुणा का पालन करते थे। और आज हम शहरों में रह करके भी हम में अहिंसा और करुणा नहीं हैं।

हमारी साक्षरता का क्या अर्थ है? वह जंगली हाथी साक्षर नहीं था उस हाथी ने किसी स्कूल कालेज में नहीं पढ़ा था वह निरक्षर था फिर भी उसमें मानवता थी लेकिन हमारे पास आज मानवता मर गई है अरे! धर्म करने वालो जरा सोचो तुमने आज तक कितना धर्म किया, कितना दान किया? कितना त्याग किया? जीवन में जीवित धर्म का पालन करो। पशुओं के पास भी धर्म होता है भले वे किसी मंदिर नहीं जाते उसके पास भी अहिंसा और करुणा होती है आप जरा विचार करिये जब एक हाथी भी एक खरगोश को अपने पैर के नीचे जगह दे सकता है, जीवनदान दे सकता है तब फिर आप तो आदमी हैं क्या आप पशुओं को जीवनदान नहीं दे सकते?

❑ ❑ ❑

सिद्धोदय तीर्थ में स्वर्ण जयन्ती का अपूर्व जश्न

श्री दिगम्बर जैन रेवातट सिद्धोदय तीर्थ नेमावर में राष्ट्र की महान् विभूति आचार्य विद्यासागर जी महाराज के पावन सान्निध्य में आजादी की स्वर्ण जयन्ती का एक ऐतिहासिक अभूतपूर्व जश्न मनाया गया। राष्ट्र के भावी नागरिक राष्ट्र की महान् संपत्ति जो अभी बालक कहलाते हैं ऐसे बच्चों की उपस्थिति जयन्ती के महोत्सव में काफी रही। यानि श्री दिगम्बर जैन विद्या मन्दिर खातेगाँव, सरस्वती शिशु मंदिर खातेगाँव, उच्चतर माध्यमिक शाला नेमावर के सभी शिक्षक गण अपने सभी छात्रों के साथ उपस्थित थे कार्यक्रम का शुभारम्भ ब्राह्मी विद्या समिति खातेगाँव की बहनों द्वारा मंगलाचरण से शुरू हुआ मंगलाचरण के बोल थे।

इंसान को इंसान बनाएं मानव को प्रेम की परिभाषाएँ समझाएँ
देश की अखण्डता खण्ड-खण्ड हो रही, देश को अखण्डता का दान दो,
देश को एकता का दान दो......

इसके उपरांत महावीर प्रसाद झांझरी झूमरी वालों के द्वारा दीप प्रज्ज्वलित किया गया। इसके उपरांत आचार्य श्री जी की आरती की गई। इसके उपरांत श्री दिगम्बर जैन विद्या मंदिर खातेगाँव के बाल-छात्रों द्वारा एक अनुपम विचार संगोष्ठी सम्पन्न हुई। राष्ट्रीय विचारों से छोटे-छोटे बालकों ने जन समुदाय को मंत्रमुग्ध कर दिया। सबसे पहले स्वयं प्रकाश राठौर ने अपने विचार रखे कि- आज हमको आजादी प्राप्त किये पचास वर्ष हो रहे हैं आज हम स्वर्ण जयंती मना रहे हैं लेकिन हमारा स्वर्ण जयंती मनाना क्या मायना रखता है?, आज देश में चारों ओर गरीबी, भुखमरी, बीमारी, घोटाला, पतन, पशु हत्या, मांस निर्यात, जैसे घृणित कुकर्म की वृद्धि हुई है। हमारा स्वर्ण जयंती

मनाना तभी सार्थक होगा जबकि हम अपने देश से इन सभी कुरीतियों को दूर कर दें। इसके उपरांत नीरज सेठी ने अपने विचार रखे–गाय हमारी माता है, वह हमको दूध देती है, उसकी रक्षा करना हमारा राष्ट्रीय कर्त्तव्य होता है। आज हमारी सरकार जो गायों का वध कर रही है यह सरकार का गलत कदम है अतः स्वर्ण जयंती के इस महान् अवसर पर भारत सरकार को गौ हत्या बन्दी कानून बना देना चाहिए। इसके उपरांत पुनीत पट्ठा ने अपनी क्रांतिकारी कविताओं से सारे जन मानस को गर्म कर दिया उनके बोल थे।

भारत का उत्थान न होगा, मांस निर्यात की कमाई से।
विनाश होगा इस देश का, पशुओं की अवैध कटाई से॥

उन्होंने आगे कहा कि–

सरकार कमा रही अपना रूपैय्या
हिन्दुस्थान में कट रही हिन्दु की गैय्या
रोको रे यह कटती गैय्या
यह पाकिस्तान नहीं, हिंदुस्तान है भैय्या॥

इन्होंने आगे अण्डों के बारे में कहा कि मुझसे एक व्यक्ति ने पूछा की क्या अण्डा शाकाहारी है? मैंने कहा नहीं, अण्डा मांसाहारी ही है अण्डा कभी भी शाकाहारी नहीं हो सकता फिर भी यदि आप अण्डे को शाकाहारी मानते हैं तो वह इस प्रकार होगा–

अण्डे को
शाकाहारी मानना
ऐसा होगा
वैश्या को माँ बनाने
जैसा होगा!!!

इसके उपरांत कुमारी चन्दु झाला ने अपने कारुणिक विचार रखे– हमारी भारतीय संस्कृति में गाय को माता कहा जाता है जिस माता की हम पूजा करते हैं उसी को हमारी भारत सरकार कत्लखानों में काट रही है, क्या यही हमारी संस्कृति है? क्या यही हमारा धर्म है? कि हम पशुओं को काट रहे हैं, मांस निर्यात कर रहे हैं। भारत सरकार को इस पशु बलि को बन्द करना होगा, मांस निर्यात रोकना होगा। पशुओं की रक्षा करना ही न्याय है। आज हमको आवश्यकता है कि हम सब लोग जागें और भारत से मांस निर्यात बन्द करवायें। इसके उपरांत शासकीय उच्चतर माध्यमिक शाला नेमावर के छात्र भारमल चावड़ा ने अपने विचार व्यक्त किये– मांस निर्यात और मांसाहार दोनों

हमारे देश के लिए ठीक नहीं है मांसाहार से बीमारियाँ फैलती हैं, आदमी के लिए तो शाकाहार ही सर्वोत्कृष्ट आहार है। मानव को अपनी प्रकृति का उल्लंघन कर मांसाहार का सेवन नहीं करना चाहिए। आज हमारे देश की स्वर्ण जयंती का दिन है। इस पावन अवसर पर हमको मांस निर्यात और मांसाहार को पूर्णतः समाप्त करने का संकल्प कर लेना चाहिए। इसके उपरांत श्री दिगम्बर जैन विद्या मंदिर की शिक्षिका कविता कासलीवाल ने अपने ओजस्वी विचारों से सारे जन मानस को हिलोर दिया उन्होंने कहा– हमारा देश कहाँ जा रहा है? हम किस ओर जा रहे हैं? वे व्यक्ति कहाँ गये जिन्होंने देश को आजाद कराया? उनके आदर्श, उनकी महानता आज हम भूलते जा रहे हैं, भारतीय संस्कृति को छोड़ते जा रहे हैं। चंद चाँदी के टुकड़ों के लोभ में हम विदेशी मुद्रा कमा रहे हैं पशुओं को कत्ल करके, ऐसी कमाई से क्या लाभ जो खून से सनी हुई है। आज पहली आवश्यकता इस बात की है कि देश के तमाम कत्लखानों पर ताला डाल दिया जाये। कत्लखानों को बन्द किये बिना भारत की उन्नति कभी भी नहीं हो सकती। इसके उपरांत प्रदीप काला खातेगाँव ने अपने विचार रखे–वह पहली खुशी थी जब हम स्वतंत्र हुए थे लेकिन आज सबसे बड़ा दुख इस बात का है कि हमारे स्वतन्त्र भारत में मांस निर्यात हो रहा है। इसके उपरांत शासकीय उच्चतर माध्यमिक शाला नेमावर के प्राचार्य महोदय ने भी अपन विचार व्यक्त किये–बड़े सौभाग्य की बात है कि माँ नर्मदा के पावन तट पर सन्त शिरोमणि आचार्य विद्यासागर जी वर्षायोग कर रहे हैं जिनके दर्शन मात्र से युगों-युगों के संचित पाप नष्ट हो जाते हैं।

यह वही भारत है जहाँ दूध और दही की नदियाँ बहती थीं, यह वही भारत है जहाँ राम, महावीर, कृष्ण, गौतम एवं अहिंसावादी पुरुषों का अवतार हुआ लेकिन आज इस भारत को क्या हो गया जो मांस निर्यात जैसे पाप कार्य में लिप्त है। मुद्रा कमाने के और भी साधन हैं उन अहिंसक साधनों को अपनाना चाहिए। इसके बाद नीरज जैन सतना वालों के विचार– कि आज १८ वर्ष के बच्चे को मतदान का अधिकार तो दे दिया गया लेकिन हमने मतदान देने की विधि नहीं सिखाई। इसके उपरांत आचार्य श्री जी के प्रवचन हुए।

❑ ❑ ❑

उद्यम करो, ऊधम नहीं

यदि हम अपने देश की समृद्धि चाहते हैं तो वह समृद्धि उद्यम से ही हो सकती है, ऊधम से नहीं। लेकिन आज हम उद्यम कम ऊधम ज्यादा कर रहे हैं। ऊधम से दम घुटता है, हम उद्यम करें ऊधम नहीं। यदि हम उद्यम करेंगे तो हम एक सही आदमी बन सकते हैं और सही आदमी बनने के बाद ही हमारा कदम एक आचरण की कोटि में आ सकता है अतः हम उद्यम करें, ऊधम नहीं। मांस का निर्यात करना देश के साथ ऊधम करना है क्योंकि यह उद्यम नहीं कहलाता। आज हमारे सामने

हमारा कोई उद्देश्य नहीं है, विश्व का कल्याण तभी हो सकता है जबकि उसके सामने अपना एक उद्देश्य हो, यदि उद्देश्य दृष्टि में नहीं रहता तो देश क्या प्रदेश में भी शान्ति नहीं हो सकती। पचास वर्ष के बाद भी हमने अपना कोई उद्देश्य नहीं बनाया। आज हम आजादी की स्वर्ण जयन्ती मना रहे हैं लेकिन स्वर्ण अवसर को खोकर! आजादी प्राप्त की हमने अपने देश की उन्नति करने के लिए, देश का विकास करने के लिए। देश में सत्य, अहिंसा संस्कृति, संस्कार को पुनः प्रतिष्ठित करने का कितना अच्छा स्वर्ण अवसर पाया था लेकिन हमने उस स्वर्ण अवसर को भुला दिया क्योंकि हमने आजादी की गुणवत्ता को समझा ही नहीं।

काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक फैले भारत को आज नजर लग गई है, सोचो वह कितनी बड़ी नजर होगी। आज तक किसी पशु की नजर आदमी को नहीं लगी मनुष्य की नजर बहुत विषैली है इतनी विषैली कि गाय के स्तनों में भरा दूध भी सूख जाता है, पत्थर कट जाता है, पिघल जाता है। आज आदमी की नजर पशुओं को लगी हुई है, आज आदमी विश्व भक्षी बन गया है उसने गाय, बैल, भैंस आदि मूक पशुओं को भी मारना प्रारम्भ कर दिया है। यह मनुष्य ही है जो खाता तो मीठा है लेकिन कहता है मुँह कड़वा हो गया, कितना कड़वा है यह आदमी। कितने सीधे साधे हैं ये जानवर, मूक हैं फिर भी मनुष्य ने इनको अपना शिकार बना लिया यह मनुष्य के लिए कलंक है।

पशुओं के साथ दया का व्यवहार कीजिए, मानव का यह कर्त्तव्य है कि वह मूक जानवरों पर हमला न करे, लेकिन मनुष्य ने आज इन मूक प्राणियों पर जो अत्याचार किया है वह बड़ा अमानुषिक है। स्वतंत्रता का यह विकराल रूप देखने को मिल रहा है कि आदमी ने कत्लखाने खोलकर पशुओं को काटना प्रारंभ कर दिया। आपको जन्म मिला है और जीने का जन्मसिद्ध अधिकार मिला है। स्वतंत्रता सबको प्रिय है, जानवर भी जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता। पशुओं को कत्ल करना यह स्वतंत्रता नहीं कहला सकती। स्वतंत्रता का वास्तविक अर्थ तो सबको जीवन जीने का समान अधिकार है। हम अपना जीवन जीना चाहतें हैं फिर पशुओं को वध क्यों करें? भारत सरकार को चाहिए कि वह भारत से मांस निर्यात बंद करे और पशु हत्या पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाए।

करुणा की तस्वीर यदि आपके हृदय पटल में छप जावे तो फिर कैलेंडर छपवाने की कोई आवश्यकता नहीं। लेकिन आज करुणा का तो अभाव हो गया आज आवश्यकता करुणा की है। करुणा के अभाव में ही भारत गायों का वध कर रहा है। क्या यह भारत है? ऐसी-ऐसी गायें पकड़ी गईं हैं जो कत्लखाने कटने जा रही थीं जिन्होंने बछड़ों को जन्म दिया, वे आज दूध दे रही हैं। गर्भवती गायें भी कटने लगीं भारत में? यह भारतीय संस्कृति नहीं, भारतीय संस्कृति में प्रत्येक प्राणियों पर अभय का वरदान दिया जाता है। कोई भी पार्टी हो, सत्ता हो, हमको मतलब नहीं लेकिन देश में हिंसा

नहीं होना चाहिए। मांस निर्यात रुकना चाहिए। हमको चाहिए वह व्यक्ति जो देश का पक्ष लेता है। आज कोई इस पक्ष का है कोई उस पक्ष का है एक दूसरे के लिए दोनों विपक्ष के हैं पक्ष के कोई नहीं, फिर भी आप किसी भी पक्ष के रहो लेकिन देश का पक्ष गौण नहीं होना चाहिए। आप देश का पक्ष मजबूत करो, पार्टी का नहीं।

भारत की दशा आज क्या हो गई? अहिंसा का नाम लेने पर लोग हंसते हैं, संस्कृति तो मिटी प्रकृति भी मिट रही है। संस्कृति से भी अच्छी प्रकृति मानी जाती है क्योंकि संस्कृति सभ्यता है और प्रकृति स्वभाव है। अपने स्वभाव को पहचानो अपनी संस्कृति पर गौरव करो अपनी सभ्यता पर गर्व करो। हमारी संस्कृति, प्रकृति और सभ्यता ये तीनों अहिंसा प्रधान रही हैं। लेकिन आज हमने इन तीनों को हिंसक बना दिया। हिंसा ही राजधर्म बन गया। हमने गरीबी मिटाने के नाम पर गरीबों को मिटा दिया, धनी होने के वास्ते देश को कंगाल बना दिया, ठीक ही है हिंसा से हम कुछ भी अच्छा नहीं कर सकते, यदि हम कुछ अच्छा चाहते हैं तो हमको देश से हिंसा को निकालना होगा, जब तक हिंसा नहीं निकलेगी देश अपना सुधार नहीं कर सकता।

बन्धन किसी को भी स्वीकार नहीं होता मुझे भी नहीं है लेकिन धर्म के लिए बन्धन भी मैं स्वीकार कर सकता हूँ क्योंकि धर्म का बन्धन कोई बन्धन नहीं है। यदि अहिंसा के लिए हमें बन्धन भी स्वीकार करना पड़े तो कर लेना चाहिए लेकिन हिंसा के लिए स्वतंत्रता भी ठीक नहीं है। देश में आज अहिंसा की धारा बहना चाहिए थी, न्याय की धारा बहना चाहिए थी लेकिन यह कहाँ हुआ? सत्ता की भूख सत्य को नष्ट कर देती है। आज बहुमत के माध्यम से देश चल रहा है, बुद्धिमत्ता के बल पर नहीं। पचास वर्ष का इतिहास हमारे सामने है अब आप लोगों को सोचना है कि क्या करना है, क्या उचित है? अहिंसा को भूलकर आजादी की स्वर्ण जयन्ती का जश्न मनाना कोई मूल्य नहीं रखता। आज हमको अहिंसा की बड़ी महती आवश्यकता है अहिंसक बनना ही सही स्वर्ण जयन्ती की सार्थकता है।

❑ ❑ ❑

पाप से घृणा करो पापी से नहीं

ओवर कॉन्फीडेन्स मात्र, मनुष्य में ही पाया जाता है, जानवरों में नहीं। जीवन के लिए कॉन्फीडेन्स चाहिए ओवर कॉन्फीडेन्स नहीं। पाप करने में मनुष्य जितना आगे बढ़ जाता है उतना जानवर नहीं। सबसे अधिक क्रोध करने में, सबसे अधिक अहंकार करने में, सबसे छल कपट करने में और सबसे अधिक लालच करने में मात्र मनुष्य ही आगे रहता है जानवर नहीं। मनुष्य क्या-क्या नहीं करता सभी कुछ तो करता है, इस मनुष्य ने सबको सुखा दिया और स्वयं ताजा रहना चाहता है,

वह मनुष्य है जो हरी को समाप्त करके हरियाली की चाह करता है, स्वयं टमाटर की तरह लाल रहना चाहता है और दूसरों को काला करने की सोचता है। यह मनुष्य ही अतिक्रमण करता है प्रतिक्रमण करता है। यह अनुसंधान तो करता है अतिसंधान भी करता है इस प्रकार यह मनुष्य इस सृष्टि में नाश और विनाश के काम करता है। आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य को अतीत के समस्त पापों का प्रायश्चित कर लेना चाहिए और अपनी आत्मा को पापों से दूर कर लेना चाहिए, और हमेशा पाप से घृणा करना चाहिए पापी से नहीं। स्टेण्डर्ड से पहले अन्डर स्टेण्डिंग (समझदारी) होना चाहिए। आज स्टेण्डर्ड के नाम पर मनुष्य बहुत कुछ करता जा रहा है लेकिन उसके पास जो स्टेण्डर्ड है उसकी अपनी कोई अंडर स्टेण्डिंग नहीं है। स्टेण्डर्ड का अर्थ तो आदर्श होता है हमारे जीवन में आस्था, विवेक और कर्त्तव्य का स्टेण्डर्ड होना चाहिए और वह आस्था अन्धी न हो अपितु विवेक के साथ हो और वह विवेक, कर्त्तव्य के साथ हो। यदि हमारे जीवन में आस्था, विवेक और कर्त्तव्य तीनों का एक साथ गठबन्धन हो जाये तो हमारा जीवन महक उठे, सुगन्धित हो जाये। जीवन महान् बन सकता है हम दूसरों के लिए आदर्श बन सकते हैं, उदाहरण बन सकते हैं, शर्त है कि हम अपनी आत्म प्रशंसा न करें। आत्म प्रशंसा हमको अपने कर्त्तव्यों से चलित करती है, विमुख करती है, आत्म प्रशंसा हमको कमजोर करती है और अहंकार को पुष्ट करती है। अतः हम अपनी आत्म प्रशंसा कभी न करें क्योंकि जो प्रशंसनीय होता है उसकी प्रशंसा स्वयं होती है करने की आवश्यकता नहीं।

जीवन को उन्नत बनाने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि हम अपने द्वारा किये गये अतीत के अनर्थ की ओर देखें और उनका संशोधन करें उनका परिमार्जन करें और आगामी काल में उन अनर्थ को नहीं करने का संकल्प करें, इस शरीर को अहिंसा के लिए काम में लायें और मन को भविष्य के उज्ज्वल के लिए लगायें, दूसरों की अच्छाई करने में अपनी बुद्धि लगायें और कर्त्तव्य की ओर आगे बढ़ें तभी हमारा जीवन सार्थक हो सकता है अन्यथा नहीं। अनर्थ वही करता है जो परमार्थ को भूल जाता है जो परमार्थ को याद रखता है वह व्यक्ति अनर्थ नहीं कर सकता, अपने स्वभाव को याद रखना ही परमार्थ को नहीं भूलना है क्योंकि स्वभाव ही तो परमार्थ है, अपनी आत्मा का ख्याल ही तो सही परमार्थ है, अनर्थ से बचना ही तो परमार्थ है, पापों को तोड़ना ही तो परमार्थ है, और अहिंसा ही सही परमार्थ है। हम अहिंसा को जीवन में उतारें तभी सही मायने में हमारा जीवन उन्नत हो सकता है अन्यथा अवनति ही होगी।

आचार्य श्री जी ने अपने गुरु आचार्य ज्ञानसागर जी की राष्ट्रीयता के बारे में बताया कि आचार्य ज्ञान सागर जी महाराज कहा करते थे कि– "**यह मेरा तन भी वतन की सम्पदा है, यह शरीर भी राष्ट्रीय संपत्ति है इसका दुरुपयोग मत करो**" इससे बड़ी राष्ट्र प्रेम, राष्ट्र भक्ति और

राष्ट्रीयता की मिसाल और क्या हो सकती है। यह राष्ट्रीयता का जीवन आदर्श है। आज हम अपने राष्ट्र को भी अपना राष्ट्र नहीं समझ रहे हैं तो फिर इस शरीर की तो बहुत दूर की बात है। वस्तुतः हमारा यह तन राष्ट्रीय संपत्ति ही है और समझना चाहिए। प्रत्येक का तन राष्ट्रीय संपत्ति है इतना ही नहीं चाहे वह मनुष्य हो या जानवर वे सब राष्ट्रीय धरोहर हैं, राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य होता है कि वह अपने देश की रक्षा में अपना सहयोग दे। दूसरे के तन को खाकर वतन की रक्षा नहीं हो सकती, जब जानवर भी राष्ट्रीय संपदा हैं फिर उनका कत्ल क्यों किया जाये? राष्ट्र की उन्नति का यह अर्थ कतई नहीं हो सकता कि हम अपने अर्थ के लिए उनको समाप्त करें और विदेश से मुद्रा कमायें। मनुष्य को चाहिए कि वह जानवरों के लिए आदर्श बनें।

याद रखो। पशु बलि भी नर बलि की ओर ले जा सकती है। देवता बलि नहीं चाहता क्योंकि देवता तो अहिंसा की ओर ले जाता है हिंसा की ओर नहीं। राष्ट्र का कर्त्तव्य है कि वह देश में हो रही पशु बलि (कत्लखाने, मांस निर्यात) को बन्द करवायें। राजा पालक होता है मारक नहीं, लेकिन जब राजा अपनी मनमानी करने लगता है तब प्रजा दरिद्र बन जाती है। आज यही तो हो रहा है नेतृत्व हीनता के कारण प्रजा अन्धी हो गई है घर-घर राजा बन गये हैं इसलिए कोई किसी की नहीं सुन रहा है। स्व-राज्य उतना महत्त्वपूर्ण नहीं, जितना कि उसको अपने लक्ष्य तक पहुँचा देना महत्त्वपूर्ण है। हम अपने लक्ष्य तक पहुँचें सबसे पहले हम अपने लक्ष्य को निर्धारित करें इसके बाद अपना कदम बढ़ाएँ देश की उन्नति अवश्य होगी।

जो व्यक्ति बड़े पद को पाकर अयोग्य काम करता है वह अपने देश को बहुत नुकसान पहुँचाता है। और अपनी भी अवनति करता है। योग्यता का मूल्यांकन करना चाहिए, जिस व्यक्ति के पास जैसी क्षमता है, योग्यता है उसको वैसा ही पद देना चाहिए। यदि व्यक्ति को योग्यता के अनुसार पद दिया जाता है तो वह अपनी एवं अपने राष्ट्र की उन्नति ही करता है। यदि आप कुछ भी नहीं करना चाहते हो तो न सही लेकिन दो काम अवश्य करो पहला निर्बलों को मत सताओ और दूसरा संग्रह वृत्ति मत रखो। संग्रह वृत्ति मात्र मनुष्य ही करता है, जानवर नहीं। वह जंगल का राजा शेर भी किसी का संग्रह नहीं करता, शेर कभी भी मार करके अपने शिकार को कल के लिए नहीं रखता। लेकिन नृसिंह जंगल के शेर से भी अधिक खतरनाक है। पशु तो आज भी अपनी मर्यादाओं में रहते हैं लेकिन इस मनुष्य ने सारी मर्यादाओं को छोड़ दिया। मनुष्य को अपनी जीवन शैली शुद्ध कर लेना चाहिए। यदि मनुष्य सुधर जायेगा तो सारी दुनियाँ सुधर जायेगी, खतरा प्रकृति से नहीं खतरा मनुष्य से है प्रकृति ने मनुष्य को खराब नहीं किया लेकिन इस मनुष्य ने प्रकृति को तबाह कर दिया आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य प्रकृति के अनुरूप चले।

❑ ❑ ❑

धर्म का नाम है भारत, मशीनों का नाम नहीं

धर्म के अभाव में भारत को भारत नहीं कहा जा सकता, भारत बिल्डिंगों, भवनों का राष्ट्र नहीं, भारत मशीनों का राष्ट्र नहीं, भारत बाँधों का राष्ट्र नहीं, भारत धर्म का राष्ट्र है। क्या मशीनों का नाम राष्ट्र है ? क्या बिल्डिगों का नाम राष्ट्र है? क्या बाँधों का नाम राष्ट्र है? यदि सात्विक जीवन जीने वालों का अभाव हो जायेगा तो राष्ट्र का कोई अस्तित्त्व ही नहीं रहेगा क्योंकि सात्विकता के अभाव में राष्ट्रीयता कैसे जिन्दा रह सकती है और जब राष्ट्रीयता का ही अभाव हो जायेगा तब क्या ये मशीन, ये भवन, ये बाँध राष्ट्र को सुरक्षित रख सकते हैं? नहीं। हमें भवनों की नहीं सात्विकता की सुरक्षा करना है और वह सात्विकता मशीनों से सुरक्षित नहीं रह सकती, उस सात्विकता को सुरक्षित रखने के लिए अहिंसा चाहिए, संवेदना, सहानुभूति, विवेक चाहिए, करुणा चाहिए तभी राष्ट्र उन्नत हो सकता है। अतः आज हमको सात्विकता की आवश्यकता है भवनों और मशीनों की नहीं। हमारे पास मशीन तो बहुत हैं बिल्डिंग भी बहुत हैं लेकिन सात्विकता की कमी है संवेदना की कमी है, अहिंसा की कमी है।

जीवन में प्रण महत्त्वपूर्ण है प्राण नहीं क्योंकि प्राण तो बार-बार मिल जाते है लेकिन प्रण बार-बार नहीं मिलता। प्रण के लिए आस्था और विश्वास चाहिए लेकिन प्राणों के लिए इनकी आवश्यकता नहीं। प्राण तो सबके पास होते हैं लेकिन प्रण सबके पास नहीं होता अतः जीवन में प्राण को नहीं, प्रण को महत्त्व दो, प्रण की रक्षा करो, प्रण की रक्षा ही प्राणों की सुरक्षा है क्योंकि जिसका प्रण सुरक्षित है उसके प्राण कभी खतरे में नहीं पड़ सकते और वस्तुतः प्राणों को कोई खतरा नहीं। जो व्यक्ति अपने प्रण को आस्था और विश्वास के साथ पालता है उसका जीवन ही सही मायने में सही जीवन है। हमारे पास प्राण हैं लेकिन प्रण नहीं है हमको आज यह प्रण लेना है कि हमारे देश में हिंसा रुके, हिंसा को रोकने का प्रण लीजिए, यदि हिंसा रुक जायेगी तो आपके प्राण सार्थक हो जायेंगे और जो भी जीव हैं उनके प्राण भी बच जायेंगे। जीवों के प्राणों को बचाने का संकल्प लीजिए जीवों की रक्षा करने का प्रण लीजिए, सभी जीव सुखी रहें, इस प्रकार का प्रण लीजिए।

भारतीय इतिहास और दण्ड संहिता कहती है, हिंसा को रोकने के लिए दण्डित करना चाहिए, हिंसक को समाप्त करने के लिए नहीं। दण्ड देना बुरा नहीं लेकिन क्रूरता के साथ दण्ड नहीं देना चाहिए, क्योंकि यदि अपराधी को क्रूरता के साथ दण्ड देंगे तो वह शायद कभी सुधरे परन्तु उसको विवेक के साथ दण्डित किया जाये तो सुधर भी सकता है, अहिंसक भी बन सकता है, और जीव रक्षा का प्रण भी ले सकता है। दण्ड का विधान ही इसलिए किया गया है कि व्यक्ति उद्दण्डता न करे उद्दण्डता के लिए दण्ड अनिवार्य है ताकि उद्दण्डता रुक सके। हिंसा सबसे बड़ी उद्दण्डता है, क्रूरता के साथ धन अर्जन करना सबसे बड़ी उद्दण्डता है, जीवों को सताना, मारना सबसे बड़ी उद्दण्डता है।

इस उद्दण्डता को रोकना अनिवार्य है। भारत में यह आज बहुत हो रही है, दुधारू जानवरों को मार करके उनका मांस बेचना कितनी क्रूरता के साथ धन कमाने का साधन है। भारत को इस क्रूर वृत्ति का त्याग करना चाहिए क्रूरता से राष्ट्र का भला नहीं, भारत को मांस निर्यात बंद करना चाहिए और दूध का निर्यात करना चाहिए, खून मांस का नहीं।

आचार्य श्री ने एक मांसाहारी जानवर की अहिंसा और संकल्प की निष्ठा का उदाहरण देते हुए कहा कि एक मांसाहारी सियार ने किसी साधु से रात्रि में पानी नहीं पीने का संकल्प ले लिया, एक दिन जब वह प्यासा जल की तलाश करते-करते एक बावड़ी कुआं के पास पहुँचा और जब वह पानी पीने नीचे उतरा तो नीचे अंधेरा होने की वजह से उसने समझा कि अभी रात्रि है लेकिन जब वह कुंआ के बाहर आता तो दिन था नीचे आता तो अंधकार, ऐसा कई बार किया और इसी दौरान उस जानवर के प्राण निकल जाते हैं। क्या समझे आप इस कहानी से? एक जंगल का मांसाहारी जानवर भी अपने प्रण के लिए प्राणों की परवाह किये बिना मर जाता है लेकिन उसने अपने प्रण को नहीं तोड़ा एक मांसाहारी जानवर ने भी रात्रि में पानी का त्याग कर दिया। आप क्या समझते हो इन जानवरों को? इन जानवरों के पास भी धैर्य होता है, इसके पास भी अहसास होता है लेकिन हम तो जानवरों को जान वाले समझते ही नहीं। यह मनुष्य है जो अपने को ही सब कुछ समझता है पर दूसरों को बेजान समझता, उनसे दुर्व्यवहार करता है। इन छोटे-छोटे पशु पक्षियों में भी प्राण हैं उसके पास भी ज्ञान है सोचने विचारने की शक्ति है। वे भी धर्म को समझ जाते हैं और अपने जीवन की उन्नति कर लेते हैं। हमारा इन तमाम पशु-पक्षियों की रक्षा करना परम कर्त्तव्य है, ये जानवर प्रकृति के संतुलन हैं। यह धरती की हरियाली जानवरों की किस्मत से है मनुष्य की किस्मत से नहीं। यदि ये जानवर समाप्त हो जायेंगे तो धरती की हरियाली भी समाप्त हो जायेगी और हरियाली के अभाव में यह मनुष्य जाति भी जिंदा नहीं रह सकती, अत: जानवरों की रक्षा करना ही हरियाली को जिन्दा रखना है। मनुष्य ने आज जानवरों पर बहुत जुल्म करना प्रारंभ कर दिया। लगता है आज मनुष्यता मर चुकी है, पशुओं में भी इतनी क्रूरता नहीं जितनी आज मनुष्य में दिखाई दे रही है। प्राणी संरक्षण आज बहुत कठिन हो गया है जो मनुष्य का पहला कर्त्तव्य था।

अहिंसा की उपासना कोई तिलक लगाने वाला कर रहा है यह कोई नियम नहीं है क्योंकि अहिंसा का कोई तिलक नहीं होगा। अहिंसा आत्मा की वृत्ति है और वह आत्मा पशुओं के पास भी होती है संसार में ऐसा कोई जीव नहीं जिसके पास आत्मा न हो आत्मा के बिना जीव ही नहीं हो सकता। यह आत्मा सबके पास है आपके पास भी है लेकिन आपके पास अहिंसा नहीं, अहिंसा के अभाव में आपकी आत्मा हिंसक हो गई है क्रूर हो गई है, आप अपनी आत्मा में अहिंसा की प्रतिष्ठा करें। जीवन को अहिंसक बनायें इसी में जीवन की सार्थकता है। अहिंसा को न भूलें धर्म को न भूलें

लेकिन यह भी याद रखें कि मंदिर जाकर घंटी बजाना ही धर्म नहीं है। धर्म तो करुणा/दया का नाम है। जो ट्रकों में भरकर जानवर कत्लखाने जा रहे हैं इन जानवरों की रक्षा करो इनकी जान बचाओ यही सही धर्म है।

❑ ❑ ❑

पाप का प्रायश्चित ही पुण्य है

यह आदमी जहाँ रोना चाहिए था वहाँ रोता नहीं जहाँ बोलना चाहिए वहाँ बोलता नहीं। हमको भगवान् के सामने जाकर रोना चाहिए अपने पापों का प्रायश्चित करना चाहिए लेकिन हम भगवान् के पास रोते नहीं हम तो अपने घर में रोते हैं। यदि हम अपने पापों के पश्चाताप में रोने लगें तो हमारे सारे पाप धुल जायें। हम अपने पापों को धोना कहाँ चाहते हैं। भगवान् के पास जाकर रोना प्रारंभ कर दो तो तुम्हारे सारे पाप धुल जायेंगे। इसी प्रकार हमको जहाँ बोलना चाहिए वहाँ हम मौन रहते हैं। घरों में दुनियाँ की बातें करते हो, यहाँ वहाँ की बातें करते हो, बेअर्थ और बेकार की बातें करते हो, अपने मतलब की बातें करते हो लेकिन भगवान् के सामने जाकर अपने पापों की बातें क्यों नहीं करते? अपने पापों की बात करो। अपने पापों की निन्दा करो, अपने पापों की आलोचना करो यदि तुम अपने पापों की आलोचना करना प्रारंभ कर दोगे तो तुम्हारा बोलना सार्थक हो जावेगा।

आवेग नहीं वेग बढ़ाओ और वह वेग-निर्वेग बढ़ाओ संवेग को बढ़ाओ यदि संवेग व निर्वेग का विकास हो जायेगा तो तुम अपनी आत्मा में लीन हो जाओगे लेकिन किसी भी हालत में आवेग मत बढ़ाओ। यह आवेग, उद्वेग हमको आकुल व्याकुल करते हैं। इनसे हम परेशान होते हैं यह आवेग हमारे मन को विचलित करते हैं, चंचल करते हैं इन आवेगों से हमारा मन कमजोर हो जाता है अपने स्वभाव से च्युत हो जाता है। अतः उन आवेगों को सबसे पहले छोड़ दो और आवेगों को छोड़ने का सरल तरीका यही है कि हम उपेक्षा वृत्ति को अपना लें। उपेक्षा का अर्थ द्वेष नहीं है उपेक्षा तो ज्ञान का फल है अतः इस उपेक्षा वृत्ति को अपने जीवन में स्थान दो। उपेक्षा का अर्थ तिरस्कार नहीं है अपितु समदृष्टि, समता, समभाव है।

आप अपने अंदर जाना सीखो। आपके भीतर सुख का खजाना है लेकिन आप उस सुख को भूलकर बाहर भटक रहे हो। जो अपने अन्दर रहते हैं वे मुनि महाराज कभी बाहर आना नहीं चाहते। जिस प्रकार आप एअर कण्डीशन (ए.सी.) से बाहर निकलना नहीं चाहते जिसके अन्दर अध्यात्म की ए.सी. लगी है वह उसको कभी छोड़ना नहीं चाहता क्योंकि वह उसकी ए.सी. कभी समाप्त नहीं होगी। जबकि आपकी ए.सी. कभी भी बिगड़ सकती है। अपने अन्दर पहुँच जाओ बस। तुमको सब कुछ मिल जायेगा। तुम्हारे अन्दर वह सत्य छुपा है, वह धर्म छुपा है, वह अध्यात्म छुपा है यदि तुम

एक बार भी अपने अन्दर झांक लोगे तो तुम्हारी अनन्तकालीन प्यास एक क्षण में तृप्त हो जायेगी।

सत्य की पहिचान, सत्य की परिभाषा बहुत गहराई में छुपी है, सत्य का निर्णय कठिन है जल्दबाजी करने से सत्य भी असत्य सा प्रतीत होने लगता है। असत्य से विरक्ति ही सत्य है। सत्य बोलने का नाम सत्य नहीं, अपितु झूठ नहीं बोलना सत्य कहलाता है। सत्य को प्राप्त करने के लिए क्रोध, मान, माया, एवं लोभ इन चारों पर नियंत्रण करना बहुत जरूरी है क्योंकि हम क्रोध की वजह से झूठ बोलते हैं अहंकार की वजह से झूठ बोलते हैं, छल की वजह से झूठ बोलते हैं, लोभ की वजह से झूठ बोलते हैं। हम इन चारों को जीतें तब ही सत्य का पालन कर सकते हैं। सत्य का आचरण किया जा सकता है लेकिन उसका प्रदर्शन नहीं किया जा सकता। सत्य दर्शन का विषय है प्रदर्शन का नहीं। जो व्यक्ति सत्य का प्रदर्शन करता है वह अभी सत्य से परिचित ही नहीं है। अतः सत्य का आचरण करो। सत्य ही जीवन का सार है। हम ऐसा सत्य बोलें जिससे हमारा और दूसरों दोनों का कल्याण हो। लेकिन ऐसा सत्य भी नहीं बोलें जिससे दूसरों पर संकट खड़ा हो जाये। सत्य स्व और पर दोनों के लिये कल्याणकारी होना चाहिए।

'व्रत' और 'सत्य' में क्या अन्तर है? व्रत अपने लिये होता है और सत्य दूसरों के लिये होता है। सत्य के माध्यम से हम दूसरों का भला करें। व्रत के माध्यम से हम अपना कल्याण करते हैं। सत्य से कभी अकल्याण नहीं हो सकता। असत्य से बचने के लिये हमें प्रमाद से बचना चाहिए क्योंकि हम प्रमाद से ही असत्य का काम करते हैं। कषायों से बचना बहुत कठिन है और उनको जानना और भी कठिन है हमको इन कषायों की जानकारी करना चाहिए ताकि हम अकल्याण से बच सकें। सत्य का पालन बाहरी दुनियाँ को देखने से नहीं हो सकता। सत्य के लिये अपने अन्दर देखना पड़ेगा। सत्य की रक्षा, सत्य का संरक्षण अपने भीतरी भावों को देखे बिना नहीं हो सकता। मौन का पालन करो। लेकिन विदाऊट इंडिकेशन यानी बिना संकेत दिये मौन का पालन करना चाहिए। मौन का पालन वही व्यक्ति कर सकता है जो अपनी भीतरी आकुलता को सहन करने वाला हो क्योंकि हम आकुलता के कारण ही बोलते हैं।

हम बोलना क्यों चाहते हैं क्योंकि हम आकुल हैं। यदि हम अपनी भीतरी आकुलता को जीत लें तो हम आज भी मौन हो सकते हैं सत्य बोलने मात्र से सत्य का पालन नहीं हो सकता है अपितु सत्य को जीवन में उतारना है। जो व्यक्ति अपने जीवन में सत्य का पालन नहीं करता उसका सत्य बोलना कोई मायने नहीं रखता। जीवन में सत्य का पालन करो। सत्य का पालन करने का अर्थ ही अपने अस्तित्त्व की पहचान है।

❑ ❑ ❑

जीवन में ड्यूटी की आवश्यकता है, ब्यूटी की नहीं

मानव जीवन में ड्यूटी की आवश्यकता है ब्यूटी की नहीं, जीवन को कर्त्तव्य चाहिए सुन्दरता नहीं क्योंकि समीचीन ज्ञान की शोभा कर्त्तव्य है, सुन्दरता नहीं। सुन्दरता तो बाहरी होती है, शरीर की होती है लेकिन कर्त्तव्य आत्मा का होता है, भीतर का होता है। हमारे जीवन में आज ब्यूटी (सुन्दरता) की कमी नहीं है। हमारे घरों में सैकड़ों सौन्दर्य प्रसाधन की सामग्री रखी है, सुन्दरता की सामग्री बाजारों में मिल रही है लेकिन कर्त्तव्य की वस्तु बाजारों में नहीं मिलती। जीवन में लाइट जलाने की आवश्यकता नहीं अपितु जीवन को लाइट में लाने की आवश्यकता है। जीवन को लाइटिड (प्रकाशित) करिए लेकिन लाइट से नहीं कर्त्तव्य से। जब आपका जीवन कर्त्तव्य से लाइटिड हो जायेगा, तो यह सारी दुनियाँ के लोगों की भलाई का साधन बन जायेगा। वस्तुतः जो व्यक्ति कर्त्तव्यों का पालन कर रहा है वह प्रतिदिन पर्व मना रहा है, कर्त्तव्य का पालन ही तो सबसे बड़ा पर्व है। आप अपने कर्त्तव्यों की ओर देखिए, अपने जीवन का एक निश्चित लक्ष्य अपनाइए और अपने मानव जीवन को सफल बनाइए। मानव जीवन को कर्त्तव्य की ओर लगाना ही इसकी सफलता है।

हिंसा को रोकने के लिये क्रोध करना भी क्षमा है। यानि कोई निरपराध प्राणियों को सताता है और यदि आप उन प्राणियों की रक्षा के लिए क्रोध भी करते हैं तो आपका वह क्रोध भी उत्तम क्षमा है। क्रोध और क्षमा ये दोनों बाहरी चीजें नहीं यह तो विचारों के ऊपर डिपेण्ड है। यदि आपका उद्देश्य ठीक है, विचारों में अहिंसा है, भावनाओं में करुणा है, हृदय में विशालता है तो आपका क्रोध करना भी उत्तम क्षमा है। क्योंकि आप जो क्रोध कर रहे हैं वह किसी को धमकाने, डराने के लिए नहीं कर रहे हैं, अपितु जो भयभीत है, डरा हुआ है, घबड़ा रहा है, उसका जीवन खतरे में है और यदि आप उसकी जान बचा लेते हैं, उसको जीवन दान देते हैं तो आपका यह सारा प्रयास महान् अहिंसा की कोटि में आता है, क्षमा की कोटि में आता है।

जीवों की रक्षा करना ही पर्व है, किसी जीव को मत सताओ, जो जीवों की रक्षा कर रहा है वह प्रतिदिन पर्व मना रहा है। पशुओं से प्रेम करना भी पर्व है, पशुओं की रक्षा करना, पशुओं का संरक्षण करना, उनका पालन पोषण करना महान् पर्व है। पर्व क्या चीज है? हमारे द्वारा जो कर्त्तव्यनिष्ठा के साथ सद्व्यवहार किया जाता है वही तो पर्व है। आज पशुओं पर बहुत जुल्म हो रहे हैं, पशुओं का कत्ल हो रहा है, पशुओं का मांस निर्यात हो रहा है, जो व्यक्ति इतनी बड़ी हिंसा को रोकने की आवाज लगा रहा है, पशु हिंसा का विरोध कर रहा है, वह व्यक्ति बहुत बड़ा पर्व मना रहा है, वह तो संसार की बहुत बड़ी भलाई कर रहा है। आज आवश्यकता इसी बात की है कि हम मानवता को जिन्दा रखें। जीवों की रक्षा मानवता की पहिचान है। मानवता ही तो धर्म है, मानव की कीमत नहीं होती

कीमत तो मानवता की होती है, हमारे अन्दर मानवता लगे, पशुता का अभाव हो। हिंसा पशुता की पहचान है जबकि अहिंसा मानवता का चिह्न है, पशुओं को सताना हिंसा है जबकि उनकी जान बचाना महान् अहिंसा है।

तन कमजोर है रहने दो लेकिन मन को कमजोर मत करो यदि तुम्हारा मन कमजोर हो गया तो तुम कुछ भी नहीं कर सकोगे। मन की ताकत अपूर्व है धन की शक्ति, वचन की शक्ति और शरीर की शाक्त से कई गुना अधिक है मन की शक्ति। इसी लिये तो मन को कमजोर मत होने दो तुम अपना मन बलवान करो तुम्हारी जीत होगी, अपनी भावना को कमजोर मत होने दो तुम अपना मन बलवान करो तुम्हारी जीत होगी, अपनी भावना को सात्विक बनाओ। हृदय की हाईट बढ़ाना हृदय की विशालता नहीं है वह तो खतरे की निशानी है अपने अभिप्रायों, विचारों, उद्देश्यों, भावनाओं को बड़ा, तभी आप विशाल हृदय कहला सकते हैं। जिसकी भावनाएँ बड़ी हैं वही बड़ा व्यक्ति है, जिसके विचार बड़े हैं वही बड़ा व्यक्ति है जिसका उद्देश्य महान् है वही बड़ा व्यक्ति है।

खर्च कम और आमदनी ज्यादा यह हमारी आर्थिक उन्नति का लक्षण है। हम अपनी उन्नति करना चाहते हैं, अपना विकास चाहते हैं लेकिन खर्च अधिक करते हैं, जबकि हमारी आमदनी बहुत कम है। हमारी खर्चीली आदतें, विलासितापूर्ण जीवन ही हमारे लिए गरीबी का कारण सिद्ध हो रहा है। हमको अपनी प्राचीन प्रणाली को लागू करना होगा जो हमारे पूर्वजों के पास थी, उनका जीवन सादगीपूर्ण था हमारा आडम्बरपूर्ण है। हम प्रदर्शन में जी रहे हैं जबकि हमारे पूर्वज दर्शन में जीते थे। हमको आडंबरों को छोड़कर, सन्तोष और सरलता की जिंदगी अपनाना होगी तभी हमारा विकास हो सकता है अन्यथा कुछ नहीं।

दुकान तो नौकरों के द्वारा भी चल सकती है लेकिन धर्म का पालन नौकरों के हाथ नहीं हो सकता, धर्म दूसरों की चीज नहीं धर्म के लिए हमको अपनी कमर ही कसना होगी। क्योंकि धर्म आत्मा की वस्तु है। धर्म भावों पर जीता है, भावों पर चलता है। हमारे भाव हमारे लिए हैं दूसरों के भाव हमारे लिए नहीं हो सकते। अपने पास संतोष होगा उससे शांति हमको मिलेगी, हमारे पास लोभ होगा हमारे पास अशान्ति होगी। आत्म शांति की अनुभूति दूसरों के द्वारा हमको नहीं हो सकती। मानव जीवन मिला है, जीवन को समझो अपने मन को बलवान बनाओ आगे की ओर चलो जीना चाहते हैं तो जीवन को 'जीना' पर अर्थात् सीढ़ी पर अग्रसर करो जीवन का विकास 'जीना' पर चढ़े बिना नहीं हो सकता। जीवन विकास की सीढ़ियाँ करुणा और अहिंसा हैं, हिंसा को रोकने का काम करो, देश में, परिवार में, घर में शांति की स्थापना करो। और अपने देश और समाज की सेवा करो, जिससे अपना और दूसरों का भला हो।

❑ ❑ ❑

स्वाभिमान करो अभिमान नहीं

दु:खियों को देखकर कभी भी किसी को अभिमान नहीं होता। अभिमान वहाँ होता है जहाँ हम अपने स्वभाव से च्युत हो जाते हैं। जहाँ जितना परिचय होगा वहाँ उतना ही अधिक संघर्ष होता रहा है। भगवान् को देखकर कभी किसी को अभिमान नहीं होता, अपितु अहंकार चला जाता है, और वस्तुतः अहंकार को चकनाचूर करना ही भगवान् की सही उपासना करना है। अहंकार मत करो चाहे महल हो या झोपड़ी किसी का अभिमान मत करो क्योंकि ये दोनों छूटने वाले हैं फिर अभिमान किसका करना यह आदमी अपनी मान प्रतिष्ठा के लिये अपना और दूसरों का शिकार करता है यानि अहंकारी अपना और पराये का विनाश करता है अहंकार मत करो यह प्रतिष्ठा किसके लिए, कल मर जाओगे कुछ भी साथ नहीं जायेगा ये झूठे अहंकार के लिये क्यों अपना माथा काट रहे हो। दरिद्रता में कभी अहंकार नहीं होता, अहंकार वहाँ ही जन्म लेता है जहाँ धन-दौलत की धनाड्यता होती है।

दुनियाँ में सबसे अधिक अनर्थ, पाप अहंकार के कारण ही होता है। आज दुनियाँ में जो संघर्ष छिड़ा है वह अहंकार का तमाशा ही है और कुछ नहीं आज जितना धन सौरमण्डल की खोजों में खर्च किया जा रहा है उससे विश्व की तीन वर्ष तक की खुराक की पूर्ति की जा सकती है। अहंकार झूठा है, यदि हम दीन-दुखियों के बारे में सोचना प्रारंभ कर दें तो हमको अहंकार नहीं हो सकता हम अपने समान वालों के बारे में सोचते हैं। एक धनी, धनी के बारे में सोचेगा तो निश्चित ही वहाँ अहंकार का ही कार्य होगा, दुखियों के बारे में सोचो, गरीबों के बारे में सोचो, दरिद्रों के बारे में सोचो, तुम्हारा अहंकार मर जायेगा, अहंकार को जीतना ही मनुष्य जीवन की सफलता है। अपने अहंकार, मान, प्रतिष्ठा के कारण हमने बहुत सारे गुणों का अनादर किया। अहंकारी व्यक्ति गुणों का सम्मान नहीं कर सकता, अहंकारी अपने जीवन को छोड़ देता है लेकिन अहंकार नहीं छोड़ता। रावण अहंकार के कारण ही नरक गया। याद रखो, यदि हम अहंकार करते हैं तो हम भी रावण से कम नहीं और हमारी गति भी नरक गति हो सकती है।

अहंकार करना छोड़ दो अनर्थ अपने आप छूट जायेगा। तत्त्वज्ञान का सम्मान करो, ज्ञानी का सम्मान करो, अज्ञानी का सम्मान मत करो क्योंकि ज्ञानी का सम्मान करने से बहुत से अज्ञानी ज्ञानी बन जाते हैं जबकि अज्ञानी का सम्मान करने से उस अज्ञानी का अहंकार उसके लिए पतन का कारण बन जाता है इसीलिए तो अपने धन का घमण्ड मत करो अपनी जाति का घमण्ड मत करो। जिसका तुम घमण्ड कर रहे हो यह मद का विलोम ही दम होता है याद रखो मद के कारण ही दम घुटता है तुम्हारा दम घुट रहा है क्योंकि तुम मद कर रहे हो, मद करना छोड़ दो दम घुटना बंद हो जायेगा।

घमण्ड करने वाले अन्धे होते हैं तुम्हारे पास ज्ञान की आँखें है उस ज्ञान की आँखों से देखो अहं धन, दौलत, रूप, बल, जाति, वंश किसी का भी अहंकार मत करो अहंकार से जीवन का पतन होता है यदि तुम अपना उत्थान चाहते हो तो दूसरों का सम्मान करना प्रारंभ कर दो।

जीवन में दूरदृष्टि की आवश्यकता है दूरदर्शन की नहीं। दूरदर्शन से आँखें खराब होती हैं जबकि दूरदृष्टि से मानसिकता का विकास होता है आज हम दूरदर्शन के आदी होते जा रहे हैं जबकि हमको दूरदृष्टि को मजबूत करना है। जिसके पास दूरदृष्टि है वही आत्मा को समझ सकता है दूरदर्शन में तो दुनियाँ की खबरें है आत्मा की नहीं। आज हमको इस बात की आवश्यकता है कि हम अपनी दृष्टि को उन्नत दृष्टि बनायें यानि हम अन्तर्मुखी बनें। मनुष्य को तो दूरदृष्टि वाला होना ही चाहिए क्योंकि मनुष्य मनु की सन्तान है मनुष्य को मनु के अनुसार चलना चाहिए। मनु मान नहीं करते वह तो मान सम्मान सिखलाने वाले होते हैं हम मनु को भूल गये हैं इसीलिये मान करने लगे अतः हमको किसी भी कीमत पर मान (घमण्ड) नहीं करना चाहिए।

आप अपनी पेटी नहीं पेट भरो। पेट तो आधे घण्टे में भी भर सकता है जबकि पेटी जीवनभर में भी नहीं भर सकती आज हम अपनी पेटी के चक्कर में लगे हैं इसलिए हम अपना पेट नहीं भर पा रहे हैं। पेट पापी नहीं है, पेटी पापी है क्योंकि आदमी पेट के लिये कम पेटी के लिये अधिक पाप करता है। आज की दुनियाँ में पेटी भरने के लिये ही लोग पाप कर रहे हैं। यह कौन सा जमाना है कि लोगों की पेटियाँ लबालब भरी हैं लेकिन पेट खाली है। पेट भरने वालों ने लोगों का पेट खाली किया है। अपना पेट भरो पेटी नहीं।

भारत की संस्कृति अहिंसा है और उस संस्कृति की रक्षा अहिंसा से होगी साहित्य से नहीं। आज साहित्य का प्रकाशन एवं संरक्षण तो कर रहे हैं लेकिन जिससे हमारी संस्कृति जिन्दा रहने वाली है उसको हम भूलते जा रहे हैं। अहिंसा को भूलकर अकेला साहित्य क्या करेगा। आखिर हमारा साहित्य भी तो इसीलिए है कि हम हिंसा को छोड़कर अहिंसक बनें, साहित्य अहिंसा ही तो सिखलाता है। भारतीय साहित्य यह कभी नहीं कहता कि तुम हिंसा करो, वह तो अहिंसावादी है। क्योंकि उसका सृजन अहिंसकों के द्वारा हुआ है हिंसकों के द्वारा नहीं। जब हमारा साहित्य अहिंसावादी है, हमारी संस्कृति अहिंसावादी है तो फिर हमारी सरकार अहिंसावादी क्यों नहीं बन रही है? कत्लखाने खोलना, मांस निर्यात करना, यह कहाँ तक उचित है अहिंसक भारत के लिए? भारत की शान मांस निर्यात करने में नहीं है, भारत का गौरव, भारत की प्रतिष्ठा, भारत की विजय मांस निर्यात करने में नहीं है, कत्लखाने खोलकर खून, मांस बेचकर क्या हम विश्वशांति ला सकते हैं? हमें विश्व शान्ति की आवश्यकता है कत्लखानों की नहीं।

❑ ❑ ❑

छल कपट से जल्दी निपट

जो सीधे होते हैं वे ही सीझते हैं यानि वे अपनी आत्मा का कल्याण कर लेते हैं। जो व्यक्ति सीधे नहीं है वे कभी सुलझ नहीं सकते क्योंकि उल्टा व्यक्ति अपने स्वभाव की पहिचान नहीं कर सकता। हमारे लिए टेढ़ापन खतरनाक है, टेढ़ापन तेरापन नहीं है। जो व्यक्ति साध्य को प्राप्त कर लेता है वह पूज्य बन जाता है, पूज्य बनने के लिए पूजा करवाने की आवश्यकता नहीं पूज्य बनने के लिये उद्देश्य को बनाने की आवश्यकता है। आर्जव यानि सीधापन कथन का विषय नहीं यह तो यतन यानि चारित्र अपनाने का विषय होना चाहिए जब तक हम टेढ़ापन को नहीं छोड़ते हमारे जीवन में सीधापन आ ही नहीं सकता। जीवन में जानना, मानना, अनुभूति इन तीनों में अनुभूति ही महत्त्वपूर्ण है। जानना शब्दों के माध्यम से होता है, मानना आस्था के माध्यम से होता है जबकि अनुभव चेतना से होता है, शब्द सो आस्था नहीं, शब्द सो अनुभव नहीं।

जीवन में भावों की महत्ता होती है। भावों के बिना सब व्यर्थ है, हम यदि भावपूर्वक अपना कार्य करते हैं तो उसकी सफलता होती है। हम धर्म करें, भावपूर्वक करें, माला-जाप करें भाव पूर्वक करें, पूजा करें भावपूर्वक करें, भावपूर्वक करना ही अच्छा है। जीवन को समझो परिग्रह को समझो, परिग्रह पीड़ादायी होता है जिस प्रकार भोजन करते समय श्वांस नली में अनाज का एक दाना भी चला जाता है तो हमको ठसका लग जाता है उसी प्रकार मोक्षमार्ग में परिग्रह का एक कण भी क्यों न हो उसका ठसका लगता है। परिग्रह से बचो। परिग्रह के कारण हम अपनी साधना को भूल जाते हैं परिग्रह हमारे लिए अभिशाप है। परिग्रह ही वस्तुतः सही शनिश्चर है। इस परिग्रह रूपी शनिश्चर से बचो।

सीधापन को पाने के लिए भूत और भविष्य को भूलना पड़ता है। हम भविष्य में जीते हैं, अतीत में जीते हैं। वर्तमान को भूले रहते हैं। सबको भूलो, वर्तमान ही याद रखो, वर्तमान ही वर्द्धमान होता है। वर्तमान को सीधा रखो, भविष्य अपने आप उज्ज्वल बन जायेगा। हमारा जीवन आस्था, जिज्ञासा और भरोसा में ही गुजरता रहता है, लेकिन वास्तविकता यह है कि आशा हमको निराशा ही देती है फिर भी हम आशा को पहिचान नहीं पाते। वस्तु को कालों में मत बांटिए क्योंकि वस्तु का परिणमन कालातीत होता है। हमको काल की ओर दृष्टि न डालकर वस्तु की ओर दृष्टिपात करना चाहिए अन्यथा हम आत्मा को नहीं समझ सकते।

सीधेपन में ही आनन्द है। टेढ़ेपन में तो मात्र दुख और तकलीफ है। भगवान् और आप में इतना ही अन्तर है कि भगवान् नाशा पर दृष्टि रखते हैं और आप आशा पर। आप आशा करते हैं और प्रतीक्षा करते हैं, लगता तो ऐसा है कि हम वर्तमान में बैठे हैं लेकिन हम आशा और प्रतीक्षा के कारण

अतीत और भविष्य में जीते रहते हैं। बाण की गति यदि टेढ़ी हो तो वह बाण अपने निशाने तक पहुँच नहीं सकता इसी प्रकार जब तक हमारी दृष्टि टेढ़ी रहेगी हम अपने लक्ष्य के निशाने तक पहुँच नहीं सकते। यदि हमें अपने लक्ष्य तक पहुँचना है तो हमको सबसे पहले दृष्टि की वक्रता को छोड़ना होगा। अपने स्वभाव को जानो। गाय भले काली हो लेकिन उसका दूध काला नहीं होता। उसी प्रकार यह आत्मा विभाव भावों के कारण टेढ़ी हो रही है लेकिन उसका स्वभाव तो टेढ़ा नहीं है। हाथ टेढ़ा हो, पैर टेढ़ा हो लेकिन आत्मा तो टेढ़ी नहीं होती, उसका स्वभाव तो सीधा है, हमारे विचारों के कारण ही यह आत्मा टेढ़ी हो रही है।

लोहे की रॉड को सीधा करने के लिए गरम करना पड़ता है यानि उसको मुलायम करना पड़ता है, लोहे को मुलायम बनाने के लिए उसको अग्नि में तपाना पड़ता है बिना तपे लोहा मुलायम नहीं बनता इसी प्रकार जीवन को मुलायम बनाने के लिए बहुत तपस्या करना पड़ेगी। साधना अपनाये बिना जीवन का विकास सम्भव नहीं है, जीवन का विकास आत्म साधना के माध्यम से ही हो सकता है और वह साधना क्या है? सीधापन ही जीवन की साधना है, हमारे पास जो वक्रता है, टेढ़ापन है उसका विमोचन ही जीवन की साधना है। तुम भी इस सीधेपन की साधना करो।

छल-कपट मत करो, छल-कपट करना आत्मा का स्वभाव नहीं है अपितु छल कपट को भूल जाना ही आत्मा का स्वभाव है। छल-कपट से बचना बहुत बड़ा पुरुषार्थ है, बहुत बड़ी साधना है। हमारा जीवन नीचे गिर जाता है क्योंकि हमारी दृष्टि नीचे गिर जाती है। पहले हमारी दृष्टि गिरती है फिर बाद में हम गिरते है। कदमों का गिरना कोई गिरना नहीं है जो अपने चारित्र से गिर गया वस्तुतः वह पतित हो गया इसलिए अपने चारित्र की उज्ज्वलता के लिए अपनी दृष्टि को सीधा रखें यानि पवित्र रखें दृष्टि की पवित्रता ही जीवन की पवित्रता का मार्ग है और यही महानता का मार्ग है।

❑ ❑ ❑

समय मूल्यवान है किताब नहीं

आप विदेश जायें लेकिन वहाँ अपने देश की चीजें देखकर आयें, विदेश की चीजें न लायें क्योंकि भारत में किसी बात की कमी नहीं है, भारत के पास सब कुछ है। आज हम भारतीय विदेशी वस्तुओं को अपना कर अपने देश का बहुमान कम कर रहे हैं हमको अपने देश पर बहुमान होना चाहिए। लेकिन हमको तो आज विदेशी वस्तुएँ ही पसन्द आती हैं स्व-देशी नहीं। 'मेड इन इंडिया' हमको पसंद नहीं। हम तो 'मेड इन जापान' पसन्द करते हैं भले वह भारतीय चीज ही क्यों न हो लेकिन उसमें यदि लेबल जापान का लगा हो तो हम उसको पसन्द कर लेते हैं। आज हम बाहरी लेबल में अपने आपको भूल रहे हैं। भारत की प्रतिष्ठा, भारत की गरिमा को याद करो, भारत की संस्कृति बड़ी उज्ज्वल संस्कृति है।

जो साहित्य आपके मन को दूषित करे, गन्दा करे, विकृत करे ऐसा प्रदूषित साहित्य यदि आपको मुफ्त में भी मिलता हो तो उसको मत लीजिए, क्योंकि साहित्य का मन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है, अश्लील और कामुक साहित्य से विचार गन्दे हो जाते हैं, भावनाएँ खराब हो जाती हैं और हम नैतिकता से बहुत नीचे गिर जाते हैं, अपने कर्त्तव्य भूल जाते हैं लज्जा और मर्यादा खो जाती है अतः हमको ऐसे अश्लील, खोटे दूषित साहित्य नहीं पढ़ना चाहिए। साहित्य तो वही कहलाता है जिसके द्वारा हमारा हित होता हो, जो साहित्य हमको अहित की ओर ले जाये, कुपथ में ले जाये ऐसे असत् साहित्य से हमको बचना चाहिए और अच्छे साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। मूल्यवान किताब नहीं मूल्यवान तो समय है, यह हमारी कमजोरी है कि हम किताबों के मूल्य में ही बह जाते हैं और जिस किताब की कीमत जितनी अधिक होती है उसको हम उतनी ही अधिक मूल्यवान समझते हैं। हमने समय से अधिक किताबों को समझ रखा है। क्या कभी आपने सोचा कि समय का कोई मूल्य नहीं होता वह तो अमूल्य होता है। लेकिन हम पाँच सौ रुपये की किताब को एक वर्ष में पढ़ते हैं और एक वर्ष के लम्बे समय को पाँच सौ रुपये में ही बड़ा समझते हैं। आप किताबों को अलमारी में रखते हैं फिर आप अपने आपकी सुरक्षा नहीं कर पाते। आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने समय को सुरक्षित रखें, समय की कीमत करें, समय का सदुपयोग करें, समय का आदर करें, यदि आप समय की कीमत समझ लोगे तो निश्चित ही आपका जीवन महान् बन सकता है, आदर्श बन सकता है। बस! आप अपनी आत्मा को समझते हुए अपने और पराये दोनों के कल्याण में लगें।

वाणी की शुद्धि अलग है और मुँह की शुद्धि अलग है। वाणी की शुद्धि व्याकरण से होती है जबकि मुँह की शुद्धि नीम की दातौन आदि से हो जाती है जीवन में दोनों शुद्धियाँ अनिवार्य हैं, वचन शुद्धि और मुख शुद्धि। हम अपने शरीर की शुद्धि जल से कर लेते हैं लेकिन हम अपने चित्त को, मन को, पानी से साफ नहीं कर सकते। मन की शुद्धि के लिए योग की आवश्यकता है। योग के बिना हमारा चित्त शुद्ध नहीं हो सकता। आज का आदमी अपने शरीर की शुद्धि तो कर रहा है लेकिन मन की शुद्धि का काम नहीं कर रहा है। पानी की सफाई कोई सफाई नहीं है, वह तो आत्मा की सफाई नहीं है वह तो शरीर की सफाई है शरीर की सफाई आत्मा की सफाई नहीं है। आत्मा की सफाई रत्नत्रय से होती है जिसके जीवन में रत्नत्रय है उसकी आत्मा पवित्र है लेकिन जिसके पास रत्नत्रय नहीं वह पवित्र नहीं। जैन दर्शन कहता है कि 'मैं' को भूल जाओ और 'मैं' को याद भी रखो। दूसरों के सामने 'मैं' अर्थात् अहं को भूल जाओ और अपने लिए 'मैं' को याद रखो। अहं को भूलो और आत्मा को याद रखो। आज का विज्ञान पर का शोध करना सिखलाता है जबकि भेद-विज्ञान सरल ज्ञान 'स्व' की खोज करना सिखलाता है। 'स्व' की खोज ही आत्मा की शोध है। जो व्यक्ति स्वयं

मलिन है वह दुनियाँ को निर्मलता का बोध नहीं दे सकता। जिसका मन अशुद्ध है वह शांति का अनुभव नहीं कर सकता। मन को सबसे पहले शुद्ध करो, आपके वस्त्र शुद्ध हैं, आपका शरीर शुद्ध है लेकिन वस्त्रों की शुद्धि मात्र से मन की शुद्धि होने वाली नहीं है। यदि हम शान्ति को चाहते हैं तो हमको अपने मन को शुद्ध करना चाहिए।

नीति का अर्थ समझो नीति का अर्थ क्या है? 'नी' का अर्थ निश्चय और 'इति' का अर्थ विश्राम करना। अर्थात् अपनी आत्मा में विश्राम करना ही नीति का सही अर्थ है। हमने नीति की परिभाषा को क्या बना दिया है। आज हमारी नीति की परिभाषा कितनी बदनाम है, जरा सोचो इस नीति की परिभाषा को बदलो। आत्मा की नीति ही सही नीति है। आज का जमाना इस नीति की परिभाषा को भूल गया है, इसीलिए तो युग भटक रहा है। आज हमको आवश्यकता इस बात की है कि हम भारतीय नीति की सात्विक परिभाषा को समझकर अपने देश को, अपने मन को शुद्ध करें। आत्म नीति ही आत्म शांति का कारण है राजनीति नहीं।

❑ ❑ ❑

अश्लीलता को रोकना ही शील है

यह संसारी प्राणी आहार, भय, मैथुन और परिग्रह इन चार संज्ञाओं से पीड़ित है। आहार से पीड़ित है यह प्राणी मैथुन (वासना) से पीड़ित है परिग्रह मूर्च्छा से पीड़ित है और भय से पीड़ित है यह आदमी। मानव जीवन पाया है तो इन पर विजय प्राप्त करें, आहार, भय, मैथुन और परिग्रह इन चार संज्ञाओं (इच्छाओं) में सबसे प्रबल संज्ञा मैथुन (वासना) है। वासना को जीतना बहुत मुश्किल है, वासना पर विजय प्राप्त करना बहुत कठिन है। दुनियाँ के तमाम जीव इस वासना के चक्कर में लगे हुए हैं वीर वही होता है जो वासना के काबू में नहीं होता। यह संसारी प्राणी शील (ब्रह्मचर्य) से रहित है जबकि भगवान् शील के शिखर हैं। वासना को जीतने के लिए साहस की आवश्यकता पड़ती है लेकिन श्रद्धान के बिना साहस कमजोर ही रहता है। सबसे पहले अपने में अपना विश्वास कीजिए अपना विश्वास मजबूत कीजिए, यदि आप अपना विश्वास मजबूत कर लोगे तो आपको वासना पर विजय प्राप्त करने के लिए कुछ भी कठिनाई का अहसास नहीं होगा। जीवन में शील (ब्रह्मचर्य) की बहुत महत्ता है, ब्रह्मचर्य के अभाव में साधना नहीं हो सकती, ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। शील का श्रृंगार जीवन की शोभा है, शील के अभाव में जीवन का कोई मूल्य नहीं है। हम वासना में जकड़े हुए हैं वासना के चक्कर में लगे हम अपनी शक्ति की खोज नहीं कर पा रहे हैं। ब्रह्मचर्य शक्ति है जबकि वासना कमजोरी है। वासना का अर्थ ही यह है कि वेदना का प्रतिकार करना। वासना एक वेदना है, एक पीड़ा है, यह संसारी जीव उसी वासना की वेदना को सहन करने में असमर्थ रहता है इसीलिए उसके प्रतिकार के लिए लगा रहता है।

वासना की उत्पत्ति क्यों होती है? वासना की जागृति इसीलिए होती है कि हम जड़ तत्त्व में हाईलाइट देते हैं। यदि हम अपनी आत्मा में हाईलाइट देना प्रारम्भ कर दें तो हमारा जीवन सफल हो सकता है। हम वासना को हाईलाइट देते हैं इसीलिए पीड़ित रहते हैं। हाईलाइट का अर्थ विशेष रेखांकन यानि अण्डर लाइन, अपने जीवन में अक्षर लाइन लगाओ, तुम्हारी दूसरों के अण्डर रहने की कमजोरी समाप्त हो जायेगी। अपने अन्दर चले जाओ बाहरी चमक-दमक से बचो। अपनी आत्मा को समझो आत्मा के स्वरूप को समझो और अपनी आत्मा का कल्याण करो, कल्याण करना ही सही ब्रह्मचर्य है।

शील (ब्रह्मचर्य) का पालन गृहस्थों को भी करना चाहिए। गृहस्थ जीवन में श्रावक का एक 'स्वदारसंतोष' नामक ब्रह्मचर्य व्रत होता है जिसका अर्थ होता है अपनी धर्मपत्नी में ही सन्तोष रखना और बाकी की समस्त नारी जगत् में माँ बहन और बेटी की दृष्टि रखना। यह एक पत्नीव्रत विवाहित जीवन व्यतीत करने वालों के पास होना चाहिए। ऐसी ही साधना करना चाहिए यह गृहस्थ जीवन का आदर्श है शील की रक्षा आज होना चाहिए। आज दिनों दिन शील का अभाव होता जा रहा है तो चिन्तनीय है।

आज गर्भपात की हवा ने शील को तबाह कर दिया। इस गर्भपात के पाप को रोकना चाहिए, यह गर्भपात महापाप है, इससे समाज को बचाइए। अश्लील साहित्य, पिक्चर, गाने से अपने बच्चों को बचाइए, अपने बच्चों पर अच्छे संस्कार डालिए। अपने बच्चों को शीलवान बनाइए। शील के बिना विवेक भ्रष्ट हो जायेगा, नैतिकता मर जायेगी, सदाचार का लोप हो जायेगा। जब से शील का पालन समाप्त हुआ तभी से गर्भपात का पाप तेजी से फैल रहा है, इस पाप को रोकिए, गर्भपात महा हिंसा है। गर्भपात मानव जाति में कलंक है। मानव जाति पर गर्भपात के पाप का कलंक मत लगाओ। शील के संस्कार आप अपने बच्चों पर डालें ताकि आपके बच्चों पर धार्मिक संस्कार पड़े। धर्म का विकास संस्कारित जीवन में ही होता है अतः अपने बच्चों पर धार्मिक संस्कारों का बीजारोपण करें।

भारतीय संस्कृति के अनुसार पहले बन्धन होता है बाद में प्यार लेकिन आज तो पहले प्यार होता है बाद में बन्धन इसीलिए आज तलाक की रफ्तार तेजी से फैल रही है। 'लव मैरिज' भारतीय संस्कृति के अनुसार ठीक नहीं। भारत में माता-पिता के द्वारा ही विवाह तय किया जाता है, माता-पिता की आज्ञा, आशीर्वाद के बिना विवाह सामाजिक दृष्टि से एवं नैतिक दृष्टि से अच्छा नहीं माना जाता। प्रेम विवाह सामाजिक दृष्टि से एवं नैतिक दृष्टि से अच्छा नहीं माना जाता। विवाह भी एक संस्कार है जिसको धार्मिक संस्कारों द्वारा होना चाहिए। समाज का भी कर्त्तव्य है कि वह अपनी समाज में एक ऐसी आचार संहिता का निर्माण करें जो युवा युवतियों में आज पाश्चात्य संस्कृति का

नशा चढ़ रहा है वह रुके और वे अपनी सामाजिक एवं पारिवारिक मान मर्यादाओं में रहकर अपने जीवन का निर्माण करें।

निराश्रित परिवारों के बारे में सोचो। निराश्रित परिवारों को आजीविका देना धन का सही सदुपयोग है, समाज में ऐसे कितने लोग हैं जो निर्धन हैं, उनके पास आजीविका का साधन नहीं हैं वो आजीविका के अभाव में दर-दर भटकते रहते हैं और अनेकों संकट उठाते हैं। यदि हमारे पास धन है तो अवश्य हमको यह कार्य करना चाहिए कि आजीविका विहीन परिवारों को आजीविका देना चाहिए। यह भी एक धर्म है हमारे धन से यदि किसी का परिवार सुखी रहता है, उसका पालन-पोषण होता है तो यह कितना अच्छा होगा। हमारा कितना पैसा यूँ ही बर्बाद हो जाता है। शादी-विवाह में, आतिशबाजी में लाखों रुपये खाक हो जाते हैं मात्र आवाज के लिए जिससे कुछ भी लाभ नहीं होता, मात्र जीवों की हिंसा और पैसों की बर्बादी। अतः सम्पन्न परिवारों को चाहिए कि वे निराश्रित परिवारों को आजीविका में लगायें। धन की पूजा करने से धन का विकास नहीं होता, धन को तिलक लगाने से धन की उन्नति नहीं होती। धन का सदुपयोग ही धन का विकास है।

अभयदान देना आज की पहली आवश्यकता है, जो भयभीत हैं, उनको भय से मुक्त करें, उनकी पीड़ा को दूर करें, उनकी वेदना को समझें। आप यदि एक-एक गाय भैंस आदि अनाथ, निराश्रित जानवरों को अपनी गोद लेते हैं तो भी आप बड़े सौभाग्यशाली हैं। इन जानवरों के लिए ए.सी. की कोई आवश्यकता नहीं, इनके लिए संगमरमर वाले मकानों की कोई आवश्यकता नहीं, उनको तो रूखा-सूखा घास भूसा चाहिए। वे तो बिना खप्पर वाले मकानों में भी रात काट लेते हैं। उनको विशेष व्यवस्था नहीं चाहिए। ऐसे मूक अनाथ निराश्रित जानवरों की रक्षा करना हमारा पहला कर्त्तव्य है। अब जीवन को ज्ञान नहीं दया चाहिए, अब दया का प्रयोग करिये, हमारे पास ज्ञान की कमी नहीं है दया की कमी है। जीवन में ज्ञान की कमी इतनी खतरनाक नहीं जितनी कि दया की कमी खतरनाक है। हमारे जीवन में दया हो हम दूसरों की पीड़ा को, वेदना को समझने का प्रयास करें। परोपकार करना जीवन का कर्त्तव्य बनायें और दूसरों का परोपकार करें और मनुष्य जीवन को सफल बनाएँ।

❑ ❑ ❑

राग का त्याग ही उत्तम त्याग है

संसार की पराई वस्तुओं में अधिकार नहीं करना ही सच्चा त्याग है। हमारी यह झूठी मान्यता है कि 'यह मेरा है' 'यह मेरा है', मेरा-तेरा का त्याग करना ही सच्चा त्याग है। संसार में किसी भी वस्तु में अपना अधिकार जमाने की कोशिश मत करो, वस्तुतः त्याग होता ही नहीं क्योंकि जब संसार में हमारा कुछ है ही नहीं तो फिर किसका त्याग? हमारा संसार में यदि कोई है तो वह है एक आत्मा।

आत्मा के अलावा हमारा कुछ नहीं और उस आत्मा का त्याग नहीं किया जाता। त्याग तो राग, द्वेष, मोह का किया जाता है। हम दुनियाँ में सब कुछ खरीद सकते हैं लेकिन भगवान् को नहीं खरीद सकते। भगवान् की उपासना करो, प्रार्थना करो, भगवान् की उपासना करना ही त्याग के मार्ग पर बढ़ना है क्योंकि भगवान् का उपदेश यह है कि पर द्रव्यों का त्याग करो और आत्म पुण्य का सम्मान करो।

त्याग के बिना तपस्या निष्फल है, तपस्या में लगें, लेकिन त्याग के साथ लगें। परिग्रह के त्याग के बिना तपस्या नहीं हो सकती, तपस्या त्याग के साथ होना चाहिए। त्याग करो, किसका त्याग? ममत्व का त्याग, शरीर के प्रति जो मोह है, ममत्व है, उसी का त्याग करना। कायोत्सर्ग का अर्थ ध्यान नहीं, अपितु काय अर्थात् शरीर और उत्सर्ग का अर्थ त्याग। अर्थ यह हुआ कि शरीर के प्रति ममत्व का त्याग ही कायोत्सर्ग है। जो फूल जाता है वह रागी माना जाता है, जो फूलता है वह गिरता है। वृक्ष में फूल लगा है, लेकिन वह फूल एक दिन मुरझा जाता है और वृक्ष के नीचे धूल में गिर जाता है लेकिन काँटा कभी धूल में नहीं गिरता। फूल धूल में धूमिल हो जाता है लेकिन काँटा वृक्ष के नीचे नहीं गिरता वह तो वृक्ष पर ही लगा रहता है। काँटा वैराग्य का प्रतीक है जबकि फूल राग है। राग भले आपको अच्छा लगे लेकिन वह आपके लिए घातक है। जीवन में त्याग की आवश्यकता है राग की नहीं।

मरने के बाद तुम्हारा कुछ भी नहीं है इसलिए जीते जी कुछ त्याग कर लो, चाहे वह सोना हो, चाँदी हो, हीरा हो, मोती हो कुछ भी हो वह आखिर पत्थर ही तो है। आप अपने गले में पत्थर पहने हैं। आत्मा का स्वरूप समझो, आत्मा न गरीब है न अमीर, आत्मा न छोटा है और न बड़ा। इसलिए गरीबों को हीन दृष्टि से मत देखो, तुम्हारी आत्मा और गरीब की आत्मा में कोई अन्तर नहीं है। आत्मा सबकी एक है। सारी विषमताओं को छोड़ दो। यह संसार तुम्हारा नहीं है और न तुम इसके हो। तुम तो मात्र आत्मा हो उसी मात्र एक आत्मा का ध्यान करो उसका कल्याण करो।

शरीर को वासना का साधन मत बनाओ उसको उपासना का साधन बनाओ। यह आदमी अपने शरीर को वासना का साधन बना लेता है और भोग विलासों में लिप्त रहता है। लेकिन जिस व्यक्ति को अपनी आत्मा का परिचय मिल जाता है वह व्यक्ति अपने शरीर से अपनी आत्मा की उपासना करता है। शरीर को वह आत्मसाधना का साधन समझता है। इस शरीर से साधना करो, इससे उपासना करो, इस संसार को धर्म करने का उपकरण समझो। अन्यथा इससे राग करने से कोई भी प्रयोजन सिद्ध होने वाला नहीं है। भोग्य सामग्री का मूल्य तभी तक है जब तक कि भोक्ता उपस्थित है, उपभोक्ता के अभाव में भोग्य सामग्री का क्या मूल्य? यह शरीर भी इसी प्रकार का है। जब तक आपकी सांसें चल रही हैं शरीर में स्पन्दन चल रहा है, जीते जी इससे कुछ काम ले लो अन्यथा मरने के बाद तो इसको जला दिया जाना है फिर इसकी कोई कीमत नहीं होती।

किसी के प्रति राग नहीं करना ही उत्तम त्याग है। जो वस्तु जिस प्रकार है उसको उसी रूप में जानो, उसमें अपनी ओर से कुछ भी लाग लपेट मत लगाओ। मेरा मकान है, मेरी दुकान है, मेरे बच्चे हैं, मैं इसका मालिक हूँ, ये मेरे नौकर हैं इस प्रकार जो दूसरी वस्तुओं में अहं भावना है यही तो मोह है, मायाजाल है, संसार है। इसी को छोड़ना है। मकान को मकान समझो, उसमें ममत्व की बुद्धि मत करो। उस मकान को एक पक्षी के घोंसले के समान समझो, जिस प्रकार पक्षी किसी वृक्ष के ऊपर बैठकर रात काट लेते हैं और प्रातः काल उड़ जाते हैं उसी प्रकार हमको भी एक दिन यहाँ से उड़ना है, यहाँ स्थाई कोई नहीं है। फिर उसमें मोह क्यों? राग क्यों? अहंकार क्यों? अधिकार क्यों?

राग का त्याग ही अध्यात्म है। राग, द्वेष माया को छोड़ना ही त्याग है। यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो सबसे पहले अध्यात्म को समझो। अपनी आत्मा के स्वरूप को समझो। तुम्हारा यहाँ कुछ भी नहीं है, तुम व्यर्थ में दुनियाँ को अपनी मान रहे हो, तुम्हारा तो मात्र आत्मा है, उसी आत्मा को समझने का प्रयास करो। मोह को कम करो, किसी से राग मत करो द्वेष मत करो, राग करने से कर्म का बन्ध होता है। दुनियाँ में रहो लेकिन वैराग्य के साथ रहो, जगत् में रहो लेकिन जागते रहो गफलत मत होओ। तुम्हारी आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति है। तुम परमात्मा बन सकते हो। परमात्मा बनने की प्रक्रिया यही है कि तुम किसी को अपना मत समझो। 'पर' को छोड़ो और 'स्व' को समझो। स्व यानि आत्मा, उस आत्मा को समझकर उसके स्वरूप में आचरण करना ही आत्म कल्याण का मार्ग है। और वस्तुतः यही मनुष्य जीवन का सार है, बाकी सब बेकार है।

❑ ❑ ❑

दिल से दिल मिलाओ, हर रोज क्षमावाणी मनाओ

मौत का क्या ठिकाना, यह निश्चित मान लें
अतः आओ आज ही क्षमा माँग लें॥

पर्युषण पर्व के उपरांत क्षमावाणी पर्व की परम्परा बहुत पुरानी है। क्षमावाणी के पावन प्रसंग पर समाज के सारे लोग एकत्रित होते हैं और एक दूसरे के गले मिलते हैं और अपनी परस्पर की वैमनस्यता को मिटाते हैं, अपने दिल को साफ करते हैं, अपने आपकी सफाई करते हैं। इसी पावन परम्परा के मुताबिक ही सिद्धोदय तीर्थ नेमावर में आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के सान्निध्य में यह पर्व मनाया गया। क्षमावाणी को मनाने मात्र से बैर की गाँठ खुल नहीं सकती, दिल की सफाई के लिए हमको अपने विवेक को जागृत करना होगा और दूसरों के दुख-दर्द को समझना होगा अन्यथा यह एक व्यंग्य नहीं अपितु एक सचाई है-

हर पर्वों त्यौहारों को नाच गाकर मनाते हैं,
किन्तु झगड़ों झंझटों को कहाँ मिटाते हैं।

चेहरे देख-देख कर हाथ और गले मिलाते हैं,
भूखों को भूल भरपेटों को पकवान खिलाते हैं॥

क्षमावाणी के पावन प्रसंग पर आचार्य श्री जी के प्रवचन हुए। अपार जनसमुदाय को संबोधित करते हुए आचार्य श्री ने कहा-क्षमा साधक की भीतरी परीक्षा है क्षमा उसी से माँगो जिससे तुम्हारा बैर हुआ है आपसी कलह हुआ है। मनमुटाव हुआ हो, लड़ाई हुई हो उसी से क्षमा माँगो। जिससे कुछ बिगड़ा ही नहीं उससे क्या क्षमा माँगना? यह कोई नियम नहीं है कि वर्ष में इसी दिन ही क्षमावाणी पर्व मनाएँ हमको चाहिए कि हम जिस वक्त जिससे जो कुछ खट-पट हुई हो उससे तुरन्त हमें क्षमा माँग लेना चाहिए। क्षमा माँगना बहुत अच्छा कार्य है लेकिन इससे भी अच्छा कार्य तो क्षमा करना होता है।

क्षमा करने में कुछ देर नहीं लगती यह तो एक तात्कालिक घटना है। क्षमा करने के लिए हमको कुछ हाथ पैर नहीं चलाना है। अपितु हमको अपने स्वोन्मुखी होना है। दीनता और तीव्रता दोनों नहीं करना ही उत्तम क्षमा पर्व का सार है। न दीनता करो न तीव्रता करो, बस तटस्थता से रहो। न किसी से बैर करो, न बुराई करो, न किसी का अपमान करो, न अपशब्द कहो।

आचार्य श्री जी ने कहा आज क्षमावाणी पर्व है हम भी आप से क्षमा माँगते हैं। सारे जनसमुदाय में तालियों के साथ जमकर हँसी फूट पड़ी, तो आचार्य श्री जी ने कहा कि क्या हो गया? क्या यह पर्व मात्र आप लोगों का है? क्षमा करें, क्षमा माँगे और अपने दिल को साफ करें। राग प्रमाद की जड़ है हमने आज तक न राग को समझा न प्रमाद को अन्यथा हम राग क्यों करते? प्रमाद क्यों करते? हमारे दुख का कारण हमारा राग है, हमारा प्रमाद है, हम राग का त्याग करें। प्रमाद का त्याग करें। अन्यथा हम अपनी भीतरी साधना की सुरक्षा नहीं कर सकते।

हम बाहरी निमित्तों पर टूट पड़ते हैं। अपने उपादान की ओर दृष्टिपात नहीं करते। यदि हम अपने भीतरी कर्म पर विश्वास कर लें तो गुस्सा कर ही नहीं सकते। हम गुस्सा क्यों करते हैं? अज्ञानता के कारण हम गुस्सा करते हैं प्रमाद और राग के कारण गुस्सा करते हैं। क्षमा को समझने के लिए हमको अपने स्वभाव को समझना होगा। हमारी आत्मा का स्वभाव गुस्सा करना नहीं है। हम गुस्सा करते हैं, अपनी आँखें लाल-लाल करते हैं, दूसरों को आँख दिखाते हैं, चिल्लाते हैं, गरजते हैं यह सब हमारी विवेक-हीनता का प्रतीक है।

वस्तुतः ऐसे आयोजन समाज में होने चाहिए, इससे समाज में एक अच्छा वातावरण तैयार होता है, जो कि बहुत अनिवार्य है। समाज में लड़ाई झगड़ा न हो, हिल-मिलकर रहें आपसी फूट न हो आपसी विवाद न हो इसके लिए यह अनिवार्य है कि हम समाज में ऐसे वातावरण को सदा तैयार रखें, जिससे वात्सल्यता, प्रेम, स्नेह, सहयोग, सहानुभूति, संवेदना आपस में बनी रहे। इन औपचारिक

आयोजनों के द्वारा भी परमार्थ का रास्ता खुल सकता है इसमें हमारा उद्देश्य ठीक होना चाहिए।

हम अपने उद्देश्य को ठीक करें अपने लक्ष्य को बनाएँ और अपनी आत्मा को समझें यही क्षमावाणी पर्व की सफलता है। आचार्य श्री जी के प्रवचन के बाद भगवान् का अभिषेक पूजा भक्ति का कार्यक्रम हुआ, और इसके बाद लोगों में आपसी क्षमा याचना का सिलसिला शुरू हुआ।

❑ ❑ ❑

जाप करो, पाप नहीं

जाप करना महान् तप है, अतः प्रतिदिन जाप करना चाहिए। जाप का अभ्यास पाप को छुड़ा देता है इसीलिए पाप से बचने के लिए जाप करना चाहिए। जब हम जाप करते हैं तो हमारा मन स्थिर हो जाता है जो मन सांसारिक विलासिता में भटक रहा था, वह उससे बच जाता है, उसकी चंचलता समाप्त हो जाती है। भगवान् की पूजा उपासना का अर्थ ही यह होता है कि हम अपने मन को एकाग्र कर लें अपने मन पर विजय प्राप्त कर लें, मन पर विजय प्राप्त करना ही सही जाप है। जाप करते समय मन को एकाग्र कर लेना चाहिए एवं अपने मन को फ्री कर लेना चाहिए। यदि हम प्रतिदिन शुद्ध मन से जाप करते हैं तो निश्चित ही चिंता और तनाव दूर हो जाते हैं। भगवान् की भक्ति, प्रार्थना अच्छे भावपूर्वक की जाये तो मन की सारी थकान दूर हो सकती है। जाप में मन हल्का होना चाहिए जाप ध्यान का अच्छा साधना है जो व्यक्ति ध्यान करना चाहता है उसको पहले जाप करने का अभ्यास करना चाहिए।

सुबह-शाम कम से कम कुछ समय जाप के लिए निकालो मन को हल्का करने का यह सबसे अच्छा उपाय है। जाप मानव मंत्र की साधना का विज्ञान है, जाप आत्मा का विज्ञान है। शर्त है कि जाप के लिए मन को शांत होना चाहिए। जाप करने से पहले मन से तमाम अशुद्धियों को फेंक दो, मन को खाली कर दो, मन से विचारों की कब्जियत निकाल दो, तुम्हारा जाप सफल हो जायेगा और तुम प्रशान्त हो जाओगे। यदि सुख और स्वास्थ्य को चाहते हो तो जाप की कला सीखो अशांति से बचने के लिए भगवान् के नाम के मंत्र की माला (जाप) शुरू कर दो।

भगवान् का मरण नहीं होता। मरण भक्तों का होता है। भगवान् का मरण इसलिए नहीं होता, क्योंकि भगवान् की कोई उम्र नहीं होती। हमारी उम्र होती है, इसलिए हम मरते हैं। यदि भक्त भगवान् की उपासना करता है, भगवान् बनने की साधना करने लगता है तो वह भी एक दिन अमर हो जाता है क्योंकि वह स्वयं भगवान् बन जाता है। भगवान् बनने की क्षमता हमारे अन्दर है। हम भी भगवान् बन सकते हैं, लेकिन हमको पहले भक्त बनना होगा। भक्त बनकर ही भगवान् बना जा सकता है। यदि तुम भगवान् बनना चाहते तो भगवान् के चरणों में चले जाओ और भगवान् का जाप करना शुरू कर दो, तुम भगवान् बन जाओगे।

खातेगाँव से आचार्य विद्यासागर हाईस्कूल की तमाम छात्राएँ अपने स्कूल के समस्त शिक्षकगणों के साथ आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के दर्शन के लिए पधारीं। आचार्य श्री के दर्शन के उपरांत समस्त छात्राओं ने एक स्वर में 'इतनी शक्ति हमें देना गुरुवर, मन का विश्वास कमजोर हो न' गीत का मधुर पाठ किया। इसके उपरांत स्कूल के प्राचार्य महोदय ने आचार्य श्री जी से निवेदन किया कि गुरुदेव छात्राओं के लिए कुछ आशीष वचन प्रदान करें। आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने तमाम छात्राओं को संक्षेप में आशीर्वचन देते हुए कहा कि विद्यार्थी जीवन में ब्रह्मचर्य, शील, कर्त्तव्य, विनय, सादगी एवं सदाचार का पालन करना चाहिए। विद्याध्ययन ब्रह्मचर्य के साथ ही करना चाहिए। भारत में पहले गुरुकुल होते थे, उन गुरुकुलों में विद्यार्थी विद्या का अध्ययन ब्रह्मचर्य के साथ ही करते थे। ब्रह्मचर्य के बिना विद्याध्ययन अधूरा है। ब्रह्मचर्य विद्याध्ययन का विज्ञान है। ब्रह्मचर्य का अर्थ शक्ति का संचय। ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए हमको अपनी दृष्टि पवित्र रखना चाहिए। विद्यार्थी जीवन में फैशन को सबसे पहले छोड़ना चाहिए। फैशन करने से विद्याध्ययन में बाधा उपस्थित हो जाती है। सदाचार का पालन करते रहना चाहिए। शाकाहार का ही सेवन करना चाहिए एवं अपव्यय से बचना चाहिए। माता-पिता एवं गुरुजनों की विनय करना चाहिए। सम्मान करना चाहिए, सेवा करना चाहिए। मन के विचारों को पवित्र रखना चाहिए। नशीली वस्तुओं का सेवन नहीं करना चाहिए एवं पढ़-लिखकर एक आदर्शवान नागरिक बनना चाहिए और समाज एवं राष्ट्र की सेवा करना चाहिए।

आज के प्रदूषित वातावरण से अपने मन को बचाना चाहिए। अश्लील साहित्य और पिक्चर नहीं देखना चाहिए। ब्रह्ममुहूर्त में उठ जाना चाहिए। सूर्योदय से पहले उठकर भगवान् की प्रार्थना एवं अपना अध्ययन करना चाहिए। प्रमाद से बचना चाहिए। हम शिक्षित होकर मानवीय सभ्यता और सिद्धांतों का पालन करें, समाज और राष्ट्र के सामने एक आदर्श प्रस्तुत करें।

❑ ❑ ❑

हमें दुआ चाहिए दवा नहीं

सेवा करना सबसे बड़ा धर्म है, सेवा का अर्थ दूसरों की पीड़ा, दूसरों के दर्द, दूसरों के दुखों को दूर करना है, लेकिन सेवा स्वयं करना चाहिए, चाकरों के द्वारा सेवा नहीं करानी चाहिए। सही सेवा तो वही कहलाती है जो स्वयं अपने हाथों से की जाती है क्योंकि उसके साथ हमारी भावनाएँ जुड़ी होती हैं सेवा उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं, जितनी कि उसकी भावना महत्त्वपूर्ण है। जब दवा काम नहीं करती तो हवा काम करती है और जब हवा और दवा दोनों काम नहीं करती तो दुआ (सद्भावना) काम करती है। महत्त्वपूर्ण दवा नहीं दुआ है। दवा तो मेडिकल स्टोर में मिल जाती है, लेकिन दुआ मेडिकल स्टोर से नहीं मिल सकती। डॉक्टर के पास भी दवा मिल सकती है लेकिन दुआ मिले यह

कोई निश्चित नहीं। परन्तु यह निश्चित है कि दवा के साथ यदि दुआ नहीं है तो कभी भी मरीज ठीक नहीं हो सकता है।

इसलिए डॉक्टरों के पास पैसा की अपेक्षा सेवा की भावना प्रधान होना चाहिए पैसा की भावना नहीं क्योंकि सेवा को पैसा कमाने का साधन नहीं बनाना चाहिए। डॉक्टरी एक सेवा कार्य है धर्म का कार्य है इसलिए डॉक्टरी को पैसा कमाने का साधन न बनाकर उसको मानव सेवा का कर्त्तव्य समझना चाहिए और वह सेवा मात्र मानव की ही नहीं प्राणी मात्र की होनी चाहिए। सेवा में कोई भेद नहीं होना चाहिए चाहे वह पशु हो, पक्षी हो या आदमी हो, दुख तो दुख होता है, पीड़ा तो पीड़ा होती है। दुनियाँ में किसी भी प्राणी को दुख अच्छा नहीं लगता। सभी जीव सुख चाहते हैं। इसी बात को ध्यान में रखकर हमको प्राणी मात्र की सेवा करना चाहिए। सबके दुखों को दूर करना चाहिए, जो विकलांग हैं उनको कृत्रिम पैर आदि की व्यवस्था करना चाहिए जो भूखे हैं, रोगी हैं, उनको उचित शुद्ध आहार औषधि की व्यवस्था करना चाहिए, यह सबसे बड़ा धर्म है। अपना निर्वाह करने वाले तो इस दुनियाँ में बहुत हैं लेकिन जो अपना निर्वाह करते-करते दूसरों की भलाई किया करते हैं ऐसे लोग बहुत कम होते हैं। सेवा करके हम संसार का भला कर सकते हैं। सेवा के लिए हमको अपने अन्दर एक भावना पैदा करना है, भक्ति पैदा करना है। यदि हमारे अन्दर भावना जाग जाये तो हम बहुत कुछ भला कर सकते हैं। हमारे पास कमी मात्र भावनाओं की है। हमारे आसपास बहुत दुखी लोग हैं, बेसहारा लोग हैं, विकलांग लोग हैं, अनाथ लोग हैं। उनकी पीड़ा को पहचानो, अपने हृदय में करुणा जागृत करो और भक्ति के साथ उनकी सेवा करो। अपनी गलतियों को स्वीकार करना ही अध्यात्म में प्रवेश पाने का पहला उपाय है। जो व्यक्ति अपनी गलती स्वीकार नहीं करता, अपनी गलती को छुपाता है वह कभी भी धर्म को समझ नहीं सकता। धर्म यही तो कहता है कि अपनी गलतियों को स्वीकारो, अपनी गलतियों का प्रायश्चित करो, अपनी गलतियों को छुपाओ मत, अपनी गलतियों का प्रकाशन करो। अपनी गलतियों को स्वीकार करने वाले व्यक्ति पापी नहीं कहलाते वरन् अपनी गलतियों को स्वीकार करना आत्मोन्नति का साधन है। अपना भला चाहते हो तो अपनी गलतियों को स्वीकार करो। जो व्यक्ति अपनी गलतियों को स्वीकार नहीं करता वह अपने पापों को साफ नहीं कर सकता, धर्म को समझ नहीं सकता, अध्यात्म में प्रवेश नहीं कर सकता, सच्चाई की खोज नहीं कर सकता।

आदमी की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि वह अपनी गलतियों को स्वीकार नहीं करता अपनी गलतियों को स्वीकार करने से कतराता है, रोष करता है, झगड़ता है लेकिन सत्य तो सत्य होता है वह कभी छुप नहीं सकता। वह पाप एक दिन प्रकट हो ही जाता है, यह प्रकृति का नियम है। इसलिए अपने पापों को कभी मत छुपाओ। आदमी इतना सब कुछ करता है, लेकिन अपने पापों

को छुपाता क्यों है? अधर्म क्या है? अपने पापों को छुपाना ही तो अधर्म है, पाप इतना बड़ा नहीं, जितना कि पाप को छुपाना पाप है, पाप को छुपाना सबसे बड़ा पाप है। पाप को सबसे पहले छोड़ो, इस पाप को छोड़े बिना पुरुष का पुण्य कार्य प्रारंभ हो ही नहीं सकता।

भय और मूर्च्छा जीवन के लिए सबसे अधिक खतरनाक है। भय हमारी जिन्दगी को खोखला करता है, परेशान करता है, हमको सताता है और हम भय के कारण अन्दर ही अन्दर घुटते रहते हैं। भय एक भीतरी कमजोरी है, जो हमारी दमित भावनाओं का परिणाम है। डरो मत, डर तुमको बेकार करता है। डर तुम्हारी भीतरी शक्ति को कमजोर करता रहता है। हम कमजोर इसलिए हैं कि हमारे पास भय समाया होता है और वह भय एक ही नहीं सैकड़ों भय है, मरने का भय, रोग का भय, हानि का भय, न जाने कितने भय हैं। जीवन की उन्नति चाहते हो, जीवन को खुश करना चाहते हो तो सबसे पहले हृदय में से भय को निकाल दो और निर्भय बन जाओ। डरो मत चाहे मौत भी क्यों नहीं आ जाये। डरने से तुम समस्या से बच नहीं सकते। जो कुछ होता है होने दो, उसका सामना करो, उससे संघर्ष करो, डरो नहीं। मुसीबतों से मुकाबला करना ही मनुष्य की महानता है।

योगदान ही सही दान कहलाता है, योगदान के अभाव में दान की कोई महत्ता नहीं होती। दान के क्षेत्र में दाता (दान देने वाला) और पात्र (दान लेने वाला) इन दोनों को अपनी-अपनी निष्ठा का पालन करना चाहिए। जैसे कि दाता को कभी अभिमान नहीं करना चाहिए और पात्र को कभी दीनता नहीं करना चाहिए, क्योंकि अभिमान करना दाता की कमजोरी है और दीनता करना पात्र की कमजोरी है। इसलिए इन दोनों का त्याग कर देने वाला ही सही पात्र और दाता कहलाता है। पुण्य के उदय से धन मिला है लेकिन उस धन का सदुपयोग करो, तिजोरी में भरकर मत रखो या भोग विलासिता में उसका दुरुपयोग मत करो। अपने धन से दूसरों को आजीविका प्रदान करो, जो जरूरतमंद हो उनकी अपने धन से मदद करो।

धन की तीन गति हैं- दान, भोग या नाश। यदि आपको धन मिला है तो उसका अपनी शक्ति के अनुसार दान करो या उसका उपभोग करो अन्यथा एक दिन धन का नाश हो जायेगा। इसलिए दान करने में, खर्च करने में किसी प्रकार की कंजूसी मत करो। खुले दिल से धन का दान करो। आज जो देश में गरीबी फैल रही है, उसका मूल कारण यही है कि लोगों ने अपनी तिजोरियों में ताला लगा लिया है। यदि लोग अपनी तिजोरियों में से ताला खोल दें तो आज ही गरीबी दूर हो सकती है। लेकिन आज तो गरीबी मिटाने के नाम पर गरीब मिट रहे हैं। यदि आप वास्तव में देश से गरीबी मिटाना चाहते हो तो तिजोरी में धन बटोर कर मत रखो। अपितु उस धन का सदुपयोग करो। लोगों को रोजी दो, गौ-शालाओं का निर्माण करो। अपने धन से लोक कल्याणकारी कार्य करो।

व्यक्ति को सही रास्ते में लगाना ही सही दान कहलाता है। जो नशा करता है व्यसनों में फँसा

हो धूम्रपान करता हो और भी अनेक अनैतिक काम करता हो, गलत मार्ग पर चलता हो ऐसे कुपथगामी व्यक्तियों को बुरे काम छुड़वाकर उनको सच्चाई के मार्ग पर लगा देना सबसे बड़ा दान कहलाता है। यही सबसे बड़ा धर्म है, व्यक्ति को अधर्म से बचाना ही सबसे बड़ी मानवता है। आज सबसे बड़ी आवश्यकता इसी बात की है कि व्यक्ति को सही मार्ग में लाना, व्यक्ति को बुराइयों से बचाना, व्यक्ति बुराइयों से बच गया तो यह देश बहुत कम दिनों में उन्नति कर सकता है। व्यक्ति की उन्नति ही देश की उन्नति है। व्यक्ति का सुधार ही देश का सुधार है। व्यक्ति की सेवा ही देश की सेवा है।

❑ ❑ ❑

प्रकृति प्रेम सिखाती है घृणा नहीं

करुणा और दया सीखने के लिए न किसी कॉलेज जाने की आवश्यकता है और न कहीं विदेश की। भारत के कण-कण में करुणा और दया बिखरी हुई है क्योंकि यहाँ करुणा और दया के अवतार महापुरुषों का जन्म युग-युग में होता रहा है। उनका संदेश प्रकृति में आज भी ध्वनित है। महापुरुषों के महा संदेशों को प्रकृति ने आज भी नहीं भुलाया। लेकिन आदमी ने सब कुछ भुला दिया। घृणा करना आदमी ने कहाँ से सीखा? प्रकृति प्रेम करना सिखलाती है घृणा करना नहीं। जब हम दोषों की ओर दृष्टिपात करते हैं तो हमारा पतन होता है और जब हम गुणों को अपनाते हैं तो हमारा उत्थान होता है। जीवन पाया है, उसका उत्थान करो, पतन नहीं। पतित मत बनो। तुम्हारे पास पापी न बनने की शक्ति है। बस तुमको दोषों को छोड़ गुणों को ग्रहण करना सीखना है।

मनुष्य होने के नाते हमको यह अवश्य सोचना चाहिए कि मैं कौन हूँ? मेरा गुण क्या है? मैं कहाँ से आ रहा हूँ? मुझे कहाँ जाना है? यदि हम यह चिंतन नहीं करेंगे तो हम जीवन में भटक जायेंगे। मैं कौन हूँ? मैं मनुष्य नहीं आत्मा हूँ, शाश्वत हूँ, मैं अकेला जन्मा हूँ, अकेला ही मरण करूँगा। यह परिवार धन दौलत सब यही छूट जाये, क्योंकि यह मेरा नहीं है यह सब संयोग है जिसका एक दिन अवश्य वियोग हो जाना है। अतः मैं तो मात्र आत्मा हूँ। आत्मा के अलावा इस संसार में मेरा कुछ है ही नहीं। मैं कहाँ से आ रहा हूँ। संसार से ही आ रहा हूँ, किसी मुक्ति से नहीं। चार गति हैं कभी मनुष्य गति, कभी देव गति, कभी नरक गति और कभी पशु गति, इन चार गतियों और चौरासी लाख योनियों में से ही तो आ रहा हूँ। लेकिन अब ऐसी जगह जाना है जहाँ आज तक नहीं गया हूँ।

जहाँ जन्म नहीं, मृत्यु नहीं, बुढ़ापा नहीं, रोग नहीं, दुख-शोक-संताप कुछ भी नहीं ऐसे परम धाम को मुझे अब प्राप्त करना है और वहीं जाना है और इसके लिए मुझको संसार से मोह छोड़ना है। यह आदमी मोह क्यों करता है? मोह एक भ्रांति है। घर को घर माने उसको अपना न मानें क्योंकि घर तुम्हारा है ही नहीं। तुम चेतन हो, घर जड़ है। वह जड़ वस्तु तुम्हारी कैसे हो सकती है? यह हमारी

भूल है कि हमने संसार की अचेतन वस्तुओं को अपना मान लिया है। संसार के दुख से बचने का एकमात्र यही उपाय है कि हम अपने को ही अपना मानें पर को अपना न मानें। स्व को समझना ही पर को भूलना है और जब हम संसार को भूल जाते हैं तो मुक्ति का दरवाजा खुल जाता है और हम अपने अन्दर के घर में हमेशा के लिए प्रविष्ट हो जाते हैं।

जीवन की सबसे अनमोल धरोहर विवेक है, जिसके पास विवेक नहीं उसके पास कुछ भी नहीं और जिसके पास विवेक है, उसके पास सब कुछ है। ज्ञान तो सबके पास होता है, लेकिन विवेक सबके पास नहीं होता। आज के युग में ज्ञान का विकास तो हो रहा है लेकिन विवेक का नहीं, विवेक का विकास ही ज्ञान की उन्नति है।

संसार का भला ज्ञान से नहीं विवेक से होता है। विवेक एक भीतरी भेद विज्ञान है जो विभाजन करता है विवेक का अर्थ ही विभाजन होता है। जैसा कि जब हम विवेक के द्वारा अपने मकान को देखते हैं तो उसमें एक सच्चाई नजर आती है क्योंकि विवेक उसको स्पष्ट कर देता है कि यह मकान तुम्हारा नहीं यह तो मिट्टी पत्थरों का है तुम इसके मालिक नहीं हो, यह तुम्हारा नहीं है तुम एक चेतन तत्त्व हो इस प्रकार विवेक के द्वारा हम एक सत्य को प्राप्त कर लेते हैं इसीलिए जीवन में विवेक का होना अनिवार्य है।

सम्यग्दर्शन हो जाने पर घर, परिवार गौण हो जाता है और मोक्षमार्ग प्रधान हो जाता है। सम्यग्दर्शन का अर्थ ही यह होता है कि झूठी दुनियाँ का रहस्य खुलना और आत्मा पर सच्ची श्रद्धा होना। सच्चा विश्वास ही सच्चे मार्ग पर ले जा सकता है, झूठा नहीं। इसलिए जीवन में विश्वास की अपेक्षा सच्चे विश्वास की ही बड़ी मौलिकता होती है। मोक्षमार्ग का अर्थ मोह, माया, स्वार्थ को छोड़ने का मार्ग। मोक्षमार्ग कोई पत्थरों का मार्ग नहीं है, वह तो विश्वास का मार्ग है। आस्था का मार्ग है, संकल्प, त्याग, वैराग्य, ध्यान, तप का मार्ग है और जिसमें आस्था ही प्रधान होती है।

आस्था के अभाव में ही हम कमजोर हैं। हमारी आस्था यदि मजबूत है तो हम कमजोर हो ही नहीं सकते। आस्था को मजबूत करिए। आस्था को मजबूत करने के लिए आपको कोई दवा खाने की आवश्यकता नहीं। दवा खाने से आस्था मजबूत नहीं हो सकती। दृढ़ संकल्प ही आस्था को मजबूत करता है। आत्म संयम, त्याग से ही आस्था मजबूत होती है। यदि आप अपनी आस्था को मजबूत करना चाहते हो तो आत्म संयम के मार्ग में अपने कदम आगे बढ़ाओ अन्यथा आस्था मजबूत नहीं हो सकती। आस्था की मजबूती ही जीवन की सफलता है, आस्था को कमजोर मत होने दो संकल्पों, व्रतों को कमजोर मत होने दो। जिन संकल्पों को लिया है, उनका पालन निर्दोष करो, निर्दोष व्रतों का पालन ही सही विरक्ति है, अन्यथा व्रत और विरक्ति का कोई मूल्य नहीं।

❑ ❑ ❑

लक्ष्य को देखो समय को नहीं

लक्ष्य को देखो समय को नहीं। हमारा जीवन लक्ष्य को निर्धारित करने पर पवित्र बन सकता है समय को नहीं। हम समय की ओर देखते हैं लेकिन अपने लक्ष्य को भूल जाते हैं। यदि हम अपने लक्ष्य को याद रखें तो हमको समय की ओर देखने की आवश्यकता नहीं पड़ सकती, क्योंकि लक्ष्य स्वयं एक समय है। समय को देख-देखकर चलने में हमको समय की पहचान ही नहीं होती, लेकिन जब हम अपने शास्त्रों को देखकर चलते हैं तो समय की वास्तविकता हमारे सामने झलकने लगती है। अतः हमको घड़ी देखकर नहीं अपितु शास्त्रों को देखकर यानि शास्त्रों में बतलाए मार्गदर्शन के अनुसार चलना चाहिए।

दिन रात को देखते रहोगे
कुछ न कर पाओगे।
दिन रात को भूल जाओगे
सब कुछ पा जाओगे॥

आज हम घड़ी ही देखते रहते हैं महीने, वर्ष, पक्ष, दिन, रात में ही अपने को गिनते रहते हैं। समय देखने में ही हमारा समय चला जाता है और हम समय का इंतजार करते रहते हैं। इसलिए हम अपनी जिन्दगी में कुछ नहीं कर पाते। यदि हम इन सारे समयों को भूल जायें तो हम बहुत कुछ प्राप्त कर सकते हैं। हमको अपनी आत्मा को पाना है इसके लिए समय को भूल जाना है। आत्मा याद हो जायेगी। वस्तुतः आत्मा को याद कर लेना ही सही समय का सदुपयोग है।

जब हमको अपनी आत्मा का परिचय मिल जाता है तब हमारे लिए काँटे नहीं फूल ही बाधक बनते हैं। काँटे तो हमको जागृत, करते हैं। फूल हमको बहका सकते हैं लेकिन काँटे नहीं, क्योंकि काँटे विरागता के प्रतीक हैं जबकि फूल राग का। हम काँटों पर चलना सीखें यानि कठिनाइयों से गुजरना सीखें। उनसे घबराए नहीं और फूलों से बचें, यानि भोग विलासिता से अपने को दूर रखें, जीवन हमारा महक जायेगा हम धन्य हो जायेंगे।

मोक्ष मोह के अभाव का नाम है मोह को छोड़े बिना हम मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते। मोक्षमार्ग में वही व्यक्ति चल चल सकता है जो मोह से प्रभावित नहीं होता। जो मोही होता है, वह योगी नहीं बन सकता। हमको मोक्ष को प्राप्त करना है तो मोह का त्याग करना होगा और अपनी आत्मा को समझना होगा। आत्मा को समझे बिना न आत्म शांति है न आत्म कल्याण और न निर्वाण।

❑ ❑ ❑

दृष्टि महत्त्वपूर्ण है दृश्य नहीं

राग की भूमिका में भी दृष्टि वीतरागता से ऊपर रखी जा सकती है। रागी को जिस पदार्थ पर राग झलकता है। वीतरागी वहीं वीतरागता का दर्शन करता है। राग और वीतराग पदार्थ पर नहीं हमारी दृष्टि पर जन्म लेते हैं। यदि हमारी दृष्टि में वीतरागता है तो हम राग में वीतरागता देखेंगे, अन्यथा वीतरागता में भी राग ही नजर आयेगा। अतः हमको प्रतिपल राग से हटकर वीतराग बनने की साधना करना चाहिए और यही जीवन का सार होना चाहिए।

वीतरागता के प्रति गौरव होना भी राग को छोड़ने की भूमिका है। हमने अभी तक राग को वीतरागता से भी अधिक मूल्यवान समझा है। इसलिए हम राग को उपेक्षित नहीं कर पा रहे हैं। जिस राग को हम छोड़ना नहीं चाहते वह राग हमको पसंद तक नहीं करता। हमने राग को पसंद किया है राग ने हमको नहीं। इसलिए अब हमको समझना है कि महत्त्वपूर्ण चीज वीतरागता है, राग नहीं और उस वीतरागता की उपासना प्रारंभ करना है। वीतरागता की उपासना करना ही वीतरागता के प्रति गौरव होना है।

दृष्टि का महत्त्व देखिए कि जिस चीज से हम अपनी भोजन सामग्री बनाते है वही चीज हमारे लिए प्रभु भजन का विषय बन जाती है। जिस जल को हम पीते हैं तो वह भोग्य सामग्री कहलाती है लेकिन जब हम उसी जल से भगवान् की पूजा करते हैं तो वही जल हमारे लिए भजन की, भक्ति की चीज बन जाती है। जिस चंदन को हम गर्मी मिटाने के लिए शरीर पर लेप करते हैं या सूँघते हैं तो वह शारीरिक सुख का कारण बनता है लेकिन उसी चंदन से जब हम भगवान् की पूजा करते हैं तो शरीर नहीं संसार ताप मिटाने की भावना करते हैं। इसी प्रकार अष्ट मंगल द्रव्य की तमाम सामग्री को समझना चाहिए। वही वस्तु घर में कलह का, झगड़े का कारण बनती है और वही मंदिर में पूजा भक्ति, भजन वंदना का कारण बनती है।

हमारी पूजा का उद्देश्य वीतरागता को प्राप्त करना होना चाहिए क्योंकि हमारे उपास्य वीतरागी हैं। यदि हमारी जिन्दगी का लक्ष्य राग को घटाना बन जाये तो हम कम समय में भी अधिक काम कर सकते हैं। इसलिए हमारा कर्त्तव्य है कि हम वीतरागी बनने की साधना करें और यदि हम वीतरागी नहीं बन सकते तो वीतरागी के पास जाना चाहिए। यदि हम इतना भी करते हैं तो एक दिन अवश्य वीतरागी बन जायेंगे, फिर हमारे लिए कुछ करना नहीं पड़ेगा। क्योंकि राग समाप्त करने के बाद अत्याधिक पुरुषार्थ करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

❑ ❑ ❑

आत्म त्याग ही दीक्षा है

विवेक के साथ बुद्धिपूर्वक जो त्याग किया जाता है वही व्रत कहलाता है, वही संकल्प कहलाता है। वही सच्चा आत्म त्याग ही दीक्षा कहलाती है। यह संसारी अपने शरीर को सजाता है, लेकिन जो दीक्षा लेता है, वह शरीर को सजा देता है। एक शरीर को सजाता है और एक शरीर को सजा देता है। शरीर को सजाने का अर्थ शरीर से मोह करना, राग करना शरीर को भोगों का साधन बनाना। लेकिन शरीर को सजा देने का अर्थ शरीर से मोह छोड़ देना, विरक्त हो जाना शरीर को आत्म साधना का साधन बना लेना। शरीर तो शरीर है, उसी शरीर को हम वासना का साधन बना लेते हैं और उसी शरीर को साधना का साधन भी बना सकते हैं। जो शरीर को साधना का साधन बना लेते हैं, वे शरीर को सजा देते हैं और जो शरीर को वासना का गुलाम बना देते हैं वे शरीर को सजाते हैं। अतः शरीर को साधना का साधन समझो वासना का नहीं।

यह उद्गार संत शिरोमणि आचार्य विद्यासागर जी महाराज ने ९ जुलाई को सिद्धोदय सिद्धक्षेत्र नेमावर में आयोजित भव्य दीक्षा समारोह में व्यक्त किए। मुनिश्री ने कहा कि धर्म की प्रभावना अपने उज्ज्वल भावों पर आधारित है। वस्तुतः अपने उज्ज्वल भावों का नाम ही तो धर्म है। हमें धर्म का पालन करने के लिए आत्म प्रकाश की आवश्यकता है क्योंकि प्रकाश के बिना पथ का दर्शन नहीं होता और दर्शन के अभाव में जीवन प्रदर्शन का केन्द्र बना रहता है, जब हमको अपने जीवन का पथ मिल जाता है तब हमें कठिनाइयों के रूप में अनुभूति नहीं होती। आत्म-पथ में कठिनाइयाँ ही तो सफलता का भवन बनाती हैं अतः हमको आत्म प्रकाश की खोज हमेशा करना चाहिए।

प्रकाश में नहीं प्रकाश को देखो, प्रकाश में नहीं प्रकाश को पढ़ो। हम प्रकाश में देखते रहते हैं इसलिए हम प्रकाश को नहीं देख पाते। प्रकाश को देखना और प्रकाश में देखना दोनों अलग-अलग हैं। लोग सूर्य को नहीं, सूर्य के प्रकाश को देखते हैं। आप भले कहते हैं कि हमने सूर्य नारायण के दर्शन कर लिए, परन्तु आप सूर्य नारायण के दर्शन कहीं कर पाते हैं। आप तो मात्र धूप को देखकर ही यह समझ लेते हैं कि हमने सूर्य नारायण के दर्शन कर लिए धूप को देखकर सूर्य को देखने की बात कहना भूल है यह सत्य नहीं है सत्य तो यह है कि जिस दिन तुम सूर्य को देखोगे, उस दिन तुम्हें धूप नहीं दिखेगी। सारी दुनियाँ दिखाई नहीं देगी। मात्र वहाँ तुम ही तुम नजर आओगे, इसी प्रकार जब तुम प्रकाश को देखने लगोगे उस समय तुमको यह राग रंग की दुनियाँ दिखाई नहीं देगी। तुमको दिखेगी अकेली तुम्हारी आत्मा। बस उस आत्मा को देखना ही वस्तुतः प्रकाश को देखना है क्योंकि आत्मा से बढ़कर दूसरा प्रकाश नहीं। अब ये दीक्षार्थी आरंभ और परिग्रह का काम नहीं करेंगे क्योंकि आरंभ और परिग्रह के त्याग के लिए ही तो दीक्षा ग्रहण की जाती है। जिसके माध्यम से परिग्रह का उत्पाद होता है वह आरंभ कहलाता है और जिसने आरंभ का त्याग कर दिया वह परिग्रह का उत्पादन

नहीं कर सकता, अब वह कपड़ों से भी अपनी आसक्ति घटा लेता है, वस्त्रों का त्याग कर देता है क्योंकि वस्त्र भी साधना में बाधक हैं। इसीलिए वह इनको भी छोड़ देता है। वस्त्र भी परिग्रह है, वह कभी भी उपकरण नहीं हो सकता। इसी प्रकार जो क्षुल्लक का भोजन पात्र कटोरा है, वह भी परिग्रह है, उपकरण नहीं। इसीलिए वस्त्र और बर्तन दोनों को वह दीक्षार्थी छोड़ देता है। इस विषम काल में जहाँ चारों ओर विलासिता का तूफान है कदम-कदम में उन्मार्ग है फिर भी इन लोगों ने जो सन्यास लेने का साहस किया, वह प्रशंसनीय है क्योंकि आप सब कालेज के विद्यार्थी हैं, कालेज में पढ़ने वाले हैं। सन्यास का चोला पहन रहे हैं। यह भी एक बहुत बड़ी उपलब्धि है और वस्तुतः इससे बड़ा आत्म उत्थान का कोई मार्ग भी नहीं है। आत्मा का उत्थान, आत्मा की उपलब्धि आत्मा के संयम बिना संभव नहीं। जो आदमी आत्मा का उत्थान चाहता है। उसको इस दुनियाँ को भूल जाना चाहिए और मात्र अपनी आस्था को ही याद रखना चाहिए। आत्मा ही आनंद का स्रोत है। अतः आत्मा को सदा याद रखो।

जीवन का लक्ष्य आत्म शांति होना चाहिए। आत्म शांति इस रंग-बिरंगी मृग मारीचिका में नहीं मिल सकती। शांति भवनों में नहीं, शांति विषयों में नहीं, शांति तो अपने अन्दर है। इस शांति के लिए मात्र अपने अंदर जाना है। जब हम अपनी दृष्टि को पर पदार्थ से यानि विषय कषायों से हटा लेते हैं तो हमारे अन्दर ही शांति का झरना फूट पड़ता है। अपने भीतर देखो, अपने भीतर ही सब कुछ है, अपने भीतर जाना ही दुनियाँ को समझना है।

सन्यास कोई महोत्सव नहीं, दीक्षा कोई महोत्सव नहीं, आत्म शांति का संकल्प है, विचारों की शुद्धिकरण है। आत्मा की खोज है, आत्म संयम है, आत्म पुरुषार्थ है। जीवन नश्वर है, जीवन और मरण के अलावा इस दुनियाँ में कुछ है ही नहीं। वस्तुतः मृत्यु को जीतने का जो संकल्प है, वही दीक्षा है। जीवन को समझो, जीवन समझ में आ जाने पर दीक्षा के भाव हो ही जाते हैं।

❑ ❑ ❑

नर्मदा का पावन तट हो आत्मा के निकट

यह तो सत्य है कि किसी क्षेत्र का पावन पुण्य ही हमको अपनी ओर आकर्षित करता है। यह नर्मदा का वही तट है जहाँ से साढ़े पाँच करोड़ मुनियों ने अपनी कठोर तपस्या/साधना से सिद्धत्व की प्राप्ति की थी। यहाँ वे सिद्ध हुए थे, अपनी आत्मा के कर्म मलों को धोकर आत्मा को साफ किया था और इस संसार से हमेशा के लिए मुक्ति पाई। अतः यह नर्मदा का पावन तट बहुत पवित्र है। हमको यहाँ आकर उन पवित्र आत्माओं की आराधना करना चाहिए, उनका गुणगान करना चाहिए उनकी पूजा करना चाहिए और अपनी आत्मा को भी उनके समान पवित्र बनाने का प्रयास करना चाहिए। यह बात भी कभी नहीं भूलना चाहिए कि जीवन में कर्मोदय के कारण अनेक कष्ट आते

हैं, परेशानी आती हैं लेकिन यदि हमारे सामने धर्म रहता है तो उस कष्ट, परेशानी को आनन्द से जीतने की शक्ति भी हमारे भीतर प्रकट हो जाती है। अत: हमको अपने जीवन में किसी भी कष्ट या परेशानी से डरना नहीं चाहिए अपितु उसका मुकाबला करना चाहिए निश्चित ही उसमें हमारी विजय होगी और हम एक अपने निश्चित लक्ष्य तक पहुँच जायेंगे।

नर्मदा के पावन तट पर आत्मा के निकट होने के लिए आपको पैसों की आवश्यकता नहीं, पैसों को भूलने की आवश्यकता है। भले आप पैसा कमाना न भूलें लेकिन पैसा को अवश्य भूलें यानि पैसा तो कमाएँ परंतु उसका दान करें उसको जोड़कर तिजोरी में न रखें दान करने के बाद उस पैसे को याद न करें यही पैसा को भूलने का अर्थ है।

यह आज की तिथि आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशी, बहुत महत्त्वपूर्ण तिथि है क्योंकि इस तिथि का इंतजार श्रावक और साधु दोनों करते हैं। साधु इस तिथि से अपने आवागमन को चार माह के लिए रोक लेते हैं। वर्षा योग करते हैं और जबकि श्रावक इस बात के इंतजार में रहते हैं कि महाराज आज से चार माह के लिए बन्धन में हो जावेंगे यानि विहार नहीं करेंगे। धन्य है वह युग जब साधकगण इस वर्षाकाल में जंगल के किसी वृक्ष के नीचे बैठकर आत्मा में लीन हो जाते थे लेकिन आज विषम काल में शारीरिक शक्ति के ह्रास के कारण हम साधुओं को जंगल छोड़ कमरों में निवास करना पड़ रहा है। फिर भी यह कम बात नहीं कि आज भी साधना की धारा वही है जो पहले थी।

❑ ❑ ❑

सत्य की जान है अहिंसा

हरदा निकटस्थ नेमावर में स्थित सिद्धोदय सिद्ध क्षेत्र में रविवार १७ अगस्त को आयोजित धर्मसभा को संबोधित करते हुए आचार्य श्री विद्यासागर जी ने कहा– जिसके द्वारा अहिंसा की पुष्टि नहीं हो सकती वह सत्य नहीं कहला सकता। सत्य वहीं है जहाँ अहिंसा है और अहिंसा वहीं है जहाँ सत्य है। सत्य और अहिंसा एक-दूसरे के पूरक हैं। सत्य को छोड़कर अहिंसा नहीं और अहिंसा को छोड़कर सत्य नहीं, हमारे जीवन में सत्य और अहिंसा दोनों होना चाहिए। अहिंसा के अभाव में हमारा जीवन कोई मायना नहीं रखता। आज असत्य ही सत्य सा सिद्ध हो रहा है जब सत्य असत्य के रूप में ढल जाता है तब दर्द होने लगता है। मनुष्य जीवन की सार्थकता इसी में है कि हम सत्य अहिंसा को अपने जीवन में स्थान दें आज हमारे जीवन से अहिंसा निकल गई सत्य चला गया उसी का परिणाम है कि भारत में हिंसा का दौर तेजी से शुरू हो गया। यदि देश की दशा सुधारना है, उन्नति करना है तो जीवन में अहिंसा को स्थान दीजिए।

आचार्यश्री जी ने फिर कहा हमारे जीवन में प्रशम, संवेग आस्तिक्य और अनुकंपा ये चारों होना चाहिए। अनुकंपा के बिना जीवन का कोई मूल्य नहीं, मनुष्य की मनुष्यता अनुकंपा यानि

करुणा से ही पहचानी जा सकती है। यदि मनुष्य में मनुष्यता है तो करुणा ही उस मनुष्य का मापदण्ड है दूसरा और कुछ नहीं। आज हमको आवश्यकता है कि हम अपनी मरी मनुष्यता को जिंदा करें। मनुष्य के पास जब दया रहती है तब वह भेद नहीं करता कि यह जानवर है या आदमी है, दया में भेद नहीं होता। दया समान रूप से सभी के साथ एक समान की जाती है। दया के अभाव में आज मनुष्य जानवरों से भी गया बीता हो गया, वह आज जानवरों को खाने लगा। जानवरों को खाना या जानवरों को मारना मनुष्यता की हत्या है। जीवन तो सबको प्यारा होता है फिर किसी का जीवन क्यों छीना जाये?

यह भारत विश्व प्रसिद्ध था इसने अपना आदर्श कभी न खोया। भारतीय संस्कृति बड़ी गौरवपूर्ण संस्कृति है यहाँ के लोग बड़े अहिंसक थे। एक समय था जब भारत में गाय का दूध भी लोग नहीं बेचते थे, दूध नहीं बेचने का मतलब दूध को निःशुल्क बांट देते थे लेकिन बेचते नहीं थे। कहाँ गया वह भारत? आज तो वह गाय का खून बेच रहा है। भारत को अपनी अहिंसा को समझना होगा अपने अतीत के भारत को याद करना होगा, और इसका दायित्व हम सबका भी है। यहाँ के लोग खेती करते थे पशुओं का पालन करते थे। पशुओं का पालन करने वाला देश आज पशुओं को ही कत्ल कर रहा है जो ठीक भारतीय संस्कृति के अनुरूप नहीं है। यह तो सरासर अन्याय है कि अनुपयोगी पशुओं को काटा जाता है। कोई भी जीवन अनुपयोगी कैसे हो सकता है जीवन तो मूल्यवान होता है जीवन को अनुपयोगी नहीं कहना चाहिए। आवश्यकता इस बात की है कि आज हमको हिंसा के विरोध में अपना अभियान चलाना होगा। लोगों को जागृत करना होगा। करुणा, दया को जागृत करना होगा तभी हम देश में कत्लखानों में हो रही इस भयानक हिंसा को रोक सकते हैं अन्यथा हिंसा बढ़ती ही जायेगी और देश का पतन होता ही जायेगा।

आदमी धर्म को जानता है इसलिए तो उसे रात्रि के बारह बजे भी पूछेंगे कि क्या दीक्षा लेना है? तो वह मना कर देगा। दीक्षा लेने के लिए मना क्यों कर दिया? इससे सिद्ध है कि वह अच्छी तरह जानता है कि धर्म क्या है अधर्म क्या है? आज धर्म को समझने की आवश्यकता है लेकिन धर्म को वही समझ सकता है जो अधर्म को अच्छी तरह जानता है क्योंकि अधर्म को समझना ही धर्म की पहचान है। हम धर्म को समझने की बात बहुत करते हैं लेकिन अधर्म को छोड़ने की बात नहीं करते। यदि हम धर्म को समझना चाहते हैं तो हमको धर्म के अंगों को पहले समझना होगा तभी हम धर्म अर्थात् चारित्र की बात को दूसरे के सामने कह सकते है अन्यथा नहीं।

निरीह होकर, निर्भीक होकर बोलना तो सबको आता है लेकिन निरीह होकर, निर्भीक होकर चारित्र पालना सबको नहीं आता, यह तो बहुत कम लोगों को आता है। निरीह होकर वही चारित्र पाल सकता है जो निर्भीक रहेगा, जिसको संसार की कोई चाह नहीं, जो न ख्याति चाहता है, न पूजा,

न अपना मान-सम्मान। अपने सम्मान की चाह करने वाला व्यक्ति निर्भीक होकर चारित्र का पालन नहीं कर सकता, निर्भीक होकर चारित्र पालने में स्वार्थ सबसे बड़ी बाधा है सबसे पहले हमको स्वार्थ का त्याग करना होगा स्वार्थ को त्यागे बिना हमारा कल्याण संभव नहीं। स्वार्थ परमार्थ को बिगाड़ देता है, परमार्थ के लिए स्वार्थ को पहले छोड़ना होगा। स्वार्थ को छोड़े बिना परमार्थ की साधना संभव हो ही नहीं सकती।

आज हम २१ वीं सदी के प्रवेश का इंतजार कर रहे हैं लेकिन हम २१ वीं सदी में प्रवेश करें इसके साथ हमारे पास कौन से आदर्श हैं? शायद हम कत्लखाने मुक्त भारत, मांस निर्यात मुक्त भारत के साथ यदि हम २१ वीं सदी में प्रवेश करें तो बहुत अच्छा होगा। अहिंसा के साथ प्रवेश करें, अहिंसा हमारा आदर्श हो यदि हमारे साथ अहिंसा है तो समझ लेना सब कुछ हमारे साथ है और यदि हमारे पास अहिंसा नहीं तो समझो हमारे पास कुछ भी नहीं। अहिंसा का अर्थ दया है, दया के क्षेत्र में किया गया कार्य कभी भी फालतू नहीं जा सकता, जीवन का सही सदुपयोग तो यही है कि हम करुणावान हों। आप मनुष्य हैं विकासशील हैं लेकिन आपके विकास का क्या अर्थ है आपने जानवरों को क्या समझा है? अरे! जानवर भी जीव है उसके पास भी आत्मा है उसके पास भी संवेदना है।

जानवरों के साथ संवेदना का व्यवहार रखो यदि संवेदना नहीं रही तो फिर आपके पास मात्र जड़ता है। आप चेतन हैं चेतना की बात करो चेतना का काम करो। मानव जीवन कल्याण के लिए है। कल्याण इसी में है कि हमारे अंदर करुणा हो दया हो, सत्य हो, बस इसी में हम सबका कल्याण है।

❑ ❑ ❑

गुरु की प्राप्ति ही गुरु पूर्णिमा है

इन्द्रभूति को आज के दिन आषाढ़ शुक्ल पूर्णमासी को गुरु की प्राप्ति हुई, उनको गुरु मिले तभी से इस तिथि को यानि आषाढ़ शुक्ल पूर्णमासी को गुरुपूर्णिमा कहते हैं।

आज के दिन एक गुरु को एक शिष्य की उपलब्धि हुई या यूँ कहें कि एक शिष्य को एक गुरु की उपलब्धि हुई थी। एक योग्य शिष्य के अभाव में गुरु मौन रहे लेकिन जब उनको एक योग्य शिष्य मिल गया तो उनकी दिव्य-वाणी संसार के जीवों को संसार से पार होने के लिए मिलने लगी। वस्तुतः अहिंसा का संकल्प जब तक नहीं होता तब तक महान् साधु बोलते नहीं क्योंकि बोलना किसलिए? एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देने वाले ऐसे लोगों से प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती।

प्रयोजन की सिद्धि के लिए शब्द की आवश्यकता पड़ती है फिर भी उसको सुनकर अर्थ को समझ लिया जाए। बिना अर्थ को समझे मात्र शब्द से अपने प्रयोजन की सिद्धि नहीं हो सकती। शब्द

का अपना महत्त्व है, वाणी का अपना प्रयोजन है लेकिन भगवान् की वाणी उसी को अच्छी लगती है जिसकी होनहार अच्छी होती है। जिसका भविष्य खराब रहता है उसका वर्तमान अच्छा कैसे रह सकता है? अत: हमको अपने जीवन को अंधकार से निकालने के लिए गुरु प्रकाश की खोज अवश्य करना चाहिए। गुरु हमारे जीवन का सृष्टा होता है, गुरु हमारे जीवन का प्रकाश होता है, गुरु की प्राप्ति से हमारी अपूर्णता पूर्ण हो जाती है अत: गुरु की प्राप्ति ही गुरुपूर्णिमा है।

गुरु हमको बतलाते हैं कि अहिंसा ही एकमात्र पथ है, अहिंसा ही एक मात्र धर्म है, अहिंसा को छोड़कर कोई रास्ता नहीं हो सकता और अहिंसा को छोड़कर कोई धर्म नहीं हो सकता। गुरु हमको हिंसा से बचने का उपाय बता हमको अहिंसा का मार्ग बताते हैं। गुरु कहते हैं कि अहिंसा ही हमारा जीवन होना चाहिए। जिस दिन हमारा जीवन अहिंसामय हो जायेगा उस दिन हमारे पास परिग्रह रह नहीं सकता क्योंकि जहाँ परिग्रह रहता है वहाँ हिंसा रहती है। परिग्रह और अहिंसा एक साथ नहीं रह सकते। यदि हमें गुरु की खोज करना है तो सबसे पहले हमको अभी से परिग्रह का त्याग शुरू कर देना चाहिए ताकि हम गुरु के चरणों में अहिंसा और अपरिग्रह की साधना कर सकें।

परिग्रह छोड़कर व्यक्ति जब अपरिग्रही बन जाता है तब उसके दिल में दया का प्रस्फुटन हो जाता है क्योंकि दया के बिना सम्यग्दर्शन कैसे रह सकता है। जीवन में दया होना अनिवार्य है। दयालु बने बिना अहिंसक नहीं बन सकते और जब तक हम अहिंसक नहीं बनते तब तक हम अपने देश और समाज की रक्षा भी नहीं कर सकते। रक्षक बनने के लिए हिंसा छोड़ना अनिवार्य है और हिंसक कभी रक्षक नहीं बन सकता।

आज हमारा जीवन भक्षक बन चुका है। आदमी ने आज जानवरों से भी गया बीता काम करना शुरू कर दिया है। यह जानवर हमसे अच्छे हैं जो बिना मतलब के किसी को सताते तक नहीं लेकिन यह आज का आदमी उन मूक जानवरों को मारकर उनका मांस बेचकर अपना पैसा कमाता है।

आज हम आजादी की स्वर्ण जयंती मनाने की तैयारी कर रहे हैं लेकिन देश की प्राकृतिक सम्पत्ति को विनाश कर यह स्वर्ण जयंती का मनाना कैसे सार्थक होगा? जीने का अधिकार आदमी को ही नहीं जानवरों को भी है यह जानवर भी स्वतंत्र जीना चाहते हैं मरना नहीं चाहते। हमको चाहिए कि हम भारत में इस घिनौने पाप कार्य को जल्दी बन्द करवाएँ। भारत से मांस का निर्यात करना भारत के लिए कलंक की बात है यह भारत के लिए अभिशाप है। भारत की इसमें उन्नति नहीं हो सकती, पतन अवश्य होगा। हम अपने देश को पतन से बचाएँ यही हम सबका कर्त्तव्य होता है।

आप एक स्वतंत्र राष्ट्र में जी रहे हैं, जरा आप अपनी उस स्वतंत्र शक्ति को पहचानिए। आपने चुना है आपके प्रतिनिधि को, अपनी सरकार को। जनता ही सरकार है आप ही सरकार हैं फिर आप इस पाप कार्य को रोकने का प्रयास क्यों नहीं कर रहे हैं? आज से आपको यह संकल्प लेना है कि

भारत से हो रहे मांस निर्यात के विरोध में एक आंदोलन प्रारंभ करना है और एक जन चेतना जागृत करना है ताकि इस पाप पर प्रतिबंध लग जावे। भारत से मांस निर्यात तुरन्त बंद हो इसी भावना के साथ अहिंसा परमोधर्म की जय।

❑ ❑ ❑

आजादी की पचासवीं वर्षगांठ पर पचास दीक्षाएँ

भारत ने अपनी आजादी की पचासवीं वर्षगांठ स्वर्ण जयंती के रूप में मनाया। कोई भी हो आजादी तो सबको प्रिय होती है परतंत्र रहना किसी को भी पसंद नहीं। लेकिन हमने क्षेत्रीय आजादी की स्वर्ण जयंती मनाई। हम क्षेत्र से स्वतंत्र हुए विदेशी सत्ता से मुक्त हुए लेकिन हमने मानसिक गुलामी की जंजीरें अभी कहाँ तोड़ी हैं? आजाद तो वे हुए जिन्होंने अपनी मानसिक दासता को तोड़ डाला और अपनी स्वतंत्र जिन्दगी अपना ली। हमारी संस्कृति अध्यात्म और अहिंसा की संस्कृति है। त्याग और तपस्या की संस्कृति है। आज भी भारत में अध्यात्म और अहिंसा का, त्याग और तपस्या का दर्शन जीवित है। गौरव है हमें एक भारतीय संत पर जिन्होंने भारत के माथे को ऊँचा उठाया है। भारतीय संस्कृति को जीवन दिया। सारे भारत में जहाँ जुलूसों, जलसों, उत्सव, महोत्सवों, जश्नों में स्वर्ण जयंती मनाई, वहीं पचास युवक-युवतियों ने त्याग और संन्यास के साथ आजादी की 'आध्यात्मिक जीवन जयन्ती' मनाई। राष्ट्र की महान् विभूति 'आचार्य विद्यासागर जी महाराज' ने दिगम्बर जैन रेवातट सिद्धोदय तीर्थ सिद्धक्षेत्र नेमावर (खातेगाँव) में पचास युवा युवतियों को अध्यात्म और अहिंसा की दीक्षा प्रदान की।

६ जून १९९७ को २९ आर्यिका दीक्षा, ९ अगस्त १९९७ को ७ क्षुल्लक दीक्षा, १८ अगस्त १९९७ को १४ आर्यिका दीक्षा कुल ५० दीक्षाएँ दी।

स्वर्ण जयंती का इतिहास इन दीक्षाओं से स्वर्णिम रहेगा और हमेशा याद किया जायेगा।

❑ ❑ ❑

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्ति सागरजी महाराज का ४२वाँ समाधि दिवस पर भव्य समारोह

श्रमण परम्परा के आदर्श संत आचार्य शान्तिसागरजी महाराज का जन्म विक्रम सं. १९२६ (सन् १८७२) के आषाढ़ मास कृष्ण पक्ष ६ तिथि, बुधवार को दक्षिण भारत के बेलगाँव जिले के अंतर्गत येलगुल ग्राम में हुआ था। आपका विवाह ९ वर्ष की अल्प आयु में कर दिया गया था। विवाह के ६ माह उपरांत ही उस बालिका का स्वर्गवास हो गया। पुनः विवाह का प्रसंग उठने पर आपने अपने घर वालों को स्पष्ट मना कर दिया और आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत लेने का प्रस्ताव रख

दिया और अन्त में उन्होंने गृहत्याग कर दिया और दीक्षा ले ली। आपने अपने ३५ वर्ष की साधनाकाल के अन्तर्गत नौ हजार छः सो अड़तीस (९६३८) उपवास किए। आपका सारा जीवन घोर तपस्या और संघर्ष में बीता। आपके आचरण में अहिंसा थी, वाणी में स्याद्वाद और चिन्तन में अनेकान्त था। आपने अपने जीवन का अन्त समय निकट जानकर श्री दिगम्बर जैन सिद्ध क्षेत्र कुंथलगिरिजी (महाराष्ट्र) में १ अगस्त, रविवार को समाधि मरण (सल्लेखना) का निश्चय किया और १८ सितम्बर, सन् १९५५ को प्रातः ७.५० मि. पर लगभग ८४ वर्ष की आयु में समाधिपूर्वक अपने शरीर का त्याग किया।

भाद्रशुक्ल दूज, आज आपका ४२ वाँ समाधि दिवस है। आज के इस पावन प्रसंग पर सबसे पहले आपकी भक्ति गीत पर मंगलाचरण हुआ। इसके उपरांत आपके जीवन के विभिन्न प्रसंगों पर प्रकाश डाला गया। इसके उपरांत आपकी पूजा की गई, पूजा की भक्ति गंगा में सारा जन समुदाय डूबा हुआ था। इसके उपरांत आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के मांगलिक प्रवचन हुए, आपने कहा कि मोक्षमार्ग भयभीत व्यक्तियों के द्वारा नहीं चलता कमजोर व्यक्तियों, कषायों से नहीं चलता, मोक्षमार्ग निर्भीक और निरीह व्यक्ति के द्वारा चलता है। जब तक व्यक्ति पक्षपात को नहीं छोड़ सकता तब तक वह तपस्या नहीं कर सकता। मोक्षमार्ग में निष्पक्ष होना चाहिए। आपने कहा कि साधु वही कहला सकता है जो ज्ञान, ध्यान और तप में लीन रहता है। जो निष्पक्ष है, निर्ग्रंथ है विषय-कषायों से दूर रहता है, राग से दूर रहता है वैराग्य ही एकमात्र जिसका जीवन हो वही साधु कहलाता है। हमको यह सोचना चाहिए कि ये हमारे गुरु हैं, ऐसा सोचना हमारी संकीर्णता है गुरु तो विश्व के होते हैं। गुरु तो सबके होते हैं गुरु वही होता है जो सबका होता है। जैन धर्म का मूल सिद्धान्त है गुणों की उपासना करना और गुणों को पैदा करना। गुणों की उपासना ही हमारे जीवन का आदर्श होना चाहिए। आज का साधक मुनित्व की बात तो करता है लेकिन सल्लेखना को सब भूले हुए हैं। साधक की पहली साधना सल्लेखना की होना चाहिए। जोश नहीं ज्योषिता (चाह) होना चाहिए। सल्लेखना निष्ठा के बिना नहीं होती सल्लेखना के लिए निष्ठा होना चाहिए। सल्लेखना का अर्थ समाधिमरण। समाधिमरण का अर्थ आत्महत्या नहीं हैं। आत्महत्या अपराध है लेकिन समाधि मरण एक साधना है।

आज प्रदर्शन के अलावा कुछ भी नहीं है, प्रदर्शन के कारण आज दर्शन लुप्त हो गया है। जीवन में दर्शन होना चाहिए प्रदर्शन में जीवन खोखला हो जाता है। आचार्य शान्तिसागरजी महाराज की दया दृष्टि पर विचार करो पंथवाद पर नहीं। उनके आदर्श को समझो, आदर्श के बिना हमारा जीवन आदर्शमय नहीं बन सकता। किसी एक की पूजा जैन धर्म नहीं करता। पूजा व्यक्ति की नहीं व्यक्तित्व की होती है, व्यक्ति की जाति हो सकती है लेकिन व्यक्तित्व की कोई जाति नहीं होती।

व्यक्तित्व एक गुण है, आदर्श है, हमको इसी आदर्श की उपासना करना चाहिए। ऐसे आदर्श पुरुष आचार्य शान्तिसागरजी महाराज को समझने का प्रयास करो और उनके आदर्शों को अपने जीवन में उतारो।

❑ ❑ ❑

साधना का नाम है साधु

आत्मानम् साधयति इति साधुः अर्थात् जो अपनी आत्मा की साधना करता है वह साधु कहलाता है। जो सुख और दुख में लाभ और हानि में जीवन और मरण में, वन और भवन में, मिट्टी में और सोने की गिट्टी में समता रखता है इनको समान देखता है इनमें भेद नहीं रखता वह साधु कहलाता है। समता ही साधु का जीवन है, भेद-भिन्नता की दृष्टि साधुता में बाधक है, न सोने के प्रति आकर्षण और मिट्टी के प्रति हीनता। आखिर सोना भी एक प्रकार की मिट्टी है फिर सोना पर इतना लगाव क्यों? अतः सम भाव ही साधु जीवन का उपसंहार है। साधु जीवन में साधना प्रधान होती है साधन नहीं और वह साधना भी आत्मा की किसी सांसारिक इच्छाओं की नहीं।

कल क्या करना है? यह नहीं अभी क्या करना है? यह विकल्प साधु को सदा रखना चाहिए। प्रायः कर हम लोग 'कल' पर जीते हैं लेकिन हमको 'आज' पर नहीं 'अभी' पर जीना चाहिए और यदि मरण उपस्थित हो जाये तो 'वेलकम' करो और नहीं तो 'वेल गो' कहो। मृत्यु का स्वागत करने वाले ही मृत्यु को जीतकर मृत्युंजयी बन सकते हैं, मृत्यु से डरने वाले नहीं। साधु जीवन मृत्यु से साक्षात्कार करता है। जीवन महत्त्वपूर्ण नहीं जितनी की मृत्यु है।

दिगम्बर रूप प्रकृति का रूप है, प्रकृति दिगम्बर ही है उस पर किसी भी प्रकार का अनावरण नहीं है। दिगम्बर का अर्थ नेचुरल (स्वाभाविक)। बच्चा जब पैदा होता है तब वह दिगम्बर ही रहता है कपड़े तो वह बाद में पहनता है। दिगम्बर दीक्षा महा पुण्यशाली जीव ही लेते हैं जो अपने अन्दर के विकारों को जीत लेते हैं, इन्द्रियों को वश में कर लेते हैं, संसार, शरीर और भोगों से विरक्त हो जाते हैं वे दिगम्बर दीक्षा लेकर अपनी आत्मा का कल्याण करते हैं और दुनियाँ का भी कल्याण करते हैं क्योंकि जो व्यक्ति स्वार्थ और मोह को छोड़ देता है उसके द्वारा कभी भी अशांति नहीं फैल सकती। अशांति का मूल कारण तो स्वार्थ है, मोह है, विकार है, तृष्णा है, लेकिन जिसने यह सब जीत लिया वह तो संसार के लिए आदर्श बन गया।

दिगम्बर जैन मुनि २८ मूलगुणों का पालन करते हैं। दीक्षा के समय ही ये मूलगुण गुरु के द्वारा दिये जाते हैं जैसे पाँच महाव्रत- (१) अहिंसा महाव्रत (२) सत्य महाव्रत (३) अस्तेय महाव्रत (४) ब्रह्मचर्य महाव्रत (५) अपरिग्रह महाव्रत। इसके बाद पाँच समिति-(१) ईर्या समिति-धरती पर चार हाथ देखते हुए चलना ताकि किसी जीव की हिंसा न होवे। (२) भाषा समिति-अप्रिय, कठोर,

कटुक वचनों का त्याग करते हुए सदा हित, मित और मधुर मीठे वचन बोलना (३) एषणा समिति– आहार को शोध-शोध कर ग्रहण करना, मौन पूर्वक ग्रहण करना, सूर्य प्रकाश में ग्रहण करना (४) आदान निक्षेपन समिति–शास्त्र, कमण्डल आदि को मयूर पंख की पिच्छिका से प्रतिलेखन कर जीवों को बचाते हुए रखना और उठाना। (५) प्रतिष्ठापना समिति–मल-मूत्र का विसर्जन एकांत स्थान में, जीव जन्तु रहित, जमीन पर करना।

छह आवश्यक–(१) सामयिक–तीनों कालों में ध्यान करना (२) वन्दना–एक तीर्थंकर प्रभु, अरहंत की स्तुति करना वन्दना कहलाती है। (३) स्तव–२४ भगवान् की बृहद् भक्ति करना विभिन्न रूपों से (४) प्रतिक्रमण– अपने किए हुए दोषों की आलोचना करना (५) प्रत्याख्यान–त्याग करने को प्रत्याख्यान कहते हैं (६) व्युत्सर्ग– शरीर से ममत्व का त्याग करना व्युत्सर्ग कहलाता है। पंचेन्द्रिय निरोध– पाँचों इन्द्रियों के विषय की इच्छाओं को जीतना। जैसे कि–(१) स्पर्शन इन्द्रिय विजय (२) रसना इन्द्रिय विजय (३) घ्राण इन्द्रिय विजय (४) चक्षु इन्द्रिय विजय (५) कर्ण इन्द्रिय विजय।

सात विशेष गुण– (१) आचेलक्य - समस्त परिग्रह का त्याग कर दिगम्बर होना (२) अस्नान व्रत– नहाने का त्याग (३) केशलुंच– दाढ़ी-मूंछ और सिर के बालों को अपने हाथ से उखाड़ना। (४) भूमि शयन– गद्दा, कम्बल, चादर, तकिया आदि ओढ़ने-बिछाने के सभी वस्त्रों का त्याग, मात्र लकड़ी के पट्ट पर बैठना और शयन करना। (५) अदन्त धावन– दांतों को चमकाने का त्याग (६) स्थिति भोजन– थाली आदि बर्तनों में भोजन करने का त्याग। अपने हाथों की अंजुलि में खड़े होकर आहार लेना (७) एक भुक्ति– चौबीस घण्टे में मात्र एक बार आहार लेना। इस प्रकार से ५ महाव्रत, ५ समिति, ६ आवश्यक, ५ इन्द्रिय विजय, ७ विशेष गुण इन २८ मूलगुण व्रतों का पालन दिगम्बर मुनि करते हैं।

बस इसी का नाम है मुनि दीक्षा। इसके अलावा भी बहुत सी साधनाएँ हुआ करती हैं जिनका पालन भी करते हैं और इस सबका लक्ष्य आत्मशांति का है, आत्म विजय का है, किसी सांसारिक इच्छाओं का नहीं। ख्याति, लाभ, पूजा, सम्मान, नाम का नहीं। संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होना ही दीक्षा है और सही साधना है। ज्ञान, ध्यान और तप में लीन रहना ही साधु का लक्षण है। वासना, तृष्णा, राग, द्वेष, मोह, स्वार्थ और भ्रान्ति से आत्मा को बचाना ही साधु जीवन है।

आचार्यश्री ने अन्त में कहा कि–मैं तो मात्र आचार्य ज्ञानसागर महाराज (आचार्य श्री के गुरु) जी के कम्पनी में एजेन्ट का काम कर रहा हूँ। मेरा कुछ भी नहीं है। यह सब प्रताप गुरुदेव का ही है उनकी ही कृपा है। उन्होंने जो कुछ दिया मैं उसी को बाँटता रहता हूँ। वस्तुतः गुरु कृपा से क्या नहीं मिलता सब कुछ मिलता है। अतः गुरु सेवा, गुरु आज्ञा कभी नहीं भूलना चाहिए।

❑ ❑ ❑

बचाओ हरियाली, नहीं तो मिट जायेगी खुशहाली!

पर्यावरण की दृष्टि से भी पशु पक्षियों का संरक्षण अनिवार्य है पशु पक्षी रहेंगे तो धरती पर हरियाली रहेगी, यदि पशु पक्षी समाप्त हो जायेंगे तो वनस्पति, हरियाली भी नहीं बचेगी। पेड़-पौधों, वनस्पति, हरियाली के बिना हम जीवित नहीं रह सकते, जीवन के लिए वनस्पति अनिवार्य है। पर्यावरण मनुष्य ने बिगाड़ा है पशु पक्षियों ने नहीं। प्राकृतिक संतुलन बनाए रखने के लिए पशु-पक्षी, पेड़-पौधों की उपस्थिति अनिवार्य है। लेकिन यह कितनी बेतुकी विकासवादी प्रक्रिया है जो पर्यावरण को ही खतरे में डाल रही है। पशुओं का वध पर्यावरण का विनाश है, प्रकृति के लिए खतरनाक है फिर भी किसी को इसकी चिन्ता नहीं, मात्र विदेशी मुद्रा के लालच में हम अपने पशु धन को मिटाने में तुले हुए हैं। यदि यही स्थिति रही तो हमारा पर्यावरण ही हमारे लिए प्राणघातक सिद्ध होगा। हम प्रकृति को असन्तुलित कर अपने जीवन को खतरे में न डालें अपितु इसके लिए एक आंदोलन छेड़ें ताकि पशु-पक्षियों का संरक्षण हो सके और देश में हो रही अन्धाधुन्ध पशु हत्या पर अंकुश लग सके। मांस का निर्यात रुक सके।

देश में लोकतंत्र के स्थान पर पल रहे 'लोभतंत्र' को निकाल दें तो यह देश मांस निर्यात से होने वाली विदेशी कमाई के बिना ही उन्नत हो सकता है। विदेशी मुद्रा के लालच में पशु मांस निर्यात करना और काण्ड पर काण्ड तथा घोटाला करके देश को लूटना, देश को कर्जदार बनाना, यह कहाँ की कमाई है? उन्नति है? एक पेड़ काटने पर व्यक्ति को सजा और जुर्माना भुगतना पड़ता है लेकिन आज जो प्रतिदिन हजारों लाखों जिन्दा पशु, दुधारू जानवर कत्लखानों में काटे जा रहे हैं। सरकार ने उनको रोकने के लिए कोई कानून बनाया? कत्लखानों को बन्द करने के लिए अब कानून बनाने की आवश्यकता है, कत्लखाने के खोलने की योजना बनाने की जरूरत नहीं। एक ताजी जानकारी के अनुसार इस समय मध्यप्रदेश में २१३ पशु वध गृह कार्यरत हैं जिसमें से १८८ छोटे पशुओं के लिए तथा ३० बड़े पशुओं के लिए हैं।

अब इन तमाम कत्लखानों को बंद करने की आवश्यकता है ये कत्लखाने देश के लिए कलंक हैं इनमें पशुओं को बेमौत मारा जा रहा है पशुओं को मारने की आवश्यकता नहीं उनको पालने की जरूरत है। सरकार का कर्त्तव्य है कि वह इन कत्लखानों को बंद करे, और गौ-शालाओं का निर्माण करे, जहाँ इनका पालन हो। इस कार्य के लिए जनता का सहयोग भी अनिवार्य है। वह पशुओं की रक्षा के लिए उनके आहार, पानी, आवास चिकित्सा की व्यवस्था करे। पशु प्रेम मानवीय कर्त्तव्य है, कर्त्तव्य ही नहीं सेवा का कार्य है अभयदान परोपकार है महान् धर्म है। यह कौन सी नीति है? दुधारू जानवरों का कत्ल करके उनका खून मांस विदेश निर्यात किया जाये और वहाँ से गोबर,

दूध पाउडर यहाँ बुलवाया जाए। देश चलाने वालों को यह नीति बदल देना चाहिए क्योंकि यह अर्थनीति नहीं यह तो अनर्थ नीति है। दूध बेचो खून नहीं। जिसका हमने दूध पिया, घी खाया, जिसके घी से दीपक जलाकर परमात्मा की आरती उतारी ऐसी गौ माता का कत्ल करके उसका मांस निर्यात करे, ऐसी सरकार को बदल देना चाहिए क्योंकि भारत माता गौशाला चाहती है कत्लखाने नहीं। आज धरती के साथ अन्याय हो रहा है क्योंकि रासायनिक खादों के नाम पर उसको जहर दिया जा रहा है जिससे फल, सब्जियाँ, अनाज विकृत हो चुके हैं और धरती बांझ होने के कगार पर है। धरती को आज गोबर की जरूरत है और वह गोबर किसी फैक्ट्री से नहीं मिलेगा गोबर के लिए तो गौ-वंश की आवश्यकता है और वह गौ-वंश कत्लखानों से नहीं गौ-शालाओं से जिन्दा रहेगा।

घी का दीपक मंगल का प्रतीक है, घी के दीपक से आँख की ज्योति बढ़ती है, घी सात्विक होता है, स्वास्थ्यप्रद होता है, विदेशों में दूध तो है लेकिन घी नहीं। घी भारत की पहचान है लेकिन आज तो घी की जननी ही कटती जा रही है। याद रखो, गाय के अभाव में घी नहीं और घी के अभाव में सात्विकता-आरोग्यता भी नहीं, अतः गाय की रक्षा आरोग्यता की रक्षा है स्वास्थ्य की रक्षा है इसलिए कत्लखानों में कटते गौ-वंश को बचाना आज की पहली जरूरत है। जो राष्ट्र कभी अहिंसा और अध्यात्म के क्षेत्र में विश्व का गुरु था, विश्व में अग्रणी था, वही राष्ट्र आज मांस मंडियों में अग्रणी है। हीरा-मोती बेचने वाला भारत आज पशुओं का मांस बेच रहा है, यह महापाप भारत के लिए कलंक है। इस मांस निर्यात के महा पाप को मिटाने के लिए हम सबको एक जुट हो जाना चाहिए और इसके लिए देरी की आवश्यकता नहीं।

शाकाहार समाज को अब खुलकर अहिंसात्मक तरीके से अपना विरोध प्रकट करना चाहिए। मात्र कुछ विदेशी मुद्रा के लिए पशुओं की अप्रत्यक्ष रूप से योजना बनाना किसी भी शासक के लिए अधर्म है। यदि जनता में अहिंसा नहीं जागी तो देश में पशु धन समाप्त हो जायेगा। हमारा देश पशुओं से खाली न हो इसके पहले ही हमको जागृत हो जाना है और पशु वध रोकने के लिए हमको कटिबद्ध हो जाना है। एक संकल्प लेना है कि हम मांस निर्यात रोक कर ही बैठेंगे। इसके पहले बैठना अपराध होगा।

अहिंसा एवं धर्म के संस्कारों से मुक्त भारत से मांस का निर्यात व मूक पशुओं की बलि देखकर भी हमारी चेतना नहीं जाग रही है। हम संवेदन शून्य हो गए हैं, यह लज्जा की बात है। सामूहिक अपराध में हम सब भागीदार बन रहे हैं तो क्या इसका दंड हमको नहीं मिलेगा? हमारे देश में मान्यता प्राप्त कत्लखानों में लाखों मूक पशुओं की हर दिन बलि दी जा रही है और अहिंसक जनता मूक दर्शक बनकर देख रही है। पशुओं के वध पर अहिंसक देश के नागरिकों की चुप्पी चिन्तनीय है चाहे वह कोई भी हो कांग्रेस हो या भाजपा, निर्दलीय हो या अन्य दल हो उन्हें इस

राष्ट्रहित के मुद्दे को ठुकराना नहीं है अपितु भारत से मांस के निर्यात को रोकना है। आप किसी भी पक्ष के रहो लेकिन राष्ट्र के पक्ष को कभी नहीं भूलना है। कत्लखाने, पशु हत्या, मांस निर्यात से राष्ट्र का हित नहीं होगा, राष्ट्र का हित तो इनको बन्द करने में है।

यह भारत भूमि है, यह कृषि प्रधान देश है यहाँ वेदों पुराणों की पूजा होती है, यहाँ प्रत्येक प्राणी को अभयदान दिया जाता है। यहाँ बीजों को भी बचाया जाता है क्योंकि उनमें वृक्षों की आत्मा निवास करती है उनके पास भी जीवन होता है। लेकिन यह कितने खेद की बात है कि बीजों की भी रक्षा करने वाला देश आज जिन्दा जानवरों को मारकर उनका मांस बेच रहा है। मांस निर्यात के लिए पशुओं की हत्या मानवता के प्रति अपराध है। अतः पशु वध रोकने के लिए सब एक जुट हो जाओ।

मांस निर्यात राष्ट्र का सबसे बड़ा घोटाला है। मांस का व्यवसाय बहुत बुरी चीज है। मांस निर्यात सामूहिक पाप की प्रक्रिया है। मांस निर्यात से आने वाला पैसा भी मांसाहारी है। मांस निर्यात की नीति भारत की नहीं है, मांस निर्यात भारतीय संस्कृति के खिलाफ है भारत का इतिहास अहिंसा और करुणा की कविता है, उसमें हिंसा का फल, क्रूरता की कोई जगह नहीं। मांस निर्यात राष्ट्रीय मुद्रा का अपमान है। जिसकी राष्ट्रीय मुद्रा में 'सत्यमेव जयते' का धर्म वाक्य लिखा है और वही राष्ट्र पशुओं का कत्ल करके उनका खून मांस निर्यात कर रहा है कत्लखाने खोल रहा है। राजनेताओं को अपनी राष्ट्रीय मुद्रा का अच्छी तरह से अध्ययन करना चाहिए और अशोक महान की उस मुद्रा को कलंकित नहीं करना चाहिए। वह उस सम्राट की मुद्रा है जिसने युद्ध का त्याग कर दिया था। हमने उसकी मुद्रा को अपना राष्ट्रीय चिह्न घोषित किया और मांस बेच रहे हैं यह राष्ट्रीय मुद्रा का अपमान है।

लोकतंत्र का कर्त्तव्य है कि वह भारतीय संस्कृति के संरक्षण के लिए भारत से हो रहे मांस का निर्यात तत्काल बंद करे, और इसके लिए दलगत राजनीति से हटकर सभी राजनेताओं को एक जुट होना चाहिए। जिस प्रकार बहुमत के माध्यम से मंत्रिमंडल परिवर्तन किया जा सकता है उसी प्रकार देश के नीति निर्धारकों के सामने बहुमत एवं दृढ़ता के साथ अपना पक्ष रखें ताकि देश से मांस निर्यात पर अविलंब विराम लगे और वातावरण में सुखद परिवर्तन हो। भारत से मांस निर्यात पर रोक लगाना ही देश के विकास का मंगलाचरण होगा।

स्वतंत्रता देश के विकास के लिए प्राप्त की गई थी, विनाश के लिए नहीं। विकास किसका? आज तो ऋण का विकास देश में द्रुत गति से बढ़ता चला जा रहा है। देश विकासोन्मुखी है तो वह ऋण की अपेक्षा से है। जरा आप सोचें आपको क्या करना है देश को कर्जदार या ऋण मुक्त? याद रखिए! जितना-जितना पशु धन कटेगा यह भारत उतना ही कर्जदार, गरीब, गुलाम और बेरोजगार होगा अतः मांस निर्यात रोकना ही राष्ट्र की सबसे बड़ी उन्नति है। देश के पशु धन को संहार करके

हिंसाचार के माध्यम से आज तक विश्व के किसी भी देश ने अपना विकास नहीं किया फिर भारत कैसे कर सकता है?

पशु मांस की कमाई से भारत की गरीबी दूर नहीं हो सकती। देश की गरीबी का कारण हमारा विदेशों में रखा धन है। हम भारत में रहते हैं लेकिन अपना धन विदेशों में रखते हैं क्या भारत के ऊपर विश्वास नहीं? देश का धन विदेश में रखना ही देश की गरीबी और कंगाली का कारण है। भारत कंगाल हो रहा है। ऋण के भार से दब रहा है और देशवासियों का धन विदेशी बैंकों में सुरक्षित है। हम कैसे कहें कि हम अपने देश का विकास कर रहे हैं। अपने देश का धन यदि अपने देश में ही रहे तो आज की गरीबी नहीं है लेकिन मांस बेचकर विदेशी मुद्रा कमाने की लालच में देश को प्राकृतिक सम्पदा से खाली न करें। पशु धन को बचाए उसकी रक्षा करें यही आज की मौलिक आवश्यकता है।

आपके वोट में बहुत ताकत है आपके वोटों में ही सरकार बनती है क्योंकि यह प्रजातंत्र है। आप यह संकल्प करें कि हम वोट उसी को देंगे जो मांस निर्यात बंद करे, पशु वध रोके, कत्लखाने समाप्त करे। भारत प्रजातंत्रात्मक देश है जो अहिंसा और सत्यनिष्ठा के सिद्धांतों के आधार पर स्वतंत्र हुआ है। गणतंत्र व्यवस्था में प्रजा ही सरकार है, सरकार और अन्य कोई नहीं। आपको एक अहिंसावादी सरकार को चुनना है ताकि देश में हिंसा कत्ल का वातावरण न बने।

मांस निर्यात रोकने के मुद्दे को राजनीतिक मत बनाओ। यह तो राष्ट्रीय मुद्रा है, इनके पीछे राष्ट्र हित का सोच है व्यक्तिगत स्वार्थ का नहीं क्योंकि जहाँ स्वार्थ है वहाँ दुनियाँ की भलाई का विचार नहीं, स्वार्थी दुनियाँ का भला नहीं चाहता वह तो अपना मतलब साधता है दुनियाँ उसकी दृष्टि में नहीं। राष्ट्र के सच्चे हितैषी ही राष्ट्र की पीड़ा को समझ सकते हैं लेकिन जिनके पास स्वार्थी लिप्साएं हैं वे सत्ता पाकर के भी राष्ट्र की अस्मिता को कायम नहीं रख सकते। सरकार को सरकार चलाने के लिए हिंसा के तरीके नहीं अपनाना चाहिए क्योंकि सरकार हिंसा से नहीं चल सकती हिंसा से सरकार चलाने का तरीका सरकार को बेकार कर देगा। कत्लखाने खोलना क्या हिंसा नहीं है? मांस का निर्यात करना क्या हत्या नहीं है? अर्थ का इतना लालच मत करो कि देश की चेतन सम्पदा का ही विनाश हो जाए। सरकार को मांस निर्यात के खूनी व्यवसाय को बन्द कर देना चाहिए पशुओं को कत्ल करने का अधिकार हमको नहीं, हमको तो कर्त्तव्य के साथ उनका लालन-पालन करना चाहिए। मांस निर्यात से प्राप्त विदेशी मुद्रा के द्वारा भारत की गरीबी नहीं, अपितु गरीब अवश्य मिट रहे हैं। भारत के द्वारा ही आज भारतीयता नष्ट हो रही है क्योंकि आज भारत की दृष्टि धन पर है धर्म पर नहीं। मानवता का नाम धर्म है लेकिन धन मात्र नैतिकता है। जहाँ अहिंसा रहेगी वहाँ हरियाली रहेगी लेकिन आज तो हरियाली ही छिनती जा रही है हरियाली को खाने वाले जानवरों ने भी इतनी

हरियाली नहीं उजाड़ी जितनी की आदमी ने उजाड़ी। आज आदमी हरियाली भी खा रहा है और हरियाली को खाने वाले जानवरों को भी खा रहा है। कहाँ तक धरती में हरियाली रहेगी।

मनुष्य खर्चीला प्राणी है जानवर नहीं। यदि हम अपने खर्च कम कर लें तो उसी पैसे से इन तमाम पशुओं का संरक्षण हो सकता है। हमारी उन्नति के लिए इन मूकों का कत्ल मानवता के विरुद्ध है। मानवता का हनन करके राष्ट्र की उन्नति का कोई मायना नहीं है। जो व्यक्ति अधिकार की बात करता है उसको अधिकरण (आधार) की बात करना चाहिए। इस कृषि प्रधान भारत देश की एक लम्बी आबादी का अधिकरण (आधार) ही पशु सम्पदा है। बैलों से लगा किसान है और किसान से हिन्दुस्तान है, अतः किसी भी कीमत पर पशुओं का कत्ल उचित नहीं है। मांस का निर्यात भारत जैसे अहिंसा एवं अध्यात्मवादी राष्ट्र के लिए कलंक है। हमको आज अहिंसा और अध्यात्म की जरूरत है जिसके अभाव में हिंसा का दौर बढ़ रहा है।

❑ ❑ ❑

धर्म करने की चीज है पढ़ने की नहीं

पहले युग में आदमी धर्म करता था लेकिन आज के युग में आदमी धर्म को पढ़ता है वस्तुतः धर्म करने की चीज है पढ़ने की नहीं क्योंकि जबसे धर्म की पढ़ाई शुरू हुई धर्म को पढ़ाया जाने लगा तभी से धर्म में अनेक उलझनें पैदा हो गईं, अनेक परिभाषा बन गईं, भाषा बन गईं, मत मतान्तर बन गए और विभिन्न सम्प्रदायों का बँटवारा हो गया, आदमी का विभाजन हो गया, धर्म और उसका विकास पथ आज हमारे पास तक चार भागों में बटा हुआ आ पहुँचा है लेकिन उसको हम विकास क्रम नहीं कह सकते वह यह है कि पहले धर्म किया जाता था अथवा धर्म करते थे फिर धर्म को दिखाया जाने लगा और अन्त में पढ़ाया जाने लगा इस प्रकार धर्म चार भागों में बँट गया।

लेकिन जब हम धर्म की मौलिकता पर विचार करते हैं तब हमको यह भली-भाँति ज्ञात होता है कि धर्म न दिखाने की वस्तु है, न सुनाने की वस्तु है, और न पढ़ाने की वस्तु है, धर्म तो करने की वस्तु है धर्म तो आत्मा की प्रकृति है, स्वभाव है, और वह स्वभाव, प्रकृति किसी के आश्रित नहीं होती किसी पर डिपेण्ड नहीं होती। जबसे हमने धर्म को पढ़ना प्रारम्भ कर दिया, पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया तभी से हमने उसको संकीर्ण कर दिया, संकीर्णता की चार दीवारी में हमने उसको बांध दिया इसलिए वह धर्म हमारे लिये हितकारी सिद्ध नहीं हुआ। धर्म अहिंसा का नाम है और वह अहिंसा पढ़ने की चीज नहीं वह दिल में पैदा करने की चीज है। हम किताबों में अहिंसा खोजते हैं लेकिन अहिंसा किताबों में नहीं मिल सकती, किताबों में तो अहिंसा की परिभाषा मिल सकती है अहिंसा नहीं।

आज हम अहिंसा को किताबों में पढ़ रहे हैं इसलिए हमारे जीवन में अहिंसा की कमी होती

जा रही है। यदि हम अहिंसा को अपने विचारों में प्रतिष्ठित करें जीवन में उतारें, व्यवहार में लायें तो हमको किसी भी पुस्तक पढ़ने की आवश्यकता नहीं। अहिंसा कागजी पुस्तकों की उपज नहीं वह तो हमारी चेतना की परिणति है, वह जड़ में नहीं मिल सकती। जड़ के पास धड़कन नहीं क्योंकि उसके पास दिल नहीं है। अहिंसा करुणा की धड़कन है, दिल की कंपन है, वह पढ़ने से पैदा नहीं होती, सुनने से पैदा नहीं होती, उसके लिए धर्म की मौलिकता को समझने की जरूरत होती है।

धर्म दूसरों के लिए नहीं होता वह तो अपने स्वयं के लिए है। महापुरुष धर्म करते नहीं वे तो धर्म को जीवन में उतारते हैं। जब व्यक्ति धर्म को जीवन में उतारता है तब उसको पथ बतलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि उसके कदम ही पथ का निर्माण करते हैं। वह जहाँ से गुजरता है। वहीं से रास्ता बन जाता है, जहाँ पग रखता है वहीं पगडण्डी बन जाती है। यह भी सच है कि पग के बिना पगडण्डी नहीं बनती, पहले पग होते हैं बाद में पगडण्डी। महापुरुष ऐसे ही होते हैं। आज हम अपनी पगडण्डी बनाना चाहते हैं लेकिन जो महापुरुषों की पगडण्डी है उस पर चलना नहीं चाहते। यदि हम महापुरुषों के चरण चिह्नों पर चलना प्रारम्भ कर दें तो हम भी आज महान् बन सकते हैं। महापुरुषों के चरण चिह्न अहिंसा की पगडण्डी हैं, आज हमको अहिंसा की आवश्यकता है, जिसके अभाव में यह दुनियाँ पीड़ित है।

मैं धर्म को सुनाने के पक्ष में तो हूँ लेकिन पढ़ाने के पक्ष में नहीं क्योंकि धर्म को पढ़ने के लिए शब्द चाहिए, भाषा चाहिए और शब्दों में धर्म को ढूँढ़ना पागलपन है। भाषा परिभाषा में धर्म को नहीं समझा जा सकता। धर्म भाषातीत वस्तु है। आज हम धर्म को पढ़ना चाहते हैं लेकिन हम अपनी आत्मा से पूछें कि हमने पढ़कर कितना धर्म सीखा है? जिस दिन हम धर्म सीख जायेंगे उस दिन पढ़ने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी। धर्म को समझें आत्मा के भावों से। धर्म भावों से समझा जा सकता भाषा से नहीं। हम वह भावों की भाषा सीखें जो बिना किसी परिभाषा के ही हमको धर्म सिखला सके, धर्म को समझा सके। आज धर्म को पढ़ाने, सुनाने, दिखाने की पद्धति बहुत तेजी से चल रही है और धर्म को करने की भावात्मक प्रणाली समाप्त होती जा रही है। आवश्यकता इस बात की है कि हम धर्म को अपने जीवन का अभिन्न अंग मानकर, एक श्वांस मानकर उसको जीवन में उतारें। धर्म सत्य, अहिंसा की व्याख्या है सत्य की अभिव्यक्ति है अहिंसा का सम्मान है। सत्य अहिंसा को जीवन में उतारें। हिंसा, झूठ से बचें, दूसरों को बचायें इसी में अपना और राष्ट्र का कल्याण है। अहिंसा के अभाव में न किसी का कल्याण है और न निर्माण है।

धर्म क्या है? जरा समझें! यदि आप अपने घर में भोजन कर रहे हैं और उसी दौरान एक व्यक्ति आता है और वह कहता है भैया! मुझको बहुत भूख लगी है, मैं तीन दिन का भूखा हूँ, मुझको रोटी दीजिए यदि आप अपनी थाली की रोटी उसको खिला देते हैं, उसकी भूख बुझा देते हैं बस यही

है आहार दान, सही धर्म। इसी प्रकार आप किसी मार्ग पर पैदल जा रहे हैं गर्मी के दिन हैं आपके हाथ में छाता है उसी वक्त एक व्यक्ति आवाज लगाता है मुझको बचाओ, वह व्यक्ति रास्ते में गिर गया था उसको चोट लग गई थी, खून बह रहा था यदि आप रुक जाते हैं और अपना गमछा फाड़कर उसकी चोट के ऊपर उसको बांध देते हैं और उसका हाथ पकड़कर अपने साथ ले जाते हैं उसके गन्तव्य तक तो बस यही है औषधि दान। आपने भले उसको कोई दवा नहीं दी औषधि नहीं दी लेकिन उसके संकट में अपना हाथ लगाया इससे बड़ी और कौन सी दवाई हो सकती है।

इसी प्रकार एक व्यक्ति रास्ते पर चला जा रहा है अचानक वह रास्ता भटक जाता है और यदि हमने उसको रास्ता बता दिया, उसकी भटकन दूर कर दी तो यही है ज्ञान दान। किसी भटके को सही रास्ता दिखा देना इससे बढ़कर और क्या हो सकता है ज्ञान दान। खोटे मार्ग से व्यक्ति को निकाल कर सन्मार्ग में लगा देना सबसे बड़ा ज्ञान दान है। इसी प्रकार एक व्यक्ति अकेला जा रहा है, रात्रि का समय है, वह भय से घबड़ा जाता है और चिल्ला पड़ता है बस उसी समय एक व्यक्ति वहाँ आ जाता है और कहता है कि आप घबराइए मत मैं आपके साथ हूँ और वह उसका साथ देता है वह व्यक्ति भय से मुक्त हो जाता है बस! यही है अभय दान। इस प्रकार हमने चार प्रयोगों द्वारा धर्म की बात समझी और उसके लिए पढ़ने की जरूरत नहीं क्योंकि किसी भूखे को भोजन खिलाना, रोगी को औषधि देना, भटके को रास्ता बताना और भयभीत को निर्भय करना, यह तो बिना पढ़े ही आ जाता है और आना चाहिए। इस प्रकार समझ लेते हैं धर्म की वास्तविकता को जो कि पूर्ण रूप से आडम्बर से रहित है। धर्म के लिए किसी विशेष सामग्री की आवश्यकता नहीं बस भावनाओं की जरूरत है।

अपनी रक्षा करना धर्म नहीं दूसरों की रक्षा करना धर्म कहलाता है। जो अनाथ है, बेसहारा है, भूखा है, रोगी है, संकटग्रस्त है, गरीब है उसकी मदद करना उसके दुखों को दूर करना धर्म कहलाता है। पशु पक्षियों पर क्रूरता नहीं करना धर्म कहलाता है, पशु पक्षियों को नहीं सताना धर्म कहलाता है। आज के युग में पशु पक्षियों पर बहुत संकट छाया है उनका वध हो रहा है उन पर अत्याचार हो रहा है अतः उनका वध रोकना उनकी व्यवस्था करना सबसे बड़ा धर्म है। धर्म हमको यही तो सिखलाता है कि हम किसी पर अत्याचार न करें चाहे वह मनुष्य हो या जानवर।

आज आवश्यकता इस बात की है कि हम गाँव-गाँव में पशु-पक्षी संरक्षणालय खोलें और जनता को पशुओं से प्रेम करने की भावनायें पैदा करें यह सबसे बड़ा धर्म है। जनता में ऐसा आन्दोलन छेड़ें कि जनता पशुओं के अधिकारों को समझ जाये और उनकी रक्षा के लिए सरकार से लड़ाई लड़े यही आज के युग में बहुत बड़ा धर्म है। अब हम रक्षा करना सीखें। अपनी-अपनी रक्षा तो सभी करते हैं लेकिन जो दूसरों की रक्षा करता है वह बहुत बड़ा वीर माना जाता है। बहादुरी अपनी रक्षा करने में नहीं अपितु दूसरों की जान बचाने में है।